विषय-सूची

भूमि समस्या के दो पहलू

श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर

यह प्राय कहा जाता है कि समस्त संसार की तुलना में एशिया मे ही भूमि-समस्या सर्वाधिक जटिल है, यानी समस्याओ की समस्या है। यह समस्या भारत मे अधिक पेचीदी है और भारत देश के भी उन राज्य मे, जहा मुख्यतया लोगो के जीवन का साधन कृषि ही है। इसके लिए अनेक समाधान प्रस्तुत किये गये है और यथासाध्य उन्हे वैधानिक एव व्यावहारिक रूप देने की सच्चेष्टाए की जा रही है। लेकिन उसके साथ ही कोई भी व्यक्ति निश्चित होकर यह नही कह सकता कि केवल वैधानिक व्यावहारिकता मे ही समस्त समस्याओ का हल हो जायगा। तर्क और फिर पूर्ण कार्यकर व्यवहार की दृष्टि मे विधान या कानून का अत्यन्त सरल होना अनिवार्य होगा। फिर ऐसे मूलभूत कार्य न तो स्वत सरल होते हैं और न उनका कार्यरूप ही बहुधा आसान हुआ करता है। जो भी कार्य इस दिशा मे हुए हैं या हो रहे हैं उन पर प्रसन्नता प्रकट की जा सकती है फिर भी उसमे किसी प्रकार की ढीलाई अपरिहार्य रूप से अप्रशसनीय समझी जायेगी। समस्या अपने आप में पेचीदी है तथा कई कारणो से अपने आप मे उलझी हुई भी। पर वर्त्तमान परिस्थिति को तो चुनौती के रूप मे ही स्वीकार करना होगा एव अपनी योग्यता के अनुकूल इसका सही समाधान निकालना होगा।

भूमि की समस्या कृषि योग्य भूमि का प्रमुख प्रश्न है या वैसे भूमि-खड का जिसका उपयोग बागवानी या चारागाह के रूप मे होता है। इसमें तनिक भी सदेह नही कि जमीन ही खाद्योत्पादन का प्रमुख साधन है। इसके साथ ही उद्योगो के लिए कच्चे मालो का उत्पादन भी भूमि मे ही सभव होता है। भूमि का उद्देश्य उत्पादन है, उसकी उपयोगिता अत्यधिक उत्पादन है, वैसा उत्पादन जैसा समाज अपनी आवश्यकता के अनुसार चाहता हो या उसे जरूरत हो। अत भूमि साधन है और उत्पादन साध्य, इसलिए मालकियत का ज्वलत प्रश्न सम्मुखीन हो जाता है, चूकि इसी पर अधिक उत्पादन की समस्या निर्भर है। सम्भवत इसी कारण अत्यन्त प्राचीन काल मे ही भूमि के उद्देश्य के बारे मे कहा जाता रहा है कि "समस्त भूखड पर मानव समाज का अधिकार है, राज्य का स्वामित्व है या जोतनेवालो की जमीन होनी चाहिए।" इन सब नारो का इसीलिए एक निश्चित दार्शनिक मूल्य स्थिर हो चुका है व इनका दीर्घकालीन एक निश्चित स्वरूप बन गया है।

भूमि की यह समस्या इतनी सश्लिष्ट हो गई है इसके भी अनेक कारण है। पर समस्त सश्लिष्टता या उलझन की जड मे एक कारण है और वह यह कि सर्वापेक्षा महत्त्वपूर्ण होने पर भी भूमि ही यहा उत्पादन का एक मात्र साधन है। उत्पादन का क्रम भिन्न-भिन्न राज्यो मे भिन्न-भिन्न स्तर का है और परिवर्तित परिस्थितियो मे इसका क्रम प्राय बदलता रहता है। भूमि एव उसके उपयोग करनेवालो मे पारस्परिक प्रभेद है और वह प्रभेद मालकियत पर निर्भर करता है एव इसके अतिरिक्त अन्य कई मनोवैज्ञानिक पहलू भी इसके है, जैसे भूमि कर, मालकियतके प्रभेद, सरक्षण तथा सामाजिक दायित्व का बोध। जो लोग अत्यधिक उत्पादन का आदर्श अपने सम्मुख रखते हैं व जिनके समक्ष मनुष्यो, भूमि के उपयोगको और इसी प्रकार के अन्य विचार रखनेवालो का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे भूमि-समस्या के साथ-साथ ऐसे उपाय या हल निकाले जिसमे भूमि का प्रश्न उत्पादन की समस्या के साथ सुव्यवस्थित हो जाय। इसके साथ ही एक प्रकार का कार्यकरण सदा के लिए नही तो कम-से-कम सर्वाधिक अवधि के लिए अवश्य ठीक रहे।

हमारे देश मे भूमि-समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब सब लोगो को सामाजिक न्याय मिले, अत्यधिक एव अत्युत्तम फसल उपजे। सामाजिक न्याय दिलाने एव प्राप्त करने की आवश्यकता लोक जागरण के सर्वथा अनुकूल है। भारतीय विधान की ३८, ३९, ४१, और ४३ धाराओ में इसका स्पष्ट उल्लेख भी कर दिया गया है। यह आज की सरकार का पुनीत कर्त्तव्य है। अत्यधिक उत्पादन इसलिए भी आवश्यक है चूकि हमारा वर्धिष्णु देश द्रुत गति से बढती हुई आबादी के पेट भरने के लिए दूसरे देशो पर निर्भर नही कर सकता है। इनमे से किसी भी तथ्य की उपेक्षा करना अत्यधिक हानिकर सिद्ध हो सकता है। उपेक्षा का सीधा अर्थ होगा क्राति को आमत्रण करना, अपने देश को अधिकाधिक गरीब बनाना या बडे पैमाने पर निकट भविष्य मे अकाल को बुलावा देना। जो लोग केवल भूमि के बटवारे को ही अधिक उत्पादन का जरिया मान लेंगे और यह समझ लेंगे कि केवल भूमि के समविभाजन से ही अपने आप उत्पादन बढा जायगा वे वास्तविकता से दूर, बहुत दूर हट जायगे। सब लोग यह जानते है कि लाखो ऐसे किसान हैं जो पर्याप्त एव प्रचुर भूमि रहने पर भी कई कारणो से अधिक

अन्न नही उपजा सकते । इसके भी कई कारण हैं। किसान की लगन, उसकी रुचि, उसकी मौलिक उद्भावना के साथ-साथ स्थिति-सम्मत साधन एव उपादान उसे चाहिये, जैसे पर्याप्त सिंचाई का इन्तजाम, कृषि सम्वन्धी वैज्ञानिक शिक्षा, अच्छे वीज और पूजी की आवश्यकता पडती है। अगर किसी को जमीन मिल गई तव भी उपादान उसे उपलब्ध नही हो सकते हैं। किसानो की सब आवश्यकता भी मिटानी पडेगी, यह समाज एव सरकार का दायित्व है। यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि अत्यधिक उत्पादन से समान वितरण भी सभव नही होने को। आज के ससार मे कोई भी सभ्य समाज समान वितरण के बिना सरक्षित नही रह सकता है। इसलिए केवल अधिक अन्न उपजाओ के समाधान से ही स्थायी तुष्ट समाज की स्थापना निरापद रूप से नही हो सकती है। अत हम सवका उद्देश्य हो जाता है कि दोनो पहलुओ के समाधान पाने की चेष्टा करें। अगर इन दोनो में से किसी का भी सतुलन विगडा तो समता का आदर्श ध्वस्त हो जायगा और उसीके परिमाणस्वरूप समस्त सामाजिक आकृति में विशृ खलता फैल जायगी।

यह कहा जा चुका है कि भूमि के वितरण एव अत्यधिक उत्पादन की समस्याए परस्परावलवित हैं और दोनो समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन इसमें भी सन्देह नही कि सामाजिक सरक्षणवाला पहलू आज अत्यधिक सक्रियता की अपेक्षा रखता है। इस समस्या पर जनता का ध्यान स्थिर हो चुका है, इसके भी कई कारण हैं, सामुदायिक जागरूकता, आर्थिक सन्निपात, लोगो में जमीन की लिप्सा, राजनीतिक दलो द्वारा विभिन्न आकारो के आन्दोलन एव सर्वाधिक भारतीय सविधान में इसकी प्रतिष्ठा। अब भय इस कारण है कि कही इसकी अवहेलना के कारण प्रतीक्षा न की जाय और भावनात्मक प्रक्रियाओ को अधिक दिन कार्यकारी होने से रोक रखा न जाय। इसके अतिरिक्त देश में और देश के बाहर भी ऐसी शक्तिया हैं जो मौका पाकर विद्रोह फैलाने की ताक में बैठी हैं। यह भी मान लिया गया है कि अपर्याप्त उत्पादन का अर्थ आर्थिक विपर्यय होता है। यह विपर्यय न केवल भावनात्मक उभाड के रूप में होता है वल्कि इससे सामाजिक व्यवस्था भी कमजोर होने लगती है। प्रत्येक को यह स्वीकार करना होगा कि असगत सामाजिक और आर्थिक अवस्थाए लोगो को आदोलित, प्रेरित एव विक्षोभ-विकम्पित करती हैं। लोगो को पहले सामाजिक अन्याय, आर्थिक विषमता खटकती है। जो लोग अत्यन्त सुनिश्चित व्यवस्था करना चाहते हैं वे ऐसी परिस्थिति सहन नही कर सकते। ऐसे नियामको एव व्यवस्थापको का प्रधान कर्त्तव्य हो जाता है कि वे भूमि-समस्या का हल करते समय इन दोनो पहलुओ पर ध्यान रखें।

अव उन कार्यो का एक-एक करके लेखा-जोखा उपस्थित किया जाय जो इस दिशा में सुनिश्चित रूप से किये गए हैं। सर्वप्रथम यह देखा जाय कि सामाजिक सरक्षण की दिशा मे क्या किये गये हैं और अभी उसके सम्वन्ध मे किस प्रकार के आदर्शो की स्थापना की गई है या मान्यता दी गई है।

स्वतत्र भारत मे देशी रियासतो का उन्मूलन और उनका एकसत्ता के अन्तर्गत विलयन सवसे पहला महान, निदिष्ट एव वलवान कदम है। देशी रियासतो के पास अपनी सल्तनत, अपनी आय, अपनी सुरक्षा थी, अपने दुर्ग और किले थे और क्या-क्या नही था। उनके राज्य विस्तार में जमीन्दारी, जागीरदारी तथा अन्य ऐसी पद्धतिया प्रतिष्ठित थी जिस कारण रैयतो को उनके अधीन वरवस रहना पडता था। दूसरा महत्त्वपूर्ण कदम है कई राज्यो में जमीन्दारी प्रथा के उन्मूलन का। जमीन्दारी उन्मूलन का उद्देश्य यह था कि राज्य एव प्रजा के वीच की मध्यस्थ दीवार तोड दी जाय। यह क्रम अभी भी जारी है। फिर प्रत्येक परिवार के लिए भूमि का अत्यधिक मान स्थिर किया जा रहा है। इसमें एक ही व्यक्ति के कब्जे मे अधिक भूमि नही आवेगी, चाहे वह जिस जरिये से आती रही थी। ये कदम सघीय सरकार या राज्य सरकारो द्वारा उठाये जा रहे हैं और कुछ अन्य सुनियोजित समस्याओ के समावान पर दृढतापूर्वक विचार किया जा रहा है।

पर सर्वाधिक लोकप्रिय, निर्दिष्ट और सुचिन्तित कदम जो अव तक उठाया गया है वह है भूदान यज्ञ का। यह सन्त विनोवा भावे की प्रेरणा के फलस्वरूप प्रारभ हुआ है, जिनकी असाधारण निष्ठा, दृढ विश्वास के कारण आरम्भ काल में ही इसकी अत्यधिक प्रगति हुई। भूदान यज्ञ का नैतिक प्रभाव भौतिक उपलब्धि से कही अधिक प्रसारित हुआ है। वडे पैमाने पर यह मनोवैज्ञानिक आन्दोलन जनमानस को कोरी भावना के हिल्लोल से वहुत हद तक मुक्त कर सकने में समर्थ हुआ है। यह सर्वथा उन्नत व परिष्कृत आन्दोलन है जिसकी प्रगति इस देश की पारस्परिक आस्था के कारण हुई है। इसकी व्यावहारिकता का पक्ष भी अत्यधिक सवल है। भूदान के दो उद्देश्य हैं। पहला यह कि असतुलित शक्तियो को यह सतुलित परिधि में आबद्ध रखता है जिससे सयम की सत्ता रहे और लोग हिंसा करने को प्रेरित न हो। दूसरा उद्देश्य भूदान यज्ञ का यह है जिससे लोगो को स्वामित्व की हेयता, अस्वाभाविकता तथा उसके अभिमान का शनै शनै नाश हो। कोई भी यह विश्वास नही करता कि केवल इसी आन्दोलन से भूमि समस्या का समाधान सभव हो सकता है या हो जायगा। पर अब तक कई लाख एकड भूमि भूमिहीनो के लिए माग ली गई है। आचार्य विनोवा भावे ने एक ऐसा वातावरण बना दिया है जिससे भूमिहीनो को जमीन के मालिको से अहिंसात्मक ढग से जमीन प्राप्त हो जायगी। जब जरूरत पडेगी इसके निमित्त कानून बन जायेगा जिसे जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त हो सकेगा।

जहा तक सामाजिक न्याय और सरक्षण का प्रश्न है उस पर प्रायः सभी पहलुओ से विचार कर लिया गया है। कुछ एक को कार्यरूप दे दिया गया है और कुछ अभी कार्यकरण की अपेक्षा में तैयार रखे गये हैं। यह कोई भी नही कह सकता है कि जितना काम होना चाहिये उसमें उतनी प्रगति हो चुकी है। लेकिन प्रारम्भिकी स्फूर्तिदायिनी है। सामाजिक तथा आर्थिक न्याय के लिए दो-तीन पहलुओ पर विशेष चिन्तन करने और विचार करने की जरूरत है। अगर समान वितरण की परिपाटी चलानी हो तव आर्थिक ईकाइयो पर ध्यान देना अनिवार्य हो जायगा। यह कहना ही पर्याप्त नही है कि एक परिवार के लिए इतने एकड भूमि की आवश्यकता है। अगर ईकाई आर्थिक नही हुई तव किसान वरावर कर्ज में रहेगा। इस प्रश्न का घनिष्ट सवध हिन्दू उत्तराधिकार कानून से है जिस कारण होल्डिग छोटी-छोटी एव अनार्थिक हो जाती है। यह पुराना कानून सामाजिक

न्याय पर अवलम्बित है। इसमे विशेषतया पुरुष वर्ग को ही अधिक लाभ प्राप्त होता है। लेकिन इस पद्धति से समाज के अन्य व्यक्तियो का हित अरक्षित रहता है। इस कारण गावों से बहुत सी आबादी बाहर चली गई है। लेकिन उस प्राचीन पारस्परिक कानून का उद्देश्य यह कतई नही था। समान वितरण और भूमिहीनो को भूमि वितरण के निमित्त यह आवश्यक है कि (१) विविध इलाको मे आर्थिक ईकाई कितने का होगा, (२) यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि होल्डिगो का विभाजन अधिक न हो सके या कम-से-कम २५ या ३० वर्षों तक उस पर किसी प्रकार के पारिवारिक विभाजन का असर न पडने पावे, (३) इसका ध्यान रखा जाय कि ऐसी ईकाइया उन लोगो के हाथ में न पडे जिनकी रुचि अधिक उत्पादन की ओर न हो, (४) उत्तराधिकार कानून का इस प्रकार सशोधन किया जाय ताकि वह ईकाई एकबद्ध रह सके। इन उपायो से उत्पादन वृद्धि व भूमि का समान वितरण सभव हो सकता है, सामाजिक सरक्षण एव न्याय प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त हो सकेगा और सर्वाधिक लाभ यह होगा कि समाज के ढाचे को बदलने के निमित्त अधिनायकवादी तरीको के प्रयोग नही हो सकेंगे, बल्कि मानवीयता पर आधारित एक ऐसे समाज की रचना हो सकेगी जिसमे मानवीय प्रतिभा, प्रेरणा, प्रेम एव आस्था समाज मे सहिष्णुतापूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो सके।

ऊपर यह भी कहा जा चुका है कि सामाजिक न्याय का सम्पूर्ण सबध अत्यधिक उत्पादन से है। यदि किसानो को गतानुगतिकता की गरीबी से मुक्ति नही दिलाई जा सकी तब भूमि के समान वितरण का उद्देश्य सर्वथा निष्फल हो जायगा। उत्पादन वृद्धि के लिए भी कई साधनों का उपयोग किया जा रहा है। इसके लिए सबसे बडा प्रश्न है सिंचाई का इतजाम करना। जगलो की भी सुव्यवस्था की जा रही है ताकि उचित वर्षा हो और भूमि का अकारण और जब तब क्षय न हो। अन्य लघु योजनाए भी कार्यान्वित की जा रही है। इनका विस्तार किया जा सकता है। अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन अधिक सफलता लाभ कर चुका है तथा कम्युनिटी प्रोजेक्ट्स द्वारा भी अधिक उत्पादन पर जोर दिया जा रहा है। अच्छे बीज एव अन्य प्रकार के प्राकृतिक व रासायनिक खादो के इस्तेमाल के बारे मे लोगो में निरन्तर प्रचार किया जा रहा है। पशु-पालन एव सरक्षण की दिशा में भी तत्परता दिखाई पड रही है। स्थिति की पूर्ण सफलता के लिए कई वर्षों के अनवरत प्रयास की आवश्यकता है तब कही वर्त्तमान अवस्था मे आमूल परिवर्त्तन हो सकता है और अन्य सम्मुन्नत देशो के उत्पादन में यह देश भी समकक्ष ठहर सकता है।

कृषि की उन्नति तथा उत्पादन मे, प्रगतिमूलक वृद्धि के रास्ते मे कई कठिनाइया हैं। किसानो की दयनीय गरीबी, वैज्ञानिक ज्ञान का अभाव, सिंचाई की कमी के साथ ही कतिपय अन्य कारण भी इसके साथ सम्बद्ध है जिनके उन्मूलन के बिना वास्तविक विकास व उन्नति असभव ही है। हमारे देश की वर्त्तमान शिक्षण प्रणाली ऐसी है जिस कारण हम भूमि से और गावो मे विलग हो गए है। जो भी विद्यार्थी, चाहे लडका हो या लडकी यह समझता है कि गावो और कृषि तथा उत्पादन से उसका कोई सम्बन्ध नही है। जब विद्यार्थी माध्यमिक विद्यालयो मे ही रहते हैं तब उनके सामने टेबिल, कुर्सी, डेस्क और अफसरी के स्वप्न सुनहले लगने लगते हैं। अतएव ऐसे स्कूलो की स्थापना अनिवार्य है जिनमे कृषि सम्बन्धी शिक्षा दी जाय ताकि पढ-लिखकर भी लोग गावो को त्याग न दें और वे शहर की ओर मुड कर वहा के लिए भी समस्या न बन जाय। एक किरानी से एक किसान का अधिक सम्मान होना चाहिये चूकि किसान रचनात्मक कार्य करता है। औद्योगिक विकास से हमारी सारी समस्याए हल हो जायगी। यह विचार भी उत्पादन के ख्याल से हितकर नही होगा। यह स्मरण रखना चाहिये कि चाहे जितना भी औद्योगिक विकास हो उत्पादन की समस्या एव कृषि की उन्नति केवल उसीसे नही हो सकेगी। उद्योगो के प्रसार तथा वृद्धि की भी अपनी अलग समस्याए होती है जैसे पूजी का प्रश्न व ट्रेनिंग प्राप्त लोगो की समस्या उपस्थित होती है और अन्त मे उत्पादित वस्तुओ के बाजार का सवाल भी आ खडा होता है विकराल रूप मे। भारतवर्ष तब तक सुखी नहीं रह सकता है जबतक भूमि और जन से सर्वाधिक उत्पादन न होगा। यह भी ध्यान में रखना होगा कि भारत मे कृषि ही सबसे बडा उद्योग है।

एक दूसरी महत्त्वपूर्ण समस्या भी हमारे सामने आज सम्मुखीन है, कृषि के विकास तथा उत्पादन की वृद्धि के लिये हमे विदेशो के नकल करने की या उनकी टेकनीक या उनके तरीके पर निर्भर रहने की आवश्यकता बिलकुल नहीं है। उद्योगो की समृद्धि के उनके चाहे जो भी मान हो लेकिन देश की आवश्यकता तथा यहा के साधनो का ही पूर्ण प्रयोग करना पडेगा। यही बात बडे-बडे उद्योगो या कुटीर उद्योगो के सबध में भी कही जा सकती है। चीन, जापान और कोरिया का कृषि उत्पादन हमारे देश से प्राय द्विगुणित है। क्या इन देशो से लाभ उठाना हमारे लिए सर्वथा श्रेयस्कर और लाभजनक नही है? प्रसिद्ध अमरीकी कृषि शास्त्री श्री एफ० एच० किंग ने अपनी विख्यात पुस्तक 'फारमर्स आव फोर्टी कट्रीज' में इन तमाम देशो की कृषि-प्रणाली का विशद एव सर्वांगीण वर्णन किया है। इस किताब का नवीनतम सस्करण १९४९ मे प्रकाशित हुआ है। पुस्तक की भूमिका में किंग ने लिखा है कि अत्यधिक घनी आबादी के बावजूद इन देशो की मिट्टी में सर्वाधिक उर्वरता है। १९०७ मे जापान मे एक एकड जमीन से तीन व्यक्तियो का भरण-पोषण हो जाता था और प्रत्येक वर्गमील मे २३४९ व्यक्तियो का। प्रति वर्गमील कृषि योग्य भूमि में आदमियो के अतिरिक्त ६९ घोडे, ५६ जानवर और ८६ घरेलू मुर्गियो का पालन भी होता था। इसके अलावा कुछ भेडों, सूअरो और बकरे-बकरियो का भी। इससे पता चलता है कि हमलोगो को अभी कितनी दूरी तय करनी है।

लेकिन, अन्त मे, यह आवश्यक है कि अधिक उत्पादन के साथ-साथ सामाजिक न्याय का भी सर्वोपरि ध्यान रखा जाय। योजना के दोनो पक्षो को सफलता जितनी जल्दी मिले उतना ही कृषि व भूमि-व्यवस्था लाभदायक एव फलप्रसू हो सकती है।

इस बडे देश मे सर्वत्र उत्पादन एव गरीवी का एक प्रकार से सम्मिलित व्यवधान है। प्रत्येक व्यक्ति यह कल्पना करता है कि सम्पदा के उत्पादक गरीवी से मुक्त रहेंगे। हमारे देश में वस्तुत किसानो को भर पेट भोजन-वस्त्र नही मिलता, यो तो प्रत्येक कृषि प्रधान देश मे जहा, वडे पैमाने पर कच्चे मालो का उत्पादन होता है वहा उत्पादक विलकुल निचली सतह पर रहते है। मिलो में काम करनेवाले मजदूर और अन्य लोगो को किसानो से अधिक प्राप्त होता है। किसान को कभी-कभी तो अपना घर तक नही होता।

फिर यह भी देखा जाता है कि मालो की खपत और उपभोग में भी जो वास्तविक उत्पादक है, वे एकदम छूट जाते हैं। आराइश की सामग्री के लिए हमारी आमदनी का अधिक भाग व्यय होता है और वास्तविक आवश्यकता के लिए उनसे एकदम कम। जिस समाज का आदर्श प्रजातत्र और न्याय हो उन समाज मे यह विपमता परिस्थिति-विवश है।

अत प्रत्येक समाज निर्माता व विधायक का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि उनके वास्तविक कारण का पता लगावे। सरसरी तौर पर जो विवेचन किया जाता है उनमे व्यवस्था की गलती मालूम पड जाती है। यह एक प्रकार की ऐसी चेतावनी है जिसके परिणामस्वरूप हमलोग उन प्रचलित एव परम्परागत भूल का परिमार्जन कर सकते है। किसान प्रकृत आवश्यकता की सभी चीजें उत्पादन करता है। अत सम्पदा उत्पादन करनेवालो की श्रेणी मे निश्चय ही उसका स्थान ऊचा होना चाहिये एव उसकी समस्त आवश्यकताओ की पूर्त्ति बखूवी होनी चाहिये। हमारे चतुर्दिक जो वातावरण है उसमें इस शर्त्त की पूर्त्ति नही दीख पडती है।

कई प्रकार की अपूरित शर्त्तें है जिन कारण ऐसी स्थिति आ गई है। इसके लिए सभी तथ्यो का अध्ययन एव विवेचन जरूरी है जिसकी वजह वर्त्तमान स्थिति अपनी समस्त विभीषिका के साथ विकराल स्वरूप मे खडी है, अपनी डरावनी शक्ल लेकर।

सन्निकट एव सापेक्ष्य अध्ययन के अनन्तर यह पता चलता है कि हमारे देश के किसान परिश्रमी है और अपने काम या उत्पादन करने की प्रक्रिया में वहुधा असाधारण दुख उठाते है। परम्परा के मुताबिक वे अपने को अधिक समझदार समझते हैं। कृषि के सम्बन्ध मे भी उनकी धारणा बिलकुल अर्वाचीन नही है, वैज्ञानिकता तो दूर की बात रही। ऐसा जान पडता है कि आधुनिक ज्ञान एव साधन उन्हें किसी प्रकार से भी कुछ सिखा सकने मे असमर्थ हैं। देश में जिस प्रकार की परिस्थिति है, उसमे उनके उपादान अत्यन्त पुरातन होते हुए भी, उनके लिए पर्याप्त-सा ही है। इसमे उन्नति की गुजाइश वहुतायत से है परन्तु उसके लिए भी अन्य प्रकार के सफल नियोजनो की जरूरत है। उदाहरण के लिये बिना पर्याप्त सिंचाई की व्यवस्था किये, पर्याप्त एव उचित परिमाण मे खाद और रासायनिक खाद नही दिये जा सकते है और न तो उसके बिना गहरी चास ही की जा सकती है। हमारे देश में केवल जन-बल से ही इन दो समस्याओ का समाधान नही किया जा सकता। हमलोगो को बराबर प्राकृतिक अवस्था के प्रतिकूल काम करना पडता है।

अभी कृषि की जो प्रक्रियाए है उनका विकास युगो के अनुभव के आधार पर हुआ है। यह सभव है उनके विकास के क्रम में प्रयोग की आस्था निहित रही हो। चाहे जो भी हो, वर्त्तमान काल में तो ये ही साधन समीचीन जान पडते हैं।

श्रम-शक्ति पर्याप्त है और किसी भी प्रकार के श्रम के निमित्त विलकुल प्रस्तुत। देश के कई भागो में तो श्रम किसी खास ऋतु मे होता है, कुछ लोग चलते-फिरते है, इसलिए उनका मन एक ही क्षेत्र में नही वस सकता है।

लेकिन इसके साथ ही कृषि की प्रणाली कुछ ऐसी है जिसे असगत कहा जा सकता है। आदमी अधिक सख्या में भूखो मरते हैं लेकिन लाखो

एकड जमीन से तम्बाकू या अन्य प्रकार की औद्योगिक जिन्सो का उत्पादन किया जाता है । किसानो को उपयोगिता एव आवश्यकता के मान के सम्बन्ध में गलत सलाह दी जाती है जिस कारण वे कम उपयोगी जिन्सों का उत्पादन करते हैं। ऐसा इसलिए भी होता है चूकि जिनके हाथ मे आर्थिक सतुलन की कुजी है यानी जो पूजीपति हैं वे किसानो को गलत सलाह देते हैं जिनका उद्देश्य केवल धनोपार्जन ही रहता है। इस तथ्य का पता लगाना पडेगा कि आवश्यक कृषि के बाद किसानो को इसके लिए सुविधा और समय है कि नही ताकि वे खाद्यान्नो के अतिरिक्त अन्य माल का उत्पादन भी कर सकते हैं। यह भी जान लेना जरूरी हैं कि उनकी गरीबी क्या उनकी काहिलियत के कारण है या उन्हे जबरदस्ती बेकार रखकर गरीब बना दिया गया है ।

अब तक जितनी जानकारी हमलोगो को प्राप्त हुई है उससे यह पता चलता है कि लोगो की आवश्यकता दूसरे प्रकार की है और उनको बिलकुल दूसरी जिन्स के उत्पादन का परामर्श दिया जाता रहा है। ऐसा इसलिए किया जाता है चूकि समाज के वित्तशाली और प्रभावशाली व्यक्ति उन्हें फुसला कर, सामाजिक कल्याण की कीमत पर, उनसे दूसरी किस्म की जिन्सों का उत्पादन कराते हैं। जिससे आम जनता के हित का सर्वथा साधन नही हो पाता है। अत हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि वर्त्तमानकालीन जो व्यवस्थित असगति है वह एकदम मानव निर्मित है। जब इनका निर्माण मनुष्य ने किया तब इसका समाधान भी सामाजिक पुनस्सघटन व शिक्षा के द्वारा हो सकता है। अगर हम इसी निदान के अनुसार काम करे तब इस दिशा में प्रयोग बडे और छोटे पैमाने पर किया जा सकते हैं। इसीसे इस कुव्यवस्था के अन्त के लिए उचित मार्ग मिल जायगा ।

प्रयोग केवल अनुसधानशालाओ के पैमाने पर ही नही चलाये जायेंगे बल्कि इनमें किसान तथा अन्य वर्गो का सक्रिय सहयोग भी प्राप्त करना अनिवार्य हो जाएगा। वे भी अपना महत्त्वपूर्ण पार्ट इस दिशा मे अदा करेंगे। जिस प्रयोग मे तथ्यो की अवहेलना की जाती है उसका आदर्श ही समाप्त हो जाता है। गावो के दैनंदिन वातावरण मे ही इस प्रकार के प्रयोग चल सकते हैं चूकि हमारा यह प्रयोग मुख्यतया टेक्निकल नही होगा। उसका तो मूलभूत सिद्धान्त सामाजिक पुनर्निर्माण का है। अतएव पूर्ण सामाजिक विकास का काम केवल कृषि सबधी उन्नति से व उत्पादन वृद्धि से ही सभव नही है। अन्य प्रश्न भी महत्त्व रूप से सलग्न हैं।

जीवन की सच्ची परम्परा प्रतिष्ठित करने में केवल मानसिक या बौद्धिक या तार्किक पद्धति से ही काम नही चलने का, प्रत्युत प्रात्यहिक सुविधाओ-असुविधाओ एव अन्य इतिवृत्त को ध्यान में रख कर नियोजन करना होगा। ग्राम्य जीवन के लिए जिन सत्यादर्शो को कार्यान्वित करने की आवश्यकता है उनका उचित निर्धारण तभी हो सकता है जब सामाजिक सबध अधिक घना हो, तभी भलाई करनेवालो और उससे लाभ उठानेवालो को सतोष होगा। कृषि से भोजन की सफलता के निमित्त जीवन की प्राथमिक जरूरियात का अध्ययन कर उसे पूर्ण करना सर्वोत्कृष्ट है। जैसे, भोजन, वस्त्र, मकान, स्वस्थ परिवेश, उचित शिक्षा । इसकी पूर्ति के पश्चात् ही उत्पादन की शर्त्त ठीक-ठीक निभ सकेगी, कच्चे माल प्रचुर मात्रा मे मिल सकेंगे।

खाद्य स्वत हमारे जीवन के लिए बहुविध आवश्यकता के रूप में मौजूद हैं। स्वास्थ्य व जनकल्याण के वास्ते कई प्रकार के विटामिनो तथा अन्य पोषक तत्वो की जरूरत पडती हैं केवल रासायनिक कारखाने की आवश्यकताओ की तरह नही प्रत्युत इसकी पूर्त्ति समस्तत वनस्पति से प्राप्त करनी पडेगी। शेष के लिए पशु-जगत पर निर्भर रहा जा सकता है।

उपर्युक्त प्रत्येक जिन्सो की जरूरत परिमाण के अनुसार होगी इस-लिए भूमि की जुताई भी आनुपातिक ढग से ही करनी पडेगी। प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन सोलह औंस अन्न की जरूरत पड सकती है। जिसमें चार औंस चर्बी, ६ औंस दूध और कुछ अश अन्य खनिज तत्त्वों की तथा अन्य विटामिनो की। इसलिए हमारे उत्पादन में इन सबकी तालिका सम रहनी चाहिये। तभी हमारे गाव स्वय सम्पूर्ण एव आत्मनिर्भर रह सकते हैं ।

अगर हम अच्छी भूमि मे ही उन तमाम जिन्सो का उत्पादन करें जो अपेक्षाकृत कम उर्वर जमीन मे उत्पन्न हो सकती हैं तब ऐसी योजना भूमि के ठीक व उचित उपयोग की दृष्टि से गलत, अहितकर एव हानिकर होगी। जिस जमीन मे गेहू की फसल अच्छी हो सकती है उसमें बाजरे का उत्पादन नही किया जा सकता है। और जहा धान की फसल अच्छी हो सकती है उसमे जूट का उत्पादन किसी भी दृष्टिकोण से अच्छा नही माना जायगा। भूमि उपयोग मे स्थानिक उर्वरता या अनुर्वरता के आधार, बुद्धिमता एव प्रत्युत्पन्नमतित्व से काम लेना चाहिये, जिससे उस क्षेत्र के लोगो की जरूरतें हल हो सकें। इस प्रकार यदि भूमि का उपयोग जनता की आवश्यकता पूर्त्ति के निमित्त किया गया तब तोषपूर्ण परिस्थिति आने पर आराइश की सामग्री का उत्पादन किया जा सकता है ।

वर्त्तमानकालीन सरकार सम्भवत इनकी पूर्त्ति नही कर सकती है हालाकि यह काम सरकारी एजेंसियो द्वारा ही किया जा सकता है। व्यापक एव बडी कठिनाई इस प्रयोग की दिशा मे यह है कि सरकारी नौकरो एव मुलाजिमो का जीवन-स्तर, मान एव विचार ग्रामीणो की तुलना में एकदम ऊचा है और वे शायद गावो की आवश्यकताओ को बखूबी नही समझ सकें। इसके अतिरिक्त जनता तथा सरकार के बीच पारस्परिक सबध, विश्वास एव अवस्था पर अवलबित नही हैं। केवल सरकारी मशीनरी व उपकरणो से इसकी सिद्धि सभव नही जान पडती है, अत कुछ ऐसे लोग इस प्रयोग को हाथ में लें जो सरकार और जनता दोनो को समझा-बुझा कर सतुलित रख सकें तभी वे प्रयोग बडे पैमाने पर सफल हो सकते हैं ।

उत्पादन के अलावा विनिमय के सिद्धान्तो का अनुशीलन करना होगा जिससे यह पता चलेगा कि मध्यस्थ तो कही विनिमय में अधिकाधिक नही है। यह देखा गया है कि अन्य उद्योगो के उत्कोच या दबाव के कारण अन्य औद्योगिक कर्मियो और उत्पादको को किसानो से अधिक अधिकार मिलते हैं और खाद्यान्न उत्पादको को उससे भी कम। इसके लिए यह अच्छा होगा कि विनिमय के मामले में मुद्रा का प्रचलन जहा तक हो सके किया जाय या मिश्रित अर्थव्यवस्था रखी जाय जिससे औद्योगिक या खाद्यान्न के उत्पादको के स्तर, मुनाफे, जीवन मान में विषमता की गहरी खाई, जो

अवतक प्रचलित है, शीघ्र घट जाय। इस प्रकार के प्रयोग में भी ग्रामीण जनता के अत्यधिक सक्रिय सहयोग की जरूरत पडेगी। यदि इस प्रकार के प्रयोग सफल हो जाय तब इस पर हुए व्यय का बोझ अधिक प्रतीत नही होगा तथा लोगो में बडे पैमाने पर सहयोगिता की भावना बढेगी।

इसे पूर्ण सफल वनाने के लिए ऊची किस्म की अर्थनीति, वडे उद्योगो एव औद्योगिको के षड यत्रो एव लाभ उठानेवाले लोगो के गलत परामर्शो से वचे रहना पडेगा। कतिपय गावो के चुनना पडेगा जिनका बडे उद्योगो से और उद्योगपतियो से कम-से-कम सबध हो और औद्योगिक उथल-पुथल का असर वहा कम पडता हो। इस सब को मूर्त्त रूप देने के पहले यहा भी जनता का हार्दिक सहयोग समष्टि रूप से वाछनीय है। सामाजिक कल्याण, रचनात्मक कार्य, स्कूल, अस्पताल आदि के केन्द्रो का सचालन करना होगा। ये शर्त्ते अगर पूरी कर दी गई तब मैत्री, सहयोगिता एव पारस्परिक सहिष्णुता के आधार पर सफलता निश्चितरूपेण मिलेगी।

इस प्रयोग के व्यय अधिक नही होने चाहिये। केवल उन्ही सामानो को वाहर से मगाना चाहिये जो वहा उपलब्ध न हो। गाव के जो लोग ऐसे प्रयोग मे काम करे उनका व्यय भार उसी काम से निकलना चाहिए। उदाहरणस्वरूप हमारा प्रयोग ही प्राथमिक आवश्यकताओ की पूर्त्तिमात्र है। पाच या छ परिवार के लोग चुने हुए स्थान पर वस जाय और वही के उत्पादन पर पूर्णरूप से निर्भर करें। हा, आवश्यकता पडने पर उन्हें वाहर से भी कुछ चीजें लेनी पडेगी। इस तरह उत्पादक प्रयोग की समस्त आवश्यकताओ की पूर्त्ति करेंगे और जो वस्तु उत्पादित नही हो सकती है उसका क्रय शेष जिन्सो की अधिकता से सम्भव हो सकता है।

इन प्रयोगो का पहला आधार होगा भूमि। भूमि पर हमे पूजी लगानी पडेगी। वैलो, गायो या अन्य जानवरो पर हम जो पैसा व्यय करेंगे वह भी सुरक्षित रह कर लाभदायक होगा तथा उसे जब चाहे तब वेच भी सकते है। कुछ और खर्च की भी आवश्यकता है जैसे कुआ खोदना, वाध वाधना, भूमि का सरक्षण करना। जानवरो के लिए मकान वनाने की आवश्यकता भी पडेगी। लेकिन इन पर जो व्यय होगा वह पूरी रकम की तुलना मे एकदम कम होगा। एक ईकाई पर निम्नलिखित व्यय किया जा सकता है—

(१)	दो सौ एकड भूमि (सव किस्म की)	२५,०००
(२)	१६ वैल और ५ गाय	१०,०००
(३)	कुए इत्यादि	७,५००
(४)	पानी आदि	२,५००
(५)	मकान, शेड आदि	२५,०००
(६)	प्रथम वर्ष की लागत पूजी	३०,०००
	कुल—	१,००,०००

अगर उपर्युक्त पूजी या वजट के अनुसार काम किया जाय तव हमारा ख्याल है किसी भी प्रकार की घटी होने की गुजाइश नही रहेगी। ठीक इसके विपरीत जब प्रयोग चलने लगेगे तव कइयो से लाभ ही होने की सभावना रहेगी।

ऊपर कहा जा चुका है कि इस प्रयोग का उद्देश्य सारे देश के लिए विकास कार्य चालू करना है जिससे आर्थिक ईकाइया स्वय निर्भर एव सम्पूर्ण रह सके और सामाजिक पुनर्निर्माण का अवलम्बन कर देश की सर्वांगीण उन्नति की जा सके और यह मुख्यतया कृषि के जरिये ही हो सकता है। अव तक सरकारी एजेंसियो द्वारा इस तरह के प्रयोग नही हुए हैं और पूर्ण सफल हो ही नही सकते। अतएव यह आवश्यक है कि देश की उन्नति के इस क्षेत्र को जो अवतक निर्दयता व निर्भयतापूर्वक उपेक्षित रहा है पर्याप्त तौर पर सफलता के पथ पर अग्रसर कर दिया जाय।

जमीन्दारी उन्मूलन का इतिहास

प्रो० एन० जी० रांगा

स्वराज के वाद भी भारत में जमीन का दो तिहाई हिस्सा जमीदारो और ताल्लुकेदारो के हाथ मे था। उनकी वडी-वडी इस्टेटे थी जिनके या तो वे स्वामी थे या उससे कर वसूलते थे। ये जमीन्दार और ताल्लुकेदार प्राय २० करोड रुपया प्रति वर्ष वसूलते थे। इनकी जमीन पर इस देश के प्राय १०,००० लाख किसान निर्भर करते थे।

जिन क्षेत्रो में जमीन्दारी प्रथा प्रचलित थी उन क्षेत्रो के वासियो की आर्थिक एव सामाजिक स्थिति अत्यन्त खराव थी। राजनीतिक जागरण से परिचय प्राप्त करना तथा शिक्षा प्राप्त करना एकदम मुश्किल हो गया था। कई क्षेत्रो में तो उनका जीवन खटालो के जानवरो से भी गया वीता था। जमीन्दारो का समारम्भ कैसे हुआ इस प्रश्न पर वहुत से इतिहासकारो का आपसी मत वैभिन्य है। लेकिन अधिकाश इतिहासकार यह स्वीकार करते है कि मुगल शासन के पहले किसान ही भूमि के स्वामी थे। वे राज्य को केवल निर्धारित भूमि-कर देते थे। दसवी शताव्दी तक दक्षिण के चोल राज्य में अगर राजा को मदिर या किसी अन्य देवालय-धर्मालय के लिए जमीन की जरूरत पडती थी तव वह किसान से ही भूमि खरीदता था। ठीक इसी तरह कश्मीर के राजा भी जमीन पर अधिकार पाने के हेतु उसका मूल्य उसके मालिक को देते थे। कल्हण ने एक स्थान पर लिखा है कि एक किसान राजा द्वारा जमीन ले लिये जाने पर उसके लिये डट कर विरोध करता है। चूकि जमीन के जरिये किसान का पालन-पोषण होता था अत राजा उसे लेने के लिए किसान को मुआवजा देना जरूरी समझता था। कीमत देने की प्रथा इसलिए भी चालू की गयी थी ताकि राजा उदण्डतापूर्वक एव वल प्रयोग करके किसानो को उनके अधिकार से वचित न कर दे। अगर ऐसी प्रथा चल गई तव यह परम्परा-सी वन जायगी जिसके विरुद्ध आवाज नही उठाई जा सकती।

परन्तु मुगल काल में, और विशेपतया जहागीर के राजत्वकाल मे जमीदारो ने अधिक सुविधा प्राप्त कर ली और उनके अधिकार भी वढ गए। जव औरगजेव युद्धो मे रत रहने लगा तव ये जागीरदार अपने अधिकार वढाते गये। इस तरह धीरे-धीरे किसान के अधिकारो का अपहरण होने लगा। मुगलो के पश्चात् अग्रेज आये और उनके कारण किसानो की रही-सही स्थिति डावाडोल हो गई। वे व्रिटिशकाल मे केवल जमीन्दारो की स्वेच्छा पर ही निर्भर रहे। जव चाहा जमीन दी, जव चाहा ले ली। इससे भारतीय ग्राम्य व्यवस्था की शक्ल वदल गई तथा उनके दुर्दिन आरम्भ हुए। लार्ड कार्नवालिस के चिर स्थायी प्रवन्ध से भारत की प्राचीन व्यवस्था एकदम नष्ट हो गई। ऐसी प्रथा यहा की परम्परा के विलकुल विपरीत थी। लार्ड कर्जन ही ऐसा पहला व्रिटिश शासक था जिसने जमीन्दारो के उपद्रवो एव वढते हुए अत्याचारो को वगाल और विहार मे रोका। लेकिन कर्जन को भी केवल किसानो की वेदखली रोकने मे ही सफलता मिली और आशिक रूप में करो का वोझ भी कम हुआ।

मद्रास सरकार के एक उच्च पदस्थ कर्मचारी फोरविस ने अपना ध्यान इस ओर आकर्पित किया और उसकी समझमे पहले-पहल यह वात आई कि भारतीय किसानो के प्रति अत्यधिक अन्याय किया गया है। इसी अफसर ने यह चेप्टा की कि स्थायी तौर पर किसानो के साथ जमीन की वन्दोवस्ती की जा सके। उसने कर के रूप में साढे वारह प्रतिशत ले लेने को सोचा। यह १९०८ की वात है। पर ठीक उसके वाद के ही वगाल टेनेन्सी ऐक्ट, यू० पी० टेनेन्सी ऐक्ट तथा अन्य ऐसे ही कानूनो के प्रचलित हो जाने के कारण फोरविस की कल्पना सत्य का स्वरूप नही ग्रहण कर सकी। इन कानूनो के द्वारा केवल थोडे से किसानो का सरक्षण सभव हो सका। और लोग तो सिर्फ जमीन्दारो की कृपा पर ही आश्रित रह गये।

व्रिटिश पार्लामेंट द्वारा जो राजनीतिक अधिकार क्रमश भारत को दिये जा रहे थे उन पर इन्ही जमीन्दारो का एकाधिकार हो गया। इनके वाद शहर मे रहनेवाले मुट्ठी भर पढे-लिखे लोगो को अधिकार मिले तथा इनके साथ ही वडे-वडे व्यवसायियो को भी सुविधाए प्राप्त हुई। यह क्रम १९०८ से १९३६ तक चलता रहा। अधिकार केवल सीमित लोगो को इसलिए मिले चूकि जनता अधिक अशिक्षित थी एव पिछडी हुई, दवी हुई यानी सिर उठा कर अधिकार मागने के लायक नही थी। स्थायी प्रवन्ध के सम्वन्ध में कुछ कहना वडा गुनाह माना जाता था। प्रसिद्ध भारतीय अर्थ शास्त्री डाक्टर रमेशचन्द्र दत्त तथा रानाडे आदि सभी लोग स्थायी प्रवन्ध के ही पक्ष मे थे। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने भी इस स्वत्वहारिणी

प्रथा के खिलाफ आवाज नही उठाई ताकि किसानो को उससे मुक्ति मिल सके ।

१९२९ में हम कतिपय कार्यकर्त्ता प्रादेशिक स्तर पर विजयबाडा में एकत्र हुए । उसका एक मात्र उद्देश्य रैंयतो को मुक्ति दिलाना था । यह उल्लेख योग्य तथ्य है कि मद्रास के केवल एक तिहाई किसान ही जमीन्दारी प्रथा की क्रूरता के शिकार थे । इनमें बहुसख्यक किसानो ने अपने स्वत्व के लिए तरह-तरह से सघर्ष करना शुरू कर दिया था । वे कचहरियो में मुकदमें दायर कर चुके थे । उन्हें १९०८ के इस्टेट्स लैंड ऐक्ट के अनुसार जमीन पर अधिकार प्राप्त हो गया था । इस कानून के अनुसार किसानो की स्थिति अच्छी हो गई थी । कृष्णा तथा गोदावरी डेल्टा के कारण किसानो की आर्थिक अवस्था दिनोदिन सुदृढ होती जा रही थी । किसानो को कर्ज मिलता था तथा वे इन साधनो द्वारा कृषि की उन्नति कर सकते थे । उक्त विजयवाडा सम्मेलन में जमीन्दारो के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया । गाधी-इरविन पैक्ट के बाद राजनीतिक उत्कर्ष के कारण इस आन्दोलन को अधिक बल मिला । इसका सचालन अत्यन्त उद्वेगपूर्ण उत्साह से चलने लगा ।

जब मै १९२० से १९२६ तक यूरोप में था तब आयरलैंड की भूमि व्यवस्था का अध्ययन करता था । डेनमार्क में कैसे भूमि सुधार कानून लागू किये गये इसका भी क्रमिक अध्ययन किया । इटली एव फ्रास में प्रगति बडे जोरो पर हो रही थी । इन तमाम देशो में राष्ट्रीय, सामाजिक एव आर्थिक उन्नति के चिन्ह परिलक्षित हो रहे थे । यह भी उस समय स्पष्ट-तया परिलक्षित हो रहा था कि प्रथम-विश्व युद्ध के पश्चात् यूरोप की जमीदारी प्रथा अन्तिम सास ले रही थी । वहा की अर्थव्यवस्था में कृषको को अधिकार प्राप्त होता जा रहा था । इन अनुभवो के पश्चात् मुझे बडे पैमाने पर जमीन्दारो के विरुद्ध किसानो के पक्ष में आन्दोलन करने की प्रेरणा मिली । १९३१ में जब आन्ध्र में जमीन्दारी जाच कमिटी बनी तब मैं उसका चेयरमैन बना ।

उस कमिटी के समक्ष जितनी गवाहिया दी गई उससे कृषको की अवस्था के सम्बन्ध मे न केवल मद्रास की जनता को ही ज्ञात हो गया बल्कि सारे देश के सामने एक बडी उत्तेजनापूर्ण स्थिति उपस्थित हो गई । देश भर की जनता उस स्थिति से अवगत हुई और उस समय के सभी पत्रो में उस प्रथा की निर्मम आलोचनाए की गई । ये जमीन्दार इतने अधिक प्रभावशाली व शक्ति सम्पन्न थे कि किसान उनके विरुद्ध कुछ भी बोल नही सकते थे । अधिकार मागने की उनकी हिम्मत एकदम नही हो सकती थी ।

इन जाच से आगे काम करने की पूर्ण सुविधा प्राप्त हो गई और उसका विवरण भारतीय राजनीतिक इतिहास के साथ जुड गया । उसी समय चार बहुत महत्त्वपूर्ण काम हुए । काग्रेस के कराची अधिवेशन के अवसर पर कृषको के मौलिक अधिकारो पर एक रिपोर्ट तैयार हुई । एक समिति का निर्माण भी हुआ जिसकी रिपोर्ट पर अखिल भारतीय काग्रेस की बम्बई की बैठक मे १९३१ अक्तूबर मे विचार हुआ । मुझे इस आन्दोलन का पर्याप्त अनुभव था, अत अखिल भारतीय काग्रेस में मैंने किसानो की तरफ से जोरदार वकालत की । मैंने यह भी सुझाव रखा कि [illegible] तथा अन्य [illegible] का, जगलो का और अन्य उपयोग मे आने-वाली जमीन का राष्ट्रीकरण किया जाना चाहिये । मुझे किसी मे सफलता नही मिली । परन्तु इतनी सफलता अवश्य मिली कि इस ओर समस्त देश का ध्यान आकर्षित हो गया और पूरे भारत देश के लोग, जिनमें राज-नीतिक चेतना थी या कृषको का कल्याण चाहते थे उनके समक्ष एक ऐसा विवरण प्रस्तुत हो गया ताकि वे इस दिशा में आगे बढ सकें । उस समय सब लोग यह समझने लगे कि यदि जमीन्दारी उन्मूलन पूर्णतया न भी हो जाये लेकिन उसमें आवश्यक सुधार की अत्यधिक आवश्यकता है ।

मेरी रिपोर्ट, जो प्रकाशित हुई और जिसका महत्त्व भी कम नही था, उसका नाम था 'जमीन्दारी रैंयतो की आर्थिक स्थिति' । इसका भी पर्याप्त प्रभाव लोक मानस पर पडा । वेंकटगिरी में होनेवाले आध्र रैंयत सम्मेलन में जमीन्दारी उन्मूलन का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया । यह तीसरा महत्त्वपूर्ण कदम इस दिशा में है । इसके बाद भी एक चौथी महत्त्वपूर्ण घटना घटी । वेंकटगिरि के सम्मेलन पर तत्कालीन मद्रास सरकार ने प्रतिबध लगा दिया । उसका विरोध किया गया और उसी समय सबसे पहले राजनतिक चेतना से बहुत पृथक रहनेवाले किसानो में जागर्ति आई । ये लोग भी राज-नीतिक कदम उठाने के लिए प्रस्तुत हो गये । जमीन्दारी उन्मूलन के इस आन्दोलन को सर्वाधिक बल तब मिला जब महात्मा गाधी ने इसे आशीर्वाद दिया । वे १९३४ में वेंकटगिरि आये थे । वेंकटगिरि में ही सर्व प्रथम स्थायी प्रबन्ध के खिलाफ आन्दोलन किया गया था और इसके खिलाफ १९३१–३२ में कई बार सत्याग्रह भी किये गये ।

१९३१ की जाच का परिणाम तो पहले बडा भयकर जान पडा लेकिन पश्चात् उसके प्रभाव हितकर व कल्याणकर हुए । जाच समिति के समक्ष जिन किसानो ने गवाहिया दी थी उन्हें जमीन्दारो ने अनेक प्रकार से तबाह और तग किया । एक किसान से तो भविष्य के सबूत के लिए ६ एकड भूमि जमीन्दार ने ले ली । एक दूसरे जमीन्दार ने एक किसान परिवार को अपने गाव से निकाल दिया । तीसरे जमीन्दार ने पुलिस की पैरवी करके किसानो पर लाठी चार्ज करवाया । पर इन तमाम अत्याचारो, ज्यादतियो के फलस्वरूप वेंकटगिरि में ३१-३२ में आन्दोलन शुरू किये गये । यद्यपि मुझे पकड कर दो वर्ष के लिये जेल में बन्द कर दिया गया फिर भी किसानो के आन्दोलन के फलस्वरूप जमीन्दारो को झुकना पडा और वे किसानो को सुविधाए देने को तैयार हुए । जमीन्दारो की आखे खुल गई । इसी प्रकार बडे और छोटे पैमाने पर १९३२-३६ तक छोटे-छोटे कई किसान आन्दोलन चलाये गये और उनमें सफलताए मिली । मद्रास, मेरठ और लखनऊ सम्मेलनो में अखिल भारतीय किसान काग्रेस का जन्म हुआ । फैजपुर में जब अधिवेशन हुआ तब आध्र के किसानो के जलसे का रूप वार्षिक हो चुका था । इसका महत्त्व सम्पूर्ण देश में हो गया किसानो में चेतना आई । फैजपुर में करीब ४५ हजार किसान एकत्र हुए । इसका प्रभाव काग्रेसी नेताओ पर पूर्ण रूप से हुआ । उसी साल कृषि सुधार समिति बनी, चूकि आम चुनाव होनेवाले थे । मैंने उस समय जमीन्दारी उन्मूलन का प्रस्ताव रखा । उस समय, मुझे इसमें सफलता नही मिली । फिर भी किसानो की स्थिति सुधरी । लगान कम किये गये । इसे कम सफलता नही कहा जा सकता है ।

१९३७–३९ तक, जब कांग्रेसी मन्त्रिमंडल कार्य कर रहे थे अंग्रेज अफसरों ने कहा कि केवल वैधानिक तरीकों से ही जमीन्दारी का खातमा नहीं किया जा सकता। इससे स्थायी प्रबन्ध का समूल नाश नहीं किया जा सकता था। लेकिन मद्रास के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने घोषित किया कि जमीन्दारियों का उन्मूलन होना तथा स्थायी प्रबन्ध का खतम होना अत्यन्त आवश्यक है। उत्तर प्रदेश तथा बिहार में जब टेनेन्सी कमिटियाँ बनी तब भी जमीन्दारी उन्मूलन की सिफारिश की गई। मद्रास असेम्बली ने श्री टी० प्रकाशम की अध्यक्षता में जो समिति बनी उसने भी उसी की सिफारिश की। उसी समिति ने कहा कि जमीन्दारी उन्मूलन के बाद का मुआवजा देना भी उचित ही है।

प्राय सभी राज्य सरकारों ने बाकी लगान माफ कर दिया और अधिकांश इलाकों में कर कम कर दिया गया। लेकिन उनसे जमीन्दारी का उन्मूलन संभव नहीं हो सका।

१९३६ से १९४० तक मैंने देश भर का दौरा किया। विधान सभा के सदस्यों, मंत्रियों से अनुरोध किया कि वे किसानों की रक्षा करें तब मैं अखिल भारतीय किसान सम्मेलन का अध्यक्ष था। युद्ध के कारण सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक सुधार नहीं हो सके। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्र की सारी शक्ति लग गई थी।

१९३७ के मंत्रिमंडलों के निर्माण से किसान आन्दोलन को अत्यधिक बल मिला। आन्ध्र में राज्यव्यापी हजार मील लम्बा किसानों का जुलूस संघटित किया गया। प्रत्येक प्रान्त में इस प्रकार के जुलूसों का नेतृत्व किया गया। लखनऊ में लगभग एक लाख किसानों ने विधान भवन के सामने प्रदर्शन किया। पटने का प्रदर्शन तो एक अम्य बन गया। कांग्रेसियों को स्वामी सहजानन्द द्वारा आयोजित प्रदर्शन में कम्युनिस्टों का हाथ मालूम हुआ और कांग्रेसजनों को इससे अलग रहने का आदेश दिया गया। इसके बाद आन्ध्र और बिहार में बड़े पैमाने पर भूमि सत्याग्रह किये गये। इनका उद्देश्य था किसानों को बेदखली से बचाना। इन सत्याग्रह को कुचलने के लिए हिंसात्मक उपाय किये गये और किसानों पर निर्मम प्रहार किये गये। महात्मा गांधी ने स्वयं "ऊटामार्च" का विरोध किया जिस कारण स्वामी सहजानन्द सरस्वती के साथ महात्माजी का बड़ा लम्बा विवाद हुआ। इसके फलस्वरूप स्वामीजी ने बिहार के किसानों का बड़े पैमाने पर संगठन किया।

युद्ध काल में ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ राष्ट्र-मुक्ति के लिए सभी किसान कार्यकर्त्ताओं ने डट कर काम किया। लेकिन दुर्भाग्यवश मुझमें और स्वामीजी में फूट डालने में कम्युनिस्टों को सफलता मिली। उसी वक्त से किसान आन्दोलन जो अब तक जबर्दस्त स्वरूप अख्तियार कर चुका था विभक्त हो गया और अब तक वह भेद मिट नहीं सका है।

जब दूसरी लड़ाई चल रही थी तब भी राजनीति चेतना-सम्भूत जनता ने अपना आन्दोलन जारी रखा। उसी समय कम्युनिस्टों ने जनयुद्ध का नारा दिया। स्वामी सहजानन्द ने १९४५ में महात्मा गांधीजी को और १९४६ में कांग्रेस हाई कमान को जमीन्दारी उन्मूलन के लिए प्रस्तुत किया। १९४५–४६ के चुनाव पत्रक में कांग्रेस ने किसानों की मांगों को मान लिया और हम सब लोगों, जो गत सत्रह वर्षों से इस दिशा में प्रयत्न कर रहे थे, का विश्वास महात्मा गांधी में जम गया।

कांग्रेस का जमीन्दारी उन्मूलन सिद्धान्त लोगों के लिए शुभ सूचक हो गया। अब कांग्रेस मन्त्रिमंडलों को और विशेष कर मंत्रियों की योग्यता पर उसे स्वरूप देना निर्भर रह गया। जब तक इस उद्देश्य की पूर्त्ति हुई तब तक मंत्रिमंडलों को अनेकानेक कार्य करने में संलग्न हो जाना पड़ा। सबसे बड़ी समस्या थी मुआवजा दे देने की। किसान मुआवजा देने के पक्ष में नहीं थे। पर क्या यह सम्भव था कि अहिंसक तरीके से बिना मुआवजा दिये जमीन्दारियों पर अधिकार किया जा सकता? तब यह प्रश्न सम्मुखीन होता है कि जमीन्दारों को किस मात्रा में मुआवजा दिया जाय। कांग्रेस मंत्रियों के लिए यही व्यावहारिक राजनीति शेष बच रही थी। इसे कई कारणों से स्वीकार कर लेना पड़ा। क्या जमीन्दारों को उनके वसूलों के मुताबिक मुआवजा दिया जाय या लगान कम करके उसके मुताबिक दिया जाय? क्या सभी जमीन्दारों को एक ही दर मुआवजा दिया जाय या उसमें भी प्रभेद रहे और क्या किसान ही अपने क्षेत्र के जमीन्दारों को मुआवजा स्वयं दे देंगे या सरकारी सूत्रों के जरिये देंगे? इसी तरह के कई प्रश्न उठ खड़े हुए।

तब हमलोगों ने यह अनुभव किया कि अपनी मांग, जमीन्दारी उन्मूलन की पूरी हो गई, परन्तु सामाजिक न्याय के आधार पर तथा सभी दलों की तथा जनता की तुष्टि पर भी ध्यान रख कर इस पर विचार करना था। उसका दायित्व एक बड़े योग्य व्यक्ति के हाथों में पड़ना चाहिये। बिहार राज्य में इस कार्य को मेरे मित्र श्री कृष्ण वल्लभ सहाय ने बड़ी योग्यता एवं तत्परता के साथ किया है। विधान परिषद के समक्ष इस प्रश्न को जिस प्रकार उपस्थित किया गया था और उसके लिए हमारे इन मित्र को अत्यधिक कोपभाजन बनाना पड़ा था। यह भी सच है कि बिहार तथा उत्तर प्रदेश के बहुत से कांग्रेसी जमीन्दार घरानों के हैं जिनकी आमदनी कम न थी। इन लोगों ने इसे स्वीकार कर अतिशय सहृदयता का परिचय दिया है। श्री कृष्णवल्लभ सहाय के लिए यह बड़ा कठिन काम था कि वे अपने विरोधियों का सामना करें और उन्हें कम मुआवजा के लिये तैयार कर सके। कांग्रेस कार्य समिति ने इन जमीन्दारों को अधिक मुआवजा देने की नीति स्वीकृत की थी लेकिन श्री सहाय ने बिहार में मुआवजा की रकम को कम निर्धारित रखने में अपूर्व सफलता प्राप्त की। यह सफलता इतिहास में उल्लेख योग्य है।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि ६ वर्षों के अनवरत कार्य करते रहने के फलस्वरूप अब देश के अधिक भागों के किसान अपनी भूमि के मालिक बन जा सकते हैं। मैंने इस आन्दोलन को आरम्भ किया था। आज इस बात का गर्व है और मुझे श्री सहाय के मित्र होने का भी गौरव प्राप्त है। चीन में भी इस तरह के कार्य किये जा रहे हैं लेकिन वहां दवाव तथा तानाशाही का राज्य है। हमलोग उन तमाम अमर कार्यकर्त्ताओं, और मंत्रियों, विधायकों के ऋणी हैं।

प्राचीन भारत के गाँव

प्राचीन भारत में जीवन वैयक्तिक सम्पत्ति पर व्यवस्थित था यानी भूमि पर लोगो का अधिकार होता था। सबसे प्राचीनकालीन रचना, सम्भवत मानव जाति के इतिहास में प्रथम, ऋग्वेद में मेडो और भूमि के टुकडो का वर्णन मिलता है। उन टुकडो को क्षेत्र कहा जाता था और मेडो को खिल्या। उसका मालिक क्षेत्रस्यपति कहलाता था और उसकी मालकिन क्षेत्रस्यपती। यह इस बात का प्रचुर प्रमाण है कि वेदकालीन भारत में विभिन्न होल्डिगें थी।

सत्पथ ब्राह्मण में इसका विस्तृत वर्णन है और जमीन के वर्गीकरण का पूरा चित्र भी। यह उल्लिखित है कि क्षत्रिय या राजा, लोगो के परामर्श के अनुसार भूमि की व्यवस्था करता था। इस प्रथा के अनुसार एक-एक क्षेत्र एक-एक व्यक्ति को माप कर दिये जाते थे। इसका वर्णन भी ऋग्वेद मे आता है। अत वैदिक साहित्य में भूमि की सामूहिक मालकियत का कोई वर्णन नही मिलता और न सामूहिक कृषि का ही उल्लेख है। केवल परती भूमि पर समाज का अधिकार होता था। इस भूमि का उपयोग चारागाह के लिए होता था। भूमि पर वशानुगत अधिकार उसी युग से चला आ रहा था। उत्तराधिकारियो को ऋग्वेद में भूमिपति के बालक की सज्ञा दी गई है। छान्दोग्य उपनिषद में आयातमानी का विवरण मिलता है जिसकी व्याख्या करने पर उसमें स्टेट, खेत, और मकानो का विवरण है। तैत्तरीय उपनिषद मे भूमिपति किस तरह अपने पुत्रो में बटवारा करता है इसका वर्णन मिलता है। इसका भी विशद वर्णन है कि जो लडका कही चला जाता था उसे क्षति पूर्त्ति दी जाती थी। मुख्यतया क्षति पूर्त्ति के रूप में उसे धन मिलता था। जैमिनीय ब्राह्मण में एक ब्राह्मण के अपने चार पुत्रो के बीच भूमि बाटने का जिक्र आता है। विभाजन पहले पशुओ और चल सम्पत्ति मे शुरु हुआ और फिर अचल सम्पत्ति यानी भूमि आदि का भी विभाजन हुआ। बटवारे के अनुरोध को दाय कहते है और उत्तराधिकारी दायाद कहलाता है। इसका पूर्ण विवरण यास्क निरुक्त में मिलता है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है जमीन राज्य की मर्जी से बाटी जाती थी और इस तरह भूमि चाहनेवालो को ग्रामकामा कहते है। इस कानून में एव भूमि बन्दोबस्ती के नियमो में यदाकदा परिवर्त्तन होते आये है। जब राजा ने एक व्यक्ति को जमीन का मालिक बना दिया तब वह जमीन्दार हो गया और दूसरे जो वस्तुत भूमि जोतते थे, वे रैयत हो गये। भूमि का राजस्व मिट्टी की उर्वरा शक्ति के अनुकूल उपज का चौथा हिस्सा, आठवा हिस्सा और बारहवा हिस्सा वसूल किया जाता था। सम्राट अशोक ने अपने शिलालेख में लिखवाया कि राज्य द्वारा गौतम बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनी में चौथाई राजस्व घटा कर आठवा हिस्सा लिया जाय। लम्बिनी भगवान बुद्ध का जन्म स्थान है। प्राचीन साहित्य में यह वर्णन भी मिलता है कि कृषि मजदूर लगा कर की जाती थी। बौद्ध साहित्य में एव शिलालेखो में मजदूर लगाने की निन्दा की गई है। जातक कथाओ मे इस सामाजिक पतन का उल्लेख कर उस पर दु ख प्रकट किया गया है कि किसानो को अपनी जमीन छोडकर भूमिपतियो के यहा मजदूरी करनी पडती है। लेकिन इस कृषि व्यवस्था द्वारा यह निश्चित नही किया गया था कि एक परिवार को अधिक-से-अधिक कितनी भूमि रहे। जातको में एक हजार एकड के पाच सौ हलो द्वारा जोते जाने का जिक्र है। इतनी कडी खेती के लिए मजदूर लगाने की प्रथा थी उसे मतिका कहा जाता था।

उस युग में उपज के हिस्से पर भी खेतो को बन्दोबस्त किया जाता था। बौद्ध साहित्य में इसका सप्रमाण विवरण मिलता है। दान में मिली हुई भमि से बौद्ध सघो का व्यय चलता था। इस जमीन की खेती सघ द्वारा कराई जाती थी किन्तु खेती करना भिक्षुको का काम नही था। अतएव सघ की ओर से भी कृषि के लिए भूमि का बन्दोबस्त किया जाता था। महावाग्गा के अनुसार किसी भी खेत के लिए बीज दिया जाता था और उसमे आधी उपज सघ को दे देने की शर्त्त लगायी जाती थी। उस युग में खेत जोतनेवालो को आधी फसल दे दी जाती थी। बुद्धकालीन भारत की कृषि व्यवस्था का बडा महत्त्वपूर्ण वर्णन चीनी विद्वान यात्री आईतसिंग के वर्णन में मिलता है। इस यात्री ने बारह वर्ष भारत मे बिताये थे। विहार के शिक्षण के अनुसार जब खेती सघ द्वारा कराई जाती थी तब उसके एवज में मठ के नौकरो को परिवार पोषण के लिए अन्न दिया जाता था। फसल का विभाजन छ हिस्सो में किया जाता था और मठ को पैदावार का छठा हिस्सा मिलता था। कभी-कभी इस विभाजन में ऋतु के अनुसार परिवर्त्तन और परिवर्द्धन किया जाता था। उस जमाने के मठ इसी नियम

डाक्टर राधा कुमुद मुखर्जी

के पाबन्द थे। लेकिन कहीं-कहीं मठाधीश नौकरो को काम देते थे ताकि उपज अच्छी हो सके। तत्कालीन हिन्दू पुस्तकों मे भी उत्पादन का एक निर्धारित हिस्सा लेकर खेत बन्दोबस्त करने का जिक्र आता है।

अब हम प्राचीन भारत मे प्रचलित कृषि व्यवस्था की विशेषताओ का उल्लेख करेगे। जमीन की मालकियत निर्धारित कर देने का असली उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना ही था जिससे समाज की आर्थिक और सामाजिक प्रगति अवरुद्ध न हो जाय। युगों से भारत का मुख्य उद्योग कृषि रहा है। धन का जादू ऐसा होता है जिस कारण सभी काल में लोग मिट्टी को सोना बना देने के प्रयत्न करते है। पच विनिशा ब्राह्मण मे एक शब्द का प्रयोग हुआ है जिसे व्रात्य कहते है और यह शब्द उन लोगो के लिए लिखा गया जो लोग ब्राह्मण धर्म से परे थे। ये लोग कृषि नहीं करते थे।

सिंचाई के लिए कुए बने हुए थे जिनसे बाल्टियो द्वारा चमडे की डोरी से पानी खीचा जाता था। फिर नरहो द्वारा खेतों मे जल पहुचाया जाता था। सिंचाई के लिए जल झीलो और नहरो से भी निकाला जाता था। कभी-कभी सहयोगिता के आधार पर नहरें भी खोदी जाती थीं। सहयोग के बाद कभी-कभी झगडे भी हो जाते थे। रोहिणी नदी के बांध के लिए तो झगडा भी हो गया था, जिसका फैसला स्वय बुद्धदेव ने करवाया था। खेतों की आकृति प्राय चतुर्भुज जैसी होती थी। उस जमाने के बौद्ध भिक्षु के कपडे भी पुराने टुकडो से ही सिले होते थे।

कृषि कार्यो मे भी चार विभाग होते थे। आज भी वही प्रथा है, जोतना, बोना, काटना और दबना जिन्हे क्रमश वैदिक भाषा मे कृषणन्त वपन्त लुणन्त एव मृणन्त कहते हैं। वैदिक काल मे विविधि किस्म के अन्नो का भी उत्पादन होता था। यव और धान्य उनमें प्रमुख अन्न हैं। बृहदारण्यक उपनिषद मे दस प्रकार के ग्राम्यणी का विवरण मिलता है, चावल यव, वृहयन, मुद्ग, माष, तिल, अणु, खल्व, गोधूम, निवार। इनके अतिरिक्त प्रियगु, मसूर तथा श्यामक का उल्लेख है। दो फसलो की खेती ही की जाती थी। वैदिक काल मे निम्न प्रकार के कृषि-कर निर्धारित किये जाते थे। (१) सरकारी महामात्य खडी फसल पर दाना करता था जिसे तत्कालीन भाषा मे तिये कहा जाता था। दाना करने का अधिकार केवल गाव के मुखिया को ही प्राप्त था जिसे ग्रामजन कहा जाता था (२) युद्ध एव अकाल तथा अन्य विशेष परिस्थितियो से सामना करने के लिये उत्पादन पर अधिक कर लिया जाता था (३) बेगार की प्रथा का भी उल्लेख प्राप्त होता है जब राजा के काम के निमित्त लोगो को अपना काम-धाम छोड कर लग जाना पडता था (४) राज्य के उत्तराधिकारी के जन्म के अवसर पर प्रजा राजा को कर दिया करती थी (५) वनो, जगलो एव स्वामीविहीन भूमि पर राज्य का अधिकार होता था। उसकी बन्दोबस्ती के लिए कर निर्धारित था।

खास महाल, जिसे सीता कहा जाता था, उसके अतिरिक्त राजस्व निर्द्धारण निम्न प्रणालियो से किया गया था (१) भाग, जिसके जरिये उपज का छठा हिस्सा राजस्व मे ले लिया जाता था (२) कर, यह बाग बगीचो पर वसूल किया जाता था (३) विवित्त, चारागाहो का कर (४) वर्त्तनी यातायात और सडक कर (५) रज्जु, भूमि के बन्दोवस्त के समय लिया गया कर (६) चोर रज्जु, यानी चौकीदारी टैक्स (७) सेतु, फल, साक-सब्जियो, ईख, पान, केला, शदा, (सुपारी), केदारा, मसाला (मूलवता) पर निर्धारित होनेवाले कर (८) वन कर, जिसमें जानवर, हरिण, काठ, रबर और हाथी रहते थे।

उपयोगी वनो और जगलो का विवरण निम्न प्रकार का मिलता है। (१) दारुवर्ग (काठ) (२) वेणवर्ग (बास), (३) वल्ले वर्ग (ईख और लताये), (४) वल्कल वर्ग (५) रज्जु वर्ग (मुज), (७) पत्र वर्ग (भोजपत्र आदि) (७) पुष्प वर्ग जिसमे रगाई के फूल भी होते थे जैसे किंशुक, कुसुभ और कुकुम, (८) औषध वर्ग (कंदमूल फल) और (९) विष वर्ग। कौटिलीय अर्थशास्त्र मे चमडे के सामान, हड्डियो के सामान दात, सीग, खुर आदि से बहुत उपयोगी चीजे बनायी जाती थी (१०) पशु व्रज से भी कर मिलता था और पशु पालन बडे पैमाने पर होता था (११) उन सब करो के अतिरिक्त राजा को यदा-कदा प्रजा से उपहार भी प्राप्त होता था (१२) इन सब शीर्षको के अतिरिक्त खानो से भी राजस्व प्राप्त होता था जिनमें से सोना, चादी, हीरा, मोती आदि कई प्रकार के खनिज निकाले जाते थे।

कृषि निर्देशक सीताध्यक्ष कहलाता था और वही खास महाल की कृषि व्यवस्था करता था। पहले सीताध्यक्ष सभी प्रकार की उपमा के बीज एकत्र करता था। फिर उन सबकी रोपनी होती थी। उसके काम मे नौकर, मजदूर और कैदी लगाये जाते थे। आदमियो को सभी प्रकार के सामान भी वही मुहैया करता था। वह बटाई पर जमीन का बन्दोवस्त भी करता था। इस व्यवस्था को अर्द्धसीतिक कहते है। खेती करने के लिए जमीन लेनेवालो को अपना बीज और सामान लगाना पडता था पर जो खेती में सिर्फ श्रम करते थे उन्हे उपज का चौथा या पाचवा हिस्सा दिया जाता था।

गावो के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न प्रकार के रेकार्ड भी रखे जाते थे जिन्हे निबध कहा जाता था। गावो का वर्गीकरण प्राचीन निबधो के अनुसार निम्न प्रकार का है। (१) परिहरक (करमुक्त), (२) आयुधीय (सैनिक सेवा से नियुक्त), (३) हिरण्य जो अनाज या नकद कर देते थे, जो कच्चे माल देते थे या जो कर प्रतिकार के बदले श्रम देते थे जिसे विस्टी कहा जाता था। गावो मे पाटो का विभाजन भी हो गया था। (१) जोतने लायक भूमि, (२) परती जमीन, (३) हीला टावर, (४) केदारा (नम और दलदल आदि), (५) पार्क (अरम), (६) शड (बगीचे), (७) वट, (इक्षु उत्पादक), (८) ईधन तथा अन्य प्रकार की लकडीवाले जगल, (९) वास्तु (जहा वस्तिया हो, (१०) चैत्य (पूजा के पेड जैसे पीपल, आवला, वट आदि), (११) मन्दिर और देवालय (१२) सेतु (सिचाई के स्थान), (१३) अत्येष्टि स्थान, (१४) सत्र (१५) प्रय पानी चलति (१६) तीर्थ स्थान (१७) विवित्त (चारागाह), और (१८) सडकें और राजपथ।

प्रत्येक ग्राम मे सख्या लिखने के लिए बहिया थी जिनमे निम्न विवरण रहता था, (१) प्रत्येक व्यक्ति का विवरण रहता था, (२) कर दाता या कर मुक्त, (३) जाति के अनुसार विवरण, (४) कृषको, गोरक्षको, वैदेहको, कारुओ, कर्मकारो और दासो का विवरण, (५) पशुओ की सख्या, (६) प्रत्येक व्यक्ति द्वारा राज्य को क्या मिलता है इसका क्रमिक

वर्णन, (७) पुरुषों, स्त्रियो, बच्चो का विवरण, (८) गाव या परिवार व धर्म एव धार्मिक मान्यताए (९) घरेलू बजट, आय और व्यय। इन पुस्तको से सरकार को देश की स्थिति का पूरा पता चल जाता था।

ग्राम अध्यक्ष के अतिरिक्त सरकार की तरफ से गाव-गाव में निरीक्षक बराबर वेश बदल-बदल कर घूमा करता था। वह प्रत्येक गाव के रकार्डो का निरीक्षण करता था जिसमे उसे प्रत्येक तथ्य की पूरी जानकारी हो जाती थी। इन्सपेक्टर प्रत्येक गाव के अनर्थकम् पर भी नियत्रण रखता था। इस श्रेणी में वे लोग आते थे जैसे नर्तकियो, कलाकारो और अन्य प्रकार के लोग। बाहरी तत्त्वो पर कडी निगाह रखी जाती थी। कृषि तथा अन्य उत्पन्न के प्रबध मे भी राजा को खबर पहुचानेवाले दूत थे। जिन जिन्सो का आयात होता था उसके द्वारा भी कर निर्धारित था और उसकी वसूली मुस्तैदी से की जाती थी। माल रखने के लिए जो गोदाम बने होते थे उनका किराया भी सख्ती से नियमित वसूल किया जाता था। जिला अधिकारियो के ऊपर प्रदेशतर यानी प्रदेशाधिकारी भी थे जो जिलो के कारबार का निरीक्षण करते थे। कृषि करो के अतिरिक्त अन्य उत्पादनो पर भी कर लगाये जाते थे। वशिष्ठ मे नदियो के विविध इस्तेमाल के निमित्त भी कर निर्धारित था, पहाडियो व सूखी घासो पर भी वसूला जाता था। गणतत्र में पेड की जडो, फलो, डालियो, जडी-बूटियो, मधु, मास और ईधन के लिए भी राजस्व का विवरण मिलता है। इन करो के अतिरिक्त राजा किसानो से पशु कर भी वसूल करता था। विष्णु पुराण मे विविध प्रकार के करो का वर्णन आता है।

प्राचीन भारतीय ग्रामीण अर्थनीति में कृषि के अतिरिक्त अन्य धधो का भी सुन्दर इन्तजाम था। ऋग्वेद में बढई, करमर, लुहार, सोनार, चमार तथा बुनकर का उल्लेख है। बुनकर ओतु और तन्तु के जरिये कपडा बुनता था। इनके अलावा प्रत्येक परिवार का जिक्र आता है जिसमें पिता भिषज था, बेटा दार्शनिक, स्त्री आदर्श गृहिणी जिसके लिए उपल प्रर्क्षिणी शब्द आया है। यजुर्वेद में मलाहो, धोबियो, हलवाहो, नाइयो, वधिको, कसाइयो, हरकारो तथा अन्य प्रकार के शिल्पो मे लगे हुए लोगो का पूर्ण विवरण है जिसमे पता चलता है कि समाज में कर्म श्रेणिया अत्यन्त बारीकी से बाटी गई थी। समाज का शायद ही कोई ऐसा अग हो जिसे विधान एव नियम के अन्तर्गत न रखा गया हो।

उद्योगो का सघटन भी श्रेणी मे विभक्त था। गौतम ने कई उद्योगो में लगी जमातो का क्रमवार वर्णन किया है। जातको में अट्ठारह उद्योगो का वर्णन है और इन सबो का पृथक-पृथक प्रमुख तथा जेठक हुआ करता था। इस श्रेणी विभाजन के अलावा जातको में ऐसे गावो के वर्णन भी आते है जिनमे केवल एक वर्ग के व्यवसाय करनेवाले रहते थे। इससे पता चलता है कि उद्योग छोटे-छोटे पैमाने पर विकेन्द्रित थे। यदि केन्द्र बडे-बडे होते थे तब विविधि उद्योगो के नाम पर गलियो और सडको का नामकरण होता था। आज भी बनारस में हमलोगो को पेशे एव उद्योगो के नाम पर गलियो एव बाजारो के नाम मिलते है। जातको मे भी इसका विशद विवरण है।

शहरो के फाटको पर ग्रामीणो के बाजार लगते थे जिसमें केवल अनाज की बिक्री होती थी। जातको में मछली बेचने के केन्द्र का भी जिक्र है। साथ ही उत्तर पाचाल में मछली तथा अन्य सामानों की दूकानें थीं। बनारस शहर के बाहर एक वधशाला का विवरण भी उसीमें प्रस्तुत है। मिथिला के चारो फाटको पर भी चार बाजार लगते थे। प्राचीन काल में गावो मे जिन्सो का उत्पादन भी होता था और उनका बाजार भी वहा था। अन्य बडे-बडे सामानो की बिक्री के लिए भी दूकानें पृथक-पृथक थी। बडे-बडे स्टोर भी थे जिन्हें अवतर्पण कहा जाता था। बाजारो में मद-मास, दास-दासी, अस्त्र-शस्त्र आदि सब कुछ मिलता था। जातको में व्यावसायिक अनुमानो का जिक्र भी है। बाजारो में जानवरो और मनुष्यो की सुविधा के लिए सब कुछ बना रहता था जैसे मनुष्य के लिए पुरीपालय एव पतिहार।

प्राचीनतम पुस्तको एव रेकार्डों में चौसठ कलाओ का विवरण सर्वत्र मिलता है। सस्कृत तथा प्राकृत मे समान रूप से चतुष्षष्ठी कला का वर्णन है। प्राचीन काल मे भारतीय गावो में कृषि एव उद्योगो की समुचित स्थिति थी। अब सभी प्रकार में गावो का वर्णन लिया जाय। वैदिक काल में गाव अधिक दूर पर नही थे। उनके साथ यातायात का सबध अच्छी तरह रहता था। प्रत्येक गाव मे स्टोर रहता था जिसे गविष्टी करते थे। जानवरो के कानो पर मालिको के चिह्न रहते थे। गाय चरानेवालो को गोपाल कहा जाता था। वैदिक काल में गाय, बैल, घोड़े, कुत्ते, बकरे, भेंडे, गदहे आदि जानवर थे जिसका सरक्षण समाज द्वारा होता था। ऊट और खच्चरो का उल्लेख भी प्रचुर मात्रा में मिलता है।

ग्रामीणो के नैतिक उन्नयन के लिए एव सामाजिक स्तर के सरक्षण के लिए नियम थे तथा सस्थाए थी जिनके द्वारा सबको उनका आचरण अपरिहार्य माना जाता था। उस समय जो लोग सास्कृतिक या धार्मिक कार्य करते थे उन्हे कर-मुक्त जमीन दी जाती थी। इस श्रेणी में शिक्षक, पुरोहित, कुलगुरु, विद्वान तथा पडे प्रमुख थे। उस समय गावो के जीवन में भी कई प्रकार के विभाजन थे। अध्ययन एव तपश्चर्या के लिए ब्रह्म, सोम, अरण्य एव साधन के लिए तपोवन हुआ करते थे। राजगृह के वेणुवन और श्रावस्ती के जेतवन के बिहारो में बौद्ध भिक्षु रहते थे।

प्रत्येक गाव में जन-कल्याण के लिए समाज में कार्य किये जाते थे (१) कुए खोदे जाते थे जिन्हें कूप या उडुपा कहा जाता था (२) तडाग खोदे जाते थे (३) पोखरा (सारा) (४) जलवाह (खायी) (५) प्रश्रवण (झरने) (६) सेतु (७) उपवन (८) अरम (पार्क) बनाये जाते थे। इनके अतिरिक्त गायो के रहने के लिए बडी-बडी गोशालाए बनाई जाती थी जिसमें एक साथ एक हजार गायें रह सकती थी। इस प्रकार गाव भर के जानवर एक साथ भी रह सकते थे। प्रत्येक गाव में कम-से-कम छ सौ फीट का चारागाह रहना आवश्यक माना जाता था। राज्य की ओर से भी गावो को अधिक सुखी-सम्पन्न बनाने के लिए प्रयास किये जाते थे ताकि लोगो को किसी प्रकार की असुविधा नही हो। पुण्य स्थान, देवस्थान आदि राज्य की ओर से बनाये जाते थे परन्तु व्यक्ति विशेष को भी इनके निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया जाता था।

ग्राम-प्रशासन, अध्यक्ष, सख्याध्यक्ष, गोप, स्थानिक, आदि चलाते थे। जानवरो की चिकित्सा के लिए अनिकस्थ रहा करते थे। अन्त में यह भी देखना जरूरी हो गया कि आबादी क्रमानुसार बढती हुई। उसी अनुपात

में करो मे भी वृद्धि होती गई। गुप्त एवं गुप्तोत्तरकालीन शिला लेखों मे जो वर्णन मिलते हैं (१) उद्रंग कर, यह जमीन की बन्दोबस्ती के समय लिया जाता था। (२) उपरिक, उन किसानो से वसूल किया जाता था जिनका जमीन पर किसी प्रकार का हक नहीं होता था। इसके अतिरिक्त वट, अवट, हिरण्य, विष्टिक आदि कर वसूले जाते थे। उस समय अपराध कर अधिक मात्रा मे कर वसूला जाता था। मानसिक, कायिक और वाचिक तीनो प्रकार के अपराधो के लिये लोगो को दड देना पडता था। इन तीन प्रकार के अपराधो की तीन-तीन शाखाए होती थी। भोगभाग आदि अन्य कई प्रकार के कर भी लागू होते थे, वसूले जाते थे।

प्राचीन ग्रन्थो के सिलसिलेवार अध्ययन से यह पता चलता है कि गावो का शासन सम्पूर्ण, सर्वांगीण एव समीचीन था। जनता की आर्थिक सामाजिक, नैतिक, धार्मिक एव सांस्कृतिक उन्नति भरपूर हुई थी। ग्राम का सघटन एकदम वैज्ञानिक तरीके से किया गया था। ग्रामीणों में पूर्ण एकता, पारस्परिक सद्भाव था। विशेष कर प्राचीनकालीन जनगणना बिल्कुल अत्याधुनिक चीज है जिसका इस युग मे भी अनुकरण होना चाहिये।

दस गावो की यूनियन को सन्निग्रहण कहते है। दो सौ गाव मिलकर-कर्वतिक कहलाते थे, चार सौ गाव द्रोणमुख और आठ सौ गाव को माताग्राम कहा जाता था। इसके लिए प्रशासनिक शब्द स्थानीय था जो आधुनिक थाने से कुछ मिलता था। एक गाव मे एक सौ से लेकर पाच सौ तक परिवार रहते थे। उसके बाद के साहित्य मे यह उल्लिखित है कि शासन में दशक नियम का प्रचलन हुआ जिसके मुताबिक दस गावो पर शासन करनेवाला दशकग्रामी कहलाया, बीसगावो वाला विशतिया और सौ गावो का प्रशासक सतकग्रामी कहलाया। ये सबके सब अधिपति के मातहत रहते थे जो हजार गावो पर प्रशासन करता था।
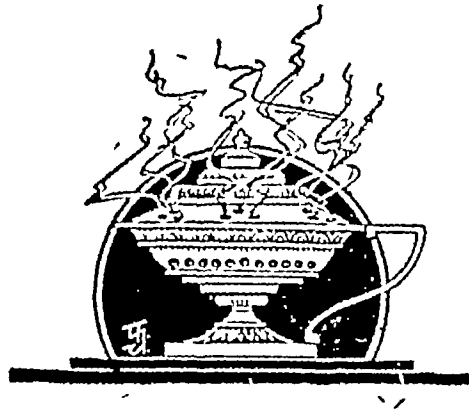
भारत में भूमि-व्यवस्था का भविष्य

स्वर्गीय डाक्टर सुविमल चन्द्र सरकार

जमीन्दारी प्रथा को लोग आदिम काल से ही अन्यायपूर्ण, अनौचित्यपूर्ण एव विनाशक मानते आये हैं। सामाजिक, नागरिक, राजनीतिक एव वैधानिक सभी दृष्टियो से यह प्रथा दोषपूर्ण है। वस्तुत अठारहवी शताब्दी के अन्तिम चरण में ब्रिटिश मत भी इस दिशा में विभाजित नही था। उसी समय ईस्ट इडिया कम्पनी जमीन की बन्दोबस्ती करने जा रही थी। उस समय कम्पनी को बहुत सा नकद रुपया चाहिए था जिससे युद्ध के लिए व्यय निकाला जा सके। आरम्भ से लेकर अब तक उसकी उपादेयता, उपयोगिता तथा सुविधासम्पन्नता के बारे में तर्क उपस्थित किये जा रहे हैं। यह कहा जाता था कि यह व्यवस्था ब्रिटिश शासन की सबसे बडी देन है।

यह कहना तो बिलकुल गलत होगा कि जो व्यवस्था पहले से चली आ रही थी उसे ही अग्रेजो ने पक्का बना दिया। अग्रेजो ने यह देखा कि किसी एक प्रकार की प्रथा व्यवस्थित नही रहती है बल्कि जो प्रथायें चलती थी वे भी सडी-गली आकृति मे। जो प्रथा पहले म्रियमाण हो चुकी थी वह जमीन्दारी नही थी। विश्रृखल होने के पहले वह मुगलो द्वारा आरम्भ की हुई अफगानी प्रथा थी। उस प्रथा द्वारा अफगान यह प्रयास करते थे कि भूमि राष्ट्रीय उपयोग के अनुकूल एव पूर्ण रूप से पैदावार हो जाय। इसका आधार वही प्राचीन भारतीय प्रणाली ही थी। मुगलकाल में जो जागीरदारी या मनसवदारी प्रथा चलाई गई वह वस्तुत शेरशाह द्वारा आरम्भ की गई थी। उसके आरम्भ करनेवाले राजा टोडरमल थे। इस तरह प्राचीन भूमि व्यवस्था, राज्य के परिवर्त्तन से, अनवरत युद्धो से और शाही दरबार एव हरमो के बढे हुए खर्चों से बरबाद हो गई। केन्द्रीय देखरेख भी नही रही और भारत के बहुत से प्रदेश विदेशी रागनीतिक लुटेरो द्वारा बरबाद कर दिये गये। इसका परिणाम व्यापक रूप से इतिहास पर पड़ा। अग्रेज इन सभी स्थितियो से परिचित थे। इसलिए उन्होने इस देश में एक ऐसी व्यवस्था दी जिस कारण यहा गरीवी जड जमा गई। देश का भविष्य, आर्थिक, राजनीतिक, औद्योगिक सब अवरुद्ध हो गया। यह सत्य है कि अगरेजो ने नीलामी को खत्म कर दिया इसके पहले वे दीवानी बन्दोवस्त कर चुके थे और इसीमे कृषि अर्थ व्यवस्था समूल नष्ट हो चुकी थी। इसके पश्चात उन्होने दमामी बन्दोवस्त किया जो यहा की परम्परा के पूर्णतया प्रतिकूल था। इस प्रथा मे यरोपीय प्रथा की समानता है। इतना आवश्यक नही कि इस भूमि व्यवस्था के कारण निर्धारित करते समय किसी तरह का आक्षेप लगाया जाय। परन्तु प्रत्येक कदम किसी उद्देश्य को लेकर ही उठाया जाता है और इतना कहना ही अनिवार्य होगा कि अग्रेजो द्वारा प्रदत्त यह जमीन्दारी प्रथा हमारे देश के लिए विनाशक सिद्ध हुई। वे भारतीय तो थे नही अत उन्होने सभी दृष्टिकोणो से विचार करना आवश्यक नही समझा ताकि यहा का उत्पादन बढे और गरीवो मे समृद्धि विराजे। जो भी भारतीय चैतन्य होकर इस प्रथा की खराबियो के बारे में सोचते थे उनके पास इतनी शक्ति नही थी कि इस दिशा में वे कुछ कर सके। अभी जब देश आजाद हो गया है तब हम भूमि सुधार, भूमि नियोजन आदि के लिये अमरीकी या रूसी प्रणालियो से प्रेरणा प्राप्त करना चाहते है। ईस्ट इडिया कम्पनी के शासको को मीरकासिम और सिराजुद्दौला की भूमि व्यवस्थाओ का ज्ञान था। इस प्रकार सतत राज्य परिवर्त्तनो तथा प्रबन्ध परिवर्त्तनो के कारण भूमि व्यवस्था का अपना मूल स्वरूप एकदम नष्ट हो गया। पठान और मुगल कालो मे जो थोडी अच्छाई बच गई थी उसे भी अग्रेजो ने खत्म कर डाला। यह क्रम १८वी शताब्दी के अन्त में और १९वी शताब्दी के आरम्भ में चलता रहा।

भारतीय ग्राम्य व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था को कितनी क्षति पहुचाई गई और उसके लिए क्या-क्या किये गये उसका पता तब चलेगा जब कोई क्लाइव और हेस्टिग्स के समय के भूमि सबधी कागजातो का अध्ययन करे। यहा दो-चार महत्त्वपूर्ण खराबियो का ही उल्लेख कर रहा हू और इसी कारण १८वी शताब्दी में बगाल मे क्रान्ति हुई थी जिसका प्रचलित नाम मन्वन्तर है।

(१) अग्रेजो ने इस देश मे भूमिपतियो का एक नया वर्ग पैदा कर दिया जिसका निर्वाह लाखो किसानो के कठिन श्रम और उनकी अमानुपिक गरीबी पर होता था और जिनके सारे अधिकार अपहृत किये जा चुके थे।

(२) जो लोग बहुत जमाने से भूमि के मालिक थे उनके स्थान पर नये लोगो के साथ जमीन बन्दोबस्त की गई। इस तरह लोग दूसरो पर निर्भर रहने लगे और एक प्रकार के अर्द्धदास हो गये। अब इन किसानों का

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मूल आकृति

श्री पी० के० मुखर्जी

भारतीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पर कई जिल्दो में पुस्तके लिखी गई है और उसीका विवरण एक छोटे से लेख मे देना कुतूहलजनक प्रतीत होगा। अगर वास्तविक स्थिति की आलोचना की जाय तब यह पता चलता है कि आर्थिक क्षेत्र एव आकडे सम्बन्धी कितना भ्रमात्मक विचार एव तथ्य सरकारी अफसरो, जनता एव अनुसधान करनेवालो के मस्तिष्क में स्थित है इस पर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। बहुधा यह कहा जाता है कि ग्रामीण अर्थ व्यवस्था स्वत सम्पूर्ण होने के साथ-साथ एकदम आत्म निर्भर हो गयी है। गभीर पाठक अगर अर्थ शास्त्र की पोथी के पन्ने उलटें तब पता चलेगा कि कई दशको से ऐसी विचारधारा पोपित होती चली आई है। यह भी कहा जाता है कि खाद्यान्नो की कीमत बढ जाने से कृपको की आर्थिक व्यवस्था अच्छी हो गयी है। दुर्भाग्यवश इस देश के अर्थ शास्त्रियो ने कृषि एव ग्राम्य अर्थ व्यवस्था सबधी आकडे नही इकट्ठा किया है जिसपर ग्रामीण अर्थनीति एव व्यवस्था आधारित की जा सके। जो भ्रान्त धारणायें प्रचलित हैं उसका प्रधान कारण है मख्यतया पाश्चात्य देशो मे प्रचलित अर्थ प्रणाली का विवेचन। दूसरा कारण है देश की वास्तविक ग्रामीण स्थितियो के सबध मे कम रुचि तथा कृपि प्रणालियो का स्वल्प ज्ञान। एक लेखक का मत है, जब ग्राम्य जीवन सबधी प्रश्न प्रमुखता धारण कर लेते है तब अर्थ शास्त्री उसे विस्तृत कर देने की धारणा बना लेते है जिसके आधारस्वरूप सामान्य अर्थनीति और ग्राम्य जीवन के सम्बन्ध में आनेवाले बहुत से भ्रान्त तथ्य निहित रहते है और जिनका उपयोग ठीक-ठीक गावो के वातावरण में नही किया जा सकता है।

इस लेख का मुख्य उद्देश्य है भारतीय ग्रामीण अर्थ नीति की व्याख्या करना। किसी भी भूमि सुधार योजना लागू करने या अधिक उत्पादन बढाने का कार्यक्रम आरम्भ करने के पहले इसकी पूरी जानकारी प्राप्त कर लेना बडा जरूरी हो जायगा। इसका अध्ययन दो भागो मे विभक्त होगा। पहले भाग मे मै ग्रामीण जीवन के स्तर की चर्चा करूगा जिसमें प्राचीन-कालीन व्यवस्था एव ब्रिटिश काल की व्यवस्था, दोनो का विशद उल्लेख रहेगा। इन विवरणात्मक एव ऐतिहासिक पर्यालोचन मे नियोजको को पूर्ण जानकारी होगी और सैद्धान्तिक तथ्यो का विवेचन हो सकेगा।

भारत कृपि प्रधान देश है। यहा सत्तर प्रतिशत लोगो की जीविका कृषि पर ही अवलम्बित है। इसकी तुलना में ब्रिटेन में छ प्रतिशत लोगो का, अमेरिका में उन्नीस प्रतिशत लोगो का, युद्धपूर्व जर्मनी में चौदह प्रतिशत का और फ्रास में पच्चीस प्रतिशत लोगो की जीविका का सधान कृषि है। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि प्राचीन भारत में युग-युग से सभ्यता एव समृद्धि के केन्द्र गाव ही थे। डचो, फ्रासीसियो तथा अग्रेजो के आने के पहले और इन व्यापारिक शोषको के जाल विस्तृत होने के पहले भारत एशिया का सर्वोत्कृष्ट तथा समुन्नत देश था, कृषि की धातृ एव विश्व के औद्योगिक केन्द्र के रूप में।

भारत के औसत गाव में, प्राचीन काल में, प्राय तीन सौ घर होते थे जिनमें ५० प्रतिशत किसान होते थे। प्रत्येक गाव में प्राय दो सौ एकड उर्वर एव अनुर्वर भमि रहती थी। छोटे-छोटे गावो के चर्तुदिक खेत रहते थे। ऐसी खेती नही होती थी जिसे मालकियत या केन्द्रित प्रबन्ध की आवश्यकता पडे। प्रत्येक गाव के शासक रूप में पटेल ही गाव का मुखिया हुआ करता था। वही व्यक्ति ग्रामवासियो के झगडो का निपटारा करता था और गाव की मालगुजारी वसूल करता था। पटेल के बाद गाव का कुर्णम होता था जो गाव का बही-खाता और आय-व्यय का लेखा-जोखा रखता था। इसके अतिरिक्त ग्राम रक्षक होता था और सीमा का निरीक्षण करनेवाला एक दूसरा व्यक्ति भी। गाव के पूजनादि तथा धार्मिक उपचारो के निमित्त ब्राह्मण पुरोहित रहता था। इन सबके अलावा ग्राम शिक्षक तथा ज्योतिषी भी हरेक गाव में रहते थे।

अब प्रत्येक गाव की सामाजिक एव आर्थिक आकृति का दिग्दर्शन किया जाय। सब लोगो का निर्वाह कृपि से, छोटे उद्योगो से ही होता था। सामाजिक तथा आर्थिक सघटन में स्वय निर्भरता रहती थी। इसके अलावा ग्रामवासी एक दूसरे पर पूर्ण निर्भर रहते थे।

तत्कालीन स्थिति में लोगो की आवश्यकताए गावो के उत्पादन, कृषि तथा कुटीर उद्योगो से ही पूरी हो जाती थी। सहकारिता के आधार पर कृपि होती थी और खाद्यान्नो का बटवारा हो जाता था। सूत कातने और बुनने का काम प्रत्येक परिवार में होता था। गाव का लुहार और बढई

इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारी अर्थ व्यवस्था, जो समाज और देश के बिलकुल समीचीन थी, वह लुप्त हो गई। ब्रिटेन में यदि बुनकरो के करघो का सर्वनाश हुआ तो वहा उनकी जगह पर मशीनो के उद्योग चालू कर दिये गये। लेकिन भारतवर्ष में लाखो कारीगरो को बेकार कर उनके बदले मशीन के जरिये भी नये उद्योग-धधे नही आरम्भ किये गये। इस प्रकार जनता को केवल कृषि पर ही अवलम्बित रहना पडा। इस पद्धति से भारतवर्ष समान रूप से कृषि एव कुटीर उद्योगो का सतुलित देश न रहा, प्रत्युत ब्रिटेन का कृषि उपनिवेश बन गया।

इसी लेख में ऊपर कहा जा चुका है कि प्राचीन पद्धति के अनुसार भूमि पर समस्त ग्रामवासियो का अधिकार होता था। यह सच है कि जब अग्रेजो ने देशी राजाओ से छीन कर अपना अधिकार यहा जमाया तब कृषको से अधिकाधिक कर लिये जाते थे। इस तरह किसानो से माग बढती गई कि उन्हें अपने सरक्षित बीज एव बैलो को बेचकर भी लगान देने को विवश होना पडा। इससे भी अधिक ब्रिटिश विजय के अनन्तर भूमि व्यवस्था में परिवर्त्तन लाया गया। अग्रेजो के पाचसाला एव सातसाला बन्दोबस्त करने के बाद १७९३ में लार्ड कार्नवालिस ने भूमि का चिरस्थायी प्रबध कर दिया जिसके फलस्वरूप जमीन्दार वस्तुत कर वसूल करनेवाले हो गये जो पहले भूमि के मालिक नही थे। इस प्रबन्ध से जो खराबिया हुई उससे कर्ज देनेवालो का एक वर्ग हो गया और जमीन्दारो के साथ-साथ ये लोग भी शासन के पिट्ठू हो गये।

अब केवल कृषि से ही वर्धिष्णु समाज के व्यय वहन का आसरा हो गया। कृषि भी यहा उन्नत एव तमाम साधन से पूर्ण नही थी, इस कारण उत्पादन अत्यन्त कम होता था। इन्ही सब कारणो से जमीन पर समाज का समष्टिगत अधिकार नही रहा। राज्य एव किसानो के बीच जमीन्दार की एक नई जाति पैदा कर दी गई। इन्ही सब कारणो से किसान दिनोदिन कर्जखोर होता गया।

अब वर्त्तमान काल की ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का समीक्षण करना होगा। गावो की आबादी में अब छ वर्ग हो गये है। इनमें (१) वे लोग जो भूस्वामी है और जिन्हें भूमि बन्दोबस्त करने का पैतृक अधिकार है। (२) वे लोग जिनसे जमीन बन्दोबस्त की जाती हो और जिन्हें मालिक की इच्छा पर ही बेदखल कर दिया जाता हो (३) भूमिहीन खेतिहर मजदूर (४) गाव के कारीगर (५) कर्ज देनेवाले और दूकानदार (६) वे लोग जो नौकरियो में है, जैसे डाक्टर, वकील इत्यादि। ये सभी वर्त्तमान समाज के प्रमुख अग हैं। यद्यपि एक जाति का दूसरी जाति से, एक वर्ग का दूसरे वर्ग से, एक पेशेवाले का दूसरे पेशेवालो से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अत सभी एक दूसरे के साथ पारस्परिक सलग्नता में निबद्ध है। एक व्यक्ति जमीन का मालिक भी है, स्वय किसान भी, कर्ज देनेवाला भी और पुरोहित-पुजारी भी। एक किसान खेतिहर मजदूर भी है और कारीगर भी।

गाव के खेत जोतनेवाले या तो सीधे सरकार से जमीन बन्दोबस्त लेते है या जमीन्दारो से, जिन्हें वे कर देते हैं। वे उस खेत पर समस्त परिवार के साथ काम करते है और कभी-कभी मजदूरो से भी काम करवाते हैं। कुछ पूजी वे अपने पास से लगाते है और कुछ, घट जाने पर, जमीन्दार या कर्ज देनेवालो से लेते हैं। वे उपज की बिक्री गावो के हाटो में करते हैं जिसके बदले अपनी जरूरत के अन्य सामान प्राप्त करते है।

तीसरा वर्ग भूमिहीन खेतिहर मजदूरो का है जो समाज के सबसे गरीब वर्ग का है। ये लोग सतत कठिन परिश्रम के बाद भी अपनी भूख नही मिटा पाते है। भारतीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में इनकी प्रमुख सख्या हो गई है। १८८२ की जनगणना के अनुसार उस समय सत्तर लाख खेतिहर मजदूर थे। इनकी सख्या १९११ में करीब दो सौ बीस लाख हो गई और बढते-बढते १९३१ मे तीन सौ तीस लाख हुई। इन मत गणना रिपोर्टों के अनुसार यह पता लगाना कठिन हो गया है कि पेशा सम्बन्धी पार्थक्य कितना था और प्रत्येक गाव में इस तरह के पार्थक्य की सीमा कितनी दूर तक आगे बढी है। पुन यह पता लगाना भी मुश्किल हो गया है कि उनके जीवन का मान और स्तर कितना ऊबड-खाबड है। हमारे देश मे इन खेतिहर मजदूरो की यह स्थिति है कि वे अपनी व्यक्तिगत आजादी को भी बन्धक रख चुके है।

हमारे देश में इस वर्ग की गरीबी केवल सम्बन्धित आदर्शो पर ही आधारित नही है। अमेरिका और ब्रिटेन की तरह यहा जीवन-स्तर के उन्नयन की माग नही है। बल्कि यहा का सुविधावादी वर्ग सम्प्राप्त सामानो से ही अपने को सुखी रखता है तथा उसकी तुलना में गरीब वर्ग एकदम उपेक्षित है। यदि यूरोप के स्तर से हम अपने देश की तुलना करें तब हमारी प्रचड गरीबी का अनुमान लग जायगा। हमारे खाद्य पदार्थ इतने कम है जिनसे शरीर का भरपूर पोषण नही होता। इस दयनीय स्थिति के बहुत से कारण हो सकते हैं। बहुत से विद्वानो का यह मत है कि हमारी यह स्थिति सामाजिक कारणो से अधिक है और आर्थिक कारणो से बहुत कम। उदाहरण के लिये वे तर्क करते है कि हमारे किसान धर्म और परम्परा के अनुसार सुख और सुविधा पाने की चेष्टा करते है। इससे अस्वीकार नही किया जा सकता है कि सादा जीवन का आदर्श गावो की सादगी का मुख्य कारण है। पर इससे भी इनकार नही किया जा सकता है कि हमारी गरीबी केवल इसी विकार के कारण है। एक अर्थ शास्त्री का मत है ग्रामीण जीवन में आध्यात्मिक सतोष पर बहुत लिखा गया है लेकिन यह सत्य खेतिहर मजदूरो पर लागू नही होता चूकि उन्हें तो औद्योगिक मजदूरो की अपेक्षा बहुत कम पारिश्रमिक मिलता है।

रैयतो और खेतिहर मजदूरो के बाद भी कारीगरो की एक जमात बच जाती है जो गावो की अर्थ व्यवस्था में भरपूर योग देती है। बुनकर, लुहार, तेली, कुम्हार, सोनार आदि समाज की आवश्यकताए पूर्ण करते हैं। इन्हें नकद दाम मिलता है। कपडो की बुनाई हमारे यहा सर्वोत्तम ढग से होती थी और हमारे यहा का बना हुआ मलमल जगत प्रसिद्ध था। लकाशायर और मैनचेस्टर के कपडो ने इस उद्योग को बर्बाद कर दिया जिस कारण लाखो कारीगर बेकार हो गये। इन धक्को के बावजूद ये उद्योग अभी तक जीवित है। बर्तन बनाने का काम भी हमारे देश मे बखूबी होता था। बढई, लुहार के काम भी इतने सुन्दर होते थे कि जिसका मिसाल मिलना दुर्लभ है। कृषि व्यवस्था मे सबका सहयोग बराबर रहता था और सब एक दूसरे के सुख-दुख, उत्थान और

पतन के साझीदार होता था। इसी वात पर समाज की गरीवी या अमीरी का अनुमान लगाया जाता है। इनकी रीढ टूट जाने के वाद देश में वार-वार अकाल पडने लगा और ऐसी स्थिति आ गई जिस कारण लोगो की पूजी नष्ट हो गई, घर के सामान विक गये, कला और कारीगरी मर गई।

हमारे यहा खेतो का जिस प्रकार से विभाजन हुआ है उससे एक परिवार का साल भर तक व्यय नही वहन हो सकता। जमीन के छोटे-छोटे टुकडे हो जाने के कारण लोग अच्छी तरह खेती नही कर सकते। तव किसानो के लिये कर्ज लेने के सिवाय कोई रास्ता नही रहता। मसल मशहूर है कि भारतीय किसान कर्ज में पैदा होता है, कर्ज में डूवता रहता है और कर्ज में ही मर जाता है। वहुत से किसानो के खेत कर्ज देनेवाले ले लेते है, जिनकी रुचि न खेती करने की ओर रहती है और न उत्पादन वढाने की ओर। इस क्रम से किसान मजदूर हो जाते हैं जिन्हें केवल खेती के दिनो में ही काम मिलता है। एक दूसरे अर्थशास्त्री का मत है, भारतवर्ष की गरीवी का कारण न तो वीमारी है, न निरक्षरता, न वढी हुई जनसख्या वल्कि इस दुर्दान्त गरीवी का कारण है आर्थिक व्यवस्था में वेहद विषमता।

वर्त्तमानकालीन भारत की आर्थिक व्यवस्था कोष्ठवद्ध है और साथ ही इतना कमजोर जिसे किसी भी नाजुक स्थिति से क्षति पहुचने की सम्भावना रहती है। इसकी व्याख्या वेकारी और वेरोजगारी तथा कम उत्पादन मे ही सन्निहित है। ये दोनो अवस्थायें साथ-साथ चलती हैं और दोनो एक दूसरे पर अवलम्वित है।

परिवद्ध आर्थिक प्रणाली में वाहर से वहुत कम विनिमय होता है। इसके निम्नकारण हैं (१) क्षेत्र में उत्पन्न सभी चीजो की खपत एक ही जगह हो, (२) विनिमय का वहुत सा भाग अछूता रहता हो, (३) परिवर्त्तनो में अपने यहा की निर्मित चीजें भी न मिलती हो। गाव के आपसी विनिमय तो वहुत कम होते है क्योकि अव वे स्वयसम्पूर्ण नही रहे। इसके कई कारण हैं (१) आवादी की वृद्धि, (२) क्षेत्र में न उत्पन्न होनेवाले जिन्सो की अधिक माग। इन चीजो की अधिक माग उन लोगो में वढी है जिनकी आय विविध साधनो से वढ कर मोटी हो गई हैं। इसलिए हमारा देश दरिद्र हो गया है। लोगो के पास कुछ जमा नही रहता और समाज का सचालन वहुत कम आय में होता है। कुछ लोग ऐसी स्थिति में रहते हैं कि वे न तो अपनी आय का हिसाव रखते हैं और न व्यय का। गावो में कृषि के अलावा न तो कोई दूसरा रोजगार मिलता है और न वे स्वय कुछ पूजी लगाकर कुटीर उद्योगो का सचालन ही कर सकते है। यदि मजदूरी भी मिली तव उससे आय नाममात्र की होती है। हमारे देश की आर्थिक स्थिति का आधार न तो उत्पादन का अनुपात है और न दामो की अस्त-व्यस्त अवस्था। वस्तुत उपनिवेश या अर्द्ध-उपनिवेश में शहरी और देहाती अर्थ व्यवस्था में कोई विशेष अन्तर नही पडता। युद्ध काल आ जाने पर हमारी आवादी अपना निर्वाह भी नही कर सकती थी।

१९४५ में वगाल अकाल जाच समिति की रिपोर्ट मे लिखा है, युद्ध के पहले तक भारतवर्ष में खाद्य की कमी की कोई वडी समस्या न थी। युद्ध के कारण लोग अधिक तवाह हुए और भूखो मरने तथा किसी तरह प्राण रक्षा करने मे कोई अन्तर न रहा। अकाल की अवस्थाओ मे भी हमारी आर्थिक व्यवस्था असतुलित हो गई। लोगो की क्रय शक्ति इतनी कम हो गई थी कि पेट पालने भर भी अनाज नही खरीद सकते थे। दो कारणो से गाव का उत्पादन लोगो को वृद्धि के लिये अभिप्रेरित नही कर सकता। पहला कारण यह है कि हमारे वढते हुए जीवन स्तर के साथ हमारा उत्पादन निभ नही सकता। दूसरा कारण है वढती हुई आवादी के दवाव के पैमाने पर कृषि की व्यवस्था नही की जा सकती। कारण खेत छोटे-छोटे टुकडो में वटे हुए हैं। अधिक उत्पादन न होने पर थोक रूप से उनकी विक्री भी नही हो सकती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि अगर जीवन का स्टैन्डर्ड वढ जाता है और खपत ज्यादा वढने लगती है तव चीजो का दाम भी घट जाता है।

कतिपय अर्थशास्त्रियो का मत है कि भारतीय कृषि में कोई ऐसी व्यवस्था नही है जिससे आवद्ध अर्थनीति सचालित हो सके। इसके विपरीत विचार रखनेवाले का मत है कि १९३० से ही इस देश के आर्थिक सिलसिले मे व्यतिक्रम लाकर पुराने सम्वन्ध विच्छिन्न कर दिये गये। इस वर्ग का यह भी मत है कि कृषि पर ही वढती हुई आवश्यकताओ का वोझ पड गया हालाकि उद्योग और कृषि दोनो पर समन्वित रूप से पडना चाहिये था।

दूसरे पक्ष का ही मत अधिक सही जान पडता है। ग्रामीण क्षेत्रो में विकेन्द्रित शिल्प कुटीर की उन्नति के लिये प्रयास एकदम नही किये गये। इसे औपनिवेशिक अर्थ-व्यवस्था कह सकते हैं जिस अर्थ व्यवस्था में किसी प्रकार की विभिन्नता का दृष्टिकोण कार्यान्वित नही किया जाता। यह तर्क पेश किया जाता है कि जिस देश का जितनी द्रुत-गति से औद्योगीकरण होता है और इसी कारण सभी वर्गों की आवश्यकताए पूर्त होती है। पर जव यह सिद्धान्त अर्द्धविकसित समाज पर लागू किया जाता है तव कई शक्तिया परस्पर विरोधी दिशाओ में काम करती हैं। भारत और चीन की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में वहुत से उल्लेख योग्य परिवर्त्तन हुए है। यहा का उद्याग और व्यवसाय विदेशी आदर्शो पर सचालित होता है। इसलिए इसका प्रभाव मूर्त रूप से गावो में नहीं पहुचता, अत गावो की व्यवस्था पर उसका कम प्रभाव पडता है।

ऊपर की सैद्धान्तिक दलील का व्यवहार कार्यकारी तौर पर हो सकता है। गावो मे कई परिवार रहते है और उनके समक्ष जमीन की चकवन्दी तथा उत्पादन के अन्य प्रश्न उपस्थित रहते हैं। उनके लाख प्रयत्न करने के वावजूद कृषि की, अविकसित प्रणाली के कारण एवं अवैज्ञानिक पद्धति के कारण, प्रगति नही हो पाती। इसके अतिरिक्त उनके पास कोई जरिया नही रहता कि वे जमीन्दारो और कर्ज देनेवालो से मुक्ति पा सकें। इसलिए किसानो को परिवार पालन के हेतु मोटे अन्न अधिक परिमाण में पैदा करना पडता है। वे चारागाह के लिये भी या जमीन की उर्वरा शक्ति के सरक्षण के लिये भी जमीन परती नही छोड सकते है, इसी क्रम से खेतिहरो को जमीन से हाथ धो लेना पडता है।

ऊपर के तर्कों पर विचार करने के वाद अदरी विनिमयित अर्थनीति तथा गावो की अनार्थिक व्यवस्था में वडी दीवार खडी रह जाती है। इन क्षेत्रो में पहले काम की कमी है, सावनो की कमी है, और ये ही कारण आर्थिक प्रणाली के डावाडोल हो जाने में प्रचुर सहायता करते है।

अब उस अर्थ व्यवस्था पर विचार कर लिया जाय जिसके अन्तर्गत समाज को खिलाने मात्र भर ही उत्पादन होता है। इन क्षेत्रो में न तो निर्यात करने भर अन्नोत्पादन होता है और न उत्पादित सामानो को वेचा ही जाता है। भारतवर्ष में कोई भी ऐसा क्षेत्र नही है जहा आयात के विना काम चल सके। उन्नति के लिये कृषि और उद्योग का समान रूप से विकास होना जरुरी है। प्रत्येक आदमी जानता है कि यहा प्रत्येक परिवार का वजट मुश्किल से पूरा होता है। जहा की आवादी अधिक है वहा बटाईदार ही अधिक हैं। जहा आवादी कम है और जमीन अनुर्वर है वहा कृषि की सुविधाए नही हैं। कम उत्पादन दोनो कारणो सेहै। होल्डिगो का छोटा होना, कृपि की पुरानी व्यवस्था और अतिरिक्त काम की कमी है।

इस स्थिति का सही तौर पर समाधान तब तक नही किया जा सकता जव तक होल्डिग छोटे रहेंगे। तब तक न तो कृषि की उन्नति हो सकती है और न विविध साधनो से अधिक उत्पादन ही बढाये जा सकते है। यह भी सच है कि ऐसी स्थिति बहुत दिनो के लिये सह्य नही हो सकती। इसके साथ ही यह कहना भी सत्य है कि एकवारगी सारे देश मे इसका उन्मूलन भी नही किया जा सकता। किसानो को यदि सुविधाए दी जाय तब वे उत्पादन कर सकते हैं और अपनी आर्थिक भित्ति को समान रूप से वनाये रख सकते हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आर्थिक एव अनार्थिक शब्दो का प्रयोग केवल नैतिक व मानवीय दृष्टिकोण में ही काम देता है। काग्रेस कृपि सुधार समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि (१) कृपको को खुशहाल रखना चाहिए ताकि वे जीवन से ऊब कर भाग्यवादी एव निराशावादी न हो जाय (२) एक परिवार के लिये पूरा काम रहे तथा कृपि के सारे समान उन्हे उपलब्ध हो। यह अधिक आशाजनक सिद्धान्त है। भारत सरकार के योजना आयोग की कृपि-शाखा की रिपोर्ट में लिखा गया है कि किसानो के पास साल भर का काम नही रहता फिर भी वे सालो भर खेती मे ही व्यस्त रहते हैं, चूकि उन्हे कोई दूसरा धन्धा नही है जिससे उन्हें अधिक आय हो। इस समस्या के समाधान मे ही कृषि की उन्नति सम्मिलित है और यह इसलिए कि देश मे प्रकृत्ति द्वारा प्रदत्त साधनो का पूर्ण उपयोग नही किया गया है। जमीन का ही लेखा-जोखा अगर उपस्थित किया जाय तो इस देश मे २१४० लाख एकड भूमि को कृषको मे वाट देने पर प्रत्येक व्यक्ति को दो एकड जमीन पडती है। कृषि योग्य भूमि का वटवारा समान स्तर पर नही किया गया है। जमीन्दार जोतनेवालो से अधिक हैं और खेतिहर मजदूर सवसे ज्यादा। वहुत से जमीन्दारो को तो सौ गावो मे जमीन्दारिया हैं। करीव १० लाख ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास ३० एकड से अधिक भूमि है। इनकी तुलना मे लगभग ३२० लाख खेतिहर मजदूर हैं जिनमे २३० लाख के पास एक धूर भी जमीन नही है। शेप ७०० लाख ऐसे किसान हैं जिन्हें आधे एकड मे भी कम जमीन है और इनमे से भी करीव सौ लाख आदमियो को अपनी जमीने हैं और शेप रैयतो को जमीन वन्दोवस्त किया जाता है। उत्पादन अधिक इसलिए नही होता चूकि खेत के टुकडे छोटे-छोटे हैं। इन कारणो से गावो में औद्योगिक विकास के लिए भी पूजी नही प्राप्त होती है। सवसे प्रमुख समस्या है कि भूमि का सुन्दर उपयोग किया जाय जिसका परिणाम स्थायी हो। कृपि श्रम जाच हो जो १९५१ में की गयी थी। उसमें यह लिखा है कि विहार के औरवा गाव में साल भर में खेतिहर मजदूरो को करीव १५५ दिन ही काम मिलता है। इसमें कृपि तथा अन्य प्रकार के काम भी सम्मिलित हैं। कृपि में ही गाव मे अधिक काम मिल सकते हैं। इस आधार पर लोग छ महीने तक ही काम पाते हैं। जो लोग यदा-कदा काम पाते हैं उनका सालाना अनुपात करीव ९५ दिन का होता है। स्त्रियो को साल मे ५३ दिन काम मिलता है।

इस लेख में यह वतलाया गया है कि किन-किन उपायो को काम में लाने से इसकी उन्नति हो सकती है। एक व्यावहारिक सुझाव पर विचार किया जाय। मान लीजिये तीन गाव हैं एक वरदपुर, दो मधुवनी और तीन घेउरा। यह मान लिया जाय कि इन्ही तीन गावो के लोगो मे सभी काम-काज वटा हुआ है और आर्थिक विनिमय भी इन्ही के वीच होता है। यह भी अनुमान कर लिया जाय कि इन तीनो गावो में जीविकोपार्जन का काम खेती से ही चलता है। भोजन के पदार्थों के अलावा इन्ही तीनो गावो की दूकानो और हाटो से अन्य सामानो का काम चलता है। उदाहरण के लिये तीनो गावो में एक मोदी की दूकान, एक कपडे की और एक अन्य सामान की दूकान है और इन्ही तीनो दूकानो से इस क्षेत्र का काम चल जाता है। व्योरेवार इस तथ्य सग्रह के वाद यह पता चल जायगा कि इस क्षेत्र में कितनी प्रगति हुई और कितना परिवर्त्तन हुआ, इसी आधार पर सारे देश में प्रयोग आरम्भ किये जा सकते है।

अब बगाल के एक गाव का उदाहरण दू। यह कलकत्ते के पास का एक गाव है। वहा की आवादी में कारखानो के मजदूरो की अधिक सख्या थी। उनके अलावा मध्य वर्ग के कुछ किरानी भी निवास करते हैं और सवसे कम आवादी खेतिहरो की है। तथ्य सग्रह के वाद निम्नलिखित दिलचस्प वातें पायी गई। (१) गाव की दूरी कलकत्ते से १० मील थी वहा के लोग प्रतिदिन शहर आते-जाते हैं लेकिन खपत के सामानो का ५० प्रतिशत क्रय गाव की दूकानो और स्टोरो से होता है। अत उस गाव का सारा कारबार गाव पर ही निर्भर रहता है। (२) मरम्मत के व्यय और नयी पूजी का उपयोग भी उसी क्षेत्र से होता है। केवल १० प्रतिशत बाहर का आसरा रहता है। अब इस जाच के बाद पता चलता है कि अब भी हमारी ग्रामीण अर्थ व्यवस्था परिबद्ध रहती है। इसे अन्य आर्थिक वर्गों से सयुक्त कर देना होगा। यह सयोग कैसे स्थापित हो इस पर विचार करना होगा। यदि यह सभव हो जाय तब कृषि की उन्नति हो सकती है और वहुरूपी विकास बडे पैमाने पर हो सकता है।

अन्त में यह कह देना आवश्यक है कि कृपि और अन्य उद्योग एक दूसरे पर पूर्णतया आधारित है। उत्पादन, क्रय, विक्रय एव सम्मिलित अर्थ नीति का सामजस्य ही देश को वर्त्तमान आर्थिक दुरवस्था से निकाल सकता है।

प्राचीन, मध्युगीन एवं वर्त्तमानकालीन छोटानागपुर

श्री नागेश्वर प्रसाद सिंह

परीक्षित को जब एक दुष्ट नाग ने काट लिया तब उनके पुत्र जन्मेजय ने नागयज्ञ किया। एक-एक कर सभी नाग यज्ञ-कुड मे गिर-गिर कर जल मरने लगे। लेकिन एक सर्प जिसका नाम पुडरीक था, वह मनुष्य का स्वरूप धारण कर शिव की नगरी काशी में चला गया।

काशी में पुडरीक ने एक ब्राह्मण की कन्या पार्वती से विवाह किया। लेकिन उनकी जीभ साप की ही रही। वह मुह फेर कर अपनी पत्नी के साथ सोता था। उसकी सारी कोशिशें बेकार हो गई। इस तरह उसकी पत्नी को शका उत्पन्न हुई और वह बार-बार पूछ-ताछ करने लगी। अपनी पत्नी के प्रश्नो को टालने के निमित्त और उसे भुलावा देने के लिये पुडरीक उसे जगन्नाथपुरी ले गया। लौटती बार दोनो छोटानागपुर के ही एक जगल में टिके। वही पार्वती को प्रसव वेदना आरभ हुई। और साथ ही उसने अपने पति से उसकी जीभ के बारे में पूछताछ करना शुरू कर दिया। पुडरीक अब अधिक देर तक अपने रहस्य को छिपा नही सका। उसने अपना असली रूप धारण किया और तालाब में घुस गया। पार्वती को पुत्र उत्पन्न हुआ। लेकिन पति के वियोग में वह वही सती हो गई। तब बच्चा अकेला रह गया। पुडरीक से बच्चे का कष्ट नही देखा गया। उसने निकल कर बच्चे के सिर पर अपने फन से छाया किया। इसी समय एक ब्राह्मण सूर्य पूजा के बाद तालाब में पानी पीने आया। उसने तालाब के किनारे सूर्य की मूर्त्ति रख दी और उठाना भूल गया। वह खडा होकर सोचने लगा। इसी समय उसकी नजर उस नवजात बच्चे पर पडी, जिसे एक नाग अपने फन से ढके हुए था। ब्राह्मण को देख कर पुडरीक ने मनुष्य रूप धारण किया और कहा कि यह बच्चा फणिमुकुट राय के नाम से राजा होगा, ब्राह्मण होगा इसका पुरोहित और सूर्य देवता। इतना कह कर पुडरीक पुन तालाब में चला गया। वही बच्चा नागवशी राज्य का प्रथम सम्राट हुआ। उसकी राजधानी चुटिया थी जो वर्त्तमान राची से १०० मील की दूरी पर स्थित है।

चुटिया नागवशी राजाओ की राजधानी थी और पुर का अर्थ गाव होता है। अत उस स्थान का नाम चुटिया नागपुर हो गया। आधुनिक शिक्षित समुदाय इस कहानी को स्वीकार करने से इन्कार करता है लेकिन नृतत्त्व शास्त्री प्राचीनतम दन्तकथाओ एव किवदतियो से भी अपने परिणाम निकालते है। मानव जाति की जिज्ञासा बहुत दूर-दूर तक अन्वेषण करती है, तौर-तरीके और सभ्यता का पता लगाती है। वेद के पुण्य मत्र अबतक २००० या ३००० वर्ष के बाद भी गुजरित है। पिटार्ड ने लिखा है कि आदिम काल से अबतक भारत भूमि पर बहुत से लोग बसते रहे है। इस प्रकार अनेक ऐसे प्रमाण है जिनसे पता चलता है कि मनुष्य की प्राचीनतम प्रवृत्तिया आजतक भी चालू है और उन्हीका विकास होता गया है।

नागवशी राजाओ के सम्बन्ध मे चाहे जितनी कल्पनाए की जा सकें लेकिन आजतक इसका प्रतिवाद नही किया गया है। राची गजेटियर के लेखक एम० जी० हैलेट ने लिखा है कि यह दन्तकथा समस्त राची जिले में प्रचलित है। छोटानागपुर के राजा ने १७९४ में गवर्नर जेनरल को जो कुर्सीनामा दिया था उसमें भी इसका उल्लेख है। आज भी वह वश छोटानागपुर में किसी-न-किसी रूप मे चल रहा है।

आदिवासियो की कहानी मानव जाति की कहानी है। पचतत्त्व का इतिहास भी कुछ इसी प्रकार का है। वैदिक युग के पहले की कल्पना करना तो अकल्प की भावना से अनुप्राणित होना है। फिर भी पुरातत्त्ववेत्ताओ एव इतिहासकारो के मतो का हवाला देना बडा जरूरी होगा :

(१) मुडा शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में आता है। आदिवासी शब्द तो अधिक पुराना जान पडता है। अन्य प्राचीन कहानियो में मुडो के आदि पुरुष असुर है। कोई-कोई असुरों को भील भी कहते हैं।

(२) वैदिक आर्यो ने पुरो की स्थापना की और निर्जन स्थानो में पुरो की स्थापना की। पहाडी इलाको मे रहनेवाले लोग मुख्यतया दास थे और वे सभ्य थे। इन्हें आदिवासियो से कुछ और मान लेना अनावश्यक

होगा। रामायण और महाभारत मे भी जगलो में रहनेवालो को कोल और भील कहा गया है। अधिकारी इतिहास लेखको का यह मत है कि समस्त ससार मे प्राचीनकाल में केवल आदिवासी ही रहते थे ।

(३) आदिकाल का मानव, चाहे वह जिस श्रेणी का रहा हो, तीन भागो में विभक्त था। काकेशियन, मगोलियन और इथियोपियन, ये क्रमश यूरोप, एशिया और अफ्रीका में रहा करते थे।

(४) मुडा भाषा-भाषी लोग जगली इलाको में रहते थे। ये प्राचीनतम निवासी थे । अब भी पहाडो और जगलो के इलाको में इनकी पिछडी हुई जातिया रहती हैं जहा सभ्यता का प्रकाश नही हुआ है। छोटानागपुर के सताल और सिहभूमि के कोलो की भी गणना इसी श्रेणी में की जा सकती है।

आदिवासियो के जीवन-स्तर पर उपर्युक्त उदाहरणो से अच्छा और पर्याप्त प्रकाश पडता है। यह सदेहात्मक है कि सभ्यता की आधुनिक परिभाषा के अनुसार वे अब भी सभ्य हैं या नही। उस जमाने में उनकी स्थिति चाहे जैसी रही हो लेकिन आधुनिक लेखक तो उन्हें सभ्य मानते हैं। होल्कर कालेज के प्रोफेसर पी० सी० वसु ने लिखा है

अनार्यो के किले थे, उनके समृद्ध नगर थे। ये धातुओ के उपयोग जानते थे। भौतिक स्तर पर भी वे उन्नत थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक युग के आदिवासी पर्याप्त प्रगतिशील थे और उनमें कई अन्य जातियो का मिश्रण हो चुका था।

अग्रेज लेखक वेदो को तब तक महत्त्वपूर्ण नही मानते जबतक उसकी आवश्यकता प्रमाण देने के लिये बहुत जरूरी न हो। उनके लिए यह सम्भव नही था कि वेद मत्रो के द्वारा आदिवासियो के जीवन पर कुछ प्रकाश डाले। ऐसा करने से ईसाई धर्म का प्रचार नही होता और न अग्रेज वाइबिल का प्रचार ही कर पाते। प्रसिद्ध इतिहास लेखक मैरियट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "दी इगलिश इन इडिया" में लिखा है

भारत में कुल आवादी के दश प्रतिशत ऐसे लोग हैं जिनके उद्भव के विशेष सूत्र अज्ञात हैं। इतिहास के अत्यन्त प्राचीनतम काल से ही इनका होना ज्ञात है और उन्हें आदिकाल से ही आदिवासी कहा गया है। ये अधिक सख्या में अदमान द्वीप, दक्षिणी मद्रास तथा हिमालय पर्वत के निचले हिस्से में वसे हुए हैं।

वे लोग सभ्य थे, प्रगतिशील थे और अत्यन्त उन्नत थे। विदेशी इतिहास लेखक इसका उल्लेख नही कर सकते हैं। उल्लेख न किये जाने पर भी इतना अवश्य ज्ञात हो जाता है कि ये लोग समृद्ध थे, जिसमें किसी प्रकार के मतभेद की गुजाइश नही है। वैदिक सभ्यता के प्रति यह अन्याय होगा अगर केवल विदेशी लेखको के आधार पर आदिवासियो के बारे में किसी प्रकार का निर्णयात्मक फैसला दिया जाय।

मुडा और सतालो के पूर्व पुरुष सोन नदी पार कर छोटानागपुर के जगलो में आये थे। ये मुख्यतया हजारीवाग, पलामू, और राची जिलो में वस गये थे। सताल पहले दामोदर पार कर हजारीवाग में रहे और फिर मानभूमि और सताल परगने मे वसे। मुडा छोटानागपुर की उपत्यका में ही रहने लगे। उराव रोहतास किले के पास से आये। रोहतास के पास ही गुफाओ का असली निवास स्थान था।

अबतक कोई ऐसा प्रमाण नही है जिससे मुडो और उरावो के छोटा नागपुर आने के ठीक काल का पता चल जाय। लेकिन इन दो जातियो के आने के पहले छाटानागपुर के क्षेत्र में अधिक सभ्य जाति रहती थी। राची गजेटियर मे स्पष्टत लिखा है

सिंगवोग के एक मुडा किंवदन्ती के अनुसार इस क्षेत्र में तथा जिले के कुछ क्षेत्रो में असुर रहते थे। जिले में तुमुली का विवरण है और तुमुली असुरो की कब्र को कहते हैं। इनमे पुरानी सभ्यता के कुछ चिह्न प्राप्त होते हैं। मानभूमि, सिहभूमि तथा राची जिलो के कुछ हिस्सो में प्रस्तर युग के कतिपय अवशेष पाये गये हे। झरिया के कोयले के पास प्राचीनकालीन अस्त्रादि मिले हे। ताम्रयुग के कुछ अवशेप भी प्राप्त हुए हैं। मुडो के वर्तनो में भी तव से अवतक अत्यधिक पार्थक्य पाया जाता है। इन सव प्रमाणो से सावित होता है कि वर्त्तमान जातियो से पहले भी, यहा इस क्षेत्र में, एक ऐसी जाति रहती थी जो इनसे अधिक सभ्य थी।

इस प्रमाण से तथा पुण्डरीक की किंवदन्ती से यह पता चलता है कि छोटानागपुर में सभ्य लोग वसते थे। यह हो सकता है कि ये आदिवासी भी उन्ही के समय में रहते थे। अब तक यही धारणा काम करती रही है। इस क्षेत्र में अधिक जगल थे और जगल मे सभ्य लोग नही रह सकते हैं। विकास की गति वरावर चालू रही और रद्दोवदल होते रहे है। कालान्तर मे साम्राज्य वदलते हैं। रहन-सहन और सभ्यता वदलती रहती है। पहाड, जगल, ऊसर सबो मे परिवर्त्तन हुए, पुरानी सभ्यता लुप्त हो गई, नई सभ्यता ने स्थान लिया। नालन्दा, एलोरा, साची, मोहनजेदेडो, ये सब-के-सब इसी वात के प्रमाण हैं। इनसे यह पता चलता है कि हजारो वर्ष पहले किस प्रकार की सभ्यता थी। इसका भी ज्ञान होता है कि वडी-वडी इमारतें किस प्रकार मिट्टी के नीचे चली गई। अभी जो लोग यहा रहते हैं उनके जीवन के क्रम के अध्ययन के अनतर यह वतलाना कठिन हो जाता है कि इनके पहले किस प्रकार के लोग रहते थे। उनकी पुरानी सभ्यता काल की गति के साथ समय की शिला के नीचे दव गई।

१९११ की जनगणना रिपोर्ट में लिखा गया है जाति प्रथा के अध्ययन के पश्चात पता चलता है कि आदिमकाल से उनमें अनेक प्रकार के परिवर्त्तन हुए हे। इन जातियो के पहले विशेष काम करनेवालो का वर्ग था और आगे चल कर इसीका विकास जाति के सगठन में हुआ। कई प्रकार के मिश्रणो से ऐसा हो गया है कि अव किसी उप जाति के सबध में असली या प्राचीन जानकारी प्राप्त करना कठिन काम हो गया है।

एक दूसरे नेतृत्त्वशास्त्री का मत है— ये आदिवासी मलायो-पोलिनेशियन वश के हैं या नही, या द्रविडो का सबध आस्ट्रेलियनो या समोयेदो से है या नही, या आर्य डैन्यूब नदी के समतल से आये थे या साइबेरिया के वर्फीले मैदान से, सत्य चाहे जो भी हो लेकिन आज की आबादी एक अजीव प्रकार की खिचडी है।

हमलोग रिजले की पुस्तक का थोडा उद्धरण लें। इस पूरे देश के आदिवासियो की तेजी से जाति वनती जा रही है। इसका क्रम विविध स्थानो में विभिन्न तरीके का होता है। रक्त के परिवर्त्तन से पुराना नाम एकदम वदल जाता है। इस जाति की स्थिति शुद्ध रक्तवालो हिन्दुओ से

सर्वथा भिन्न होती है और ऐसा जान पडता है कि इसका उद्भव द्रविड या मगोल जाति से हुआ है । अब आदिवासी इस प्रकार मिल गये है कि उच्च वर्ग के हिन्दुओ से इनका कम वैभिन्य रह गया है। रिजले ने नागवशी राजाओ का उल्लेख किया है और इस लेख में भी पहले उन्हीका जिक्र किया गया है।

हिन्दू समाज में आदिवासियो का प्रवेश हो चुका है । आदिवासियो के मुखिये पहले क्षत्रियो या राजपूतो में मिला लिये गये। आदिवासियो में जिनकी जमीनें अधिक थी उन्हें भी हिन्दू मान लिया गया।

ऊपर जो भी कहा गया है उससे पता चलता है कि छोटानागपुर केवल आदिवासियो का ही क्षेत्र नही था। आदिवासी थे इस इलाके मे, परन्तु इनके अलावा दूसरे लोग भी रहते थे। झारखड प्रत्येक अर्थ में और प्रत्येक दृष्टि से एक गलत शब्द है। इस शब्द का कोई राजनीतिक महत्त्व नही है। झाड का अर्थ होता है जगल और खड से एक खास भू-भाग का बोध होता है। इस सस्कृत शब्द का अर्थ होता है वह भूखड जिसमें अधिक जगल हो। केवल छोटानागपुर ही नही, बल्कि समस्त भारतवर्ष या सम्पूर्ण ससार ही एक समय जगल रहा होगा। वैदिक युग में भी इस शब्द का प्रचलन अवश्य रहा होगा। अत यह शब्द अपने अर्थों मे लोगो को तोष देने के लिये पर्याप्त है। जब तक लोग इसका सही अर्थ नही समझ लेंगे तब तक एक ऐसी स्थिति रहेगी जिसे सर्वथा स्वस्थ नही कहा जा सकता और इसे गलत अर्थ मे व्यवहृत किया जाता रहेगा । यह गलत धारणा जब खत्म हो जायगी तब आन्दोलन भी समाप्त हो जायगा। इस लेख का यह आशय नही है कि क्यो एक बारगी एक युग के सभ्य एव प्रगतिशील आदिवासी एकदम पिछड गये। पिछडी हुई स्थिति अब ऐसी हो गई है जिसमे सरकार या अन्य कोई उन्हें आसानी से ऊपर नही उठा सकती है।

वर्त्तमानकालीन छोटानागपुर की स्थिति मे पूर्ण परिचित होने के लिए इतिहास पर सरसरी निगाह रखना आवश्यक हो जायगा। बिहार और उडीसा के बीच की जगली भूमि पर पहले-पहल मुगल बादशाह अकबर की नजर गई। उसने १५८५ में छोटानागपुर पर चढाई करने का इन्तजाम कर दिया। उस कारण छोटानागपुर के राजा की स्थिति बिलकुल विपरीत हो गई। पुन १६१६ मे जहागीर के सिपाहसालार इब्राहिम खा ने राजा को कैद कर ग्वालियर के किले में भेज दिया। १६३२ में शाहजहा के पलामू की जागीर में छोटानागपुर को मिला लिया और उसे पटना के सूबेदार के जिम्मे दे दिया। १६६९ मे कुडा के सरदार को मुगलो ने सनद लेने को बाध्य किया ताकि मराठो की प्रगति रोकी जा सके। १७२४ में पटना के सूबेदार ने छोटानागपुर के राजा से नजराने में बडी रकम ली। १७४४ में भी इसी तरह से पुन नजराना वसूल किया गया। लेकिन इस बार रामगढ राजा ने अपने दक्षिण के पडोसी के बदले १२००० रुपया दिया । इसी तरह कई बार धन दिय गये। कभी नकद, कभी सोना और हीरा । सुवर्णरेखा का नाम इसी कारण पडा है चूकि उसकी बालुकाराशि में पर्याप्त सोना प्राप्त था। पटोलमी ने लिखा है कि छोटानागपुर में हीरा भी पाया जाता था। मुसलमानी राजत्वकाल के कागजात मे भी हीरे का उल्लेख आता है। चूकि यहा लाखो के हीरे पाये जाते थे अत जहागीर ने इसे अपने कब्जे मे लाना चाहा। मुसलमान बादशाह राजाओ की राज्य-व्यवस्था में दखल नही देते थे। अत राजाओ का जनता पर पूरा अधिकार रहता था। राजा अपनी प्रजा से सख्ती से पेश आता था और उनसे अधिक कर वसूल भी करता था। इसी कारण ग्राम जनता एकबारगी असन्तुष्ट रहती थी ।

१७६५ मे शाह आलम ने बगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी ईस्ट इडिया कम्पनी को दे दी। रामगढ को, इसी कारण ईस्ट इडिया कम्पनी को भी नजराना देना पडा। राजा पहले तो कम्पनी के प्रभुत्व को स्वीकार करना नही चाहते थे इसी कारण जनता मे असतोष फैलाकर उन्हें उभाडते थे। अन्त में इनकी पराजय हो गई और छोटानागपुर का शासन रेगुलेटिंग ऐक्ट के मुताबिक होने लगा। इसके बाद ही छोटानागपुर में अग्रेजो के हस्तक्षेप बढ गये। अग्रेज धीरे-धीरे वहा कानून बनाने लगे। पहले १८६९ मे छोटानागपुर टेन्योर ऐक्ट बना। फिर १८७९ मे छोटानागपुर लैंडलार्ड ऐण्ड टेनेन्टस प्रोशेडयोर ऐक्ट के अनन्तर न जाने कितने कानून बनाये गये । कम्यूटेशन आव रेंट्स ऐक्ट (१८९७) और छोटानागपुर टेनेन्सी ऐक्ट (१९०८) के बावजूद बठ-बेगारी के प्रश्न पर किसानो मे बराबर असन्तोष बना रहा। यह स्थिति, आज भी जमीन्दारो के अत्याचार के कारण ज्यो-की-त्यो बनी है चाहे वह किसी रूप में हो। काग्रेसी सरकार ने, जो किसानो के कल्याण करने के लिए शपथबद्ध थी, जमीन्दारी उन्मूलन कानून स्वीकृत किया। बिहार ने ही सर्व प्रथम भूमि सुधार कानून बनाना शुरू किया। अन्य सभी राज्यो में इसी प्रकार के कानून यथासाध्य बनाये जा रहे है ।

ब्रिटिश राज्य का सर्वाधिक प्रभाव ईसाई मिशनरियो के आगमन के कारण हुआ। यह सभी स्वीकार करते है कि अगर छोटानागपुर के राजा लोग जनता पर अधिक अत्याचार नही करते तब ईसाई धर्म का अधिक प्रचार नही होता । राजाओ के जुल्म से रैयत मिशनरियो की शरण में जाने लगे। स्कूल, अस्पताल और कालेज आदि खोल मिशनरियो ने पीडित जनता की अधिक सेवा की। सिपाही विद्रोह यानी प्रथम भारतीय स्वातत्र्य सग्राम के समय मिशनरियो को अधिक क्षति उठानी पडी लेकिन वे बच गये। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य से स्वराज्य आ जाने के अनन्तर तक इन ईसाई मिशनरियो का काम अत्यन्त लाभदायक, कल्याणकर एव समृद्धि के मार्ग मे हुआ है। स्वतत्रता के बाद इन मिशनरियो का कार्य किस दिशा मे चल रहा है, इसके निरीक्षण का दायित्व उन लोगो पर है जो शासन के सर्वोच्च शिखर पर हैं। एक बात निस्सकोच और बिना किसी डर के कहा जा सकता है। इन मिशनरियो के कार्यकलाप विगत चुनावो के समय पूर्णतया उन्ही के मिशन के लिए अपमानजनक थे।

युगो से छोटानागपुर के हीरे ही आकर्षण के केन्द्र रहे है। इसी कारण कई बार विदेशियो के हमले हुए। अब उनके लिए रास्ता बन्द हो गया है। सदियो गुजर गये और अब काला हीरा प्राप्त किया गया है। कच्चा लोहा, ताम्बा, अबरख तथा अन्य प्रकार के खनिज प्राप्त किये गये । सिंहभूमि, मानभूमि और हजारीबाग के जिलो मे चिमनियो से धुए निकलने लगे। बडे-बडे औद्योगिक शहर बस गये, जहा आधुनिकतम जीवन की सारी सुविधाए प्राप्य है। तिलैया का बाध, बेकारो का थर्मल प्लेंट, जमशेदपुर का कारखाना, सिन्दरी खाद का कारखाना, भुरकुडा ग्लास फैक्टरी

आदि छोटानागपुर के गौरव के चिह्न है। प्राचीनकालीन हीरो की तुलना में आजकल की खानो से निकलनेवाले खनिज पदार्थों के कारण यहा की समृद्धि में चार चाद लग गया है। इनके अलावा वन सम्पदा की राशि भी अपार है और उनका विकास क्रमानुसार हो रहा है। छोटा-नागपुर के प्रत्येक निवासी को इसका गर्व हो सकता है कि आज यह भूखड भारत के औद्योगिक नक्शे में प्रमुख स्थान रखता है। यहा के उद्योगो में वहुत से लोगो को रोजी मिलती है। इस कारण यहा का जीवन स्तर विलकुल परिवर्तित हो गया है। ससार के सभी लोगो को विना किसी प्रभेद के इस क्षेत्र में प्रोत्साहन एव सहयोग मिलता है। लेकिन सर्वाधिक आश्चर्य का विषय है कि औद्योगिक सभ्यता आदि के बावजूद अब भी लोग आदिवासियो का शोषण करते हैं। इस शोषण करनेवालो की सख्या मे बडे जमीन्दार भी है, उद्योगपति भी और सूदखोर भी है। शहरो से दूर, आधनिक सभ्यता से बहुत दूर, गावो में रहनेवाले अनपढ यह भी नही जानते थे कि आजादी के बाद भारत की क्या स्थिति हो गई है।

लार्ड कार्नवालिस के स्थायी बन्दोबस्त के अनन्तर छोटानागपुर के राजा और जमीन्दार किसी से भी भय नही खाते थे। महात्मा गाधी के नेतृत्व में सचालित स्वातत्र्य आन्दोलन के जमाने मे इन जमीन्दारो ने अग्रेजो का ही साथ दिया था। १८५७ में ही इन लोगो ने एक वार ब्रिटिश शासन को उखाड फेंकने की अपरिपक्व चेष्टा की थी। इस विपरीतता का अध्ययन वडा दिलचस्प है कि उन्होने सिपाही विद्रोह में तो प्रयास किया कि अग्रेजी सलतनत समूल उखड जाय, लेकिन जब गाधीजी का अहिंसात्मक सग्राम आरम्भ हुआ तब वे अग्रेजो के मित्र और सहायक हो गये और इस वात की चेष्टा की कि आन्दोलन को कुचल डाला जाय। इतिहास इस वात का साक्षी है कि किस प्रकार इस देश से ब्रिटिश शासन का अन्त हुआ। काग्रेस न केवल देश को ब्रिटिश शिकजे से मुक्त करना चाहती थी प्रत्युत इसका उद्देश्य आर्थिक स्वतत्रता लाना भी था। काग्रेस शासन ने सही तौर पर सवके विकास का कार्यक्रम अपनाया। बिहार भी इस कार्य में पिछडा नही रहा और बिहार केसरी डाक्टर श्रीकृष्ण सिंह के नेतृत्व में यहा भी विकास कार्य का अभियान आरम्भ हुआ। छाटानागपुर का हीरा कृष्णवल्लभ भी इसी समय चमकने लगा। इसके वाद छोटानापुर के विकास की कहानी कृष्णवल्लभ की कहानी है।

कृष्णवल्लभ छोटानागपुर के गावो से भी परिचित हैं और शहरो से भी। ये गाव-गाव पैदल घूमे और वहा तक जागरण का नाद सुनाया जहा तक कोई न जा सका था। इन गावो में जीवन के निकटतम सघर्ष करनेवाले आदिवासी रहते थे जिन्हें प्रगति का कोई सदेश भी मालूम नही था। कृष्णवल्लभ उनकी खोहो तक गये, उनकी झोपडियो तक पहुचे। आदिवासियो की दशा देखकर इनके मस्तिष्क पर उसका वडा व्यापक प्रभाव पडा। आदिवासियो की कठिनाइया केवल जीवन-यापन तक ही नही थी प्रत्युत राजकर देने का ऐसा वोझ उनके अशक्त कधो पर था जिसे वे सह नही सकते थे। जमीन्दारो की मागें भी अधिक वडी थी। अगर आदिवासी थोडी सी जमीन साफ कर उसे खेती के लायक वनाते तब जमीन्दार की तेज नजर फौरन उस पर पड जाती और उसके लिये भी अतिरिक्त कर वसूला जाता था। वडी सलामी न देने पर उसे वेदखल कर दिया जाता था। उस जमीन को दूसरे रैयत के साथ वन्दोवस्त कर दिया जाता था।

इन्ही लोगो के कल्याण के लिए, चूकि ये ही गरीब आदिवासी जनसख्या की मोटी रीढ थे, कृष्णवल्लभ ने भूमि सुधार कानून को स्वरूप दिया। बहुत विरोधो के बावजूद इन्हें सफलता मिली और अब यह कानून छोटानागपुर में लागू है और विहार के अन्य भागो में भी। इस भूमि सुधार से भूमि सम्वन्धी पुरानी व्यवस्था समाप्त हो गई। छोटे-वडे समस्त जमीन्दारो में इसके लिए एक प्रकार का जागरण हुआ लेकिन सुप्रीम कोर्ट तक ने इसकी जरूरत समझ कर इसे नैयायिक मान्यता एव समर्थन प्रदान किया। पुराने खडहरो की रीढ पर नये समाज का जन्म हो रहा है। भूमि सुधार तथा अन्य प्रकार के सुधारो से जनता के जीवन में एक प्रकार की आशा दिखलाई पड रही है। सर्वत्र अनाजो के गोले खोले गये हैं ताकि गरीव किसानो की मुनाफाखोरो से रक्षा हो सके। तमाम छोटानागपुर में अब स्कूल खोले जा चुके है। आदिम जाति सेवा मडल और सताल पहाडिया सेवा मडल, इन दो गैर सरकारी सस्थाओ की देखरेख में बहुत से ऐसे कार्य किये जा रहे हैं जिनके द्वारा शैक्षणिक कार्य एव सामाजिक कार्य बहुत बडे पैमाने पर होगा। सरकार आदिवासियो तथा अन्य पिछडी जातियो को स्वतत्र देश के आत्म सम्मान एव गौरवपूर्ण नागरिक बनाने की चेष्टा कर रही है। अन्य कई प्रगतिशील योजनाए तैयार हैं जिनके द्वारा भी इस क्षेत्र की जनता का कल्याण सभव हो सकता है। भारत सरकार व बिहार सरकार से और अनेकानेक सामाजिक कार्यकर्त्ताओ के सहयोग के प्रयत्नो से जितने काम हुए हैं वे सब कल्याणकर हैं। इन कार्यों के फलस्वरूप छोटानागपुर का नेतृत्व कृष्णवल्लभ सहाय के हाथो में आ गया है।

फिर, पूर्ण सफलता के रास्ते में कई प्रकार की अडचनें है। कई ऐसे प्रभावशाली प्रतिगामी व्यक्ति है, ऐसी सस्थाए है जिनसे अकल्याण होने का भय है। अतएव इन पर कडी नजर रखने की जरूरत है। छोटानागपुर जैसे क्षेत्रो मे तो विशेष एहतियात से कार्य सम्बद्ध रखने के लिए अधि-काधिक लोगो का शीघ्र कल्याण किया जाना चाहिये। साधारण लोगो को यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतने कम समय में इतनी प्रगति कैसे सभव हो सकी है। छोटेनागपुर तो नागो के युग से आज तक आश्चर्य मूलक किंवदती ही रहा है। और यह भी कौन जानता था कि आखिरी नाग को नाथकर उसके फन पर नर्तन करने का सौभाग्य कृष्णवल्लभ को ही प्राप्त होगा! इनके साथ काग्रेस और जनता का उल्लासपूर्ण नृत्य भी सम्मिलित है।

भारत में भूमि समस्या के समाधान की योजना

डा० श्रीमती सीता परमानन्द

वर्तमान ससार मे भूमि समस्या का अर्थ केवल शाब्दिक ही नही रह गया है बल्कि इस शब्द का व्यवहार अब अधिक व्यापक हो गया है। भूमि समस्या और भूमि सुधार का प्रयोग एशिया के नेताओ और विद्वानो ने बहुतायत से किया है। चीन के किसानो के आन्दोलन के फलस्वरूप इस समस्या की ओर लोग अधिक आकर्षित हुए हैं और इसकी महत्ता भी अधिक समझी गई है। भूमि समस्या स्वत प्रश्न है और भूमि-सुधार उसका समाधान।

सीधी-सादी भाषा में इसका अर्थ यही है कि बढती हुई आबादी के लिए खाने का प्रबन्ध किया जाय और उतनी ही भूमि में जितने मे खेती होती चली आई है। इसलिए अधिक उत्पादन का प्रचड प्रश्न प्रमुख है। इसके लिए भूमि चाहिये, कृषि की वैज्ञानिक प्रणाली चाहिये, सुधरे हुए और पुष्ट बीज चाहियें, सिंचाई की व्यवस्था, पर्याप्त खाद और सहकारिता के आधार पर खेती चाहिए। अत भूमि के पुनर्वितरण के लिए उसकी मिल्कियत तथा किसानो को कितनी भूमि मिले आदि का प्रश्न आ जायगा। भूमि वितरण, सुविधाओ का इन्तजाम, वैज्ञानिक प्रणाली से खेती आदि सभी प्रश्न एक दूसरे से सलग्न हैं। इन तमाम सिद्धियो को प्राप्त करने के लिए ऐसे उपाय काम में लाने होगे जिससे अशान्ति न फैले। यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रचलित उत्पीडनो के कारण और सहिष्णुता की हद की वजह से समाज जाग्रत हो गया है। इस जागृति का मुख्य कारण है राजनीतिक चेतना का प्रसार। यह विषय इतना विशाल है कि एक लेख में उसका समाधान नही प्रस्तुत किया जा सकता।

भूमि समस्या उसी तरह विराट और वृहत है जिस प्रकार यहा की आबादी। १९५१ की जनगणना के अनुसार हमारे देश के लगभग पच्चीस करोड आदमियो का गुजर खेती द्वारा होता था। जो लोग खेती करते हैं उनकी चार श्रेणिया हैं (१) १६ ७४ करोड आदमी जमीन के मालिक हैं (२) ३ १७ करोड ऐसे किसान हैं जो भूमि की बन्दोबस्ती लेकर खेती करते हैं (३) ० ५३ करोड लोग कर प्राप्त करके अपनी जिन्दगी व्यतीत करते हैं (४) भूमिहीन कृषि मजदूरो की सख्या ४ ४८ करोड है। इस हिसाब से पहली और चौथी श्रेणी की कृपा एव अनुग्रह पर करीब साढे सात करोड लोगो का बसर होता है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के लोग अपनी जमीन से अधिकाधिक उत्पादन नही कर सकते और इन्ही लोगो के कारण भूमि की समस्या बहुत क्लिष्ट हो गई है।

अत यह आवश्यक है कि देश में प्रचलित भूमि क्षुधा को तृप्त किया जाय। समाधान चाहे तो अहिंसक तरीके से हो सकता है, जैसा विनोबा भावे का विश्वास है, या जबरदस्ती कानून बनाकर। जितनी देर की जायगी समस्या उतनी ही सश्लिष्ट होती जायगी, असतोष उतना ही बढता जायगा। तैलगाना की विकट स्थिति को उदाहरण एव चुनौती दोनो प्रकार से समझा जा सकता है। तैलगाना की यात्रा के बाद ही विनोबा भावे ने भूदान यज्ञ का समारभ किया था। अहिंसा में पूर्ण विश्वास होने के कारण यज्ञ के लिए अनुभूति और प्रेरणा उन्हें मिली। यज्ञ शब्द के कारण ग्रामीणो पर इसका अधिक असर पडा है। पहले वर्षा होने के लिए यज्ञ किया जाता था। अन्य और कई प्रकार के यज्ञ थे जिनसे प्राचीन काल से परिचित होने के कारण कोई कठिनाई नही हुई। भूदान यज्ञ की सबसे बडी खूबी यह है कि जिनके पास थोडी जमीन है वे अधिक भूमि दान कर रहे हैं। भारत ने अहिंसात्मक मार्ग अख्तियार करके स्वतत्रता प्राप्त की है। इस कारण दुनिया के समक्ष एक नया विश्वास एव आस्था का प्रकाश पडा है। यह आशा की जाती है कि राष्ट्रपिता द्वारा प्रदत्त अहिंसा से ही भूमि समस्या का समाधान हो जायगा।

तैलगाना की घटनाओ और अप्रीतिकर स्थिति के लिए केवल कम्यूनिस्टो को दोष दिया जा सकता है। लेकिन इस देश की तमाम राजनीतिक पार्टिया भूमि समस्या पर अपना अलग दृष्टिकोण रखती हैं। समाधान के लिए उनके पास अलग-अलग सूत्र हैं। समाजवादियो ने भूमि के लिए पार्टी सत्याग्रह किया था। सोशलिस्टो और कम्यूनिस्टो के दृष्टिकोण में अन्तर है। किन्तु, ठीक इसके विपरीत अभी काग्रेस शासन सम्हाल रही है, अत इसे भूमि समस्या का समाधान करना चाहिये। पचवर्षीय योजनाओ में बडी-बडी सिंचाई योजनाओ के कार्यकारी होने से ही किसानो में जमीन की भूख नही शान्त होने को है। इन तमाम कार्यो से किसानो को प्रेरणा नही प्राप्त होती है। भूदान-यज्ञ ने भूमि समस्या के समाधान का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। दूसरा कदम है कानून बना देना, जिस कारण किसानो की क्षुधा मिट सके। यह भी हमलोगो को स्मरण रखना चाहिये कि गत चुनावो

के कारण जनता अपने अधिकारो के लिए सतर्क हो गई है। राज्य का उनके प्रति यह कर्तव्य हो जाता है कि दिये गये आश्वासनो को कार्य रूप मे परिणत किया जाय। अब यह समय आ गया है जब काग्रेस अपने आदर्शों की पूर्ति कर सकती है। आजादी के बाद यह उम्मीद की गई थी कि राम राज्य स्थापित हो जायगा। लेकिन अब भी किसानो के बीच निराशा की लहरे व्याप्त है। यदि ऐसी ही स्थिति रही तब बडे पैमाने पर अशान्ति फैल जायगी।

भूमि की समस्या, जन सख्या एव खाद्योत्पादन के कारण ही, आर्थिक समस्या नहीं है। यहा १९४७ में प्रति वर्गमील २५५ आदमी बसते थे और बेल्जियम के १९४४ तक ७६८ व्यक्ति प्रतिवर्ग मील थे। १९४० में जापान मे २५० व्यक्ति प्रति वर्गमील तथा जर्मनी में १९४७ मे प्रति वर्गमील ३८२ आदमी थे। कृषि योग्य भूमि का रकबा चीन से भी भारत में कम है लेकिन ठीक उसके विपरीत चीन में भूमि समस्या का समाधान जल्दी हो गया। इसका कारण यह था कि चीन का किसान अत्यन्त उत्पीडित एव त्रसित था। राजनीतिक आन्दोलको ने इसका अत्यधिक फायदा उठाया और इससे सूदखोर तथा बडे-बडे जमीन्दार शीघ्र खतम हो गये। एक बार जब बडे भूपतियो से भूमि छीन ली गई तब उसका वितरण भूमिहीनो मे कर दिया गया। किसानो में अधिकार पा लेने पर दायित्व आ पडा और जब कृषि अत्यन्त अविकसित अवस्था में थी, तभी वहा कठोर परिश्रम से अधिक अन्न उत्पादन किया जाने लगा। उनका जीवन स्तर भी उन्नत हो गया। असमानता जो एकदम चरम अवस्था पर पहुच गई थी, उसके खात्मे के बाद विश्वास उत्पन्न हो गया। चीन का जन साधारण उत्पादन की ओर पिल पडा। अवस्था बदल तो गई, लेकिन इसके वास्ते बहुत बडी कीमत चुकानी पडी। भारत को उससे शिक्षा लेनी चाहिये।

सम्यता के आरम्भ काल से ही कृषि की जाती रही है। इसीलिए भूमि को मातृभूमि और पितृभूमि कहा गया है। इससे लोगो की उन्नत सुभावनाए ही प्रकट होती है। प्राचीन काल में आदिम मानव भूमि की खोज में जहा-तहा भटकता फिरता था ताकि उसे भोजन की व्यवस्था के लिए उपजाऊ भूमि मिले। आर्य भी सम्भवत उपजाऊ भूमि की ही खोज में आये होगे। फिर जितने भी आक्रमण हुए वह भूमि के ही लिए हुए होगे। साम्राज्य भी इसी बुनियाद पर बने और ध्वस्त हुए। जब जनसख्या उत्तरोत्तर बढती गई तब इच्छानुसार सब जगह बस जाना दुर्लभ हो गया।

समस्त ससार में आबादी की वृद्धि, विशेषकर भारत में वर्तमानकालीन भूमि समस्या की जड है। सघन आबादीवाले देशो में बसना और जमीन पाना स्वय एक असमाधेय प्रश्न बन जाता है। जर्मनी, फ्रास और ब्रिटेन जैसे स्वतत्र देशो ने इस समस्या का समाधान औद्योगीकरण द्वारा तथा उपनिवेश बढा कर किया। आखिर औद्योगीकरण की भी एक सीमा होती है। इसके लिए बडे-बडे बाजारो की जरूरत पडती है। जब जर्मनी का सब बाजार बन्द हो गया तब उसे अकारण कूद कर युद्ध की घोषणा कर देनी पडी। युद्ध, आवास के योग्य भूमि के कारण ही होते है और हुए है, और जब औद्योगीकरण एव उपनिवेशवाद दोनो टप्प पड जाते है तब आदमी का विनाश ही एकमात्र रास्ता रह जाता है। टामस माल्थस ने १७०८ में ही जनसख्या के नियत्रण के प्रश्न की ओर ससार का ध्यान आकर्षित किया था। उसने इस सबध में ससार के लोगो को चेतावनी दी थी।

जन-कल्याण, भूमि एव उत्पादन के अनुपात पर निर्भर रहता है। जब अग्रेज आये तब इस देश की आबादी कितनी थी यह कहना अत्यन्त कठिन है। विगत जनगणना के मुताबिक भारत की आबादी ३९०,०००,००० है यानी प्रत्येक दशक मे आबादी में पन्द्रह प्रतिशत की वृद्धि हुई है और अगर यही गति रही तब आगामी पचास वर्षों में जन-सख्या दुगुनी हो जायगी। अग्रेजो के जमाने मे आबादी की यह वृद्धि उत्साहवर्द्धक कतई नही है, हालाकि गृह युद्ध नही हुए और शान्ति बराबर बनी रही। रहन-सहन की सुविधाओ के फलस्वरूप लोगो की आयु बढी और साथ ही प्रजनन भी बढा। आयु के परिमाण मे वृद्धि के कारण लम्बी अवधि तक जीवित जन-सख्या को खिलाने का भार राष्ट्र पर पड गया। यही अनल कष्टो की जड है। मूलभूत प्रश्न है कि आधा पेट खाकर, अस्वस्थ रह कर अधिक दिन जीवित रहना वृण है, मजे मे आराम से खा-पीकर कम दिन जीना श्रेयस्कर है। आज सत्तर प्रतिशत लोगो को स्वास्थ्यवर्द्धक एव सुरुचिपूर्ण भोजन नही मिलता। अत सरकार को इस समस्या की ओर शीघ्र ध्यान देकर इसका हल ढूढना चाहिए।

ऐसी स्थिति मे ऐसे भी लोग है जो यह समझते है कि भारत का उत्पादन दुगुनी आबादी का पोषण कर सकता है यानी ऐसे लोगो की सम्मति में आबादी की समस्या दुरुह नही है। इस श्रेणी की मान्यता है कि आधुनिक वैज्ञानिक साधनो के जरिये यहा उत्पादन बढ सकता है और उद्योगो का भरपूर विकास भी हो सकता है। अबतक विकास नही हुआ चूकि उसका निचोड सही और दुरुस्त नही हो सका। अत प्राकृतिक प्रसाधनो के पूर्ण उपयोग के पश्चात दुगुनी आबादी का पालन-पोषण मजे में हो सकना सभव है। लेकिन मेरी राय में यह धारणा बिलकुल गलत है। यदि इसे मान लिया जाय कि देश की आबादी मान्य स्तर पर जीवन-यापन कर रही है तब यह परले सिरे की भ्रान्ति होगी। हमारा जीवन स्तर ससार के सब देशो की अपेक्षा निम्नतम है। जहा के लोग शाकाहारी होते है वहा दूध, घी, माखन, आदि प्रचुर मात्रा में मिलना चाहिए। हमारे देश में कितने लोगो को यह प्राप्त होता है ? शुद्ध दूध का भी यहा एकदम अभाव है। आबादी की वृद्धि के पहले इन शर्तों को पूर्ण कर लेने की नितान्त आवश्यकता है।

ससार की जनसख्या इतनी बढ गई है कि प्रतिदिन ७५००० नये व्यक्तियो का उद्भव होता है। ससार के आस लोगो में यह धारणा घर कर गई है कि भगवान प्रत्येक प्राणी को जन्म देकर भोजन और वस्त्र का प्रबन्ध कर देता है, यह कथन हमे सतोष दे सकता है लेकिन वास्तव में इससे जीवन की आवश्यकताए नही पूर्ण हो सकती है। वैज्ञानिक पद्धति से भी बहुत कुछ सहायता ली जा सकती है। हम एक बार ही विज्ञान की न तो सराहना कर सकते है और न उसकी निन्दा ही कर सकते है।

उदार धरित्री, चाहने पर सब कुछ दे सकती है, इस सुन्दर एव सुकुमार कल्पना को सदा के लिए त्याग देना ही उचित जान पडता है। लेकिन ठीक इसके विपरीत प्रकृति के सहार के भी नियम है। यह इस विश्वास की दूसरी आकृति है। मनुष्य तो वैज्ञानिक विकास द्वारा प्रकृति

के प्रकोपो से अपनी रक्षा कर सकता है पर जानवर, यानी, मनुष्य ने वहुत हद तक प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा की है। अगर इसान जन्म के वृद्धिगत क्रम को भी रोक दे या सतुलित या नियन्त्रित कर दे तब वह प्रकृति को अपना अनुगत वना सकता है। अत जन्म नियत्रण, जैसा कि पुरातनपथी अपनी धारणा वना चुके है, न तो अवैज्ञानिक है और न नृशस और न अमानवीय ही।

जमीन की उर्वरा शक्ति दिनोदिन कम होती जा रही है चूकि इसान उसका अत्यधिक उपयोग करता है या वहुत लापरवाही वरतता है। वर्षा से और वाढो से जमीन की ऊपरी सतह धुल जाती है और इसी सतह पर उर्वरा शक्ति रहती है। यह भी निर्णीत हो चुका है कि प्राय तीन सौ या एक हजार वर्ष मे मिट्टी पर उपजाऊ पर्त पडती है। लेकिन इसकी तुलना में क्षय वहुत शीघ्र ही हो जाता है। जगलो या घनी वनस्पति के अभाव के फलस्वरूप और अधिक जुताई के कारण भी पृथिवी की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। इन सब कारणो से उत्पादन कम हो जाता है। उत्पादन के पैमाने व अनुपात पर भी अगर भूमि-समस्या का समाधान किया जाय तब भी एक पहलू पर सुविचार और सुनिश्चित मत प्राप्त हो सकता है। किसी भी तरह विलकुल कम समय में समाधान मभव नही है।

द्वितीय विश्व युद्ध के पहले तक भारत में खाद्यान्न की कमी नही अनुभूत की जाती थी। अगर कही कमी हो भी जाती थी तब वाहर से उसका आयात कर लिया जाता था। पर भारत के ग्रामीण इलाको में भूमि की क्षुधा वनी रही जिसे शायद किसी ने नही सुना। कट्रोलो एव युद्ध के अन्य परिणामो के फलस्वरूप यह प्रश्न अत्यन्त उग्र रूप से सम्मुखीन हो गया। रेडियो के द्वारा वडे-वडे उद्योगपति अनाज के भाव शीघ्र जान लेते है और उसीके मुताविक वे दाम वढा या घटा देते हैं। भारत के वाहर भी युद्ध के कारण खाद्य सकट उपस्थित हो गया। चीन, वर्मा, इडोनेशिया और मलाया के गृहयुद्धो का व्यापक प्रभाव भी खाद्य समस्या पर पडा चूकि इन देशो के लोगो को भी खाद्योत्पादन पर कम ध्यान देने को वाध्य हो जाना पडा।

विभाजन के कारण भी हमारे देश की खाद्य स्थिति पर प्रभाव पडा। वहुत वडी सख्या में शरणार्थियो को खिलाने की व्यवस्था करनी पडी है। एक और कारण भी है और वह यह कि युद्धकालीन स्थिति में गावो की वहुत वडी आवादी शहरो में चली आई। युद्धकालीन अवस्था मे औद्योगिक जिन्सो के मूल्य वढ गये, मजदूरी वढ गई और इस कारण वे लोग अधिक महगे दामो पर भी खाद्यान्न खरीदने पर विवश हो गये और मनमाने दाम देकर उसे उपलब्ध किया। युद्ध के पहले देहातो में वे लोग किसी प्रकार कुछ भी खाकर गुजर-वसर करते थे। कोई शिकायत किसान की तरफ से सुनी नहीं जाती थी। लेख और वक्तृताए गावो तक पहुचने में एकदम असमर्थ थे। जवतक अधिक सख्या में लोग मर नही जाते थे तवतक अकाल की घोषणा नही की जाती थी। अस्सी प्रतिशत तक की आवादी को केवल एक वार भोजन चौवीस घटो में मिल सकता था। आज सौभाग्य से यह स्थिति नही है, फिर भी जनसख्या की वृद्धि के कारण पुन. खराव हो गई है।

खाद्यान्न के कट्रोल होने के अनन्तर ही लोगो को कमी का पूर्ण आभास मिला और समाज खाद्य के मामले में चैतन्य हो गया। सरकार को भी जव नियन्त्रित तौर पर अन्न देना पडा तव उसके समक्ष भी इसकी गरिमा तथा आवश्यकता स्पष्ट हो गई। इसके पहले सरकार को भी इसकी महत्ता का आभास नही था। वगाल के वडे मर्मान्तिक अकाल से रही-सही अज्ञानता भी समाप्त हो गई। उस अकाल में पचास लाख से भी अधिक लोग अन्न के विना तडप-तडप कर मर गये।

खाद्यान्न के मामले मे आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है और यह जितनी जल्दी हो सके उतना ही लाभजनक होगा। विदेशो से खाद्यान्न मगाने के लिए १०० करोड रुपयो की जरूरत पडती है, यानी देश के वजट का एक चौथाई इसी मद में व्यय हो जाता है। इस रकम की वचत की जानी चाहिए ताकि मशीनरी की खरीद की जा सके तथा देश की स्थिति में अन्य तरीको से सुधार लाया जा सके। देश की आमदनी कम है इसलिए विदेशो से कर्ज लेना पडता है। विकास कार्य को सम्पादित करने के लिए अभी कभी-कभी तो मदद भी लेनी पड रही है, जिसे एक प्रकार का दान ही कहा जाना चाहिये। विदेशी सहायता लेना मामूली अर्से तक तो ठीक कहा जा सकता है। यह भी इसलिए, चूकि हमारे साधन अल्प हैं और इतने कम साधनो से हम अपना काम नही चला सकते है। विभाजन के कारण भी हमारे साधन घट गये थे। पर विदेशो की सहायता अपने देश के विकास के लिए भी, वहुत लम्वी अवधि तक लेना तो सर्वथा अनैतिक है। अवतक दूसरे देश, चाहे जिस कारण से भी हो, हमें वडे पैमाने पर आर्थिक सहायता देते रहे हैं। इस देश में वहुत से लोग भूख और वीमारो से मरते हैं। इसके अलावा हमारी अशिक्षा, हमारे रुढिगत राष्ट्रीय सस्कार भी प्रगति की दिशा में वाधक है। ऐसी स्थिति मे दूसरे देश अधिक समय तक आर्थिक व अन्य प्रकार की सहायता नही दे सकते। सहायता लेते रहने से हम स्वत अनैतिक हो जायगे तथा जरूरत पडने पर अपना राष्ट्रीय चरित्र भी ऊचा नही रख सकते। देश वहुत दिनो तक अकर्मण्य नही रह सकता। अकर्मण्य रहने से किसी भी जाति का शीघ्र विनाश हो जाता है।

अमेरिका, जो दूसरे देशो की इन दिनो अधिकाधिक सहायता दे रहा है, कुछ दिन वाद वद कर दे सकता है। इसके अतिरिक्त वहुत से अमेरिकन ऐसे है जो इस उदार सहायता का विरोध भी करते हैं। इसका असर औसत अमेरिकन करदाता पर भी पडता है। उसके जीवन स्तर पर भी इसका प्रभाव इतना अधिक पड रहा है जिसकी प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। कुछ दिन हुए एक अमेरिकन लेखक ने ठीक ही पूछा था—अमेरिका भारत तथा अन्य देशो की सहायता क्यो करेगा। ये देश अपनी नीति निश्चित नही कर सकते और ऐसा न केवल उत्पादन के क्षेत्र मे देखा जाता है और न जन्म नियत्रण के क्षेत्र में। ऐसे देशो को सहायता पाने का कोई हक नही है।

यह सवाल विलकुल जायज है तथा सरकार को भी इस ओर ध्यान देना ही चाहिए। पश्चिमी राष्ट्र सहायता इसलिए दे रहे है चूकि उन्हें अपनी रक्षा करनी है। वे सहायता इसलिए भी देना

चाहते हैं क्योकि इन देशो में कम्यूनिज्म का प्रभाव अधिक बढ रहा है। इसी कारण से भूदान आदि कई प्रकार के आन्दोलन भी चलाये जा रहे हैं ।

कम्यूनिज्म का प्रसार वही होता है जहा गरीबी और भुखमरी का साम्राज्य रहता है। जो विदेशी राष्ट्र हमारी सहायता कर रहे हैं वे यह नही चाहते कि यह देश कम्यूनिस्ट हो जाय। इसका एक दूसरा पहलू भी है। पश्चिमी देशो ने बहुत दिनो तक शोषण किया है और प्रायश्चित या मुआवजा की तरह वे आर्थिक सहायता दे रहे हैं।

सरकार ने खाद्य सकट को टालने के लिए जितना भी उद्योग किया है, उसमें पर्याप्त सफलता मिली है। सरकार का ऐसा अन्दाज है कि दस या पन्द्रह वर्षों से कम में खाद्य की निर्भरता नही सम्पन्न हो सकती है। भूमि की उर्वरता बढाना, सिंचाई की व्यवस्था करना, जगल लगाना, रासायनिक खाद उत्पादन करना आदि कई समस्याए हैं जिनकी ओर हमारा ध्यान गया है। जगलो का जो बडे पैमाने पर उजाड हो चुका है, उसके लिए हम स्वत जिम्मेदार हैं। झम्मिग कृषि प्रणाली देश के कई हिस्सो में आदिवासियो द्वारा अनुसृत हो सकती है। देश के भिन्न-भिन्न भागो में इस कृषि प्रणाली के कई नाम है, आसाम में झम्मिग, मध्य प्रदेश में पोडू और डाह्या तथा पश्चिमी घाट में कुमारी। पेड काट कर फेंक दिये जाते हैं, जला दिये जाते हैं, जमीन जोत दी जाती है तथा हाथ से बीज छीट दिये जाते हैं। तीन या चार वर्षों के पश्चात जब वह भूमि अनुर्वर हो जाती है तब जगल का दूसरा टुकडा साफ किया जाता है। इस अति प्राचीन कृषि प्रणाली को यथाशीघ्र रोकना होगा तथा इसके स्थान पर किसी दूसरे प्रकार की प्रणाली अपनानी पडेगी।

यदि हम आधुनिक वैज्ञानिक तरीको से अत्यधिक उत्पादन करना चाहते हैं तब शायद पूर्ण सफलता नही मिल सकती है। अतिशय पैदावार की कल्पना, ट्रैक्टरो से खूब गहरी जुताई तथा बडे पैमाने पर रासायनिक खाद देने से यहा की जमीन पर अक्सर ठीक विपरीत प्रभाव पड सकते हैं। यह अभिमत आम जनता का ही नही बल्कि कृषि विशेषज्ञो का है। इस पर पूर्ण ध्यान दिया जाना चाहिये। मरनेवालो को दिये जाने-वाले कोरामिन इजेक्शन को तरह ये साधन असली उत्पादन की वृद्धि नही कर सकते हैं। इन नये साधनो के सबध मे अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। अगर अधाधुध पश्चिम का अनुकरण किया जाय तब वह आपत्तिजनक हो सकता है। यहा का अशिक्षित किसान इन पश्चिमीय साधनो का ठीक तरह से उपयोग भी नही कर सकते हैं। परिणाम के उल्टा होने की आशका बराबर बनी रहेगी। फिर जब-तक बडे पैमाने पर सामूहिक या सहयोग कृषि प्रणाली नही अपना ली जाती तबतक छोटे-छोटे खेत के टुकडो मे इस ढग से कृषि नही की जा सकती है।

समस्त ससार मे कृषि की उन्नति के लिए योजनाए बनाई जा रही हैं। जिन देशो मे बडे पैमाने पर औद्योगीकरण हो चुका है वहा भी कृषि की उन्नति पर ध्यान दिया जा रहा है। प्रथम महायुद्ध के तुरन्त बाद ही, सर्वत्र जागरण देखते हुए ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधान मत्री लायड जार्ज ने अग्रेजो को एक नारा दिया था—कृषि से अधिक उत्पादन होना चाहिये उस समय ब्रिटेन को एक वर्गमील में २५०० आदमियो का पोषण करना पडता था। युद्ध के जमाने में उस देश को अपनी खपत के खाद्यान्न का ७५ प्रतिशत बाहर से मगाना पडता था। वहा तभी दो फसलें उगाने का सिद्धान्त स्वीकृत हो चुका था, अधिक अन्न उत्पादन के निमित्त कई प्रकार के उपाय काम में लाये गये थे।

भूमि की समस्या बहुत कम दिन में पेचीदी नही हो गई थी। यह समस्या बहुत धीरे-धीरे खराब होती गई। आर्थिक एव राजनीतिक अवस्था के कारण अब यह प्रमुखता धारण कर चुकी है। चीन के जमीन्दार की तरह भारत के जमीन्दार आततायी नही रहे हैं। चीन के जमीन्दारो ने तो अपने असामियो पर बर्बर अत्याचार किया था हालाकि चीनी क्षमा बिलकुल प्रसिद्ध है। लेकिन चीनी जमीन्दार का लालच उसे इस क्षमा की परम्परा के निर्वाह से वचित कर देता था। चीन मे जिस प्रकार भूमि सुधार हुआ है उससे शिक्षा ग्रहण कर उसी प्रकार यहा भी किया जा सकता है। चूकि भारत और चीन इन दोनो देशो मे स्थिति एक सी है। लेकिन जिन तरीको से चीन में भूमि सुधार किया गया उन्ही तरीको को यहा नही अपनाया जा सकता है। वैज्ञानिक प्रगति के अनुसार दुनिया बहुत नज-दीक आ गई है और एक देश का अच्छा या बुरा प्रभाव दूसरे देश पर भी पड जाता है। चीन का सम्बन्ध तो भारत से बहुत पुराना है।

भारत कृषि प्रधान देश है। इस देश में ५००,००० गाव हैं और औसत आबादी प्रत्येक गाव की ५१७ व्यक्तियो की है। अग्रेज शासको ने इसका औद्योगीकरण अपनी जरूरतो तक ही किया। अगर भारत को इसे स्वत करना होता तब अबतक औद्योगीकरण की प्रगति तीव्र हो गई होती। इस प्रकार गावो से हटकर आबादी धीरे-धीरे शहरो मे सिमटती गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात तो शहरो की आबादी अत्यधिक बढ गई। १८७२ में गावो की आबादी ९१ ३ थी और शहरो की आबादी ७ ७ थी। अगर यही आबादी रहती तब कृषि से उत्पादन की स्थिति बिल्कुल भिन्न होती। इस देश में प्रच-लित जात-पात की प्रथा ने कृषि को और भी पीछे ढकेल दिया है। विविध राज्यो में विविध प्रकार की भूमि व्यवस्था थी, अत किसी नियम का पालन नही किया जा सकता था। समाजगत प्रच-लित व्यवस्था सुदृढ आधार पर इन्ही राजतत्रो के कारण नही चल सका।

देशी राज्यो के सघ में मिल जाने से तथा जमीन्दारी एव जागी-रदारी की प्रथा का अन्त कर दिये जाने के कारण स्थिति दूसरी हो गई है। अब चाहे जो भी राजनीतिक पार्टी किसानो को सुख देना चाहे वह कानून बनाकर ही कर सकती है। इससे कोई भी दूर नही हट सकता है। काग्रेस सरकारो को भी इसे शीघ्र कानून बनाकर लागू कर देना चाहिए। ऐसा करने के लिए रास्ता साफ कर दिया गया है। अगर इस काम में देश को किसी कारणवश देर हो गई तब चीन या दूसरे देशो की तरह हिंसा यहा भी हो सकती है। भूमि का वितरण नैयायिक स्तर पर जितनी जल्दी किया जायगा उतना ही आसान होगा नही तो इस सरकार के विरुद्ध वर्गों को उकसाया जा सकता है। भूमि वितरण का प्रमुख उद्देश्य अधिक उत्पादन का ध्येय होना चाहिये।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में भूमि व्यवस्था

डाक्टर बी० पी० सिंह

प्राचीन भारतीय समाज-सघटन में भूमि की मिल्कियत का प्रश्न वडा पेचीदा एव गहन था। प्रश्न केवल यह नही है कि उस समय भूमि राज्य की थी या समाज के व्यक्ति उसके मालिक थे या होते थे। दोनो पक्ष की ओर से तर्क मिलते थे पर अवतक किसी निर्णय पर नही पहुचा जा सका। आदिकाल में चाहे जो भी स्थिति रही हो किन्तु कौटिलीय अर्थशास्त्र में राज्याधिकार में जमीन के वडे-वडे टुकडो का विवरण मिलता है। कुछ जमीनें रैयतो को वन्दोवस्त कर दी जाती थी और कुछ मे राज्य के अधिकारियो द्वारा खेती कराई जाती थी। उस युग में किसानो को जमीन वन्दोवस्त की जाती थी तथा उनसे कर वसूल किया जाता था जिसे भाग की सज्ञा दी गयी थी। कुछ लोगो का कहना है कि भाग कर को ही कहते हैं। कतिपय पुराने इतिहासज्ञो का ख्याल है कि भाग उस कर को कहते हैं जो सरक्षण के वदले राजा को प्राप्त होता था। पुराने कागजातो से भी यही पता चलता है। अत यह नही माना जा सकता है कि जमीन के कर को ही भाग कहा जाता था। कौटिल्य अर्थ शास्त्र में भाग गावो से प्राप्त होनेवाला कर ही था। उत्पादन का अधिक भाग भी कभी-कभी राज्य कर के स्वरूप मे लिया जाता था। राज्य को यह अधिकार भी सन्निहित था कि कर अधिक लिया जा सकता है। मेगास्थनीज की रिपोर्ट के अनुसार फसल का चौथाई कर लिया जाता था।

यद्यपि भूमि पर वैयक्तिक अधिकार लोगो का होता था लेकिन यह अनुमान कर लेना गलत होगा कि राज्य की दिलचस्पी केवल कर वसूल करने में ही थी और राजा को प्रजा के कल्याण का कोई उद्देश्य नही था। राज्य भूमि की व्यवस्था में तत्पर इसलिए रहता था ताकि सरक्षण हो एव भूमि का इन्तजाम ठीक से हो सके, भूमि चाहे रैयतो के वन्दोवस्त में रहे या राजा की ओर से खेती होती हो। कौटिल्य प्रशासन जमीन के इन्तजाम में उद्‌बुद्ध व सतर्क था। उत्पादन वढाना, कृषि की रक्षा करना और आय वढाना राज्य का उद्देश्य था। भूमिकर ही प्रधान आय थी जिस पर देश की उन्नति निर्भर थी। इसलिए शासन राज्य की आमदनी में पितृवत रुचि दिखलाता था।

तव राज्याधिकार में वनो की व्यवस्था और मालकियत भी थी। ये जगल भी कई भागो में विभक्त रहते थे। हाथी के जगल तो राज्य के होते ही थे चूकि हाथी सेना का प्रधान अग होता था। जगलो का इन्तजाम अफसरो के हाथ रहता था। अन्य कई किस्म के व्यवसाय भी राज्य के द्वारा ही सरक्षित किये जाते थे। लेकिन कभी-कभी उद्योगो के लिए भी व्यापारियो से वन्दोवस्ती की जाती थी। इनके लिए कर लिया जाता था। अर्थशास्त्र में खानो, खनिजो एव समुद्र गर्भ से मोतियो को निकालने का इन्तजाम कराया जाता था।

परती जमीन पर राजा का अधिकार होता था। इन्ही जमीनो पर नई वस्तिया वसाई जाती थी और इन्हें ही जोत-कोड कर उपजाऊ खेत वनाया जाता था। कौटिल्य ने पुराने एव उजडे हुए गावो, ढहे हुए गढो के स्थान पर नए गाव वसाने का सिद्धान्त स्थिर किया। यह वन्दोवस्त इसलिए किया गया था ताकि आवादी का स्तर एक सा रहे। नई वस्तियो में सरकारी आदेशानुसार आनुपातिक तरीको से आवादी वसाई जाती थी। वस्तियो की सीमा रेखा निर्धारित कर दी जाती थी। उसके नजदीक ही शूद्रो और वैश्यो को वसाया जाता था। ये ही दो जातिया अत्यन्त परिश्रम के साथ कृषि कार्य कर सकती थी। एक वर्ष के लिए जमीन वन्दोवस्त कर अधिक उत्पादन पर जोर दिया जाता था ताकि सव लोग अधिकाधिक मेहनत कर सकें। पुरोहितो, आचार्यों आदि को भी जमीन वन्दोवस्त की जाती थी। इस भूमि के लिए किसी प्रकार का कर नही लिया जाता था। इसे व्रह्मदाय भूमि कहते हैं। अन्य राज्य व्यवस्थापको को उनके कार्य के लिए भी भूमि ही दी जाती थी। इन जमीनो की खरीद-विक्री नही हो सकती थी। प्रत्येक ग्राम की सफाई का इन्तजाम रहता था। सव के लिए काम का इन्तजाम किया जाता था। वन्दोवस्ती में जव उत्पादन को अधिक प्रश्रय

नही मिलता था तब वही भूमि दूसरे किसान को दे दी जाती थी। उसके लिए यह शर्त रहती थी कि अधिक-से-अधिक उत्पादन हो सके। इसका उद्देश्य यह था कि आलसी किसानो की वजह से राज्य को घटी नही होने पावे। पर साथ ही उन किसानो पर बडा अनुग्रह रखा जाता था जो समय पर कर वसूल कर दिया करते थे। जरूरत पडने पर इन लोगो को अन्न, जानवर तथा नकद भी दिये जाते थे। राज्याधिकारी इसका भी ख्याल रखते थे कि इन सुविधाओ के देने से अन्तत राज्य कर में वृद्धि ही होगी। जिससे राज्य को कोई लाभ होने की आशा नही होती थी उसे सुविधा नही दी जाती थी।

भूमि की उचित सिंचाई के लिए आहर, पोखर और तालाब बनवाये जाते थे। खनिजो के विकास के लिए शोध कार्य किये जाते थे। इन कामो में प्रजा की सहायता ली जाती थी। सडको, राजपथो एव यातायात के अन्य साधनो का निर्माण भी कराया जाता था। राज्य के समस्त जानवरो को चारा मिले इसका मुआइना करना भी शासन की जिम्मेदारी थी, देव-मदिर, तालाब तथा कई प्रकार के जनोपयोगी कार्य करने को सबको प्रोत्साहन दिया जाता था। इन कार्यों में भाग लेने की एक प्रकार की अनिवार्यता सिद्ध कर दी गयी थी। कभी-कभी तो टाल-मटोल करनेवालो को कडा दड भी दिया जाता था। यह इसलिए किया जाता था ताकि प्रजा कृषि कर्म से विरक्त होकर गरीब न हो जाय। कभी-कभी तो नर्तको-नर्तकियो का जाना गावो में रोक दिया जाता था। सडको और राजपथो पर लुटेरे और डाकू तथा रहजन न रहें इसका प्रबध भी शासन की तरफ से किया जाता था।

खास महाल की कृषि राज्य के द्वारा की जाती थी। इसका नाम था सीता। खास महाल का अधीक्षक या निर्देशक योग्य व्यक्ति ही होता था, अत्यन्त कुशल एव अनुभवी। वह मजदूरो की सहायता से खेती करवाता था। बढई, लुहार, जानवर, बीज आदि का निरीक्षण भी उसीके जिम्मे रहता था। जलाशयो, नहरो से सिंचाई की सुव्यवस्था रहती थी। आदमी तथा जानवर, दोनो मिल कर सिंचाई का काम करते थे। प्रत्येक बीज का सग्रह एव सुधार अपरिहार्य रूप से किया जाता था। मौसम विशेषज्ञ किसानो को उचित सलाह दिया करते थे। उत्पादन बढाने के लिए खादो के सबध में अनुसधान किया जाता था तथा किसानो को तत्परता के साथ इन सबकी जानकारी कराई जाती थी। खास महाल की सिंचन-सुविधाओ से अन्य भी लाभ उठा सकते थे। इसके लिए जलकर वसूल किया जाता था।

उत्पादनो के विक्रय का इन्तजाम भी राज्य का दायित्व था। विशेषतया इस बात की निगरानी की जाती थी ताकि खाद्यान्नो के भाव अकारण नही बढ जाय। भिन्न-भिन्न जिन्सो के मूल्य भी राज्य द्वारा निर्धारित कर दिये जाते थे। परती जमीनो की बन्दोबस्ती जब किसानो के साथ की जाती थी तब उन्हें निश्चित सहायता दी जाती थी ताकि वे उस भूमि में कृषि कार्य कर सकें। जानवरो की बीमारियो का इलाज भी बडे पैमाने पर कराया जाता था। चारागाहो की व्यवस्था करना भी राज्य का काम था।

इन प्रमाणो से पता चलता है कि कौटिलीय राज व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि व्यवस्था बिलकुल पूर्ण थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने सुप्रसिद्ध सुदर्शन झील खुदवाया था। शहरो तथा ग्रामो की आबादी की गणना भी अच्छी तरह की जाती थी ताकि उसमें किसी प्रकार की भूल नही रहने पावे। गोप गावो का पूर्ण विवरण रखता था। इसके अलावे भिन्न-भिन्न प्रकार की सूचनाए भी उसके पास रहती थी। मर्दुमशुमारी का काम भी वही करता था। गोपो के बाद स्थानिको के पास भी ऐसे ही रेकार्ड रहते थे। इन कामो का महत्त्व इतना अधिक माना जाता था। इसके निरीक्षण एव परीक्षण के लिए गुप्तचर भी छोडे जाते थे। इसीके अनुसार कर प्रत्येक श्रेणी से वसूल किया जाता था। कौटिल्य राज्य में इन सब सुविधाओं एव राजाज्ञाओ का सुप्रबध इसलिए था चूकि राजा के लिए प्रजा के हित के समस्त कामो में रुचि रखना पुनीत धर्म व कर्त्तव्य दोनो था। यह मान्यता भी थी कि आर्थिक स्तर का विकास प्रजा और राजा के सबधो को दृढतर बना कर राज्य समृद्ध करता है।

लेकिन दैवी प्रकोपो के समय, जैसे अकाल पडने पर या बाढ आने पर तथा इसी प्रकार की अन्य प्रकार की विपदाओ के सम्मुखीन हो जाने पर राज्य की ओर से प्रजा को भरपूर सहायता दी जाती थी। गरीबो को कई प्रकार की सहायता देने के लिये धनिको से कर वसूल किये जाते थे। बेकारी दूर करने के लिये सडकें बनवाई जाती थी, आहर-पोखर-तालाब खुदवाये जाते थे एव अन्य जनोपयोगी कार्य राज्य की ओर से बडे पैमाने पर कराये जाते थे। किसान ऐसी परिसिथतियो में साग-सब्जी तथा अन्य प्रकार के जल्दी से उगनेवाले अन्नो का उत्पादन करने को प्रस्तुत रहते थे।

इस प्रकार कौटिल्य के अर्थ शास्त्र के अनुसार उत्पादन के दृष्टिकोण से भूमि की व्यवस्था की जाती थी तथा छठा हिस्सा के अतिरिक्त भी अन्य कई प्रकार के कर प्रजा से वसूल किये जाते थे।

मिश्र की नई भूमि-व्यवस्था

श्री हरेन्द्रदेव सिह

बुधवार २३ जुलाई, १९५२ के प्रात ७ वजे मिस्र में शासन-सूत्र वहा की फौज के हाथ में आया। आते ही इसने भूमि-सुधार के विचार को प्रकट किया। इस क्राति से पूर्व भी यह सवाल कई वार विचारार्थ उपस्थित हुआ था किन्तु वरावर इसे टालने की ही चेष्टा रही। फलस्वरूप किसानो के ऊपर भूमिपतियो का उत्पात वढता गया और किसानो की अवस्था गिरती गयी। इसका असर अन्न के उत्पादन पर भी पडा। उत्पादन में गिरावट को रोकने और किसानो की क्रय-शक्ति को वढाने के लिए भी भूमि सुधार को तुरत लागू करना नयी सरकार के लिये आवश्यक हो गया। किसानो की अल्प क्रय-शक्ति के कारण देश का औद्योगिक विकास भी सभव नही था। भारत और चीन में हुए भूमि-सुधार के उदाहरण भी उनके सामने थे। इन देशो में उत्पादन को विना थोडा भी नुकसान पहुचाये भूमि सुधार के नियम लागू किये गये थे और उसका समाज पर अच्छा असर पडा था।

मिस्र में भूमि का स्वामित्व थोडे से लोगो के हाथ में था जो समाज के उत्पादन को अपने निजी स्वार्थ में इस्तेमाल करते थे। जमीन की इस विपमता के रहते देश में राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक और औद्योगिक सतुलन सभव नही था। नीचे के आकडो से इस विपमता का अन्दाज कीजिये

भूमि सुधार से पूर्व भूमि का स्वामित्व

क्षेत्रफल	भू-स्वामियो की सख्या
१ फेदन के अन्दर	१९८१,३३९
१ से ५ फेदन	६१७,८६०
५ से २०० फेदन	१५९,३४७
२०० से ८०० फेदन	१,८३५
८०० से १,००० फेदन	९२
१,००० से २,००० फेदन	१२७
२,००० फेदन से अधिक	६१
	२,७६०,६६१

भूमि सुधार का उद्देश्य

भूमि के इन असमान वितरण का अन्त कर मिस्र के आर्थिक जीवन में सतुलन लाना ही भूमि-सुधार का उद्देश्य था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नयी सरकार ने भूमि के वडे-वडे क्षेत्रो को तोडने का निश्चय किया। उसने जमीन की अधिक-से-अधिक हदवन्दी २०० फेदनो का रखा। एक फेदन लगभग एक एकड के वरावर होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मिस्र की कुल ६०,००,००० फेदन उपजाऊ जमीन में ६००,००० फेदन हरिहरो मे वाटने के लिये मिल गयी। इन्हें पाच साल के अन्दर वाट देने का निश्चय मिस्र ने किया था और अव तक इस ओर काफी प्रगति सफलतापूर्वक हो चुकी है। इस जमीन को प्रत्यक्ष रूप से खेती करनेवाले किसान के अन्दर वाटा जा रहा है। इस प्रकार कुल जोत की जमीन में से १० प्रतिशत के पुर्नवितरण को पाच साल मे पूरा करने के कार्यक्रम में प्रशासन की भी कोई समस्या पैदा नही होती। अन्य देशो के अनभवो से इस अर्थ में मिस्र को अवश्य ही काफी सहायता मिली है। आगे चल कर भी कोई समस्या पैदा न हो जाय इसीलिए अधिकारियो ने जल्दीवाजी से काम नही लेकर पाच साल की अवधि में पूरा करने का फैसला किया था।

कुछ लोगो का ऐसा भी ख्याल था कि इससे उत्पादन को वहुत धक्का लगेगा। किन्तु अधिकारियो ने देखा कि वडे-वडे भूमिपति स्वय तो खेती करते नही वल्कि छोटे-छोटे किसानो को लगान पर दे देते है। अत अगर उन जमीनो के मालिक वे किसान वना दिये जाते है तो अवश्य ही उत्पादन वढाने के लिए उनमें अधिक जोश होगा और वे अधिक मिहनत से ज्यादा उत्पादन करेगे। साथ ही उर्वरा शक्ति के अनुसार खेतो का क्षेत्रफल भी २ से ५ फेदन का कर दिया गया, जिससे भी उत्पादन मे वृद्धि की आशा की गयी। यह सच था कि किसान वीज, खाद और रुपये जमीन्दारो से कर्ज लेते थे, जो नयी व्यवस्था के लागू होने पर उन्हे नही मिल सकता था। क्रेडिट एगिकोल को-आपरेटिव ने इन दिक्कत को वहुत हद तक हल कर दिया और नयी-नयी सहकारी सोसाइटियो की स्थापना के लिए आन्दोलन आरम्भ किया गया। वदली हुई परिस्थिति मे गाव के प्रशासन और सहकारिता को चलाने के लिए नये प्रशासको की शिक्षा आरम्भ की गयी।

सुधार का आरम्भ

९ सितम्बर १९५२ से भूमि सुधार कानून लागू किया गया। कानून की प्रथम धारा में स्वीकार किया गया है कि कोई भी व्यक्ति २०० फेदन से अधिक जमीन नही रख सकता।

इस कानून का असली मकसद भूमि पर से सामन्तवाद को समाप्त कर खेती योग्य भूमि का पुनर्वितरण करना है। कानून के अन्तर्गत भूमिपतियो को अपने पुत्रो के नाम ५० फेदन तक जमीन परिवर्तित कर देने का हक प्राप्त है। वशर्ते कि इस प्रकार की जमीन १०० फेदन से अधिक नही हो। जमीनें किसी से भी विना मुआवजा के नही छीनी गयी। मुआवजा की दर लगान के १० गुना रखी गयी जो ३ प्रतिशत सूद के साथ सरकारी वाड के रूप में भूमिपतियो को मिले और जिसको वे ३० वर्ष में भुना सकेंगे।

जमीन प्राप्त करनेवाले नये लोग ३० वार्षिक किश्तो में जमीन की कीमत अदा करेंगे। जमीन के साथ-साथ उन्हें जमीन के अन्दर पडनेवाले मकान की कीमत, ३ प्रतिशत सूद और १५ प्रतिशत अतिरिक्त खर्च भी देना पडेगा। कानून के अनुसार मिस्र में लगान की दर वुनियादी कर का सात गुना रखा गया।

लगभग ७५ प्रतिशत किसानो ने इस धारा से लाभ उठाया। कानून की ३२ वी धारा के अनसार जमीन उन्हे दी जा सकती हैं जो कृपिजीवी हैं। धारा ३३ के अनुसार जमीन की लगान वुनियादी कर के सातगुना से अधिक नही होगा और वटाईदारी की अवस्था मे जमीन के मालिक को आधे से अधिक नही मिलेगा।

कानून के लागू करने के वाद बडे-वडे भूमिपतियो से जमीन प्राप्त करना आरम्भ हुआ। नवम्बर १९५३ तक उच्च समिति को १८७,७४३ फेदन जमीन प्राप्त हुई। प्राप्त की गयी जमीन के अन्दर पडनेवाले कृषि सावनो तथा अन्य स्टाको का भी लेखा लिया गया जिससे कृपि के लिए आवश्यक सामान की कमी न हो।

भूमि सुधार के लिए निर्मित उच्च समिति को भूमि प्राप्त करने और उसके वितरण काल तक भूमि की व्यवस्था का अधिकार दिया गया है। यही समिति किसानो के हाथ भूमि वन्दोवस्त करती है। वे ही किसान भूमि प्राप्त कर सकते है, जिन्होने कभी उस भूमि में पहले कार्य किया है।

आधुनिक ढग मे कम-से-कम खर्च पर उत्पादन में वृद्धि की गारटी के लिए समिति किसानो को आर्थिक और टेक्निकल महायता प्रदान करती है। इस प्रकार मिस्र में कृपिजन्य उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई है।

कई स्थानो में चन्द टेक्निकल कारणो से उच्च समिति ने भूमिकर में भी कमी कर दी, जिसमे किसानो ने विना विलम्व के कर अदा किये हैं। नेशनल एग्रिकल्चरल क्रेडिट वैंक ने भी किसानो को काफी कर्ज दिया है। उपरी मिस्र मे ईख उपजानेवाले किसानो को प्रति एकड १५ मिस्री पौंड तक कर्ज मे दिये गये। एक मिस्री पौंड भारतीय १३ २५ रुपये के वरावर होता है।

चार मुख्य आधार

जमीन के वाटने के पूर्व भूमि सुधार उच्च समिति ने विशेषज्ञो के द्वारा चार प्रमुख वातो का अध्ययन कराया जो पुनर्वितरण की नीति के मुख्य आधार हैं

१ प्राप्त किये गये इस्टेटो के रजिस्टरो की छान-वीनकर पुराने रैयतो के नाम की सूची तैयार की गयी।

२ सामाजिक कार्यकर्ताओ द्वारा खेतिहरो की स्थिति का अलग से अध्ययन किया गया। उच्च समिति और किसानो के वीच ये मध्यम कडी हैं। आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोणो से इन्होने किसानो के जीवन-स्तर का अध्ययन किया।

३ किसानो की आय के तखमीने के लिए तीन साल की परिवर्त्तित खेती के आधार पर प्रति फेदन उत्पादन का अध्ययन किया गया।

४ विभिन्न सख्या के परिवारो की जीविका की औसत आय का पता लगाया गया।

इस सामाजिक अनुसधान के द्वारा उच्चसमिति को विभिन्न रैयतो के वीच जमीन के वटवारे की सीमा निर्धारण मे सहायता मिली।

भूमि सुधार कानून की धारा ९ में कहा गया है कि प्रत्येक गाव में प्राप्त जमीन का वितरण छोटे किसानो मे इस प्रकार हो कि जमीन की कोटि के अनुसार प्रत्येक को दो फदेन से कम और ५ फेदन से अधिक नही मिले। अत वे ही मिस्रवासी जमीन पाने के हकदार है (१) जो किसी असम्मान-जनक अपराध मे दोपी नही करार दिये गये हो, (२) कृपि कार्य कर रहे हो और (३) पाच फेदन से कम जमीन रखते हो। इन गुणो के रहते हुए भी पहले जमीन उन्हें दी जायगी जो रैयत या किसान की हैसियत से खेती कर रहे है, वाद को उनलोगो को जिनके परिवार गाव में वहुत वडे ह, इसके वाद उनलोगो को जो गाव में गरीव हैं और सवसे वाद में उनलोगो को जो दूसरे गाव के हैं। इस प्रकार से दी गयी जमीन फिर से पूर्व क्रय के अनुसार सरकार नही लेगी।

कुछ दिनो के वाद देखा गया कि कुछ परिवारो को, जो औसत आकार से बडे थे, पाच फेदन के उत्पादन से अधिक की आवश्यकता है। ऐसी परिस्थिति मे वडे परिवारो को वाटकर उन्हें अलग से जमीन प्राप्त करने योग्य बनाया गया।

जमीन के वटवारे के सिलसिले में निम्न वातें भी देखी गयी। जैसे किसानो के घर से अधिक-से-अधिक निकटतम दूरी पर उन्हें जमीन मिलनी चाहिये।

कम जमीन पानेवालो को जमीन उनके निवास स्थान से कम-से कम दूरी पर ही हो।

प्रत्येक खेत को तीन वरावर हिस्सो में वाट देना चाहिये जिससे कि वदल-वदल कर तीन साल तक वे खेती कर सकें।

नये जमीन पानेवालो में एकरूपता का होना भी आवश्यक है।

भविष्य में सामाजिक, स्वास्थ्य सवन्धी और शैक्षणिक मकानो के निर्माण के लिए अधिक-से-अधिक जमीन सुरक्षित छोड देना चाहिये।

उच्च समिति ने किसानो के लिए बीज, खाद, मवेशी, कृषि-औजार, तथा गुदाम और यातायात की गारटी के हेतु सहकारिता आन्दोलन पर जोर दिया गया है जिससे उत्पादन की वृद्धि मे किसी प्रकार की अडचन नहीं होने पावे। सभी गावो में ऐसी सहकारी समितिया कायम की जा रही हैं। भूमि-वितरण और सहकारिता के फलस्वरूप उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है।

सोवियत रूस की भूमि-व्यवस्था

श्री गिरीन्द्र मोहन भट्ट

१९१७ की अक्तूबर क्रान्ति से पूर्व प्राय सारा रूसी साम्राज्य छोटी-वडी जमीन्दारियो में विभक्त था। ये जमीन्दार अधिकतर जार के वश के या उनके नजदीकी लोग थे जो जमीन के साथ-साथ किसानो के भी मालिक थे। केवल जार के वश के लोग, सिर्फ यूरोपीय रूस में ८० लाख हेक्टेयर तथा अन्य २८ हजार जमीन्दार ६ करोड २० लाख हेक्टेयर जमीन के मालिक थे। २८ हजार जमीन्दारो की जोत में उतनी जमीन थी जितनी १ करोड किसान जोतते थे। किसानो की जमीनें अपेक्षाकृत अत्यन्त ही न्यून श्रेणी की और कम उपजाऊ थी। किसानो का हर प्रकार से शोषण किया जाता था। उन्हें वेगार खटना पडता था, अधिक लगान देना पडता था और वेदखली तो साधारण सी वात थी। किसानो के अन्दर भी जमीन्दारों मे त्राण पाने के लिए वडी वेचैनी थी।

१९०५ में लेनिन ने इस वात को आवश्यक समझा कि क्रान्ति में मजदूर वर्ग के निकटतम दोस्त ग्रामीण गरीब किसानो को भी सगठित करना चाहिये। एक कारण और भी था जिससे लेनिन ने किसानो के सगठन पर अधिक जोर दिया। ब्रिटेन, फ्रास, जर्मनी तथा आस्ट्रिया आदि पश्चिम यूरोप के देशो में किसानो को पूजीवादी नेतृत्व में सामन्तवाद से त्राण मिला था, जिससे किसानो और मजदूरो की एकता नही कायम हो सकी और पूजीवाद के विरुद्ध सघर्ष में मजदूर वर्ग अकेला रह गया। अत मजदूर वर्ग की जीत के लिए किसानो का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक था। देहातो में जमीन्दार किसानो के साथ गुलाम जैसा सलूक करते थे। जिससे गाव में भी किसानो के अन्दर जमीन्दारो के विरुद्ध वर्ग चेतना जगाने मे आसानी हुई। शहर में पूजीपतियो के विरुद्ध मजदूर लड रहे थे और गावो में जमीन्दारो के विरुद्ध किसान। दोनो की मिली-जुली शक्तियो के सहारे रूस में १९१७ के नवम्बर में लेनिन के नेतृत्व में क्रान्ति पूर्ण सफल हुई। रूसी साम्राज्य को समाजवादी सोवियतो का देश घोपित किया गया।

समाजवाद सपत्ति का स्वामित्व समाज के हाथ में देता है, वह सपत्ति चाहे औद्योगिक हो, चाहे कृपि सवधी। क्रान्ति के प्रथम वर्प में ही सोवियत रूस मे खेती पर से जमीन्दारो का प्रभुत्व खतम कर दिया गया। जमीन्दारी के अन्त होने से किसानो को सिर उठाने का अवसर तो अवश्य मिला, किन्तु भयकर गृहयुद्धो के कारण कृपि सवधी अन्य कदमो को उठाने म तीन साल तक उनकी कोई भी प्रगति नही हो सकी। गृह-युद्ध के वाद भी सोवियत नेताओ ने पहले उद्योगो का समाजीकरण आरम्भ किया। असल मे क्रान्ति के तुरन्त वाद ही उद्योगो को राजकीय कर देने पर भी गृह-युद्धो के कारण वे उन्हें चलाने में असमर्थ रहे। नयी आर्थिक नीति (नेप) के अन्तर्गत उन्होंने फिर से व्यक्तिगत उद्योगो को छूट दी।

१९२४ में लेनिन की मृत्यु हो गयी। मृत्यु के पश्चात प्रमुख नेताओ में नीति के प्रश्न को लेकर वडा विवाद उठ खडा हुआ। कामेनेव और जिनोवियेव का विचार था कि नेप की नीति से देश में फिर से पूजीवाद का प्रादुर्भाव हो जायगा। वुखारिन और राजकोव का मत था कि किसानो को व्यक्तिगत खेती के लिए और भी अधिक-से-अधिक छूट तथा व्यक्तिगत उद्योगो को प्रोत्साहन दिया जाय। १९२७ तक यही वखेडा चलता रहा। अन्त में ट्राटस्की और उनके समर्थको का पतन हुआ। वे लोग कई पडयत्रो में सक्रिय पाये गये और कई फासी पर चढा दिये गये और कई को देश निकाला हुआ। कम्यूनिस्ट पार्टी और सरकार का नेतृत्व स्तालिन के हाथो मे आया। स्तालिन ने खेती को पचायती वनाने का कार्य आरम्भ किया और यही से कोलखोज आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। किन्तु कोलखोज से पूर्व सोवखोज को जानना जरूरी है।

सोवखोज

१९१७ की अक्तूबर क्रान्ति के वाद जमीन्दारिया जब्त कर ली गयी और कुछ में सरकार स्वय खेती करने लगी। यही सरकारी खेती सोवखोज कहलाती है। पहले वड़े-वडे जमीन्दारो की अपनी जोतवाली जमीनो को ही सोवियत सरकार ने सोवखोज के रूप में परिणत किया, पीछे जगल काट कर या नहर निकाल कर वजर भूमियो का कर्पण कर और भी नये सोवखोज वनाये गये।

सोवियत विधान कहता है कि जमीन,खानें, पानी, जगल, कारखाने खनिज पदार्थ, रेल, जल और वायु-यातायात, बैंक, वहन के साधन (डाक तार, टेलीफोन, रेडियो इत्यादि) विशाल राजकीय कृषि प्रतिष्ठान (राजकीय खेती, मशीन और ट्रैक्टर स्टेशन आदि) तथा म्युनिसिपल सस्थाए और शहर एव औद्योगिक केन्द्रो के अधिकतर निवास गृह राज्य की सपत्ति है। इस प्रकार सोवखोज (सोवियत खेती) राज्य की निजी सपत्ति है—जिसके व्यवस्थापको को, राज्य के योग्य अधिकारी वहाल करते हैं। ये ही व्यवस्थापक इसकी तमाम आर्थिक गतिविधियो की देख-भाल करते हैं और उत्पादन योजना की सारी जिम्मेदारी इन्ही के सिर पर होती है। सरकारी फैक्टरियो और सोवखोजो के कर्मचारी की एक ही स्थिति होती है और प्रत्येक को काम के गुण और परिमाण के अनुसार मजदूरी मिलती है। अत सोवखोजो को आप अनाज उपजाने की वडी-वडी फैक्टरी कह सकते हैं जिसका हर एक कार्यकर्त्ता वैसा ही मजदूर है, जैसा सरकार के किसी और कारखाने का।

सोवखोजो के अतिरिक्त कितनी ही जगहो पर कुछ आदश-वादी साम्यवादियो ने साम्यवादी खेती (कम्यून) भी स्थापित की और सोवियत सरकार की सहायता से वे भी सफलतापूर्वक चल रही है।

कोलखोज

१९२७ तक उद्योगो का समाजीकरण हो चुका था और उत्पादन युद्ध से पूर्व की स्थिति में पहुच चुका था। अव आगे की प्रगति के लिए खेती का समाजीकरण आवश्यक था। नियोजित आर्थिक उन्नति के लिए उद्योगो के साथ कृषि योजना भी आवश्यक थी। समाजवादी उत्थान के लिये खेती के समाजीकरण के विना अव आगे का कार्यक्रम सभव नही था। सोवखोजो का प्रवन्ध सरकार के हाथ में था किन्तु सोवखोज इतने अधिक नही थे कि उनकी उपज से सारी मजदूर जनता की भूख की आवश्यकता की पूर्ति हो। साथ ही वैयक्तिक किसानो की आमदनी का कोई निश्चय नही। व्यक्तिगत तौर पर वे प्राकृतिक आपदाओ का मुकावला भी नही कर सकते थे। खेत के चप्पे-चप्पे से वैज्ञानिक आधार पर अधिक-से-अधिक अन्न प्राप्त करने के अतिरिक्त देहातो में रहनेवाले किसानो की सास्कृतिक उन्नति के लिए भी उनकी आमदनी का वढाना आवश्यक था। यह वे अपने घर-द्वार अपने चार अगुल के हल और मरियल वैल और छोटे-छोटे टूकडो में वटे अपने खेत का अलग ससार बना कर नही कर सकते थे। अत कृषि को भी सामाजिक आधार देना आवश्यक था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए १९२७ में स्तालिन के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार ने कोलखोज की नीति अपनायी।

अव कृषि में राजकीय प्रतिष्ठानो अर्थात् राजकीय खेत, मशीन और ट्रैक्टर केन्द्रो के अतिरिक्त सहकारी या कोलखोज आन्दोलन का आरम्भ हुआ। लाखो लाख किसानो ने अपने साधनो और श्रम शक्ति को कोलखोजो अर्थात् सामूहिक खेती में सगठित करना आरम्भ किया जिससे सहकारी और कोलखोज मिल्कियत की सृष्टि हुई।

यह सगठन १९२८ मे आरम्भ हुआ था। वडे किसानो (कुलको) और पुरोहितो ने इसका विरोध किया। उन्होने किसानो को उभारना शुरू किया। वहुत से किसान उनके चकमे मे आ गये। अपने वाप-दादाओ के समय से चली आती हुई जमीन पर से अपना स्वामित्व छोडने में उन्हें वडा मोह हुआ। असल में इसके सगठन मे कुछ धाधली भी हुई थी। प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्दर सोवियत सरकार ने एक खास सख्या तक कोलखोजो के सगठन का निश्चय किया था। किसानो मे उतनी जागर्ति नही थी। उस हद तक किसान सामूहिक खेती के लिए तैयार नही थे। कुलको ने अपनी जमीन को अपने हाथ से जाते देख कर उसे वरवाद करना आरम्भ किया। उन्होने किसानो से भी ऐसा ही करने को कहा। गाव-के-गाव उजाड हो गये। लोगो ने जमीन परती छोड दी। अन्न जला डाले। पेड-पौधो को काट दिया। मवेशियो को मार दिया गया। देश में अन्न, फल और मास की कमी हो गयी।

देश की इस विगडती हुई परिस्थिति को देख कर स्तालिन ने कोल-खोज आन्दोलन को धीमा किया। जिन किसानो ने कोलखोजो से लौटने का विचार किया उन्हें वैसा करने की छूट दी गयी।

किन्तु तव तक सगठित कोलखोजो के आशातीत उत्पादनो को देख-कर कोलखोज आन्दोलन को आगे वढाना उत्पादन की वृद्धि के लिए आवश्यक था। किन्तु कुलको से पिंड छुडाये विना गावो में इस आन्दोलन को चलाना कठिन था। एक दूसरे कारण से भी कुलको का नाश आवश्यक था। कुलको की उपस्थिति से पूजीवाद के विकास का खतरा था। इसलिए सरकार ने कुलको से अनाज का एक खास भाग वसूल करने का विशेष कानून लागू किया। कुलको ने इसका पालन नही किया। उन्होने अव्यवस्था फैलाना आरम्भ किया। अत सोवियत सरकार ने इन्हे वाकी मालगुजारी तुरत अदा करने का आदेश दिया और वचे हुए अनाज को भी निर्धारित मूल्य पर वेचने के लिए उन्हें विवश किया गया। कुलको के विरुद्ध साधारण किसानो का समर्थन प्राप्त करने के लिए कुलको से छीने गये अन्न का २५ प्रतिशत उन्हें उधार देने की घोषणा सरकार ने की। कुलक भी सगठित रूप से सरकार के विरुद्ध मोर्चा लेने के लिए तैयार हो गये। इस प्रकार देश भर के गावो में वर्ग युद्ध आरम्भ हो गया। इस अभियान में कुलको का सफाया हो गया।

द्रुत नियोजन

इसी पृष्ठभूमि में स्तालिन ने प्रथम पचवर्षीय योजना का आरम्भ किया। १९२९ तक देश के बहुत से भागो में राजकीय खेती, मशीन और ट्रैक्टर-स्टेशनो का जोरदार सगठन कायम हो चुका था और वे कोलखोजो को वीज, औजार और ट्रैक्टर उधार देने की अवस्था में पहुच चुके थे। नये वैज्ञानिक तरीको से उत्पादन मे वृद्धि को देख कर प्रोत्साहन मिला। वे भी अपने खेत पर अधिक से-अधिक उपजाने की कामना करने लगे जो उनके पुराने वीज, हल-फाल से सभव नही था। अत १९२८ के आरम्भ से १२ महीने के अन्दर ही कोलखोजो की सख्या दुगनी हो गयी। कोलखोजो की सफलता को देख कर मध्यग किसान भी इसमें सम्मिलित होने लगे। पहली फरवरी, १९३० में मजदूरी कराना और जमीन को लगान या वटैया लगाने की प्रथा का कानून वना कर अन्त कर दिया गया। अव व्यक्तिगत तौर से अधिक खेती करना सभव भी नही था। फलस्वरूप

गाव के सभी किसानो के सामने कोलखोजो को अपनाने का और कोई चारा भी नहीं रह गया। कोलखोज आन्दोलन की प्रगति की रफ्तार तेज हो गयी ।

१७ फरवरी १९३५ को द्वितीय अखिल सघ कोलखोज उदर्निक-काग्रेस ने कोलखोज सम्बन्धी नियम नये सिरे से बनाये जिसे सोवियत सरकार ने मान्यता दी।

कोलखोज का उद्देश्य गाव के मिहनती किसानो को उनकी इच्छा से कृषि सम्बन्धी सहयोग में सम्मिलित करना है, जिनसे कि वे उपज के साधनो तथा सब के सगठित श्रम के द्वारा अपने लिए बेहतर-से-बेहतर जीवन की सृष्टि कर सकें। सहयोग के सदस्य निम्न बातो की जिम्मेदारी लेते हैं—अपने सहयोग को मजबूत करना, सच्चाई से काम करना, कोलखोज की सम्पत्ति की रक्षा करना, ट्रैक्टर और मशीन को ठीक से सभालना, घोडो की ठीक से निगहबानी करना, सोवियत सरकार द्वारा सौंपे गये कर्त्तव्य का पालन करना और कोलखोजी किसानो को मजबूत बनाना । कोलखोजो के सगठन के बाद सहयोग के सदस्यो को अलग करनेवाली जमीन की मेंड तोड दी गयी और सभी खेत महान क्षेत्र के रूप में सगठित कर लिये गये । ये क्षेत्र सारी जनता की राजकीय सपत्ति हो गयी । सहयोग सघ भी इसे न खरीद-बेच सकता है और न किसी को लगान पर दे सकता है।

जहा तक सहकारी और कोलखोजी मिल्कियत का सबध है—सोवियत विधान के अनुसार उन्हें सामूहिक खेती और सरकारी सगठनो पर उनकी तमाम सपत्ति, मवेशियो, औजार, सामूहिक खेती और सहकारी सगठनो के उत्पादन तथा उनके सामान्य मकानो पर उनके अधिकार हैं। कोलखोजो के उत्पादन के साधन के मालिक कोलखोजो के सदस्य हैं । केवल निवासघर, कुछ मवेशिया, मुर्गे, फूल और तरकारी उपजाने योग्य आधी हेक्टेयर से एक हेक्टेयर तक जमीन, कुछ औजार ही कोलखोजनिको के व्यक्तिगत अधिकार की वस्तुये हैं। अपने उत्पादन के कुछ हिस्सो को निर्धारित मूल्य पर कोलखोज राज्य के हाथ बेंच देते हैं। राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्य की पूर्त्ति तथा मशीनो और ट्रैक्टरो के व्यवहार का किराया आदि चुका देने के बाद कृषि नियमो के अन्तर्गत कोलखोज के सदस्य अपने उत्पादन का मनमाने ढग से व्यवहार कर सकते हैं।

कोलखोज का प्रबन्ध कोलखोज के सदस्यो द्वारा किया जाता है। कृषि कानून के नियमो के अनुसार कोलखोजो का प्रबन्ध सदस्यो की साधारण सभा करती है। दो साधारण सभाओ के बीच साधारण सभा द्वारा निर्वाचित बोर्ड और अध्यक्ष के ऊपर कोलखोज के प्रबन्ध का भार रहता है। सौ-सौ डेढ-डेढ सौ काम करनेवाले स्त्री-पुरुषो की सम्मिलित या अलग-अलग टोली पर एक-एक ब्रिगेडियर चुना जाता है। अपने-अपने ब्रिगेड या टोली की देख-भाल करना इनका काम है। फिर रसोइया, बच्चो की देख-रेख के लिए धाइया, लोहार, बढई, गाय, घोडे, मुर्गियो के अलग-अलग रखवाले चुने जाते हैं। ब्रिगेड को आठ-आठ, दस-दस की छोटी-छोटी टुकडियो या लिंको में बाटा जाता है। गोल के भी सरदार और सरदारिनें होती हैं। ब्रिगेडियर स्वय काम नही करता। उसके ऊपर मात्र निरीक्षण की जिम्मेदारी होती है, किन्तु सरदार और सरदारिनो को स्वय काम भी करना पडता है। कोलखोज के अधिकारियो में निश्चित तनख्वाह पानेवाले हैं—अध्यक्ष, प्रबन्धक, बही-खाता रखनेवाले और ब्रिगेडियर । उनको एक दिन के वास्ते डेढ दिन की मजदूरी मिलती है। प्रत्येक कोलखोजनिको को मजदूरी के रूप में उनकी मिहनत के परिणाम और गुण के अनुसार उन्हें कोलखोजो की आय से हिस्सा दिया जाता है। कोलखोजनिको की इस आय पर किसी प्रकार का कर नही लिया जाता। अपनी तरकारी के बगीचे, मुर्गी और मवेशियो से भी उनकी अतिरिक्त आय होती है।

कोलखोजो और कोलखोजनिको की सासारिक और सास्कृतिक उन्नति का आधार ही उनकी सामूहिक सपत्ति और सामूहिक मवेशिया हैं । सामूहिक सपत्ति की जितनी उन्नति होती है उसी अनुपात में कोलखोजो के सदस्यो की भी उन्नति होती है । इसलिए कोलखोजो के विकास और उन्नति की ओर प्रत्येक कोलखोजनिको का विशेष ध्यान रहता है। इस प्रकार सोवियत देश के प्रत्येक किसान ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को सामूहिक स्वार्थ के साथ लगा दिया है। सामूहिक उन्नति में ही वे अपना भी कल्याण मानते हैं।

भूमि सुधार कानूनों का क्रम

डा० एम० श्रीनिवासन्

इन दिनो, देश की राजनीतिक स्थिति मे परिवर्त्तन के पश्चात भूमि सुधार कानूनो की महत्ता अधिक बढ़ गई है। किसानो की भूमि-क्षुधा अतृप्त है। स्वतत्रता के बाद इसके समाधान के हेतु बडे पैमाने पर प्रयास किया जाना चाहिए था। जमीन्दारी, रैयती, बन्दोबस्ती तथा बेदखली, इस चतुर्भुज की परिधि से कृषको को निकाल कर उनका सरक्षण आज का ज्वलन प्रश्न है। राजनीतिक एव विविध प्रगति के निमित्त इसको स्थायी तौर पर हल कर देना प्रत्यावश्यक है। अर्थविदो, नियोजको, अध्यापको एव अन्य भूमि विशेषज्ञो ने योजना आयोग को जो सुझाव दिये है, उसका भी यही अर्थ है।

भूमि सुधार में विविध राजनीतिक विचारो का भी ख्याल रखना होगा और विशेषतया उन सबका जिनकी ममता भूमि पर युग-युग से चली आ रही है। गरीब और अमीर समान रूप से भूमि पर पूजी लगाना चाहते है, एक की पू जी और दूसरे वर्ग का श्रम। यदि यही किया जाय तब भी समाधान निकालना वडा मुश्किल हो जायगा। बन्दोबस्ती, कृषि एव उत्पादन की सर्वाधिक सुविधा उन्नति की बडी शर्त्ते है। आज जब खाद्यान्न का एकदम अभाव है तव परती भूमि का कर्षण सबमे बडा साधन होगा जिमे सरकार ही कर सकती है। समाज या समुदाय इस बात में दिलचस्पी लेता है कि भूमि उमे साधन के रूप मे मिले जिसके उपयोग से वह अधिक उत्पादन कर सकने मे समर्थ हो सके। समता का आदर्श सामने रख कर काम करने के लिए भूमि का वितरण सबसे पहली जरूरत है।

हमारे राज्य का आदर्श है कि जोतनेवाला जमीन का मालिक हो। इसका अर्थ यह हुआ कि राज्य एव रैयत के बीच मध्यस्थ नही रहे। १९४६ साल के कांग्रेस चुनावपत्रक में इसे ही प्रमुखता दी गयी थी। १९४५ मे मद्रास राज्य में तीन प्रकार की व्यवस्था थी, जमीन्दारी, रैयतदारी और इनामदारी, इनके अलावा मालावार जिले में मूली व्यवस्था भी थी। मद्रास राज्य की कुल कृषि योग्य ८०,५३०,००० एकड भूमि मे रैयतो के पास ४८,३८७,००० एकड भूमि थी यानी समस्त का ६० १ प्रतिशत, जमीन्दारो की मातहत १६,४२३,००० एकड जमीन थी यानी २० ३ प्रतिशत और इनामदारी भूमि कुल मिलाकर ४,७४६,००० एकड यानी ५ ९ प्रतिशत। शेष १०,९७४,००० यानी १३ ६ प्रतिशत मे जगल, पहाड या सरकारी प्रक्षेत्र थे। रैयतवारी जमीनो की बन्दोबस्ती नही की जाती थी।

समान वितरण

उडीसा, बिहार, पश्चिम बगाल, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में जमीन्दारो के कब्जे में अधिक भूमि थी। बम्बई, हैदराबाद, मैसूर तथा राजस्थान में भी जागीरदारी और अन्य प्रकार की कई तरह की बन्दोबस्ती बडे अस्थिर पैमाने व ढग पर चालू थी। अधिकाश राज्यो में जमीन्दारियो का उन्मूलन किया जा चुका है। जमीन्दारी उन्मूलन कानून में भी कई प्रकार की सश्लिष्टताए है, जैसे, मुआवजा कितना दिया जाय, कितनी किश्तो मे दिया जाय, किस तरह दिया जाय और छोटे-छोटे जमीन्दारो को पुनस्सस्थापन-व्यय दिया जाय।

इस दिशा में मद्रास सरकार ने तीन कानून बनाये (१) मद्रास इस्टेट्स (रिडक्शन आव रेंटस) ऐक्ट (२) मद्रास इस्टेट्स कम्यूनल फारेस्ट ऐंड प्राइवेट लैंडस (प्राहिबिशन आव एलाइनेशन) ऐक्ट और (३) मद्रास इस्टेट्स (एबोलिशन आव जमीन्दारी ऐंड कनवर्शन इन टू रैयतवारी) ऐक्ट। ये तीनो कानून १९४९ में ही पास कर दिये गये। पहले कानून से जमीदारी हल्को में रहनेवाले किसान को सरक्षण प्राप्त हुआ और भूमिकरो में कमी हुई और करो का स्तर रैयतवारी क्षेत्रो में आ गया। तीसरे कानून के लागू होते ही समस्त किस्म की भूमि पर कृषको का अधिकार हो गया। सरकार ने जमीन्दारों को १७ १५ करोड रुपया मुआवजा देना स्वीकार कर लिया है। मद्रास में मुआवजे की रकम अन्य राज्यो से बहुत कम है। विहार में जमीन्दारो को तिगुना से बीसगुना तक दिया गया है। उत्तर प्रदेश में जमीन्दारी की आय का आठगुना दिया गया है। आसाम में जमीन्दारी उन्मूलन के अन्तर्गत तिगुना से पन्द्रहगुना देने का निश्चय किया गया है।

इसी प्रकार इन तमाम राज्यो मे प्राप्त अधिकारो में भी अन्तर है। विहार में पेडो, जगलो, तालाबो, अन्य जलकर, घाटो, हाटो, बाजारो, खानो तथा खनिजो पर भी अधिकार कर लिया गया है। अन्य राज्यो में जमीन्दारो से जमीन्दारिया छीन ली गयी है और बम्बई म तो कानून बनाकर केवल उनके अधिकार कम कर दिये गये है।

और प्राप्त या अधिकृत भूमि की व्यवस्थाओ में भी प्रत्येक राज्य मे कुछ-न-कुछ अन्तर है, जैसे, विहार में इस्टेटो की व्यवस्था ग्राम पचायतो को दी जायगी और सरकार के भूमि सुधार कानून को स्वरूप देने के लिए भूमि आयुक्त होगा। मद्रास में पैमाइश के अनन्तर भूमि रैयतो को दे दी जायगी। उत्तर प्रदेश में जो किसान अपनी लगान के बारहगुना देगे उन्हें भूमिधारी अधिकार प्राप्त हो जायगा। गाव समाज की स्थापना की योजना भी है। गाव समाज के जिम्मे भी कुछ भूमि दी जायगी। ये ही कई प्रकार के विकास कार्यो के लिए उत्तरदायी भी होगे। मध्य प्रदेश मे किसानो को मालिक मालगुजार का अधिकार तिगुना कर दे देने पर प्राप्त होगा। उडीसा में भूमि व्यवस्था का भार ग्राम पचायतो या सहयोग समितियो को दिया जायगा। जहा कई राज्यो में जमीन्दारियो का उन्मूलन ही श्रेय है वहा विहार तथा उत्तर प्रदेश मे भूमि व्यवस्था और ग्रामीण पुनर्निर्माण की दिशा मे वडा सा लक्ष्य कार्यान्वित किये जाने की ओर कदम वढाया गया है।

मद्रास का वर्गीकरण

मद्रास में इस्टेटो के लिए निम्न छ प्रकार का वर्गीकरण कर मुआविजे की रकम निर्धारित की गई है·

वर्ग	वार्षिक रकम	रकम का गुना
१,००० तक	.. ..	३०
१,००० से अधिक लेकिन ३,००० हजार नही		२५
,३००० से अधिक लेकिन २०,००० हजार नही		२०
२०,००० से अधिक लेकिन ५०,००० हजार नही		१७॥
५०,००० से अधिक लेकिन १००,००० हजार नही		१५
१००,००० से ऊपर	.. ..	१२॥

पाचवें और छठे वर्ग में दरअसल निर्धारण क्रमश पाचवें व छठेके लिए ८,७५,००० और १५,००,००० सालाना के हिसाव से किया गया है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि मुआविजे की कुल रकम १७ १५ करोड है। यह रकम राज्य की आय का २८ प्रतिशत है। इसकी तुलना मे उत्तर प्रदेश, विहार और मध्य प्रदेश का प्रतिशत, क्रमश २२४प्रतिशत, ४७९ प्रतिशत, ३३०प्रतिशत है और उडीसा में ८५ प्रतिशत।

सबसे कम निर्धारित आय की रकम पर पुनस्सस्थापन व्यय देने का कोई इन्तजाम नही है। अग्रिम मुआविजा की रकम कुछ तो नकद दी जायगी और कुछ वाड के रूप में। कितनी किश्तो में मुआविजे की रकम चुका दी जायगी इसके लिए भी इन्तजाम है। जिनकी वार्षिक आय ३,००० है उन्हें एक वार मे ही चुकाया जायगा। ३००० से ५०,००० वालो को तीन किश्तो में चुकाया जायगा, ५०,००० से अधिकवालो को पाच किश्तो में। विहार में मुआवजा नकद भी दिया जा रहा है और वाडो मे भी। उत्तर प्रदेश मे केवल वाड ही दिये जा रहे हैं।

ऊपर जिन भूमि सुधार कानूनो का जिक्र किया गया है वे सुनियोजित नही है और खड-खड करके स्वीकृत किये गये हैं। अखिल भारतीय पैमाने पर भूमि सुधार कानून वनाने की आवश्यकता थी। देशव्यापी असतोप या भूमि वुभुक्षा के लिए राज्यव्यापी कानून अधिक कार्यकारी नही दीख पडता। इन छिट-पुट कानूनो से उत्पादन की समस्या भी थोडी प्रगति कर सकती है और किसानो मे सतोग की भावना भी वढ सकती है। आर्थर यग की कहावत, मान लीजिए, चरितार्थ हो जायगी कि धन के लालच में मनुष्य मिट्टी को सोना वना देता है। अगर सरकारें चाहती हैं कि पुराने जमीन्दारो, जागीरदारो एव ताल्लुकेदारो के स्थान पर, कानूनो के वावजूद नये स्वार्थ न खडे हो जाय तव पूरे देश को मद्देनजर रखकर कानून वनना चाहिए था जिसमे एकरूपता तथा सरल व्यावहारिकता होती। जमीन्दारी का उन्मूलन ही पर्याप्त नही है। इसके वाद क्या होगा इस ओर अत्यधिक ध्यान देना होगा। यह प्रसन्नता की वात है और सतोप का विपय भी, कि भारत मरकार ने, अभी हाल में ही, एक भूमि कमीशन की नियुक्ति की है। इस कमीशन का काम होगा विभिन्न राज्यो से नीति का अनुसरण कराना तथा सघीय सरकार को समस्त भूमि समस्याओ के प्रति सही निर्णय लेने को प्रेरित करना। प्रोफेसर पारसन ने सुझाव दिया है कि भूमि समस्या के समाधान के लिए एक अनुसधान केन्द्र की स्थापना की आवश्यकता है। ऐसे केन्द्र का रहना इसलिए अतीव आवश्यक हो जाता है चूकि कई गावो के आनुमानिक अध्ययन से ही, वदलती हुई आर्थिक अवस्थाओ की पूरी जानकारी नही हो मकती है। पुन इस वात की जाच भी होनी चाहिये कि अवतक के किये गये भूमि सुधारो के कारण उत्पादन में कितनी प्रगति हुई और किसानो की रुचि अत्यधिक उत्पादन की दिशा में कहा तक वर्द्धित हुई है।

कृषि क्षेत्रीय सबन्ध

कृपि की उन्नति एव उत्पादन की वृद्धि के लिए समाजगत सवधो में मृदुलता व स्थायित्व की सर्वाधिक जरूरत होती है। कृपि सुधार तथा भमि कानून को सफल वनाने के लिए तीन शर्तों को पूर्ण किया जाना चाहिए (१) किसानो को भूमि पर पर्याप्ति समय तक अधिकार रहे। अगर राज्य की ओर से आवश्यकता पडने पर सामयिक वन्दोवस्ती का नियम भी वनाया जाय तव भी पाच वर्प पर ही तवदीली किसी प्रकार की हो, (२) किसानो को उपज में इतना हिस्सा मिले जिससे उनकी लागत तो वसूल हो ही जाय, इसके अलावा उनके श्रम का प्रचुर मात्रा में वदला भी प्राप्त हो। अभी जो जमीन की दर है उससे मुनाफे का हिसाव ठीक नही किया जा सकता, (३) मालिक को, जो अव राज्य सरकार के अधिकारी ही होगे, उपज या फसल के वटवारे में श्रम के अनुपात को छोडकर ही हिस्सा मिले।

मद्रास में मालावार टेनेन्सी (अमेंडमेंट ऐक्ट) १९५१ के अनुसार जो मालावार, दक्षिण कनारा तथा नीलगिरि जिले में लागू होता है, रैयतो को तीन सुविधाए प्राप्त हुई हैं, (१) उचित कर निर्धारण, (२) स्थित जोत का अधिकार और (३) मुफ्त अदला-वदली। नवम्बर १९५२ में जो सबसे महत्त्वपूर्ण कानून वना वह है तजौर टेनेन्ट्स ऐण्ड पनैयाल ऐक्ट। इस कानून ने वेदखली को एकदम रोक दिया। इस कानून के द्वारा रैयतो के साथ पाच माल की अवधि के लिए जमीन वन्दोवस्त की जा सकेगी तथा पनैयालो की निम्नतम मजदूरी निर्धारित हो गई। मालिक और रैयत का हिस्सा उपज में ६०।४० का होगा। अन्य सामयिक फसलो में ४।५ का अनु-

पात रहेगा। इस कानून से भूमि सम्बन्धी झगडो का फैसला आसानी से हो सकेगा ।

बम्बई सरकार टेनेन्सी ऐंड एग्रिकलचरल लैंडस ऐक्ट पास कर इस दिशा में अगुआ बन गई है। इस कानून के जरिये भूमि कर निर्धारित कर दिये गये हैं तथा बेदखली को एकदम रोक दिया गया है। इसी प्रकार का कानून हैदराबाद सरकार ने भी पास किया है। कुमारप्पा कमिटी ने मालिको द्वारा बन्दोबस्ती का विरोध किया है लेकिन नाबालिगो, विधवाओ तथा शरीर से अशक्त व्यक्तियो के लिए छूट देने की सिफारिश की है। १९५० में मद्रास सरकार द्वारा नियुक्त सुब्रह्मण्यम् कमिटी ने भी इसका पूर्ण समर्थन किया है। बन्दोबस्ती के आधार सुदृढ एव निश्चित बना देने पर कृषि क्षेत्र के सबध मधुरतम रहेंगे और इस कारण उत्पादन भी बढ जायगा। अगर इतना नही किया जा सका तब कृषको की अशान्ति तथा उनके विद्रोह नही रोके जा सकेंगे।

होल्डिगो की हदबदी

१९४७ साल मे उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नियुक्त जमीन्दारी उन्मूलन आयोग ने और १९४३ के अकाल जाच आयोग ने किसी भी व्यक्ति या परिवार के लिए हदबदी का विरोध किया था। १९५३ के अक्तूबर में कृषि मत्रियो के सम्मेलन में सघीय कृषि मत्री डाक्टर पजाब राव देशमुख ने इसी मत का जोरदार समर्थन किया था। ठीक इसके प्रतिकूल कुमारप्पा कमिटी ने सिफारिश की थी कि आर्थिक ईकाइयो के तिगुने क्षेत्रफल के हिसाब से होल्डिगो की हदबदी निश्चित की जाय। कुमारप्पा कमिटी ने कही भी इसका जिक्र नही किया कि एक आर्थिक ईकाई का क्षेत्रफल कितना होगा। योजना आयोग ने, किन्तु, इसी सिफारिश को स्वीकार कर लिया है। एक अर्थशास्त्रज्ञ की परिभाषा में वह ईकाई आर्थिक मानी जायगी जिसमें एक कृषक परिवार को साल भर काम मिले और उसकी आय से उसके जीवन का निश्चित मान के अनुसार भरण-पोषण हो जायगा। मदी के समय में, अकाल की अवधि में भी उसका काम निवह जाना चाहिए। सितम्बर १९५३ में हैदराबाद सरकार ने एक कानून बनाकर आर्थिक ईकाई की आमदनी ८०० रुपया सालाना का स्वीकार कर लिया है, लेकिन इससे जो कठिनाइया उत्पन्न होगी उसका ख्याल ही नही किया गया है। यह कानून कहा तक कारगर होगा इसका नमूना अभी देखा जाने को बाकी है। कोई भी यह नही चाहेगा कि कुछ लोगो के पास बडी-बडी होल्डिगें रहें और अधिकाश कृषको के पास बिलकुल कम जमीन हो, फिर भी भूमि आयोग को इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर निर्णय देना चाहिये। यह इतना महत्त्वपूर्ण, गभीर एव तुनुक विषय है जिस पर तनिक भी असावधानी नही बरती जा सकती और न बरदाश्त की जा सकती है।

जो खेती नहीं करते है

जो खेती नही करते है और अपनी जमीन बराबर बन्दोबस्त कर उसका मुनाफा खाते हैं, उनका बने रहना एक अभिशाप है जिसे जितनी जल्दी हो सके दूर कर दिया जाना चाहिए। १९४८ के बम्बई टेनेन्सी ऐक्ट के अनुसार भूमि परिवर्त्तन को रोका गया है। किसी वैसे व्यक्ति से जमीन की बिक्री, दान, परिवर्तन या लीज नही की जा सकती जो खेती नही करता हो। इस कानून की ६३–६६ धाराओ के अनुसार उचित व निर्धारित मूल्य पर जमीन की बिक्री उसीके साथ की जा सकती है, (१) जो उसका अधिकारी हो (२) बगल के खेत का मालिक हो (३) कृषि सहयोग समिति को, जिसका रजिस्ट्रेशन १९२५ के बम्बई कोआपरेटिव सोसाइटीज एक्ट के अनुसार हो चुका हो (४) उस व्यक्ति को जो खेती-बारी करने को इच्छुक हो और जिसके पास स्थानीय शासन के अधिकारी का प्रमाणपत्र हो।

१९५२ के अगस्त में हैदराबाद मे जो कानून बना उसके मुताबिक १९५२ के २१ मार्च तक बेदखल किये गये किसानो को जमीन पर अधिकार दे देने का अधिकार कलक्टरो को दे दिया गया है। इस प्रकार की बेदखल भूमि की बिक्री पर भी नियत्रण लगा दिया गया है। कानून पास होने के दिन से ही किसी भी कचहरी मे बेदखली के मुकदमे की सुनवाई नही हो सकेगी, ऐसा नियम भी बना दिया गया था और जिस अदालत मे इस तरह के मुकदमे चल रहे थे उन्हें खारिज करने का या रोकने का आदेश किया गया था। जो भूमिपति इस कानून की अवहेलना करे और किसान को बेदखल कर दे और जमीन स्वय अपने कब्जे में रख ले या किसी दूसरे के साथ बन्दोबस्त कर दे उसके लिए सजा बहाल की गई थी, जिसके मुताबिक बेदखल करनेवाले भूपति को छ महीने की कैद की सजा और दो सौ रुपये का जुर्माना किया जायगा। कैद और जुर्माना दोनो की गुजाइश भी कानून मे रखी गई है। यह आदेश उन्ही जमीनो की बेदखली पर लागू होगा जिनका जिक्र हैदराबाद टेनेन्सी एग्रिकलचरल लैंड ऐक्ट (१९५०) में है।

किसानो को बेदखली से रोकने के लिए जितने कानून बने है उनमें उत्तर प्रदेश का जमीन्दारी ऐण्ड लैंड रिफार्मस ऐक्ट (१९५१), एग्रिकलचरल रैयतस ऐण्ड टेनेन्टस (ऐक्जीजीशन आव प्रिविलेजेज) ऐक्ट (मध्य प्रदेश), बर्गादार ऐक्ट (पश्चिम बगाल १९५०), मैसूर ऐलियेनेट विलेजेज (प्रोटेक्शन आव टेनेन्ट्स ऐण्ड मिसलेनियस प्रोविजन्स) ऐक्ट १९४९ तथा १९५० में स्वीकृत अजमेर टेनेन्सी ऐण्ड लैंड रेकार्डस ऐक्ट प्रमुख तथा कार्यकर हैं। राजस्थान के जागीरदारो के सबध में पडित गोविन्द वल्लभ पत ने जो फैसला दिया है उससे और इस सब कानूनो से भी इस बुराई की जड नही खोदी जा सकती है। जमीन की बढती हुई भूख के कारण इन कानूनो को अमली जामा नही पहनाया जा सकता। इसके अलावा हमारे देश में बढती हुई आबादी का दबाव भी बडे पैमाने पर है। भूमि पर जो भार है उसे कम करने के लिए सुनिश्चित औद्योगीकरण एव परिवार नियोजन की आवश्यकता है।

जमीन की सुव्यवस्था

मान लीजिए, बडे पैमाने पर देश भर के लिए या विभिन्न राज्यो में भूमि सुधार कानून भी बनाये गये, पर, जब तक उससे अत्यधिक उत्पादन का इन्तजाम नही किया जायगा तबतक कानूनो का महत्त्व नही रह सकता। कृषि से खाद्य की निर्भरता अगर नही हो सकी तो इससे बढकर विडम्बना और क्या होगी। लापरवाह और आलसी भूपति के रहने से लाभ क्या ? ठीक इसी तरह रैयत भी यदि सर्वाधिक उत्पादन नही कर सकते तब उनके साथ भी जमीन की बन्दोबस्ती का विशेष महत्त्व नही रह जाता। जमीन राष्ट्र की सम्पत्ति होती है। सरकार को और समाज को समान रूप से तत्पर रहकर उसके जरिये उत्पादन बढाना चाहिए। विधान द्वारा स्वीकृत किसी भी प्रकार के मौलिकी अधिकार का अर्थ यह नही कि उत्पादन के साधनो

को कतिपय ऐसे लोगो के अधिकार मे छोड दिया जाय जो उत्पादन की वृद्धि विविध साधनो से नही कर सकें। कुमारप्पा कमिटी की रिपोर्ट में लिखा है कि किसान सामाजिक थाती का ट्रस्टी है। अगर वह ट्रस्ट के दायित्वो को नही निबाह सकता तब वह उसे अपने कब्जे मे रखने का हकदार नही है। ग्रेट ब्रिटेन में १९४७ मे जो कृषि कानून (एग्रिकलचरल ऐक्ट) बना था उसमे स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रत्येक किसान भूमि के अधिकारी होने के साथ-साथ उसका सेवक भी है। इस कानून की १६वी धारा के अनुसार यदि सुव्यवस्था नही हो सके तब उसे अधिकार-च्युत कर दिये जाने का आदेश है। ब्रिटिश एग्रिकलचरल ऐक्ट के आधार पर ही १९४८ में मद्रास सरकार ने भी एक एग्रिकलचरल बिल स्वीकृत किया था जो पास नही हो सका। उस बिल की प्रमुख धाराए थी (१) सरकार को यह अधिकार रहे कि आलसी या कम उत्पादन करनेवाले किसानो या मालिको से जमीन छीन ले, यानी प्रत्येक किसान को उतना उत्पादन करना होगा जितना सरकार चाहती है (२) किसानो को उनके उत्पादन का उचित मूल्य मिले और पर्याप्त बाजार प्राप्त हो (३) सरकार द्वारा समय-समय पर निरीक्षण किया जाय। इसके लिए सरकार समय-समय पर किसानो को विशेषज्ञो द्वारा सलाह दिलावे (४) सरकार को यह अधिकार भी प्राप्त हो कि अनुमानित उत्पादन नही होने पर कृषि सरकारी देखरेख में ही कराई जाय। कुमारप्पा कमिटी ने भी कुछ इसी तरह का सुझाव पेश किया था। ग्राम सहयोग समितिया इस दिशा मे अग्रसर होकर उचित दिशा में कार्य कर सकती हैं। युद्ध के जमाने में ब्रिटेन मे काउ टी वार एग्रिकलचरल कमिटियो ने खाद्य उत्पादन बढाने की दिशा में सर्वोत्तम काम किया था। इस देश में कुछ इसी प्रकार के कार्य करने की जरूरत पड गई है। इस दिशा में सुनिश्चित व दृढ कदम उठाये जाने चाहिये। कृषि सबधी आकडे निर्भर योग्य नही हैं। अतएव भूमि समस्या और उत्पादन की दिशा में ठोस कदम शीघ्र नही उठाये जा सकते हैं।

जमीन की कीमत निर्द्धारण

आबादी अधिक बढ जाने से और यद्ध के बाद की परिस्थितियो से जमीन की कीमत बेहद बढ गई है। इसी कारण कृषि का क्षेत्र सतुलित रूप से स्थिर नही रह सकता। आस्ट्रेलिया के रुरल रिकशट्रक्शन कमीशन ने इस बारे में पहले ही सरकार को सावधान कर दिया था। एक आदमी अधिक मुनाफा करके अधिकाधिक भूमि पर अधिकार कर लेता था। कुमारप्पा कमिटी ने भूमि के मूल्य स्थिर कर दिये जाने की सिफारिश की है। भूमि आयोग के निर्द्धारण के बावजूद अगर कोई व्यक्ति जमीन का दाम ज्यादा ले तब ग्रामीण समाज को उस पर निगरानी रखना आवश्यक हो जायगा। देश के किसी भी राज्य में इस प्रकार का कानन नही बनाया गया है। १९४८ मे स्वीकृत बम्बई एग्रिकलचरल ऐण्ड टेनेन्सी ऐक्ट के द्वारा भूमि ट्राइब्यूनल उस भूमि का दाम स्थिर कर सकता है जिसपर मुआवजा देना हो, लेकिन इसे बढते हुए दाम रोकने का अधिकार प्राप्त नही है।

चकबन्दी को प्रोत्साहन

भारत में अभी तक ऐसा कोई कानून नही है जिसमे भूमि को टुकडे-टुकडे और अनार्थिक होने से रोका जा सके। १९४८ में बम्बई सरकार ने प्रिवेंशन आव फैगमेंटेशन ऐण्ड कसोलिडेशन आव होल्डिग्स ऐक्ट स्वीकृत कर चकबन्दी का निर्धारण किया था कि स्टैंडर्ड क्षेत्र, उस कानून के द्वारा वह क्षेत्र होता है जिसका उत्पादन अर्थकर व पर्याप्त हो। खेत के किसी भी टुकडे को लीज देने या बेचने का अधिकार किसान को नही प्राप्त है। वह उसी हालत में बेच सकता है जब उसके पासवाला ही खरीद कर अपनी होल्डिग में मिला ले। सरकार स्वत चकबन्दी की व्यवस्था राज्य के किसी भी गाव में कर सकती है। कोई किसान अगर इस कानून की अवहेलना या अवमानना करे तब जिलाधीश के आदेशानुसार उसे जुर्माना देना पडता है। १९५० में हैदराबाद सरकार ने भी भूमि के विभक्तिकरण रोकने के लिए कानून स्वीकृत किया है। इस कानन के मुताबिक सहयोग कृषि समितियो का रजिस्ट्रेशन भी हो सकता है।

गत ६ वर्षो मे पजाब में जो कानून इसे रोकने के लिए बनाये गये हैं उसमे किसानो पर दबाव की गुजाइश भी है। १९५२ के नवम्बर में उत्तर प्रदेश की सरकार ने तेरह सामुदायिक योजना केन्द्रो में चकबन्दी का काम आरम्भ किया। ग्राम पचायत को भूमि का मूल्य निर्धारित करने का अधिकार मिला है। अगर किसी प्रकार की शिकायत गाम पचायत से किसी को हो तब उसकी सुनवाई जिलाधिकारी के पास होती है। इस स्कीम के लिए जो व्यय होगा उसकी पूर्ति प्रति एकड चार रुपये किसानो से लेकर की जायगी। चकबन्दी कानून वहा १९४० में ही स्वीकृत कर लिया गया था लेकिन उससे कुछ लाभ नही हुआ था और न उस दिशा में कार्य ही हुए थे। पेप्सू में भी इस प्रकार के कानून पास किये गये हैं जिसके मुताबिक दस वर्षो के अन्दर समस्त राज्य में चकबन्दी पूरी कर दी जा सकेगी। केवल मद्रास सरकार ने इस दिशा में अभी तक कोई कानून पास नही किया है, हालाकि ३५ वर्ष पहले, डाक्टर गिलबर्ट स्लेटर ने इस आशय की सिफारिश की थी।

इस टुकडे-टुकडे होने की गति को क्यो नही रोकी जा सकती है? इसका कारण है (१) ट्रेनिंग प्राप्त अनुभवी अफसरो की कमी (२) मिट्टी का अन्तर जिससे उपज मे पर्याप्त विभिन्नता रहती है (३) किसानो को अपनी जमीन के छितराये हुए टुकडो मे भी मोह रहता है (४) किसी प्रकार के सत्तामूलक अधिकार का बलपूर्वक लागू करना हमारे प्रजातन्त्र का आधार नही है (५) भूमि पर ही पूरी आबादी के पोषण का भार है। परिवार नियोजन तथा औद्योगीकरण इस समस्या को सही समाधान दे सकते हैं, ऐसा बहुतायत अर्थविदो का विचार है। पश्चिमी सभ्यता के फलस्वरूप हमारे सयुक्त परिवार प्राय समाप्त हो गये हैं। ऐसी स्थिति में कानून पास किये जा सकते हैं।

भूमि का उचित उपयोग

सबसे महत्वपूर्ण कदम उत्पादन बढाने की दिशा में है। ऐसा करने से खाद्योत्पादन में जो सबसे बडी कठिनाई है वह खतम हो जायगी। १९५० के सितम्बर मे मद्रास सरकार ने सभी परती भूमि के उपयोग के निमित्त एक आदेश जारी किया। यह आदेश १९४६ के एसेंसियल सप्लाइज ऐक्ट (टेम्पोररी पावर्स) के अन्तर्गत था। इसका नाम है मद्रास लैंड यूटिलिजेशन आर्डर। इस आदेश के द्वारा जिलाधिकारियो को यह अधिकार प्राप्त हो

गया कि वे किसी भी परती भूमि के मालिक को उस जमीन में खेती करने को निर्देश दे सकता है, चाहे वह स्वय खेती करे या किसी को बन्दोबस्त करके खेती करावे। खाद्यान्न में सभी प्रकार के अन्न सन्निहित किये गये थे। अगर किसान या भूमिपति इस आदेश के मुताबिक काम नही करे तब जिलाधिकारी को अधिकार था कि वह उस जमीन की बन्दोवस्ती दूसरे के साथ नीलाम करके कर दे। ऐसी बन्दोवस्ती तीन वर्ष के लिए की जा सकती है। जो व्यक्ति बन्दोबस्ती लेगा उसे भी उपज बढानी होगी। अगर वह भी उपज नही बढावे तब उसके लिए भी दड की व्यवस्था है। सरकारी लागत वसूल हो जाने पर उपज उस कृषक को दे दी जाने की व्यवस्था उस आदेश के अन्दर है। मध्य प्रदेश का ग्रोथ आव फूड क्राप्स ऐक्ट इस दिशा में अच्छा कारगर हुआ है। अगर इस दिशा में उचित कदम नही उठाये गये तब बाजारो की अनिश्चितता एव भूमि उद्योगो का, खाद्यान्नो के दामो को, निश्चितरूपेण नियत्रित नही किया जा सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि यहा खाद्यान्नो का उत्पादन ठीक से नही हो सकता। गुतूर जिले में तमाखू का उत्पादन किया जाता है, बगाल में धान के खेतो में जूट बोया जाता है और कोयम्बटूर में कम्बोडिया की रूई उपजाई जाती है। ऐसी दशा में समाजगत कल्याण का कार्य कतिपय लाभ करनेवालो के हाथ में चला जाकर द्वन्द्वजनक परिस्थिति मे पडकर खटाई में पड जाता है।

परती भूमि में खेती

देश में खाद्य की कमी के कारण कृषि की वृद्धि एव प्रसार जरूरी है। मध्य भारत में सेंट्रल ट्रैक्टर एसोसियेशन ने कास से भरी जमीन मे खेती करना शुरू कर दिया है। यह एक अच्छा उदाहरण है। इस देश में परती भूमि का अनुमान प्राय ३०० लाख एकड से ९०० लाख एकड तक है। मद्रास मे इनके उपयोग के लिए कानून स्वीकृत किया गया है। १८ अगस्त १९५२ को पेप्सू मे परती भूमि पर कृषि के निमित्त दो आर्डिनेंस स्वीकृत किये गये। इस कानून द्वारा सरकार को उस भूमि पर अधिकार करने का हक है जो दो या तीन वर्ष तक परती पडी रह जाती हो। ऐसी जमीनो की बन्दोवस्ती बीस वर्ष के लिए कर दी जाती है। जिनकी भूमि ली जाती है उन्हें मुआविजा दे दिया जाता है। लेकिन सरकार अमूमन दस वर्ष से अधिक ऐसी भूमि पर अपना कब्जा नही रख सकती है। लेकिन सबसे बडा सवाल है कि अगर परती भूमि का उपयोग कर लिया गया तब भविष्य में उसकी किस प्रकार व्यवस्था पूर्णरूपेण की जायगी। कुछ लोग कहते हैं कि सहयोगिता के आधार पर कृषि की जाय। लेकिन सघीय सरकार ने ऐसा निश्चय किया है कि ऐसी भूमि की बन्दोवस्ती शरणार्थियो के साथ की जाय। फिलहाल अधिकाश लोग सहयोगिता के आधार पर ही कृषि के पक्षपाती हैं। बम्बई सरकार ने इस दिशा मे कानूनी प्रयास भी आरम्भ कर दिया है।

इस सरसरी दृष्टिनिक्षेप से यह पता चलता है कि भूमि समस्या का समाधान उलझनपूर्ण है तथा सरकार के अधिकारियो एव विशेषज्ञो की सिफारिशें भी भिन्न-भिन्न हैं। इस ओर सम्मिलित प्रचेष्टाए की जानी चाहिए। इसका समाधान बहुत दिनो से अपेक्षित था। तब भविष्य मे समाज शान्तिपूर्ण, सुखद एव समृद्धिपूर्ण हो जायगा।

भारत में भूमिस्वत्व

प्रो० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में हम पाते हैं · प्रजा सुखे सख राज्ञ, प्रजाना च हिते हितम्। नात्म प्रिय हित राज्ञ, प्रजानतु प्रिय हितम्।

प्रजा के सुख में राजा का सुख है, और प्रजा के हित में राजा का हित है। अत राजा अपना हितचिन्तक न होकर प्रजा का हितचिन्तक बने। प्राचीनकाल के अन्यान्य ग्रन्थो, काव्य-पुराणो में सर्वत्र यह निर्देश किया गया है कि "राजा प्रजा को अपनी सन्तान के समान समझेगा।" इस प्रकार के अनेक पौराणिक उपाख्यान मिलेंगे जिनमें राजा और प्रजा के स्वार्थ को समान सूत्र मे ग्रन्थित बताया गया है। प्रजा की उन्नति और अवनति के ऊपर राजा की उन्नति और अवनति निर्भर करती थी। राजा प्रजा का निर्मम भाव से शोषण नही करता था। प्रजा से कर ग्रहण करके राजा उसका उपयोग सार्वजनिक कल्याण में करता था। कौटिल्य ने लिखा है पुष्पोद्यान का माली फूल के प्रत्येक पेड से फूल प्राप्त करने के लिये क्या करता है ? हर पेड को वह ठीक समय पर सींचता है, उसकी जड की मिट्टी को खोद कर उसमें खाद डालता है, अपनी सन्तान के समान हर पेड का पालन करता है, और फूल तोडने के समय भी इस बात पर ध्यान रखता है कि फूल तोडने से कोई पेड शोभाश्रीविहीन न बन जाय। प्रजा से कर ग्रहण करते समय राजा को भी इसी नीति का अनुसरण करना चाहिये। कर का निर्धारण इस रूप में होना चाहिये जिससे प्रजा का सर्व-स्वान्त न हो जाय।

प्राचीन हिन्दू राजस्व के आर्थिक क्षेत्र मे ग्रामो का महत्त्व सबसे बढकर था। ग्रामो में मूलत कृषिजीवी रहा करते थे। अर्थ नीति का मूल भूमि और उसके अधिकार पर केन्द्रित था। इसलिए स्वभावत यहा यह प्रश्न उपस्थित होता है कि हिन्दू राज्य व्यवस्था में भूमि पर किसका अधि-कार होता था ? मीमासा ग्रन्थो मे लिखा है कि सम्राट का इस पृथ्वी पर कोई स्वत्व नही होता था—और राजा को भूमि पर कोई अधिकार नही होता था। राजा दुष्टो का दमन एव शिष्टजनो का पालन करेगा और इसके लिए कृषको से कर ग्रहण करेगा, और अपराधियो को दड देगा। किन्तु भूमि का मालिक वह नही है। जैमिनि ने लिखा है—"इस पृथ्वी पर सबका समानाधिकार है।" कोलब्रुक ने लिखा है, "हिन्दू मीमासा मे यह कहा गया है कि यह पृथ्वी राजा की सपत्ति नही है, यह उसकी है जो परिश्रम करके उपार्जन करता है।" श्रेष्ठ मीमासक शबर ने अपनी टीका में कोलब्रुक का समर्थन किया है। शबर कहता है "राज्य की रक्षा के लिए सम्राट कुछ परिमाण मे उत्पन्न शस्य का अश ग्रहण कर सकता है, किन्तु वह भूमि का स्वामी नही है।" मेधातिथि ने मनु सहिता के अपने भाष्य मे लिखा है "राजा प्रजा से जो कर ग्रहण करता है वह राज्य-रक्षा या प्रजा की जान माल की रक्षा के लिए, किन्तु इससे भूमि पर उसका अधिकार सिद्ध नही होता।" नीलकठ ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ व्यवहार मयूख में इस विषय का विवेचन विशद भाव से किया है। कात्यायन, मित्रमिश्र, माधवा-चार्य तथा अन्य शास्त्रज्ञो के वचन भी इसके प्रमाण में उपस्थित किये जा सकते हैं। बौद्ध जातक तथा शिलालेखो से भी यह प्रमाणित होता है कि भूमि का मालिक राजा नही होता था। मैकडोनल और कीथ ने लिखा है कि वैदिक युग के आरम्भ से ही भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार विद्यमान था—"It is a fair conclusion, from the evidence that the system of separate holdings already existed in early vedic times" (Vedic Index I P 211) ऐतिहासिक Bury ने लिखा है कि प्राचीन ग्रीस में भूमि समग्र देशवासियो की सपत्ति समझी जाती थी व्यक्ति विशेष की नही।—The land belonged to the whole kin, but not to any parti-cular member" (J B Bury History of Greece) Indian Taxation enquiry Committee की रिपोर्ट में इस विषय पर विशेष छानबीन करके यह मत व्यक्त किया गया है कि हिन्दू और मुसलमान राजत्व मे किसी भी समय राजा या बादशाह या नवाब ने भूमि पर अपने एकछत्र अधिकार का दावा नही किया था। अपने मत के समर्थन में उन्होंने बम्बई हाईकोर्ट का एक निर्णय उद्धृत किया था :—"The review of the authorities leads us to the conclusion arrived at also (after careful discussion

of the question) by prof H R Wilson that the proprietory right of the sovereign derives no warrant from the ancient laws or institutions of the Hindus"

मुसलमानो के शासनकाल मे भी भूमि पर कृपको का ही अधिकार था। इस्लामी कानून के विशेषज्ञ कर्नल गैलवय का मत उक्त कमीशन की रिपोर्ट में इस प्रकार उद्धृत किया गया है —"जमीन असल में किसानो की है। जब तक वह नियमित रूप से लगान चुकाता रहेगा तबतक कानून को उसके स्वत्व में हस्तक्षेप करने का अधिकार नही होगा। यदि वह लगान नही चुकायगा तो उसकी जमीन पर दखल की जा सकती है। वर्त्तमान अर्थनीति के अनुसार राज्य किसी शासक की निजी सपत्ति नही समझा जाता। मध्ययुग में शासन जिस प्रकार अपने राज्य की निजी सपत्ति समझ कर उसे बधक रख सकते थे, बेच सकते थे या उसका बटवारा कर सकते थे वैसा अब नही कर सकते। जैसा कि J W Garner ने अपनी पुस्तक "Introduction to Political science" में लिखा है:—The territorial domain of the state is not the property of the state or of any ruler; the patrimonial state in which the monarch was considered the ultimate owner of the land is a thing of the past Rulers can no longer, as they, often did in mediaeval times, sell, pawn, give away or partition their domains as thongh they were private property"

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मालूम होता है कि राज्य की ओर से प्रजा को नाना प्रकार की सुविधाए प्रदान की जाती थी। राजा को भूमि के ऊपर कर लगाने का अधिकार था, प्रजा जब तक भूमि कर चुकाती रहती थी तवतक भूमि पर उसका स्वत्व बना रहता था। राजा किसी भी कृषक को अन्यायपूर्वक जमीन से वेदखल नही कर सकता था। कौटिल्य ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि कृपि योग्य भूमि प्रत्येक करदाता को देनी चाहिये। कोई व्यक्ति यदि अनुर्वर भूमि को उर्वर बनावे तो राजा बलपूर्वक उस भूमि पर अपना अधिकार नही कर सकता। जो लोग स्वय भूमि नही जोतते उनसे भूमि लेकर राजा उपर्युक्त व्यक्तियो को देगा, या वह जमीन ग्राम्यश्रमिक (ग्राम भृत्यकम्) अथवा व्यवसायी द्वारा जोती जायगी। कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि जिन खेतो के मालिक ठीक तरह से खेती करने में असमर्थ हो, उनके लगान मे कुछ कमी की जा सकती है।। नियमित रूप से लगान चुकानेवाले कृपको को राज्य की ओर से वीज, अन्न, बैल आदि पशु प्रदान करके सहायता पहुचायी जायगी। हा, राजा इस बात पर अवश्य ध्यान रखेगा कि राजकोप को क्षति न हो।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि ग्राम से राजस्व सग्रह करने का मूल उपादान भूमि था। राजा कर के रूप में एक चतुर्थाश और जल्कर के रूप मे भी उतना ही पाने का अधिकारी था। जितनी जमीन की सिचाई होनी थी उसका विश्वास योग्य विवरण रखा जाता था। कृपिजीवियो को एक पचमाश से लेकर एक तृतीयाश या चतुर्थाश जलकर (उदकभागम्) देना पडता था। मनु ने लिखा है कि भूमि की उर्वरता और उसे आवाद करने मे जितना खर्च पडे उसके अनुसार राजा एक छटा भाग से लेकर बारहवा भाग तक कर ले सकता है (मनु सहिता अध्याय ७ और महाभारत, शान्तिपर्व)। राजा और प्रजा दोनो कृपि से लाभ उठा सके ऐसा विचार करके प्रजागण को अणुमात्र भी क्षति पहुचाये विना जोक जिस तरह रुधिर पान करता है, बछडा जिस तरह थन का दुग्ध पान करता है और भौरा जिस तरह फूलो का मधुपान करता है उसी प्रकार थोडा-थोडा करके राजा प्रजा से कर ग्रहण करेगा।

उपर्युक्त विवरणो से यह स्पष्ट है कि भारत में अति प्राचीन काल से ही कृपको से राज्य खेती की पैदावार का एक हिस्सा कर के रूप मे ग्रहण करता था। यह हिस्सा जमीन की उर्वरता या अनुर्वरता के हिसाव से और जिस परिमाण में कृपि करने मे श्रमशक्ति लगती थी इसके अनुसार घटता-बढता था। कही बारह भाग का एक भाग और कही छ भाग का एक भाग कर देना पडता था। युद्धकाल में यह बढकर एक चतुर्थांश भी हो जाता था। ज्यो-ज्यो जन सख्या मे वृद्धि होती गयी और आबादी जमीन का परिमाण बढता गया त्यो-त्यो पैदावार के एक अश के रूप में लगान वसूल करना अत्यन्त कठिन होता गया। इन्ही सब कारणो से अन्य रूपो में कर ग्रहण करने की चेष्टा होने लगी। अन्तत खेत की पैदावार का एक अश देकर लगान चुकाने की प्रथा क्रमश मुद्रा में परिवर्त्तित होने लगी और मुसलमानो के शासनकाल में सर्वत्र मुद्रा का प्रचलन हो गया।

तैमूर के समय में मुद्रा के रूप में राजस्व ग्रहण करने की प्रथा प्रवर्त्तित हुई। इसके बाद शेरशाह ने इस ओर कुछ ध्यान दिया। किन्तु शेरशाह बहुत समय तक राज्य नही कर सका। इसलिए उसका प्रयास किसी तरह सफल नही हुआ। अकबर के शासन काल में उसके मत्री टोडरमल ने प्रजा से भूमि कर वसूल करने के लिए भूमि-व्यवस्था मे सुधार किया। विभिन्न प्रकार की भूमि की उत्पादिका शक्ति की भलीभाति परीक्षा करके उसका वर्गीकरण किया गया। इसके बाद कुल पैदावार का एक तिहाई भाग कर के रूप में निर्धारित किया गया। नकद या जिन्स के रूप में भूमि कर चुकाया जा सकता था। मुद्रा के रूप में कर चुकाने पर गत नौ वर्षों की फसल का औसत दाम निर्धारित कर दिया जाता है और इसके अनुसार कर देना पडता था। प्रति नौ वर्ष के बाद कर का परिमाण निर्धारित किया जाता था। टोडरमल की इस प्रथा के फलस्वरूप राज्य के साथ प्रजा का प्रत्यक्ष सपर्क स्थापित हुआ और दोनो के बीच कोई मध्यवर्ग अर्थात् बीच का दलाल नही रह गया। प्रत्येक ग्राम में प्रत्येक किसान से प्रत्यक्ष रूप में कर वसूल किया जाता था। जमीन कर किसी का जन्मगत अधिकार नही माना जाता था।

मुसलमानो ने पुरातन समाज की व्यवस्था में कोई परिवर्त्तन नही किया। ग्रामीण समाज के आचार-विचार एव रीति-नीति मे उन्होने कोई हस्तक्षेप नही किया। फिलिप्स साहब ने अपने टैगोर ला लेक्चर्स में इस बात का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इस देश में मुसलमानो का शासन प्रतिष्ठित होने पर जो लोग कर वसूल करते थे वे कभी जमीन पर अपने मालिकाना हक का दावा नही करते थे। उन्होने केवल कर वसूल करने का अधिकार अपने लिए रखा था।

इसके बाद जब अगरेज इस देश के शासक हुए उन्होने उत्तर भारत में सामन्त प्रथा का प्रचलन देखकर भूमिस्वत्व के सम्बन्ध में भ्रान्त धारणा अपने मन में कायम कर ली। उन्होंने यह मान लिया कि जो बडे-बडे जमीदार जमीन पर दखल जमाए हुए थे उनका अधिकार उस पर कई पीढियो से चला आ रहा था। जमीन्दारो का भूमि पर किस प्रकार अधिकार हुआ इसके सम्बन्ध में उन्होने कोई अनुसन्धान नही किया। उन्होंने यह समझ लिया कि राज्य ही सदा से जमीन का मालिक रहा है। अंग्रेजो की यह इतनी बडी भूल थी जिसके कारण लाखो मनुष्य भूमि स्वत्व से वंचित हो गए। सन् १७९१ ई० में सर ब्राउटन राउस ने लिखा था कि जमीन के ऊपर राज्य का कोई अधिकार नही है, और कम्पनी को देशी राजाओ से केवल राज्य शासन का अधिकार मिला है भूमि या सपत्ति पर अधिकार नही मिला है। अध्यापक राधाकमल मुखर्जी ने अपनी पुस्तक "लैंड रिफार्म इन इडिया" में लिखा है कि "भारत में भूमि गोष्ठी या परिवार के अधिकार मे थी, और कभी वह राजा की सपत्ति नही मानी गयी।" सन् १८१२ मे सिलेक्ट कमिटी ने अपना यह मन्तव्य दिया कि जमीन्दार किसी समय भी जमीन के मालिक नही थे और न हो सकते हैं। उनका काम केवल जमीन की देखभाल करना और कर वसूल करना रहा है। सन् १७९२ में कोर्ट आव डाइरेक्टर्स की ओर से जो आदेश जारी किया गया था उसमें भी यह कहा गया था कि जमीन्दारी एक आफिस मात्र है। कोर्ट का काम होगा जमीन्दारी का कर्त्तव्य मार्ग निर्धारित कर देना और कर्त्तव्य में त्रुटि होने पर नाजिम के हुक्म से उन्हें बर्खास्त कर देना। स्वय लार्ड कार्नवालिस ने भी कहा था कि "जमीन्दार स्वेच्छा से लगान में वृद्धि नही कर सकते थे।"

सन् १७९३ ई० में भारत के तत्कालीन बडे लाट लार्ड कार्नवालिस ने कलम के जोर से जमीन के असल मालिक को भूमिस्वत्व से वंचित कर दिया। उस दिन से ही कृषको की दु ख-दुर्दशा का सूत्रपात हुआ जो केवल कर के मालिक थे वे जमीन के मालिक बन गये। जमीन्दारी प्रथा के प्रवर्त्तक के रूप मे अंग्रेज सरकार ने अंग्रेज शासन को एक ऐसे कलक से कलुपित किया जिसका मोचन इतने दिनो के बाद स्वदेशी सरकार द्वारा हुआ है। इसके इतिहास की आलोचना करने से पता चलता है कि जब ईस्ट इडिया कम्पनी ने भारत का शासन भार ग्रहण किया तब उसने देखा कि देश मे अच्छी शासन-व्यवस्था नही है, गृह-विप्लव और अन्तर्विरोध के कारण देश की शान्ति नष्ट हो गयी है और सर्वत्र अराजकता जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है। प्रजा यथासमय लगान नही चुकाती थी और जो लोग लगान वसूलने के काम मे नियुक्त थे वे अपने कर्त्तव्यपालन मे दत्तचित्त नही थे। प्रजा स्वेच्छा से जितना लगान देती थी उसे वे राजकोष मे जमा कर देते थे। बाकी लगान वसूल करने के लिए वे प्रजा के साथ बलात्कार नही करते थे। राजस्व ठीक तरह से वसूल नही होने के कारण शासन कार्य में बाधा पहुच रही थी। मुसलमानी शासन काल में लगान वसूल करने के लिए हर परगने में एक-एक कर्मचारी नियुक्त था। कपनी के समय मे भी आरम्भ में यही व्यवस्था थी, किन्तु लगान की वसूली ठीक तरह से नही होने के कारण कम्पनी ने इस नीति में परिवर्त्तन कर दिया और लगान वसूल करने के लिए ठीकेदारो को बहाल किया। उन्हें निर्देश दिया गया कि कम्पनी की निर्दिष्ट राजस्व चुका देने के बाद वे चाहे जितना प्रजा से वसूल कर सकते हैं। यह अतिरिक्त राजस्व उनकी अपनी सपत्ति होगा। यह नियम कुछ दिनो तक जारी रहा। बगाल, विहार, उडीसा की दीवानी पाने के पाच साल बाद कम्पनी की अमलदारी में भीषण अकाल पडा। इस अकाल मे अन्नाभाव के कारण देश की जनसख्या मे तीन भाग में दो भाग मनुष्य कालकवलित हुए। किन्तु कम्पनी के राजस्व में कोई कमी नही हुई। कुछ समय के बाद जब लार्ड कार्नवालिस बडे लाट हुए उन्होंने देखा भूमि का राजस्व ग्रहण करने में जो त्रुटि है वह त्रुटि तब तक दूर नही होती जब तक राज्य की श्रीवृद्धि नही हो सकती। यह कहने की आवश्यकता नही कि राज्य की श्रीवृद्धि की अपेक्षा वणिको के स्वार्थ की वृद्धि ही मुख्य अभिप्राय था। कम्पनी के समय में जो सब ठीकेदार और तहसीलदार थे, उनका जमीन के ऊपर कोई अधिकार नही था। जमीन्दारियो के प्रति तहसीलदारो का मोह नही होने से वे लगान वसूल करने मे भी विशेप तत्परता नही दिखायगे ऐसा सोचकर कार्नवालिस ने सन् १७९३ में दमामी बन्दोबस्त या चिरस्थायी प्रबन्ध प्रचलित किया जिसके फलस्वरूप जमीन के असली मालिक के बदले लगान वसूल करनेवाले ठीकेदार जमीन के मालिक बन गये। जो लहू को पसीना बनाकर खेतो में फसल उपजाते थे उनका भूमि पर कोई स्वत्व नही रह गया। कानून के बल पर जमीन्दार यदि चाहे रैयत को जमीन से बेदखल कर सकता था। जमीन्दार सरकार को कितना राजस्व देगा यह तो निर्दिष्ट कर दिया गया किन्तु जमीन्दार को कानून द्वारा यह अधिकार दिया गया कि वह लगान में वृद्धि कर सकता है। सन् १७९३ साल के कानून की आठवी धारा में लिखा था कि गवर्नर जेनरल प्रजा के कल्याण के लिए जब जैसा कानून बनाना आवश्यक समझेगा, बना सकेगा। किन्तु कानून बनाने की वह आवश्यकता कभी नही समझी गयी। १८१९ मे कोर्ट आव डाइरेक्टर्स ने जो पत्र लिखा था उसमें भी कहा गया था "चिरस्थायी प्रबध के बाद इतने वर्ष बीत गये, फिर भी प्रजा के स्वार्थ की रक्षा के लिये जो अधिकार हमने हाथ मे रखा था, उसके अनुसार आज तक कोई काररवाई नही हुई।" अंग्रेजी राज के अन्त तक नही हुई, ऐसा यदि हम कहें तो अनुचित नही होगा।

कृत्रिम उपायो से जमीन्दारो को इस प्रकार जमीन का मालिक बना देना एक अन्त्यन्त अन्यायपूर्ण कार्य था। और इस कानून में इतनी शीघ्रता की गयी कि जमीन्दारो के साथ जमीन बन्दोबस्त करने के पहले जमीन की पैमाइश, उर्वरता के अनुसार जमीन का वर्गीकरण, किस जमीन के ऊपर किस व्यक्ति का किस रूप में अधिकार चला आता है इन सब आवश्यक बातो पर कुछ भी विचार नही किया गया। उस समय के कुछ अधिकारियो ने यह कैफियत दी थी कि जमीन की पैमाइश के लिए अच्छे कर्मचारियो का अभाव था, गावो में पहुचने के रास्ते और घाट नही थे। किन्तु इस प्रसग मे हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि टोडरमल के समय में ये सब असुविधाए कम नही थीं, किन्तु इनके बावजूद उन्होंने भूमि का वर्गीकरण करके उसकी उत्पादिका शक्ति के अनुसार कर निर्धारण किया था। असल बात यह थी कि उस समय के अगरेज अधिकारियो को यह आशका थी कि धन-सपत्ति सम्बन्धी भीतरी मामलो में दखल देने से जमीन्दार बिलकुल बिगड जायेंगे, और अगरेजी राज की रक्षा के लिए इन

जमीन्दारो को सन्तुष्ट रखना ग्रावश्यक है। इसीलिए ऐसा किया गया। गरीब किसानो की स्वार्थ-रक्षा की चिन्ता किसी को नही थी। उनकी अवस्था क्रमश शोचनीय होती गयी और जमीन्दार उनके साथ मनमाना व्यवहार करने लगे। बेडन पावल ने अपनी पुस्तक "लैंड सिस्टम" में लिखा है "बिना आगा-पीछा किये और किसी तरह की जाच-पडताल न करके, जमीन के ऊपर किसका स्वत्व अधिक है इस बात पर विचार किये बिना चिरस्थायी प्रबन्ध प्रचलित कर दिया गया। इस व्यवस्था से जितनी क्षति हुई है उतनी क्षति किसी अन्य व्यवस्था से हुई है या नही इसमें सन्देह है।"

चिरस्थायी प्रबन्ध के प्रवत्तित होने के फलस्वरूप किसानो का भूमि पर जो अधिकार अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा था वह नही रहा और अत्याचारी जमीन्दारो की दया के ऊपर उनका भाग्य निर्भर करने लगा। लगान की दर बहुत बढ गयी, और जमीन्दारो ने अत्यन्त गैरकानूनी ढग से लगान वसूल करना शुरू किया। मनु का धर्म शास्त्र यदि उस समय प्रचलित होता तो इन सब अत्याचारी जमीन्दारो की जमीन सरकार द्वारा जब्त कर ली जाती। कर जाच समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था—जिस समय चिरस्थायी प्रबन्ध प्रवत्तित किया गया, उस समय कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की इच्छा थी कि जो सब किसान इस व्यवस्था के फलस्वरूप भूमिस्वत्व से वचित कर दिये गये हैं उन्हें वे सब अधिकार लौटा दिये जायेंगे और उनकी रक्षा की जायगी। किन्तु १७९३ की व्यवस्था में किसानो का अधिकार स्वीकार करना तो दूर रहा, क्रमश १७९९ और १८१२ ई० के कानून द्वारा उन्हें सपूर्ण रूप से जमीन्दारो की मुट्ठी में डाल दिया गया। लगान की दर चाहे जितनी बढ जाय, उसे नही चुकाने पर किसान की जमीन जब्त कर ली जा सकती थी, यहा तक कि उसे जेलखाने की सजा दी जा सकती थी। बगाल सरकार की १८७२–७३ ई० की रिपोर्ट में यह स्वीकार किया गया है कि "जमीन्दार अपनी विलासिता अथवा अनावश्यक व्यय की पूर्त्ति के लिए यथेष्ट भाव से किसानो से लगान वसूल करते हैं। जमीन्दारो के कर्मचारी और नायबो का खर्च रैयतो को ही चुकाना पडता है—आयकर उनसे ही वसूल किया जाता है। डाकखाने का कर, हाथी का खर्च, कचहरी का मकान और माल-गुजारी की रसीद का खर्च, मामला दायर करने और वकील का खर्च सब उन्हें ही देना पडता था। किसी उत्सव या धर्मानुष्ठान में, किसी उत्तरा-धिकारी के जन्म या विवाह के अवसर पर रैयत से मोटी रकम वसूल की जाती थी। जमीन की बिक्री बिना मालिक की मजूरी के नही हो सकती थी। जमीन की बिक्री होने पर खरीदार को नजराना देना पडता था। बिना नजराना दिये मालिक के सिरिस्ते में उसका नाम दर्ज नही हो सकता था। रैयतो के आपसी झगडो को निबटा देने, किसी मजिस्ट्रेट या दारोगा के गाव मे आने पर अथवा गाव मे दगा-फसाद होने पर रैयतो से जुर्माना वसूल किया जाता था। यदि किसी रैयत का कोई पालतू पशु किसी दूसरे के खेत मे फसल को क्षति पहुचाता था तो इसके लिए भी उसे मालिक को अर्थदड देना पडता था। इस प्रकार गैर कानूनी ढग से मालिक रैयतो से अबवाब वसूल करते थे। जमीन्दारी प्रथा के साथ ये अबवाब अविच्छेद्य रूप मे जुडे हुए थे। हर जमीन्दार के नीचे एक नायब, उसके नीचे एक गुमास्ता और उसके नीचे प्यादा होता था। नायब बिना सूचना दिये ही गाव में पहुच जाता था। उसके पहुचने पर प्रत्येक किसान से जो लगान देता था, व्यक्ति पीछे एक रुपया वसूल किया जाता था। जो सब प्यादा या सिपाही जमीन्दार की ओर से लगान का तकाजा करने जाते थे या जो रैयत कचहरी में बुलाये जाते थे, वे रैयतो से दैनिक पाच-छ आने वसूल करते थे।"

इस प्रकार लार्ड कार्नवालिस ने जो आशा की थी कि जमीन्दारी प्रथा के प्रवत्तित होने पर किसानो के धन-जन की रक्षा होगी, उनकी उन्नति होगी वह आशा सर्वथा निराशा में परिणत हुई यह ऊपर की रिपोर्ट से स्पष्ट है। जितने कानून बने सब जमीन्दारो की स्वत्व-रक्षा के लिए। इसलिए जमीन्दारो ने जमीन की उन्नति आदि के सम्बन्ध में कभी माथा-पच्ची नही की। इधर उन्होने ध्यान ही नही दिया। विलायत की भूमि प्रथा कुछ अशो मे यहा प्रचलित हुई। जमीन्दार स्वेच्छा से लगान की दर बढाने लगे और नाना प्रकार के अवैध उपायो से कर बैठा कर वसूल करने लगे। मुसलमानो के शासनकाल तक जो ग्राम पचायत गणतात्रिक आधार पर चल रही थी उसका मूल सूत्र था जमीन के ऊपर किसानो का मालिकाना हक। किन्तु अब पचायत प्रथा दुर्बल होने लगी, समाज व्यवस्था में शिथिलता आने लगी और इसके साथ-साथ जमीन के ऊपर किसानो का अधिकार नष्ट होने लगा।

सन् १८१२ ई० के अधिनियम ५ के अनुसार जमीन्दार स्वेच्छा से जमीन का लगान बढाने लगे और रैयतो को बाध्य होकर जमीन्दार और उनके कर्मचारियो की लोभ-लालसा की पूर्त्ति करनी पडी। जमीन में पैदा-वार चाहे जो भी हो किन्तु लगान में कमी होने का कोई उपाय नही। जमीन में इतनी पैदावार नही हुई कि उससे किसान लगान चुका सके और जमीन्दार लगान में कुछ भी कमी करने के लिए तैयार नही। ऐसी अवस्था में कडी सूद की दर पर महाजन से कर्ज लेकर या जमीन बधक रख-रख कर अथवा बेंचकर लगान चुकाने के सिवा और दूसरा उपाय ही क्या था। इस प्रकार लगातार कई वर्षों तक लगान चुकाते रहने से किसान सर्वथा उपायहीन बन गये और महाजन उनकी जमीन नीलाम करा कर जमीन के मालिक बनने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि भूमिहीन कृषको की सख्या बढने लगी। जिन किसानो के पास जमीन बची रही उनके ऋण का परिणाम दिन-दिन बढने लगा। मतगणना कमिश्नर सर टामस मुनरो की रिपोर्ट से मालम होता है कि सन् १८४२ ई० में भारत में कोई भी भूमिहीन कृषक नही था। किन्तु ३० साल बाद १८७२ ई० म भूमिहीन कृषको की सख्या बढकर साढे सात करोड हो गयी। इसके विपरीत जमीन्दार और ठेकेदारो की सख्या बढने लगी। सन् १९३१ की जनगणना रिपोर्ट से यह पता चलता है कि चिरस्थायी प्रबधवाले प्रदेशो में जमीन्दार और ठेकेदारो की सख्या जहा प्रतिशत ६२ बढ गयी थी वहा किसानो की सख्या प्रतिशत ३४ घट गयी थी। इसके साथ ही भूमिहीन खेत मजदूरो की सख्या ५० प्रतिशत बढती थी।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया था कि चिरस्थायी प्रबध-वाले प्रदेशो के जमीन्दार किसानो से लगान के रूप में जो रुपया वसूल करते है उसकी तीन चौथाई भाग अपने पास रख लेते है और बाकी एक भाग

राजस्व के रूप में सरकार को देते हैं। एक ओर तो जमीन्दारो का यह निष्ठुर शोषण और दूसरी ओर सरकार की पक्षपातमूलक कर नीति के फलस्वरूप किसानो की दुरवस्था सहनशीलता की सीमा को अतिक्रमण कर गयी है। कमीशन ने इस कर नीति के सम्बन्ध में मन्तव्य किया था —"Grave inequalities which prevail in the distribution of taxation" रिपोर्ट में कहा गया था A poor cultivator, who not only pays to the state a substantial portion of his income from land, but also bears the burden of the duties on sugar, kerosine oil, salt and other articles of general consumption, seems to receive very different treatment from the king zamindar or landholder in areas where "permanent settlement" prevails, which owns extensive estates for which he may pay to the state a merely nominal charge fixed over a century ago and declared to be unalterable for ever, while his agricultural income is totally exempt from income tax"

किसानो के ऋण का परिणाम क्रमश बढते-बढते, अवस्था यहा तक पहुच गयी कि जो ऊची जातियो के किसान थे वे तो भूमिहीन बन कर शहरो में अन्य वृत्तियो को ग्रहण करने लगे और निम्न जातियो के किसान खेतिहर मजदूरो के रूप में जमीन्दारों या बडे-बडे किसानो के क्रीतदास बन गये। इनके सम्बन्ध में उक्त रिपोर्ट में कहा गया था—

"Under the Kamianti system in parts of Bihar, and the Veth and Khanibari systems in the north of Madras, the labourer borrows money from the landlord under a contract to work until the debt is repaid. The debt tends to increase rather than to diminish, and the man, and sometimes his family, is bound for life, serfs are even sold and mortgaged Such systems have now no legal sanction, and in Bihar special legislation has been adopted in the endeavour to eradicate the abuse; but it continues to exist"

जमीन के ऊपर जोतनेवालो का मालिकाना हक होना चाहिये यह सिद्धान्त आज सर्वजन सम्मत है। इस सिद्धान्त को मानकर ही काग्रेस सरकार ने भारत के विभिन्न राज्यो में जमीन्दारी प्रथा का उन्मूलन कानून द्वारा कर दिया है। किन्तु जमीन्दारी प्रथा के विलोप हो जाने से ही किसानो का भाग्योदय हो जायगा, ऐसा समझना भूल होगी। कानून द्वारा जमीन के ऊपर किसानो का अधिकार हो भी जाय तब भी समस्या का समाधान नही हो सकता। कारण, अधिकार और अधिकृत वस्तु का यथोपयुक्त व्यवहार एक बात नही है। जमीन के सम्बन्ध में उसका व्यवहार ही प्रमुख प्रश्न है। Land is a social asset The cultivaton is more or less a trustee of the social asset जमीन एक सामाजिक सपत्ति है और किसान इस सम्पत्ति के न्यासरक्षक या ट्रस्टी हैं।

जमीन के ऊपर मालिकाना हक दो रूपो में हो सकता है। एक, राष्ट्र की समस्त भू-सपत्ति पर सरकार का मालिकाना और नियत्रण, दूसरा किसानो को मालिकाना हक अर्पित करना। जमीन के ऊपर राष्ट्र के व्यापक मालिकाना और नियत्रण का दृष्टान्त सोवियत रूस है। यूरोप के भी कई देशो में यह प्रथा प्रचलित है। आर्थिक दृष्टि से इस प्रथा की उपयोगिता असन्दिग्ध है। किन्तु इसके अनुसार उत्पादन को एक कठोर नियम-शृखला के अन्दर रखा जाता है। अधिकार बोध द्वारा आत्म प्रसाद लाभ करने की इच्छा प्रत्येक मनुष्य के मन मे प्रच्छन्न रहा करती है। खास कर जमीन को जो जोतता है और उसके लिए परिश्रम करता है उसके मन मे तो स्वभावत यह इच्छा और भी प्रबल होगी। इसलिए आत्म प्रसाद की लालसा को अक्षुण्ण रखकर राष्ट्र की सहायता द्वारा उत्पादन में वृद्धि करना ही सर्वोत्तम तरीका हो सकता है। सोवियत रूस मे जहा सामूहिक कृषि प्रणाली प्रचलित की गयी है वहा भी किसानो को भूमि पर अधिकार लाभ करने के आनन्द से सर्वदा वचित नही किया गया है। रूस में प्रत्येक किसान को एक एकड जमीन उसकी निजी सपत्ति के रूप में दी गयी है। और यह भी देखा गया है कि राष्ट्र के नियत्रण में सामूहिक जोत-जमीन की अपेक्षा किसान अपनी इस निजी जमीन का ही अधिक ख्याल रखते हैं और उसकी देखभाल करते हैं। अमेरिका और रूस की तरह जो लोग यत्रचालित सामूहिक कृषि प्रणाली पर जोर देते हैं उन्हें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि उन सब देशो की तरह यहा जनबल अप्रचुर नही है। भारत के सामने सबसे बडी समस्या बेकाम कर्मक्षम लोगो को काम में लगाने की है। जनबल ही हमारे देश की प्रधान पूजी है। इसलिए किसानो को जमीन पर यदि व्यक्तिगत अधिकार दिया जायगा तो वे खेतो की पैदावार बढाने में ढिलाई करेंगे ऐसी आशका करने का कोई कारण नही है। बल्कि निजी अधिकार होने से उन्हें जो आत्मतुष्टि होगी उससे प्रेरणा प्राप्त करके वे और भी मन लगाकर खेती करेंगे। इस प्रकार के व्यक्तिगत अधिकार भूमि पर होने से उत्कृष्ट प्रणाली द्वारा कृषि हो और उत्पादन एव वितरण लाभजनक रूप में हो इसके लिए सहयोग पद्धति पर कृषि कार्यके लिए सहयोग कृषि प्रणाली चलानी होगी।

भारत में अति प्राचीन काल से ग्राम मडल या ग्राम पचायत यह काम करती आ रही थी। ग्राम पचायत द्वारा इस सामाजिक दायित्व का पालन होने से ही ग्रामवासियो मे एक सघबद्ध समाजचेतना का उदय हुआ था जो शताब्दियो तक राष्ट्र के शरीर को स्वस्थ एव गतिमान बनाये रहा। भारत का आर्थिक इतिहास हमे बताता है कि गाव की जमीन का बटवारा और उसके सरक्षण का भार ग्राम मडल या ग्राम पचायत के ऊपर न्यस्त था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी इस बात का उल्लेख मिलता है "जमीन को गैर आबाद हालत मे छोड देने या किसी दूसरे के जिम्मे छोड कर चले जाने पर किसान की जमीन कुर्क कर ली जाती थी।" सन् १९४७ में ब्रिटेन के सशोधित कृषि कानून के अनुसार जमीन के मालिक को नियमानुकुल अच्छी तरह से खेती करने का पूर्ण दायित्व ग्रहण करना होगा। इस निर्देश को जो अमान्य करेगा उसे जमीन के मालिकाना हक से वचित कर दिया जायगा। भारत मे भी इस प्रकार का कानून बनना चाहिये। खेती करने का अधिकार किसान को होगा, किन्तु उसे सामाजिक नियत्रण को मानकर चलना होगा। इसमे बल प्रयोग की कोई बात नही है कारण ग्राम पचायत में किसान प्रतिनिधियो की ही तो प्रधानता होगी।

बिहार में कृषि-भूमि एवं उसकी समस्याएँ

श्री सरस्वती प्रसन्न शास्त्री

बिहार मे साढे चार करोड एकड भूमि है। यह भारत के कुल क्षेत्र का ५ ५ प्रतिशत है। बिहार की आबादी घनी है। यहा की कुल जनसख्या ४ करोड है, जो भारत की कुल आबादी का ११ प्रतिशत होता है। इस राज्य मे आवादी का औसत घनत्व ५७२ प्रति वर्गमील है। यहा चार जिले ऐसे हैं जहा की आवादी का औसत घनत्व राज्य के शेष भागो के औसत घनत्व से दूना पडता है। इन चार जिलो में राज्य के कुल क्षेत्रफल का १९ प्रतिशत पडता है। यह विशाल आवादी मुख्यत कृषि पर आश्रित है। कृषिकर आवादी, राज्य की कुल आबादी का ८६ प्रतिशत है। लगभग ९३ प्रतिशत लोग गावो मे बसते हैं और केवल ७ प्रतिशत विभिन्न शहरो मे बटे हुए हैं।

भौगोलिक दृष्टि से, बिहार दो मुख्य प्रदेशो में बटा हुआ है— उत्तर और केन्द्र मे गगा की समतल भूमि और दक्षिण का पठार। दक्षिण का पठार राज्य के कुल क्षेत्र का ४७ प्रतिशत है। यहा की आबादी छेहर है, जो राज्य की कुल आबादी का केवल २७ प्रतिशत ही पडता है। यह पठार प्रदेश कृषि की दृष्टि से कुछ गरीब है जहा राज्य के कृष्य भूमि का केवल ३१ प्रतिशत है। किन्तु, इस प्रदेश में खनिज पदार्थो और जगलो की भरमार है। यहा प्रधानत आदिवासी बसते हैं।

बिहार की भूमि के वर्गीकरण से पता चलता है कि कुल क्षेत्र के २९ प्रतिशत में जगल और अन्य अकृष्य भूमि है, १८ प्रतिशत क्षेत्र व वर्त्तमान वजर भूमि को छोडकर कृष्य वजर है, वर्त्तमान बजर भूमि ११ प्रतिशत है और बुआई की कुल जमीन राज्य के कुल क्षेत्र का केवल ५२ प्रतिशत है। इस प्रकार हमारी ३ करोड ४६ लाख की कृषिकर आवादी की जीविका २ करोड १९ लाख एकड कृष्य भूमि पर आश्रित है, तात्पर्य यह कि कृषिकर आवादी के एक व्यक्ति के हिस्से दो-तिहाई एकड कृष्य भूमि पडती है, हमारी कुल कृष्य भूमि के केवल २३ प्रतिशत अश में ही सिंचाई की सुविधा है और ३१ प्रतिशत में एक वार से अधिक बुआई होती है। कुल कृष्य भूमि के ७० प्रतिशत मे पाच प्रधान अन्न, अर्थात् चावल, गेहू, चना, मकई और जौ होते हैं और इनकी प्रति एकड उपज केवल ७॥ मन है। चावल हमारी मुख्य फसल है। कुल कृष्य भूमि के ४५ प्रतिशत में चावल ही होता है और इसकी उपज बिहार की पाच मुख्य फसलो की कुल उपज का ७२ प्रतिशत है।

बिहार में भूमि पर आबादी का बहुत अधिक बोझ है। सारन जैसे कुछ जिलो मे तो कृष्य भूमि के केवल १०० एकड पर ही कृषिकर आवादी के २३० व्यक्तियो की जीविका निर्भर है। साथ ही, जनगणना से पता चलता है कि कृषि पर आश्रित रहनेवालो की सख्या उत्तरोत्तर बढती जा रही है। हम देखते हैं कि १९३० ई० में जहा ७८ ७ प्रतिशत का मुख्य पेशा कृषि थी, वहा १९५१ ई० में यह सख्या बढकर ८७ ३ प्रतिशत हो गई। पिछले ४० वर्षों में कृष्य वजर भूमि का क्षेत्रफल कम होता गया है। ४० वर्ष पहले यह क्षेत्र कुल क्षेत्र का १३ प्रतिशत था और १९४५–४९ ई० में यह आकार केवल ८ प्रतिशत रह गया। साथ ही, सिंचाई का क्षेत्र भी १७ प्रतिशत से बढकर १९४५–४८ में २३ प्रतिशत तक पहुच गया है। इसी प्रकार, एक से अधिक बार की बुआईवाला क्षेत्र २६ प्रतिशत से बढकर ३१ प्रतिशत हो गया है।

बिहार मे दमामी बन्दोबस्ती के कारण हाल-हाल तक गावो में आज तक के रेकर्ड रखने के लिए कोई सस्था नही थी। उपलब्ध आकडो से पता चलता है कि जमीन्दारो और पट्टेदारो की जोत मे कुल ३४ लाख ६० हजार एकड, विभिन्न कोटि के दखली रैयतो की जोत में २ करोड ३ लाख ६० हजार एकड तथा गैरदखली काश्तकारो और दर रैयतो की जोत में ६ लाख ६० हजार एकड जमीन थी। विगत जन-गणना के अनुसार ३ करोड ४६ लाख की कुल कृषिकर आबादी में से ८८ लाख व्यक्ति भूमिहीन खेतिहर मजदूर और उनके परिवारवाले थे, ३३ लाख व्यक्ति दर-रैयत और उनके परिवारवाले थे और शेष, यानी २ करोड २५ लाख व्यक्ति दखली रैयत जमीन्दार और पट्टेदार तथा उनके परिवारवाले थे। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि बिहार मे अधिकाश जमीन दखली रैयतों की जोत में है, जिस पर उनका स्थायी और पुश्तैनी अधिकार रहता है। यह भी स्पष्ट है कि कृषिकर वर्गों में इन दखली रैयतो की ही सख्या सबसे अधिक है। खेतिहर मजदूरो की सख्या कुल कृषिकर आवादी का २५ प्रतिशत है जो भारत के किसी भी राज्य

से अधिक है। यह हमारी आवादी का सवसे निर्धन वर्ग है और इस वर्ग को जमीन की वडी भूख रहती है।

विहार की स्थिति अधिक खेदजनक इसलिए हो जाती है कि यहा औद्योगिक कच्चे मालो की प्रचुरता है। यहा सभी पेशो में प्रति व्यक्ति सवसे कम आय कृषि से ही है। अतएव, इस राज्य में कुटीर और लघु उद्योगो के विकास की वहुत अधिक आवश्यकता है। हमारे यहा कृषि के सम्वन्ध में भी अनेक त्रुटिया हैं। विहार में प्रतिवर्ष औसतन ५० इच पानी पडता है, किन्तु वर्षा निश्चित नही रहती, विशेष कर तिरहुत डिवीजन में, जो कि विहार का अन्न भाडार कहा जाता है, वर्षा और भी अनिश्चित रहती है। वहा पिछले १७ वर्षो मे १० वर्ष के औसत से कम पानी पडा है। यह शोक-प्रवाहिनी कोशी प्रतिवर्ष विपत्तिया ढा देती है। यह हजारोहजार एकड उर्वर भूमि को तहस-नहस कर डालती है। हर्ष की वात है कि कोशी योजना का काम तत्परता से शुरू कर दिया गया। १९४५०–५१ से, जवकि यहा लगभग दुर्भिक्ष जैसी स्थिति हो गयी थी, लगातार यहा वाढ और सूखा का प्रकोप होता रहा है। कृषिकर आवादी का जीवन-स्तर ऊचा करने, वढती हुई आवादी को देखते हुए वर्त्तमान स्तर को ही वनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि कृष्य वजर भूमि को आवाद किया जाय, सिचाई की सुविधाए वढाई जाय, दोफसला क्षेत्र वढ़ाया जाय और अधिक उपज की पद्धतिया काम में लाई जाय। इन दिशाओ में महत्वपूर्ण काम हो रहे हैं। विभिन्न भूमि-सुधार, जलनिकासी और वजर-भूमि कर्पण योजनाओ के अन्तर्गत ५ लाख एकड भूमि आवाद की जा चुकी है। सिचाई की सुविधाओ के विस्तार के साथ दोफसला क्षेत्र भी उत्तरोत्तर वढता जा रहा है और धान की खेती के जापानी तरीके से धान की उपज वढाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

कृषि की उपज वढाने के लिए यह एक आवश्यक तत्त्व है कि खेतिहर को अपना खेत यथासभव उत्तम रूप से जोतने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। दुर्भाग्यवश मार्ग में अनेक वाधाए हैं। जमीन्दारी प्रथा ने भूमि के मालिक और खेतिहर के वीच एक वीचवान खडा कर दिया था। पट्टे की अनिश्चितता तथा मालगुजारी की ऊची दर के कारण, खेतिहरो को खेत में जी-जान से मेहनत करने की प्रेरणा नही मिलती थी। इन दोनो को दूर करने की आवश्यक व्यवस्था की जा रही है। विहार भूमि सुधार कानून, १९५० के द्वारा दमामी वन्दोवस्ती और जमीन्दारी की प्रथा का अन्त किया जा रहा है। १७ जिलो मे से ८ जिलो मे जमीन्दारिया ली जा चुक है और शेष जिलो में भी एक दो वर्ष के अन्दर यह काम सम्पन्न हो जायगा। दखली काश्तकारो को, जो हमारी कृषिकर आवादी के ६५ प्रतिशत है, वेदखली और लगान वृद्धि के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान कर दी गई है। दर रैयत भी जमीन से वेदखल तभी किये जा सकते हैं जव वे लगान देना वन्द कर दें, खेत को इस तरह जोतें कि वह विल्कुल वर्वाद हो जाय या लिखित पट्टा होने पर उसकी अवधि वीत जाय। अन्यथा वे वेदखल नही किये जा सकते। दर रैयतो को दखली अधिकार देने और खेत के स्वामित्व की अधिकतम सीमा निश्चित करने के प्रस्ताव भी सरकार के विचाराधीन हैं। एक इस आशय का भी विधान वनाने का निश्चय हुआ है कि निश्चित एकड से अधिक जमीन होने पर सरकार अतिरिक्त अश को ले लेगी, यदि खेत के मालिक उसका समुचित रूप से प्रवन्ध नही कर सकते हो, और उसे भूमिहीन व्यक्तियो में वाट देगी। दर-रैयत के मामले मे भी लगान वढाने के सम्वन्ध में भू-स्वामी के अधिकार कम कर दिये गये हैं। रजिस्टर्ड पट्टा होने पर भू-स्वामी दर-रैयत से कुल उपज का ५० प्रतिशत से अधिक लगान के रूप मे नही ले सकता और नकदी लगान लेने पर वह अपने मालिक को दिये जानेवाले लगान पर २५ प्रतिशत से अधिक नही वसूल कर सकता। सरकार जिन्स के रूप में लगान की दर कम कर देने का विचार कर रही है। दखली रैयत और दर-रैयतो को अपने घर-वाडी से वेदखली के विरुद्ध पूरा वचाव सुलभ है। १९४८ ई० में विहार प्रिविलेज्ड पर्मनेन्स होमस्टेड टेनेंसी ऐक्ट पास कर इस वचाव को और भी दृढ कर दिया गया है। वर्त्तमान काश्तकारी कानून में गैरकानूनी तरीके से वेदखल किये गये दररैयत को उसका अधिकार दिलाने के लिए कई व्यवस्था नही है। विहार काश्तकारी (सशोधन) विधेयक, १९५४ के द्वारा कलक्टरो को यह अधिकार देने का विचार है कि वे गैर-कानूनी तरीके से वेदखल किये गये दर-रैयतो को उनका अधिकार वापस दिला दे। भूमिहीन खेतिहर मजदूरो की जमीन की भूख की तृप्ति के लिए भी आवश्यक व्यवस्था की जा रही है। निश्चित सीमा से अधिक जमीनवालो की अतिरिक्त जमीन लेकर और वजर भूमि को कृष्य वना कर भूमिहीनो में वाटने की योजना है।

विहार जैसे राज्य में, जहा जमीन पर एक वडी आवादी का इतना वोझ है, जमीन का वहुत अधिक टुकडे किया जाना कोई आश्चर्य की वात नही होती। सच तो यह है कि विगत सर्वेक्षण तथा वन्दोवस्ती के समय यह पाया गया कि कुछ जिलो मे जैसे सारन, मुजफ्फरपुर और दरभगा मे खेतो का औसत आकार दो एकड से अधिक नही था जवकि उसके अन्तर्गत टोपरे के औसत ०४ एकड या उससे भी कम के थे। तव से अव तक के वीच जो कुछ पडतालें की गई हैं, उनसे पता चलता है कि खेतों और टोपरो के औसत आकार और भी छोटे होते गये हैं। अवखडन की इस गति को, जो सुचारु रूप से खेती करने के मार्ग मे वडी वाधा है, रोकने के लिए तथा चकवन्दी के लिए राज्य सरकार निश्चय कर चुकी है कि वह एक विधान वनायेगी। इस विधान द्वारा विभिन्न जमीनो का क्षेत्र निश्चित और घोषित कर दिया जायगा जिसमे कम के टुकडे विक्री, पट्टा, वटवारा तो अन्यथा नही किये जा सकेंगे। सरकार ने एक समिति की भी स्थापना की है जो इस राज्य मे सहकारिता के आधार पर खेती करने की सभावनाओ की जाच करेगी। इस समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन तथा सिफारिशें सरकार के विचाराधीन हैं।

पड़ोसी नेपाल में भूमि की हीन दशा

—श्री रुद्र प्रसाद गिरि

तीन ओर से भारतीय क्षेत्रो से घिरा हिमालय की गोद में नेपाल, सदियो तक वाहरी दुनिया के लिए अज्ञात ही वना रहा। अंग्रेजो और नेपाल के राणा शासको की पूरी कोशिश के वावजूद १९५० के अन्त में यहा एक सफल क्रान्ति हुई, जिसके फलस्वरूप १०४ वर्ष पुराना राणा शासन का अन्त हुआ और १८ फरवरी १९५१ में नेपाल नरेश स्वर्गीय श्री त्रिभुवन के वैधानिक नायकत्व में राणाओ और नेपाली काग्रेस की मिली-जुली सरकार वनी। तव से अव तक इस पाच साल की अवधि में छ सरकारे बन चुकी है और अव तो स्वर्गीय श्री त्रिभुवन की जगह उनके सुपुत्र श्री महेन्द्र वीर विक्रम नेपाल के नरेश है और प्रत्यक्ष रूप से अपने सलाहकारो की सहायता से नेपाल का शासन चला रहे है—किन्तु अन्य समस्याओ की तरह भूमि समस्या अपनी जगह पर वहा ज्यो-की-त्यो वरकरार है।

तमाम पिछडे मुल्को को अपने आर्थिक विकास के कार्यक्रमो को लागू करने के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार करना आवश्यक होता है, और इसीलिए भूमि समस्या का समाधान उनकी प्राथमिक आवश्यकता वन जाती है। खास कर नेपाल जैसे देश के लिए जहा कि ९० प्रतिशत आवादी खेती पर ही निर्भर है और सरकार की आमदनी का भी मुख्य श्रोत जमीन है—किन्तु जमीन से भी वमूल की गयी पूरी-की-पूरी मालगुजारी सरकारी खजाने मे नही पहुच पाती। नेपाल की भूमि व्यवस्था मध्ययुगीन सामन्तवादी है और इसमें सुधार की नितान्त आवश्यकता है। इसे महाराजाधिराज स्वर्गीय श्री त्रिभुवन ने भी स्वीकार किया था और वहा के तमाम राजनीतिक दल तो इनके लिए आन्दोलन ही करते रहे है।

भूमि सुधार

राणाशाही के अन्त के वाद आरम्भ के दिनो मे नरेश त्रिभुवन ने एक वक्तव्य में भूमि सुधार की आवश्यकता की घोषणा की थी। मन्त्रि-मडल के सदस्यो ने तो वार-वार कहा कि नेपाल मे प्रचलित भूमि व्यवस्था को वदल कर किसानो की दशा मे उन्नति लायी जायेगी। नरेश त्रिभुवन ने किसानो को आश्वासन भी दिया कि उन्हें जोत की जमीन से वेदखल नही किया जायगा। उसके वाद एक भूमि आयोग का भी गठन किया गया, जिसने अपना प्रतिवेदन भी सरकार के सामने उपस्थित किया। भारतीय योजना आयोग के विशेषज्ञो ने भी नेपाल की भूमि-समस्या का अध्ययन कर समाधान के कुछ सुझाव नेपाल सरकार के सामने उपस्थित किये थे। कोई साढे चार साल हुये, सयुक्त सरकार के दिनो मे नेपाली काग्रेस के अध्यक्ष श्री बी० पी० कोइराला, जो उन दिनो गृह मत्री थे, ने भूमि सुधार सम्बन्धी कुछ वृहत् कार्यक्रमो को मत्रिमडल से स्वीकृत कराया था। उसके अनुसार विर्ता जमीन की खरीद-बिक्री या बन्दोबस्ती को वन्द कर दिया गया था तथा जमीन पर से जोतनेवाले किसानो की बेदखली भी नाजायज करार दी गयी थी। इस सरकार ने सारे-के-सारे जगलो को भी राष्ट्रीय सपत्ति घोषित कर दिया जिससे विर्तावालो का कब्जा जगल पर से जाता रहा। किन्तु सरकार इसे लागू नही कर सकी। इसके कारण कुछ तो अनुकूल और योग्य प्रशासन व्यवस्था का अभाव और कुछ वी० पी० कोइराला और मोहन शमशेर के सयुक्त सरकार का पतन था।

नेपाल सरकार के पास भूमि का नक्शा-खतियान भी नही है। जो है भी वे दोपरहित नही कहे जा सकते तथा अधिकतर नक्शा-खतियान गैरसरकारी सूत्रो के हाथ में है।

वर्तमान अवस्था

नेपाल मे भूमि व्यवस्था कई प्रकार की है। वहा की जमीन्दारी व्यवस्था भारत में अभी हाल तक प्रचलित जमीन्दारी व्यवस्था से भिन्न है। यहा के जमीन्दार वस्तुत मालगुजारी वसूलने तथा जमीन के बन्दोवस्त करने के लिए बीच के दलाल है जिन्हें मालगुजारी और सलामी में कुछ दलाली कमीशन मिल जाता है। इसके अतिरिक्त जीवन यापन के लिए कुछ जमीन भी दी जाती है। कुछ चन्द जमीन्दारो को तो १०,००० एकड तक जमीन मिली हुई है। इस जमीन को 'सीर' जमीन कहते है, जो कि रैयतो को जोतने के लिए दे दी जाती है। सीर जमीन को जोतनेवाले रैयतो का जमीन पर कोई मालिकाना हक नही होता और वे पूर्णत जमीन्दारो की दया पर जीते हैं।

विभिन्न स्थानो में प्रचलित परम्परा के अनुसार इन्हें उपज की एक तिहाई से आधे हिस्से तक जमीन्दारो को देना पडता है। रैयतो को अपनी जोत की जमीन पर कुछ भी अधिकार प्राप्त नही है। और अगर कानून या परम्परा के अनुसार कुछ अधिकार उन्हें प्राप्त भी हो तो वे लिखित प्रमाण के अभाव में उसका प्रयोग नही कर सकते। जमीन्दारो की ओर से उन्हें कोई रसीद भी नही दी जाती। इसके अतिरिक्त जमीन्दारो के पास अपने लटैतो और गुण्डो के दल हैं, जो आवश्यकता पडने पर जमीन्दारो की चाकरी बजाते हैं और किसानो पर जुल्म ढाने में जमीन्दारो की मदद करते है।

भारतीय जमीन्दारी से मिलती-जुलती एक प्रकार की व्यवस्था नेपाल के पहाडो मे प्रचलित है, जिसे 'कीपट' कहते हैं। नेपाल के पुराने नरेशो और राणा प्रधान मन्त्रियो ने किरातियो को खुश करने के लिए इस्टेटो को उन्हीके जिम्मे छोड दिया और उन पर कुछ मोटा-मोटी मालगुजारी तय कर दी। इससे पहाड के किराती सरदार सरकार के भक्त बन गये। बाद में धीरे-धीरे यह कीपट भी किरातियो के हाथ से निकल कर राजधानी काटमाडू से गये लोगो के हाथ म चली आयी। ठीकेदारो न पहाड के किसान की जमीन बाकी मालगुजारी और कर्ज नही अदा करने के कारण नीलाम करा लिया। पहाडो में जमीन की कमी और कीपटदारो के उत्पात से तग आकर बेचारे सीधे-सादे पहाडी उजड कर अग्रेजो सेना म भरती होते है तथा भारत के प्रमुख शहरो मे दरवान और घरेलू नौकर का काम करते हैं। जमीन्दारो, कीपटवालो तथा धनी किसानो की सख्या कुल मिला कर लगभग दस प्रतिशत होगी, जो कुल जोत की जमीन के २५ प्रतिशत के मालिक हैं।

सर्वसत्ता सम्पन्न बिर्तावाल

नेपाल में जोत के अन्दर कितनी जमीन है इस सम्बन्ध में कोई आकडा प्रस्तुत नही है, किन्तु यह निस्सकोच होकर कहा जा सकता है कि कुल जोत की जमीन के पचास प्रतिशत के मालिक वहा के बिर्तावाल हैं। बिर्ता की ठीक-ठीक व्याख्या करना आसान नही—क्योंकि बिर्त्ता के भी कई प्रकार है। अधिकतर बिर्ता तो राणाओ के ही हैं और कुछ बिर्तावाल राणा के पास लगभग १० लाख एकड बिर्ता जमीनें हैं। पश्चिम नेपाल तराई का भाग १८५७ के गदर मे अग्रेजो की सहायता करने के पारितोषिक के रूप में राणा जग बहादुर को मिला था। इसे नेपाली 'नया मुलुक' कहते हैं। यहा तो किसानो को रैयती हक नाम की कोई चीज ही नही है। यहा लगभग सभी-के-सभी जमीन बिर्तावालो के है। सरकारी दृष्टिकोण से यह व्यवस्था अत्यन्त ही हानिकर है। बिर्त्ता जमीन की मालगुजारी सरकारी खजाने मे नही जाती बल्कि बिर्तावालो के यहा जाती है। इसके अतिरिक्त बिर्तावालो की भी अपनी 'सीर' जमीन होती है, जिसे वे अपनी शर्त्त पर बटैया जुतवाते हैं। इन बिर्तावालो को अपनी-अपनी कचहरिया हैं जहा मालगुजारी सम्बन्धी मामलो की इनके सुब्बा (मजिस्ट्रेट) सुनवाई करते हैं और अपराधी को तीन महीने कैद तथा सौ रुपये जुर्माने तक की सजा दे सकते हैं। इनके सजायाफ्ता कैदी सरकारी जेलो में सजा भुगतते है और जिसका खर्च भी सरकार को ही वहन करना पडता है।

मध्यवित्त किसानो की सख्या वहा नगण्य जैसी है। कुल जोत की जमीन के २५ प्रतिशत का विभाजन मध्यम किसानो और छोटे किसानो में हुआ है। लगभग ६० प्रतिशत लोगो के पास अपनी जमीन नही है। वे बटाई या मजदूरी पर जीवन यापन करते है।

सुकुमवासी

भूमिहीन बटाईदार या मजदूर को नेपाली सुकुमवासी कहते हैं। कहने को तो दास प्रथा का अन्त नेपाल में राणा चन्द्र शमशेर जग बहादुर ने १९२६ में ही कर दिया था किन्तु इन सुकुमवासियो की हालत दासो से किसी भी प्रकार अच्छी नही कही जा सकती। वस्तुत उनके या उनके पिता के द्वारा जमीन्दारो के कर्ज नही अदा कर सकने के कारण उनकी यह दशा है। चूकि कर्ज अदा नही हो सकते इसलिए गरीब किसानो में से नये सुकुमवासी दास पैदा होते जा रहे हैं। और इनकी सख्या बढती ही जा रही है। सुकुमवासियो की स्थिति के सम्बन्ध में मै अपनी आखो देखा अनुभव प्रस्तुत कर रहा हू।

जमीन की समस्या मुख्यत नेपाल तराई की समस्या है। पहाडो में उपजाऊ जमीन की कमी है, और उद्योग-धधो का भी विकास नही हो पाया है, इसलिए पहाडी जमीन की परवाह नही कर बाहर नौकरी पर चले जाते है। किन्तु तराई के साथ यह बात नही है।

तराई के अधिकतर क्षेत्रो को पिछले १०० वर्षो के अन्दर जगल काट कर बसाया गया है। स्थानीय आदिवासी थारू, मगर, भोट, और मुसहरो आदि ने बीहड जगलो को काट-काटकर तथा खेतो में झाडी धूर बावकर जमीन को आबाद किया। ये लोग स्वभाव से शान्त, ईमानदार और अशिक्षित है। खेती के लिए ये लोग अक्सर कर्ज लेते है। उचित व्याज पर कर्ज की कोई और व्यवस्था के अभाव में ये लाचार होकर गर्दनतोड सूद पर जमीन्दारो से कर्ज लेने पर मजबूर होते है। जमीन्दार सवाई और ड्योढा दर पर कर्ज देते है। आम तौर पर आषाढ और श्रावण में किसान अपने खाने और खेत में बोने के लिए अनाज कर्ज लेते है और माघ-फागुन मे धान की फसल तैयार होने पर सवाई और ड्योढा सूद की दर से कर्ज चुकाते है। खेती के लिए सिंचाई को कोई व्यवस्था नही है। वर्षा के दगा देने पर फसल मारी भी जाती है। ऐसी परिस्थिति में किसानो के ऊपर पुराना कर्ज तो रहता ही है, साथ ही नये वर्ष के लिए उन्हे फिर से कर्ज लेना पडता है। इस प्रकार कर्ज, सूद, कर्ज और दरसूद मिलाकर किसानो के ऊपर एक भारी बोझ बन जाता है जिसे चुका सकना उनको सामर्थ्य के बाहर की बात होती है और अन्त में उन्हें अपनी कुछ बची-खुची जमीन से भी हाथ धोकर जमीन्दारो की गुलामी करने को मजबूर होना पडता है।

कोई २१-२२ साल पूर्व लगातार कई वर्षो तक सूखा रहा। किसानो को बराबर कर्ज लेने की आवश्यकता पडती गयी। उपज नही होने के कारण किसान न तो कर्ज चुका सके और न मालगुजारी ही। कर्ज और बाकी मालगुजारी में किसानो की जमीनें नीलाम हो गयी। नीलामी में धाधली और अत्याचार की कोई इन्तिहा न रही। धाधली का हिसाब इससे सहज हं लगाया जा सकता है कि २० रुपये बाकी मालगुजारी में किसानो की इतनी जमीनें नीलाम हो गयी, जिसका मूल्य बाद

के वर्षो में २० हजार से ३० हजार रुपये तक होता। इस प्रकार ये जमीनें काठमाडू के राणाओ, थापाओ और गुरु-पुरोहितो के हाथ में चली गयी और किसान अपनी जमीन से बेदखल होकर सुकुमवासी बन गये।

इसके अतिरिक्त किसानो की जमीनें बाकी कर्ज और सूद चुकाने में महाजनो के हाथो मे भी गई है। किसानो के हाथ से जमीन निकलने का सिलसिला निरन्तर जारी है। सिंचाई और खाद की कमी के कारण उत्पादन घटता गया। सेरी, सलामी और चक्रवृद्धि व्याज के चलते छोटे किसानो को प्रतिवर्ष अपनी जमीन का एक टुकडा गवा देना पडता है। नेपाल तराई के किसानो पर हो रहे शोषण और लूट को स्पष्ट रूप से समझने के लिये नीचे के एक ज्वलन्त उदाहरण पर गौर फरमाइये।

एक किसान अगर एक बीघे में ४० मन अनाज उपजाता है तो उसका वितरण निम्न तरीके से होता है

२० मन मालिक को आधे बटाई की दर से। ४ मन मालिक को सलामी १० सेर प्रतिमन की दर से। ७ मन खेती में बीज और अन्य खर्च। २मन ३० सेर बीज और खर्च में लिये गए कर्ज के सूद में। १० सेर हटवे को तौलने में और १० सेर जमीन्दार के सिपाही को। बटाईदार किसान और उसके परिवार के लिए बाकी बचता है ५ मन ३० सेर। यह परिस्थिति उस समय की है, जब उपज ठीक हो, जो अक्सर नही होती। साथ ही अगर तिखुर की प्रथा है तो किसानो को एक तिहाई ही हिस्सा मिलेगा। नेपाल तराई मे कई जगह जमीन्दार दो भाग लेता है और किसानो को तिहाई हिस्सा ही मिलता है। इस व्यापक लूट के चलते किसान बेजमीन हो चुके हैं और होते जा रहे हैं।

खेती के अतिरिक्त सरकारी आय का एक अन्य साधन वहा का जगल है। नेपाल के जगलो में बहुमूल्य लकडिया है। इसकी भी पैमाइश नही कराई गयी है। अन्दाज है कि उत्तर प्रदेश के जगलो से दशगुना जगल नेपाल में है, किन्तु उत्तर प्रदेश को केवल जगल से उतनी आमदनी है जितनी नेपाल को सभी श्रोतो से भी नही आती। इसके अतिरिक्त नेपाल में जगल की सुरक्षा की भी कोई व्यवस्था नही की गयी है। वहा अभी भी नीलामी प्रथा के द्वारा जगल काटने के लिए ठेकेदार को दे दिया जाता है, जो निर्ममतापूर्वक जगल का सफाया ही कर देता है। जनतत्र के आरम्भ के दिनो में विर्तावालो के हाथ से जगलो को छीन कर उनका राष्ट्रीकरण कर दिया गया था किन्तु अब सुना जाता है, जगल फिर से विर्तावालो को दे दिया गया है।

अत सरकारी आय और जनकार्य की वृद्धि और विकास के लिए भी जमीन गौर जगल का सुधार और सरक्षण आवश्यक है।

बम्बई में भूमि सुधार

डा० जी० डी० पटेल

बम्बई राज्य मे मुख्यतया रैंयतवारी जमीन है। विहार, उत्तर प्रदेश, उडीसा तया अन्य राज्यो की तरह यहा चिरस्थायी प्रवन्ध के अन्तर्गत जमीन नही थी, लेकिन कुछ गैंर रैंयतवारी जमीन थी जिसे इनामदारी कहते हैं, खोटी, ताल्लुकदारी, मालिकी, मेहवासी, भागदारी, नरवादारी, सालसेट खोटी, कौली तथा कुतुवन के नाम से वहुत-सी व्यवस्थाए चली आ रही हैं। गुजरात में ताल्लुकेदार थे और कोकण में खोटी। गुजरात के अन्य जिलो में मालिकी, मेहवासी, भागदारी तया नरवादारी प्रथाए चालू हैं। कौली और कुतुवन प्रणालिया केवल कोकण में ही पाई जाती हैं। परगना कुलकर्णी वतन और वैयक्तिक या राजनीतिक तथा सरजाम के नाम पर पूरे राज्य में लोगो के नाम भूमि वन्दोवस्त की गई थी। देशी राज्यो के विलयन के पश्चात मुलगिराज, सलामी, वतन, अकादिया, तथा मातादारी व्यवस्थाओ एव वन्दोवस्तो का पता चला। जितने राज्य विलीन हुए उनकी जागीरदारी प्रथा के कारण समस्या और भी सश्लिष्ट हो गई चूकि इन जमीनो के मालिको को विविध प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। उनकी सामाजिक स्थिति एव वश परम्परा के मुताविक वे अधिकारी थे। हालाकि विहार की तरह की जमीन्दारी प्रथा वम्बई मे प्रचलित नही थी पर तरह-तरह की अन्य प्रथाओ के अवस्थित रहने के फलस्वरूप वम्बई की भूमि समस्या कम पेंचीदी नही थी। इसी कारण राज्य सरकार को अन्य जमीदारी-वाले राज्यो की तुलना में विलकुल दूसरे प्रकार का कानून वनाना पडा जो पृथक-पृथक और खड-खड है। यदि समस्त राज्य के लिए एक ही प्रकार का कानून वनाया जाता तव समस्या अधिक विकट हो जाती चूंकि स्थानीय या क्षेत्रीय प्रशासक उसे न तो समझते और न उसको ठीक प्रकार से कार्यरूप ही दे पाते।

भूमि समस्या के समाधान के लिए कानून दो दृष्टिकोणो को सामने रखकर वनाये गये (१) ताकि सरकार और रैंयत के वीच के मध्यस्थ खत्म हो जाय (२) सरकार एव रैंयतो के सवध सुदृढ हो। १९४८ में वम्बई टेनेन्सी ऐण्ड एग्रिकलचरल लैंड्स ऐक्ट पास किया गया जिससे मध्यस्थो एव रैंयतो के आपसी सवधो को स्थिर कर दिया गया। इस एक कानून के अलावा भिन्न-भिन्न किस्म की भूमि व्यवस्थाओ के निमित्त पृथक-पृथक कानून वनाये गये हैं, जिसका विवरण यो है :

(१) भागदारी और नरवादारी भूमि
(२) पचमहाल मेहवासी
(३) ताल्लुकदारी
(४) मालिकी
(५) खोटी
(६) परगना तथा कुलकर्णीवतन
(७) वातवा वजीफदारी अधिकार
(८) मालसीट इस्टेट
(९) वैयक्तिक इनाम
(१०) सरजाम और राजनीतिक इनाम
(११) अकादिया प्रथा
(१२) मातादारी
(१३) वडौदा वतन
(१४) मुलगिराज
(१५) कौली और कुतुवन
(१६) सलामी
(१७) जजीरा और भोर क्षेत्रो की खोटी प्रथाए
(१८) विलीन राज्यो की जागीरदारी
(१९) सर्विस इनाम

इन भूमि व्यवस्थाओ के सम्वन्ध में उपर्युक्त कानून वनाते समय सरकार ने उन्मूलन एव मुआवजा दोनो पर विचार किया है। अत इन कानूनो का क्रमिक अध्ययन करना वडा लाभदायक है। ये कानून तुरत उन क्षेत्रो में लागू कर दिये गये हैं। इन जमीनो के मालिको के समस्त अधिकार जो वे पहले इस्तेमाल में लाते थे एकदम छिन लिये गये।

इन प्रथाओ के उन्मूलन के अनन्तर इन्ही कानूनो के द्वारा रैंयतो को जमीन पर मालिकाना हक भी प्राप्त हो गया है। इन कानूनो के द्वारा भूमि का वितरण सामान्य स्तर पर हो गया और मालिको की, जो केवल रैंयतो की गाढी कमाई पर जीते थे, सख्या में एकदम कमी हो गई। इन कानूनो के द्वारा घरवेडो की रक्षा हो गई जिन पर अधिकार प्राप्त करने के लिए किसान को किसी प्रकार का कर या रकम नही चुकानी पडी। इनके अलावा

भी अन्य छोटे-छोटे रैयत थे जो विविध प्रकार के कर दिया करते थे उन्हे भी इन कानूनो के द्वारा मान्यता दे दी गई है। कुछ ऐसे रैयत भी थे जो जागीरदार, भागदार, ताल्लुकेदार आदि को बन्दोवस्ती लेकर कर दिया करते थे, इन्हें इन कानूनो द्वारा सरक्षण प्राप्त हो गया।

इन कई कानूनो द्वारा समस्त गावो एव जमीनो पर बम्बई सरकार का अधिकार हो गया है। इन कानूनो के बनाने का एकमात्र यह उद्देश्य रह गया है कि रैयत और सरकार के बीच कोई बीच की-दीवार न रह जाय। अब रैयतो से सरकार का बिलकुल सीधा सम्पर्क स्थापित हो जायगा। इस प्रकार की व्यवस्था से यह सुविधा हो गई है कि जन-कार्य के लिए सरकार भूमि निश्चित कर सकेगी। लेकिन मिलो और फैक्टरियो के निर्माण मे इन जमीनो को इन कानूनो के अन्तर्गत नही रखा गया है।

इन काननो के अन्तर्गत पेड, खान-खनिज आदि नही आते। अन्य प्रान्तो मे जैसे बिहार, उत्तर प्रदेश, उडीसा और मध्य प्रदेश आदि में इन तमाम चीजो पर भी सरकार का अधिकार जमीन्दारी उन्मूलन कानून के कारण हो गया है। जो जगल जमीन्दारो या उस कोटि के लोगो के अधिकार मे थे उन पर सरकार ने कब्जा नही किया है। लेकिन प्राइवेट जगलो को अरक्षित नही छोडा गया है। १९२७ के इडियन फौरेस्ट ऐक्ट में १९४८ मे सशोधन करके सरकार ने सभी जगलो पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। इस कानून के अनुसार बहुत से जागीरदारो को ऐसी नोटिस दे दी गई है कि वे जगल को नष्ट नही करें। लेकिन यह कानून राज्य की वन्य-सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए माकूल एव मौजू नही है। सरकार इसके लिए अलग कानन बनाने की वात सोच रही है।

अन्य राज्यो में खानो एव खनिजो पर भी सरकार ने अधिकार कर लिया है लेकिन वम्वई में ऐसा इन्तजाम नही है। सरकार ने ऐसा तुरन्त इसलिए नही किया चूकि तत्काल ही व्यवस्था के लिए अधिक रुपयो की आवश्यकता पड जाती। मुआवजे के निर्धारण में भी सरकार ने विविध भूमियो का अलग-अलग निश्चय किया है। जैसे इमानदारी को समस्त मूल्य देकर सरकार ले लेगी। इसी तरह बहुत सोच-विचार कर सभी शर्त्ते निश्चित की गई है। इस सम्वन्ध में किसी को किसी प्रकार की शिकायत हो तो उसे अपील करने का अधिकार भी दिया गया है। मुआविजा देने के सम्बन्ध मे तीन प्रकार के विशिष्ट निर्णय किये गये हैं।

(१) अगर किसी ऐसी जमीन पर सरकार अधिकार कर लेती है जो परती हो या वेकार हो लेकिन जिसमें खेती की जा सकती हो तब उस परती भूमि की कीमत से तिगुना से अधिक मुआविजा नही दिया जा सकता।

(२) अगर किसी जमीन के टुकडे का इस्तेमाल जन कार्य के लिए किया जाता हो या किसी एक व्यक्ति का अधिकार हो गया हो तो उसका मुआवजा भी गाव की वेजोती हुई जमीन की कीमत भर ही दिया जायगा।

(३) अगर किमी अधिकृत भूमि में पेड हो या मकान वने हुए हो तो उमके लिए वाजार दर के मुताविक ही मुआवजा दिया जायगा। वाजार दर या निर्द्धारण करते ममय अधिकारी १८९४ के लैंड एक्विजिशन ऐक्ट २३ (१) और २४ धाराओ को ध्यान में रखेंगे।

मालिको, वजीफदारो और अंकदारो को दिये जानेवाले मुआविजे की रकम तिगुनी निर्धारित की गई है।

मुआविजा का भुगतान वाडो में किया जायगा जिनपर ३ प्रतिशत सूद भी प्राप्त होगा। २० वर्षो में इसका भुगतान हो सकेगा। वाड क्रमश ५०, १००, २००, ५०० और १,००० रुपये के हैं। पचास रुपये से नीचे की रकम का मुआवजा नकद दे दिया जायगा।

भागदारी, नरवादारी, मेहवासी और मालिकी प्रथा उन्मूलन के लिये जो कानून बने हैं उन्हे तत्काल लागू कर दिया गया है। ३,४,६ से १० तक के उल्लिखित कानून अभी लागू किये जा रहे हैं। ११ से १५ तक को १९५३ के अगस्त से ही लागू कर दिये गये हैं। १६ से १९ तक को १९५३ के शरतकालीन अधिवेशन में स्वीकृत कर उसे समस्त राज्य में लागू कर दिया गया है।

इन कानूनो को अति शीघ्र लागू करने में भी तीन पहलुओ पर विचार कर लिया गया है

(१) सरकारी अधिकार हो जाने पर भूमि की व्यवस्था किस प्रकार की जाय।

(२) पैमाइश, बन्दोवस्ती और खतियानी हक किस प्रकार दिये जाय।

(३) मुआविजा कैसे और कितना दिया जाय और उसका भुगतान कितने समय में किया जाय।

अधिकृत जमीन्दारियो की सुव्यवस्था के लिए सरकार तहमातियो और पाटिलो की नियुक्ति कर चुकी है। इनके अतिरिक्त गांवोमें काम करनेवाले अन्य छोटे-छोटे कर्मचारी भी हैं। बहुत से गाव ऐसे है जहा भूमि की न तो पैमाइश हुई है और न वहा आखिरी तौर पर जमीन की बन्दोबस्ती ही हो सकी है। इस काम में देर तो लग ही सकती है। इस कार्य में व्यय एकमुश्त नही होगा और यह काम दस वर्ष से कम में नही पूर्ण होने को है। इस काम पर जो व्यय होगा उसका भार एकबारगी ही सरकार पर नही पडेगा। ठीक इसके विपरीत सरकार को वैज्ञानिक पैमाइश तथा सरक्षण के अनन्तर आय भी अधिक होगी।

यह सत्य है कि इन तमाम भूमि व्यवस्थाओ को समाप्त कर देने में सरकार को अधिक मुआवजा तो देना पडा है लेकिन इससे लाभ भी कम नही हुआ है और आमदनी भी बढ ही गई है। भूमि सुधार के बाद सरकार को कर प्राप्त करने में सुविधा हो गई है। अनुमान के मुताबिक सरकार को ४४३ करोड मुआवजा देना पडेगा लेकिन इससे आय प्रतिवर्ष १११ करोड बढ़ जायगी। किसानो को अपनी जमीन का ममत्व अधिक रहेगा। उत्पादन भी बढेगा और सामाजिक शाति भी रहेगी। अन्य प्रकार की भूमियो के सम्बन्ध में भी पूरे राज्य भर में लागू करने के लिए कानून बनाने का ध्यान सरकार को है। अतएव सारी जमीन पर सरकारी अधिकार हो जाने से ग्राम्य-विकास की योजनाए भी शीघ्र कार्यान्वित की जा मकती है।

अवतक वम्वई सरकार निम्मलिखित महत्त्वपूर्ण भूमि सुधार कानून वना चुकी है और अन्य कई बनाये जाने के क्रम में निर्धारित हैं। जो

राज्य विधायिकाओं से स्वीकृत किये जा चुके हैं उन पर राष्ट्रपति की सम्मति लिया जाना शेष रह जाता है

(१) भागदारी ऐण्ड नरवादारी टेन्योर एवोलिशन ऐक्ट, १९४९।

(२) पच महाल्स मेहवासी टेन्योर ऐक्ट १९४९ ।

(३) वम्बई मालिकी टेन्योर एवोलिशन ऐक्ट, १९४९ ।

(४) वम्बई ताल्लुकदारी टेन्योर एवोलिशन ऐक्ट, १९४९ ।

(५) वम्बई खोटी टेन्योर एवोलिशन ऐक्ट १९४९ ।

(६) वम्बई परगना ऐण्ड कुलकर्णी वतनस एवोलिशन ऐक्ट १९५०।

(७) वम्बई वातवा वजीफदारी राइट्स एवोलिशन ऐक्ट, १९५०।

(८) सालसीट इस्टेट्स (लैंड रेवेन्यू एक्वीजीशन) एवोलिशन ऐक्ट, १९५१ ।

(९) वम्बई परसनल इनाम एवोलिशन ऐक्ट, १९५२।

(१०) वम्बई मर्ज्ड टेरीटरीज (अकादिया टेन्योर एवोलिशन ऐक्ट १९५३ ।

(११) वम्बई मर्ज्ड टेरीटरीज (वडौदा वतन्स) एवोलिशन ऐक्ट १९५३ ।

(१२) वम्बई मर्ज्ड टेरीटरीज (वडौदा मुलगिराज टेन्योर) एवोलिशन ऐक्ट, १९५३ ।

(१३) वम्बई मर्ज्ड टेरीटरीज (मातादारी टेन्योर) एवोलिशन ऐक्ट, १९५३ ।

(१४) वम्बई कौली ऐण्ड कुतुवन टेन्योर एवोलिशन ऐक्ट, १९५३।

(१५) वम्बई मर्ज्ड टेरीटरीज (जागीरस) एवोलिशनबिल, १९५३।

(१६) वम्बई सर्विस इनामस (यूजफूल टू कम्युनिटी) एवोलिशन विल, १९५३।

(१७) वम्बई मर्ज्ड टेरीटरीज (जजीरा ऐण्ड भोर खोटी टेन्योर) एवोलिशन विल, १९५३।

(१८) वम्बई मर्ज्ड टेरीटरीज (वडौदा सलामी टेन्योर) एवोलिशन विल १९५३ ।

(१९) वम्बई सरजाम्म जागीरस ऐण्ड अदर इनाम्स आव पालिटिकल नेचर रिजम्पसन रुल्स, १९५२।

हमारी खाद्य-समस्या उत्पादन की दृष्टि से

श्री रामावतार लाल

राष्ट्रो के उत्थान-पतन, अन्तर्राष्ट्रीय युद्धो और मानवता के उत्तरोत्तर विकास मे जितना स्थान भोजन की समस्या का रहा है, उतना अन्य किसी समस्या का नही । राजनैतिक विप्लवो के मूल्य में पेट की ज्वाला ही प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से कार्यशील रहो है । और वर्त्तमान में तो भारत की नयी आजादी ही इस प्रश्न को लेकर आशकित है । है यह आश्चर्य की वात, किन्तु साथ ही एक कटु सत्य भी कि भारत जैसे देश में—जहा विश्व के किसी भी भखड से अधिक एकडो में कृषि होती है, जहा कृषि नामक अकेले व्यवसाय पर ६८ ९ प्रतिशत जनता निर्भर है, और जहा की कृषि कुल राष्ट्रीय आय का अकेले ४७ ६ प्रतिशत उत्पन्न करती है। लोगो की न्यूनतम भोजन-मात्रा के स्तर पर भी पर्याप्त खाद्यान्न नही उत्पन्न हो पाता। पुरानी कहावत जो आज भी उतनी ही सटीक उतरती है—कि "भारतीय कृपि जीवन-यापन का साधन-मात्र है, लाभ प्राप्ति का व्यवसाय नही", के वावजूद हमें भर पेट भोजन के लाले पडे रहते है। समस्या की विकटता तब और बढ जाती है जब हम इसके पुराने स्वभाव पर ध्यान देते हं। १८८० में अकाल कमीशन ने देश मे प्रतिवर्ष लगभग ५० लाख टन के भोजनाधिक्य का अनुमान लगाया था, किन्तु तबसे निरन्तर देश में खाद्यान्न का अभाव ही रहा है। १८९० और १९१२ के बीच हमने सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन कभी नही पैदा किया । विगत दोनो महायुद्धो के मध्यवर्त्ती काल में भी भोजन की कमी ही रही और द्वितीय महायुद्ध के पूर्व वर्मा-विभाजन के पश्चात हमारा भोजन आयात प्रतिवर्ष १५–२० लाख टन रहा है। युद्धोत्तरकालीन समय में तो समस्या और भी विकट होती गयी है क्योकि १९५२ तक देश के खाद्याभाव की मात्रा ४०–४५ लाख टन प्रति वर्ष रही है। भोजन हमारी प्राथमिक आवश्यकता है और इसके अभाव का प्रत्यक्ष प्रभाव देश के अति ही निम्न अथवा पशुवत जीवन यापन-स्तर, ऊची मृत्यु-दर, सक्रामक रोगो–विशेषकर क्षय की वृद्धि, प्राविक अकुशलता, विदेशी विनिमय के ह्रास तथा आर्थिक विकास की धीमी प्रगति पर इतना पड रहा है कि राष्ट्र की नयी आजादी, आन्तरिक और वाह्य-आभ्यन्तरिक दोनो स्तरो पर खतरे में हैं। राष्ट्र के लिए खाद्यान्न जैसी प्राथमिक आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए पर-निर्भरता अवाछनीय तो है ही, देश के भीतर भी इसके कारण अराष्ट्रीय भावनाओ को अकल्याणकारी प्रगति मिलने की सम्भावना है। बुभुक्षित कि न करोति पापम्। निस्सन्देह तब इस समस्या की जटिलता, कारणो की खोज और सुलझाव के आवश्यक उपायो का अध्ययन और सक्रिय प्रयत्न आज हमारी सबसे बडी समस्या है।

१९३९ के पहले हिन्दुस्तान कुछ मात्रा में विदेशो को अन्न निर्यात करता था और खाद्यान्न-निर्यात को इगित कर कुछ आर्थिक अचलो में यह भ्रामक विचार है कि द्वितीय महायुद्ध से पहले हमारी भोजन-व्यवस्था सन्तोषजनक थी । अस्तु, इस भ्रम का निराकरण अत्यन्त आवश्यक है । सर्व प्रथम, हिन्दुस्तान जितना निर्यात करता था उससे बहुत अधिक आयात करता था जहा १९३८–३९ में हमारे भोजन-आयात की मात्रा १६ ०३ लाख टन थी, वहा निर्यात-मात्रा केवल ७ ४२ लाख टन थी—दूसरे शब्दो में हमारे खाद्यान्न की आयात-मात्रा निर्यात की अपेक्षा ५३ ८ प्रतिशत अधिक थी । १९३६–३७ और १९४१–४२ के पचवर्षीय काल में हिन्दुस्थान प्रतिवर्ष औसतन लगभग १० लाख टन के अधिक ही खाद्यान्न दूसरे देशो से मागता रहा और परिणामस्वरूप आयात में प्राप्त भोजन के लिए उसे प्रति वर्ष लगभग १३ ५ करोड रुपयो का व्यय करता पडता था । दूसरे, हमारे भोजन-निर्यात की मात्रा इन वर्षों में लगभग नगण्य सी रही है १९३८–३९ में हमारे गेहू-निर्यात की मात्रा कुल खाद्यान्न-उत्पादन का केवल २ ८ प्रतिशत थी और चावल निर्यात का यह प्रतिशत केवल १ २ प्रतिशत था । तीसरे, भारत ने खाद्यान्न का जो कुछ भी निर्यात किया, उसका कारण इसका आधिक्य नही था, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय खाद्यान्न मूल्य का लोभ था यदि यह निर्यात आधिक्य से प्रेरित रहता तो इसी काल में हमारी आबादी के ३० प्रतिशत को अयथेष्ठ मात्रा से ही सन्तोष न करना पडता । चौथे, इन वर्षों का भोजन-निर्यात एक प्रकार से हमारी विवशता थी, जिस तरह इस काल मे व्यापार-सतुलन का धनात्मक पक्ष हमारी विवशता थी । न चाहते हुए भी इग्लेंड जैसे अपन साहूकार देश को

हमे भोजन का निर्यात करना ही पडता था। अस्तु, यह निर्विवाद है कि १९३९ से पहले भी भारत खाद्यान्न की अभाव-भावना से प्रताडित ही रहा।

हमारी खाद्यान्न-समस्या के मुख्यत दो पक्ष हैं मात्रात्मक और गुणात्मक, दूसरे शब्दो मे हमारी अविकल जनसख्या को यथेष्ट मात्रा में तो खाद्य सामग्री नही ही प्राप्त होती, जो कुछ मिल पाती है वह भी अत्यन्त ही निम्न कोटि की। प्रथमत जैसा हम अभी निर्देश कर चुके हैं १८९२ से ही भारत में खाद्यान्न का अभाव रहा है। प्रथम महायुद्ध के आरम्भ तक का खाद्यान्नाभाव का विस्तृत विवरण 'मूल्य-अनुसन्धान-समिति १९१४' की विज्ञप्ति से उपलब्ध है। दोनो युद्धो के अन्तरिम-काल की परिस्थिति भी नितान्त असन्तोषजनक रही है। १९३०-४० की अवधि के प्रत्यक वर्ष में हिन्दुस्तान में १२ प्रतिशत खाद्यान्न की कमी रही। अर्थ यह कि इन वर्षों में हम केवल ८८ प्रतिशत लोगो के लिए ही अन्न पैदा कर सके थे। शेष के लिए हमें विदेशी बाजारो पर निर्भर करना पडता था। १९३६-३७ के वर्मा-विभाजन से खाद्यान्न पर निर्भरता और भी वढ गयी क्योकि इस विभाजन से देश को लगभग १२-२० लाख टन चावल की प्रति वर्ष क्षति हुई। द्वितीय महायुद्धजनित कठिनाइयो ने इस खाद्यान्न-सकट के साथ गटवन्धन किया, जिसका प्रथम प्रहार १९४३-४४ के लोम-हर्षक वगाल-अकाल के रूप में मिला, जिसमें भूखी मानवता ने घुट-घटकर दम तोडा, इस भयकर क्षुधा-ज्वाला में लगभग १५ लाख व्यक्ति स्वाहा हो गये—द्वितीय महायुद्ध की कुल मृत्युसख्या का लगभग ४०-५० प्रतिशत। यह अकाल वर्षो से कार्यशील अन्न सकट का केवल वाह्य विस्फोट मात्र था। १९४१-४२ में अन्त होनेवाले पचवर्षीय काल मे प्रतिवर्प देश लगभग १० लाख टन अनाज वाहर से खरीदता रहा। १९४५-४६ मे केवल फसलो की वर्वादी के कारण हमें ७५ लाख टन भोजन-सामग्री की कमी रही, दूसरे शब्दो में देश के ६ करोड लोगो के लिए खाद्य सामग्री का आयोजन नही था। फिर भी अप्रैल और नवम्बर (१९४५) के वीच देश ने अग्रेजी सरकार की उदार-नीति के फलस्वरूप लगभग ४३ हजार टन चावल विदेशो को निर्यात किया। यद्यपि १९४७ से ही राष्ट्रीय सरकार इस समस्या की ओर जागरूक रहने लगी है, फिर भी १९४९-५२ के वीच हमारे खाद्याभाव की मात्रा औसतन लगभग ४०-४५ लाख टन प्रतिवर्प रहती आयी। १९४८-४९ के खाद्याभाव को ५३ लाख टन रखने पर और वर्त्तमान जन-सख्या वृद्धि दर रहने पर हमारी अभाव-मात्रा हर पाचवें वर्पान्त पर ५३ लाख से वढकर ९९ लाख और फिर वढ कर १२६ लाख टन पर पहुच जायगी। खाद्य सकट का सवसे आधुनिक अनुमान योजना आयोग ने दिया है।

योजना आयोग ने अन्नाभाव का विवरण निम्न प्रकार से दिया है—

(अ) (१) १९५० की कुल वास्तविक आवादी (वच्चे, जवान, स्त्री और वृद्धो को मिलाकर)—३५ ७ करोड।

(२) १९५० की (३५ ७ करोड आवादी को प्रौढ व्यक्तियो में वदलने पर) प्रौढ आवादी ४३० ७ करोड

(व) (१) १९४६ की कुल अनुमानित आवादी ३८ ३ करोड

(२) १९५६ की कुल अनुमानित प्रौढ आवादी ४९ ९ करोड

(१) प्रति प्रौढ व्यक्ति को प्रतिदिन १३ ६७ पौंड की अन्न-मात्रा रखने पर (पर १२॥ प्रतिशत वीज वगैरह के लिए छोड देने पर) १९५९ मे उपलब्ध अन्न-मात्रा ३९८ लाख टन

(२) उस साल ने अन्न-आयात को मिलाकर देश में कुल उपलब्ध अन्न मात्रा ४२७ लाख टन

(१) वीज आदि जोडकर १९५६ की अनुमानित प्रौढ आवादी के लिए आवश्यक अन्न की मात्रा

(१) प्रतिदिन प्रति प्रौढ को १३ ६७ पौंड मिलने पर ५२४ २ लाख टन

(२) प्रतिदिन प्रति प्रौढ को १४ ०० पौंड मिलने पर, ५३६ ९ „

(३) प्रतिदिन प्रति प्रौढ १५ ०० पौंड मिलने पर, ५७५ ३ „ „

(४) प्रतिदिन प्रति प्रौढ १६ ०० पौड मिलने पर, ६१३ ६ „ „

(१) (१९५० की तुलना में) १९५६ में अन्नाभाव की मात्रा,

(१) १३ ६७ पौंड की दर पर, ६९ ०४ लाख टन

(२) १४ ००पौंड की दर पर, ८१ ७० लाख टन

(३) १५ ०० पौंड की दर पर, १२० १० लाख टन

(४) १६ ०० पौंड की दर पर, १५८ ४० लाख टन

इस तरह कमीशन की राय में, प्रथम पचवर्षीय योजना की समाप्ति वर्ष में भी देश में अन्न की कमी (आवादी के प्रति प्रौढ व्यक्ति को १३ ६७ पौंड प्रतिदिन मिलने पर) लगभग ७० लाख टन की होगी और १४, १५ और १६ पौंड की उपलब्धि पर यह कमी क्रमश ८२, १२० और १५८ लाख टन हो जायगी। इस तरह योजना-काल के अन्त तक कम-से-कम १ करोड टन अन्न का उत्पादन तो वढना ही चाहिये और खाद्यान्न के अभाव की मात्रा न्यूनतम ७० लाख रहेगी ही।

किन्तु यह तो हमारे खाद्यान्न-सकट का केवल मात्रात्मक पक्ष है। गुणात्मक दृष्टि से भी हमारी भोजन-व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है। यही नही कि देशवासियो को भरपेट भोजन नही मिल पाता, वल्कि जो कुछ भी मिल पाता है, वह अत्यन्त ही निम्न कोटि का होता है उनमें जीवनी-शक्ति या पोपक तत्त्वो का वडा अभाव रहता है तथा सरक्षात्मक शक्ति की नितान्त कमी। अमेरिकन भोजन विशेप श्री एटवाटर की राय के अनु-सार, एक व्यक्ति को प्रतिदिन ३५०० कैलोरीज भोजन मे प्राप्त होनी चाहियें परन्तु एक औसत भारतीय को केवल १८०० कैलोरीज मिल पाती है। कट्रोल और राशनिंग के जमाने में तो नगर-जनसख्या के औसत व्यक्ति को प्रतिदिन केवल १२०० कैलोरीज उपलब्ध थी, जव राशन को मात्रा केवल १२ छटाक प्रतिदिन प्रति व्यक्ति थी। अन्य देशो की तुलना मे हमारे भोजन में उपलब्ध जीवनी शक्ति की अभाव मात्रा का अनुमान तव लगता है जव हम निम्नलिखित तालिका पर ध्यान देते हैं

देश	भोजन में प्रति व्यक्ति उपलब्ध जीवनी शक्ति
अमेरिका	३३०० कैलोरीज
इग्लैंड	३००० „
डेनमार्क	२४०० „
नार्वे	२४०० „
जेकोस्लोवाकिया	२८०० „
भारत	१८०० „

द्वितीय महायुद्ध के पूर्वकालीन समय में एक अनुसधान के आधार पर हमारी जनसख्या के केवल ३९ प्रतिशत लोगो को ही उच्च कोटि का भोजन यथेष्ठ मात्रा में मिल पाता था, ४१ प्रतिशत लोगो को निम्न कोटि का और शेष २० प्रतिशत लोगो को अति ही निकृष्ट कोटि का भोजन उपलब्ध था। डाक्टर आक्रायड की राय में देश के ९५ प्रतिशत निवासियो को समुचित प्रकार का भोजन नही मिलता था। १९४४ के आकडो के अनुसार यह ७० प्रतिशत है। दूध, साग-सब्जी, अडा, मछली-मास तथा अन्य पौष्टिक तथा सरक्षात्मक भोजनो की कमी तो एक खुला रहस्य है। उदाहरणत दूध का उपयोग हमारे यहा अन्य देशो के मुकाबिले मे मिन्नलिखित है —

देश	हर व्यक्ति का प्रति दिन दूध का उपयोग
न्यूजीलड	६७ औंस
डेनमार्क	४० ,,
इग्लैंड	३९ ,,
अमेरिका	३५ ,,
भारत	७ ,,

देहातो में तो एक भारतीय को औसतन १ छटाक भी प्रतिदिन दूध नही मयस्सर हो पाता, जवकि भारत जैसे देश में एक आदमी को न्यूनतम १६ औंस दूध अवश्य मिलना चाहिये। चीनी और गुड जैसे शक्करीय पदार्थों का उपभोग (प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष), इग्लैंड मे ११२ पौंड, अमेरिका में १०३ पौंड और जापान मे ३० पौंड है वहा भारत मे केवल २० पौंड है। इस तरह भोजन में पोषक तत्त्वो की कमी के सम्बन्ध में अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। थोडे में, हमारी भोजन समस्या के गुणात्मक पक्ष का परिचय, महावरेदारी में, यह है कि हमें भर पेट चना तो नहीं ही मिलता, जो मुट्ठी भर मिल पाता है वह भी सडा-गला।

और खाद्यान्न सकट के मात्रात्मक एव गुणात्मक पक्षो का सामूहिक प्रभाव देश की अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक पहलू पर वडा भयकर पड रहा है। भोजन जैसी प्राथमिक आवश्यकता की पूर्ति के अभाव में हमारा राष्ट्रीय जीवन यापन का स्तर पशुवत् होकर इतना नीचा है कि भोजन प्राप्ति और फाकाकशी के वीच की सीमा-रेखा लगभग अदृश्य जैसी है। जीवनी-शक्ति के अभाव में अधिकाश निवासी नाना प्रकार के सक्रामक रोगो के शिकार होते है और हमारी मृत्यु दर लगभग सभी सभ्य देशो की तुलना में अधिक है, जनता की जीवनावधि वहुत ही कम है —

देश	पुरुषो की जीवनावधि	स्त्रियो की जीवनावधि
न्यूजीलैंड	६५.५ वर्ष	६८.५ वर्ष
स्वीडेन	६४.३ ,,	६६.९ ,,
अमेरिका	६३.७ ,,	६८.६ ,,
आस्ट्रेलिया	६३.५ ,,	६७.२ ,,
स्विटजरलैंड	६०.७ ,,	६५.६ ,,
इग्लैंड	६०.२ ,,	६४.४ ,,
जर्मनी	५९.९ ,,	६०.७ ,,
फ्रास	५४.३ ,,	५५.९ ,,
भारतवर्ष	२६.९ वर्ष	२६.६ वर्ष

खाद्यान्न के अभाव का दूसरा भयानक कुपरिणाम यह है कि पेट की खाई को पाटने के लिए हम प्रतिवर्ष करोडो रुपयो का अन्न वाहर से मगाते रहे हैं। समय प्रवाह के साथ भोजनायात की मात्रा और मूल्य दोनो वढते ही गये हैं। स्वतत्रता प्राप्ति के वर्षों में तो समस्या और भी विकट रही है जिसका अनमान आयात सम्वन्धी निम्न तालिका से लग सकता है —

वर्ष	आयात मात्रा	मूल्य
१९४८	२८४१ हजार टन	१,२९,९२ लाख रुपया
१९४९	३७०६ ,, ,,	१,४४,६० ,, ,,
१९५०	२१२५ ,, ,,	८०,६० ,, ,,
१९५१	४७२५ ,, ,,	२,१६,३५ ,, ,,
१९५२	३८६४ ,, ,,	२,०१,०० ,, ,,
१९४८–५२	१७२६१ ,, ,,	७७२,२७ ,, ,,

इस प्रकार भारत ने स्वतत्रता प्राप्ति के केवल प्रथम पाच वर्षों में अन्नायात के लिए लगभग ७७२२७ करोड रुपया खर्च किया है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव युद्धोत्तरकालीन समय के लिये अत्यन्त उपयोगी विदेशी विनिमय के निरन्तर ह्रास पर पडता आया है। इस महान क्षति का अन्दाज हमें तव और स्पष्ट रूप से मिलता है जब हम इस बात पर गौर करें कि देश की चालू २३ वहुद्देशीय नदी घाटी-योजनाओ का कुल खर्च लगभग इसका आधा ही अर्थात् केवल ३८५ करोड रुपया है और उनसे लाखो एकड भूमि को अतिरिक्त सिंचाई की सुविधा मिलेगी, लगभग २७ लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न और १७ लाख किलोवाट अतिरिक्त विद्युत शक्ति का उत्पादन होगा। खाद्यान्न के आयात पर हमारा वह वैदेशिक विनिमय खर्च होता है, जिसका उपयोग हम कृषि और उद्योग सम्वन्धी कल-पुर्जों, मशीनो और अन्य आवश्यक सामग्रियो पर करते और देश में औद्योगीकरण की नीव ठोस करते। अस्तु, अन्न का आयात हमारे आर्थिक विकास की प्रगति में एक अवाछनीय रोडा बन रहा है। खाद्यान्न सकट के अन्य कुविपाक भी कम नही है। केन्द्रीय सरकार १९५२ तक जनता को सस्ता भोजन देने के लिए खाद्यान्न तकावी पर प्रतिवर्ष औसतन २०–२५ करोड रुपया खर्च करती रही है लगभग उसीके वारावर 'अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन' की प्रगति के लिए प्रतिवर्ष राज्य सरकारो को सहायता के रूप में देती रही है, अन्न प्राप्ति और अन्नाधिक्य-प्रान्तो के वोनस का खर्च भी करोडो रुपया रहा है और स्वय खाद्यान्न प्रवन्ध का प्रशासन खर्च लगभग १० करोड रुपया प्रतिवर्ष है। इस प्रकार खाद्यान्न का आयात तथा भोजन सम्बन्धी अन्य खर्च मिलकर केन्द्रीय सरकार की सालाना वजट आमदनी का लगभग १०–१६ प्रतिशत प्रतिवर्ष हजम करते रहे है।

और इन सव खर्चों का प्रभाव देश के विकासात्मक व्यय की कटौती पर पडता है। ऊपर दिये गये भोजन-सम्वन्धी व्यय (१) १९४८–५२ का आयात मूल्य ७७२२७ करोड रुपया और (२) केन्द्रीय वजट की आय का १०–१६ प्रतिशत प्रतिवर्ष वडी आसानी से आर्थिक विकास में

खर्च होता। स्वतत्र भारत की निर्माण-योजनाओ में खाद्यान्न-समस्या किस प्रकार वाधक हो रही है, इसका अनुमान इससे लगता है कि प्रथम पाच वर्षों के अन्न आयात का सामूहिक योग ७७२.२७ करोड रुपया जो (१) हमारी प्रथम पचवर्षीय योजना के कुल खर्च का लगभग ३७.४ प्रतिशत है, और (२) इस निर्माण योजना के प्रमुख मद सिचाई-शक्ति पर किये जाने वाले कुल ५१८ करोड रुपयो का डेढगुणा है। देश की उदर-पूर्त्ति का यह आवर्त्तक व्यय भावी निर्माण पर कुठाराघात कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारी भुगतान-व्यवस्था अस्थिर हो रही है और हमारा खाली पेट राष्ट्र के सम्पूर्ण आर्थिक जीवन को खोखला वनाता जा रहा है। हमारी पर-निर्भरता दूसरे राष्ट्रो पर इतनी वढ गयी है कि किसी भी आकस्मिक अन्तर्राष्ट्रीय जिच की अवस्था में देश में कितने ही वगाल अकालो की पुनरावृत्ति हो जायगी। ऐसी परिस्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि खाद्यान्न-समस्या के कारणो की सही छानवीन की जाय क्योकि इसके विना सुलझाव के प्रयत्न सफल नही हो सकते।

इसमें कोई सन्देह नही कि भारत का खाद्यान्न सकट "माग-पूर्त्ति के अस्थायी सन्तुलन से उत्पन्न समस्या नही, अपितु यह देश की उत्तरोत्तर वृद्धिशील जनसख्या तथा निरन्तर ह्रासमान अन्नोत्पादन के स्थायी असन्तुलन के केवल आत्म प्रकाशमात्र है।" अकाल कमीशन १८८० ने वताया था कि तव देश में लगभग ५० लाख टन खाद्यान्न का आधिक्य था परन्तु तव से अन्नोत्पादन सदैव आवादी वृद्धि से पीछे ही रहा है। १८९० और १९१२ के वीच जिम अनुपात में आवादी वढी, उस अनुपात में न तो कर्षित भूमि का क्षेत्रफल, और न तो खाद्यान्न फसलो का ही क्षेत्रफल वढा है, दूसरे शव्दो में इस अवधि में आवश्यक अन्न की मात्रा अधिक वढती गयी, अपेक्षाकृत देश मे उत्पादित अन्न की मात्रा से। इस तरह मोटे रूप से हमारे स्थायी खाद्यान्न-सकट का प्रारम्भ वर्त्तमान शताव्दी के आरम्भ-काल से ही होता है। और तवसे आवश्यकता और उत्पादन का असतुलन वढता ही गया है अन्नोत्पादन कभी भी आवादी-वृद्धि के साथ कदम नही मिला सका है, जो निम्न तालिका से स्पष्ट है —

वर्ष	जन सख्या दस लाख मे	प्रतिशत वृद्धि	अन्नोत्पादन, लाख टन में
१९११–'१२	२३१.६	———	———
१९२१–'२२	२३३.६	०.९ प्रतिशत	५४३
१९३१–'३२	२५६.८	१०.६ प्रतिशत	५०१
१९४१–'४२	२९५.८	१४.८ प्रतिशत	४५७
१९४९–'५०	———	———	४५५
१९५०–'५१	———	———	४४२
१९५१–'५२	३५६.८	१३.५प्रतिशत	४४५

हमारे स्थायी खाद्यान्न-सकट की समस्या मे एक तरफ वढती आवादी और दूसरी तरफ घटते अन्नोत्पादन के पारस्परिक असतुलन का कितना हाथ है, यह इस तालिका मे पूर्णरूपेण स्पष्ट है। वह असन्तुलन विशेप रूप से १९२१ से अग्रिम वर्षों में और विकटतर होता गया, क्योकि इसके पहले देश की आवादी की वृद्धि दर वहुत कम थी, परन्तु १९२१ से जनसख्या लगातार वढती गयी है और वह भी अधिक दर पर। १९२१ और १९५१ में हमारी जनसख्या २३३.६ लाख से वढकर ३५६.८ लाख हो गयी परन्तु अन्नोत्पादन की मात्रा वढने के वजाय ५४३ लाख टन मे घटकर ४४४ लाख टन पर आ गयी दूसरे शव्दो में १९२१ की तुलना में १९५१ की आवादी में जहा ५५ प्रतिशत की वृद्धि हुई, खाद्यान्न-उत्पादन मे २० प्रतिशत का ह्रास हुआ। कैसी विडम्वना है! १९०० और १९३० के ३० वर्षो में जवकि आवादी में ३४० लाख की वृद्धि हुई वहा खाद्यान्न क्षेत्रफल में केवल ४० लाख एकड की वृद्धि हुई अर्थात् एक आदमी पर लगभग १.८ एकड की वृद्धि। १९३० और १९४० के मध्यकालीन दशक में जहा जनसख्या में १५ प्रतिशत की वृद्धि हुई, खाद्यान्न क्षेत्रफल की वृद्धि केवल १.५ प्रतिशत रही, और खाद्यान्न-उत्पादन में तो वास्तविक रूप से ४ प्रतिशत की कमी हो गयी। कोई आश्चर्य नही यदि इस दशक के प्रत्येक वर्ष में, श्री राधा कमल मुखर्जी के मतानुसार, औसतन १२ प्रतिशत जनसख्या के लिए भोजन का कोई आयोजन नही था। यह भयानक प्रवृत्ति युद्धोत्तरकाल में भी कार्यशील रही है। १९४१ की तुलना मे १९५१ मे जहा आवादी मे १३.५ प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहा अन्नोत्पादन ४५७ लाख से घटकर ४४० लाख टन पर आ गया अर्थात् उसमे ३ प्रतिशत की कमी हुई।

फलस्वरूप यदि कभी खाद्यान्न फसलो के क्षेत्रफल मे प्रतिव्यक्ति वृद्धि हुई है तो उपज प्रति एकड कम हो होती गयी है और आवादी वृद्धि के साथ खाद्यान्न मात्रा घटती गयी है। १९३०–४० का दशक इसका ज्वलन्त उदाहरण है, जिसमे खाद्यान्न क्षेत्रफल में १.५ प्रतिशत की वृद्धि के वावजूद अन्नोत्पादन मात्रा में ४ प्रतिशत की कमी हो गयी, जवकि जन सख्या में १५ प्रतिशत की वृद्धि हुई। जनगणना के पिछले दशक के अनुसार भारत की आवादी वृद्धि दर १.२५ प्रतिशत या लगभग ४४–४५ लाख प्रतिवर्ष है, जिसके लिए देश में प्रतिवर्ष ४–५ लाख टन अतिरिक्त अन्न की आवश्यकता है। हिसाव लगाने पर ज्ञात होगा कि हमारी आवादी की वृद्धि दर प्रति घटा १२०० या प्रति मिनट लगभग ८ है। क्यो न भोजन समस्या विकट हो।

आवादी और अन्नोत्पादन के असन्तुलन से उद्भूत हमारी खाद्यान्न समस्या पर निरन्तर ह्रासमान प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न क्षेत्रफल पर दृष्टि डाला जा सकता है।

वर्ष	प्रति व्यक्ति खाद्यान्न भूमि क्षेत्रफल
१९११	०.८३ एकड
१९२१	०.८६ ,,
१९३१	०.७९ ,,
१९४१	०.६७ ,,
१९५२	०.७७ ,,

इस तरह जनसख्या प्रत्येक दशकान्त में बढती गयी है पर खाद्यान्न क्षेत्रफल प्रति व्यक्ति या तो घटता गया है या यथावत् रहा है। परन्तु इस क्षेत्रफल के यथावत् रहने या घटने से कोई आशका नही रहती, यदि हमारी कृषि की प्रति एकड उत्पादकता बढती रहती। यह सबको ज्ञात है कि भारतीय कृषि की प्रति एकड उपज दुनिया में सभी देशो से कम है, परन्तु इससे भी अधिक चिन्ताजनक बात यह है कि यह उत्पादकता वर्षानुवर्ष घटती जा रही है जो निम्नाकित तालिका से स्पष्ट है।*

'पेट पर पैसे का प्रहार' हमारी स्थायी खाद्यान्न समस्या का दूसरा कारण है। सोधी-सादो भाषा में इसका अर्थ है पिछले कुछ वर्षो में खाद्यान्न क्षेत्रफल के ह्रास पर मुद्रा-फसलो के क्षेत्रफल में वृद्धि। खाद्य फसलो में मुख्यतया चावल, गेहू, दाल और ज्वार-बाजरा व मक्का है तथा मुद्रा-फसलो में मुख्यत गन्ना, कपास, तम्बाकू और मूगफली को स्थान है। १९१३ से लेकर १९४१ तक खाद्यान्न-क्षेत्रफल में ह्रास होता गया है परन्तु मुद्रा फसलो के क्षेत्रफल में वृद्धि होती गयी है जहा कुल कर्षित भूमि में खाद्यान्न क्षेत्रफल का स्थान १९१४, १९२४ और १९४१ में क्रमश घटता हुआ ८१ ९ प्रतिशत, ८० ९ प्रतिशत और ८० प्रतिशत रहा, वहा इन्ही वर्षो मे मुद्रा-फसलो का क्षेत्रफल बढता हुआ क्रमश १८ १ प्रतिशत, १९ १ प्रतिशत और २० प्रतिशत था। इन ३० वर्षों में जहा खाद्यान्न क्षेत्रफल मे कठिनाई से ५ प्रतिशत मात्र की वृद्धि हुई, वहा कपास और जूट जैसी फसलो के क्षेत्रफल मे ५३ प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

अब तक हमने खाद्यान्न-मात्रा की ही कमी पर प्रकाश डाला है, परन्तु इसके साथ-साथ ऐसी प्रवृत्तिया भी कार्यशील रही है जो गुण की दृष्टि से भी हमारे अन्न-सकट को उग्रतर बनाती गयी है। १९१० से लेकर १९४० तक सदैव चावल और गेहू जैसी उच्च कोटि के खाद्य फसलो की उत्पादन-मात्रा कम होती गयी है परन्तु ज्वार-बाजरा वगैरह जैसी निम्न कोटि की खाद्य फसलो की उत्पादन-मात्रा में वृद्धि हुई है और जनता उच्चस्तरीय खाद्य के बदले निम्नस्तरीय खाद्यान्न को अपने भोजन में प्रधानता प्रदान करती गयी है। इन फसलो के निरन्तर कार्यशील उत्पादन सूचनाक निम्नलिखित है।‡

उत्तरोत्तर बढती जनसख्या तथा निरन्तर घटती खाद्यान्न उत्पादन मात्रा के स्थायी असतुलन के साथ कुछ और भी बाते हुई जिसने हमारे अन्न सकट को बढा दिया। इनमें १९३६–३७ के बर्मा-विभाजन और

* पौंड में प्रति एकड़ उत्पादन

	चावल		गेहू		
	बगाल	बिहार	सी० पी०	बम्बई	बगाल
१९३१—३२ से १९३५—१९३६	८९६	७३८	६६६	४२८	६२४
१९३६—३७ से १९४०—१९४१	८३७	६७६	५९०	३९४	५७७
उत्पादन—ह्रास	५९	६२	७६	३४	४७

‡ निम्न कोटि की अन्न-मात्रा की अपेक्षाकृत वृद्धि

	अन्न	१९१०–१९१५ (आधार–वर्ष)	१९१५–१९२०	१९२०–१९२५	१९२५–१९३०	१९३०–१९३५	१९३५–१९३८ (अन्तिम–वर्ष)	१९१०–१९३८
उच्च कोटि के अन्न	चावल	१००	११४०	१०८४	११७२	११०२	१०३५	+३५
	गेहू	१००	९६२	९३४	९३३	९७८	१०४२	+४२
निम्न कोटि के अन्न	ज्वार	१००	१५७४	१६७०	२१०८	२०७१	२०९७	+१०९७
	जो	१००	२२४२	२०२६	१७२२	१७३४	१५७१	+ ५७१
	बाजरा	१००	१४००	९०५०	१२६०	१२५०	१२५०	+ २५०
	मक्का	१००	११४०	१०००	१०६०	११२०	१०५०	+ ५०

१९४७ के पाकिस्तान विभाजन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वर्मा-विभाजन के कारण देश को प्रतिवर्ष १३–१५ लाख टन चावल की क्षति हुई। यह स्मरणीय है कि हमारे अनाज-सकट में चावल के अभाव की समस्या प्रमुख है। १९५२ तक चावल की कमी का अनुमान ५ से ७ लाख टन प्रति वर्ष रहा है, जिसका आयात मूल्य लगभग ४०-५०करोड रुपया हुआ। पाकिस्तान विभाजन ने हमारे पेट पर और वडा प्रहार किया। देश के वटवारा के कारण हमें ७५ लाख शरणार्थियो के लिए अतिरिक्त भोजन-व्यवस्था करनी पडी परन्तु इसके कारण हमें ७-८ लाख टन खाद्यान्न सामग्री का घाटा हुआ। पूर्वी वगाल का चावल प्रान्त, पश्चिमी पजाव का गेंहू क्षेत्र तथा दुनिया का सर्वकुशल नहर प्रान्त हमसे अलग हो गया। देश विभाजन के पश्चात भारत में अखडित हिन्दुस्तान की खानेवाली आवादी का ८२ प्रतिशत रह गया परन्तु कुल कर्षित भूमि का केवल ७७ प्रतिशत, कुल गेंहू क्षेत्रफल का ७० प्रतिशत, कुल चावल क्षेत्रफल का ७२ प्रतिशत, कपास क्षेत्रफल का ७७ प्रतिशत और पाट क्षेत्रफल का २३ प्रतिशत मात्र रह गया। इस प्रकार पाकिस्तान विभाजन का कुपरिणाम हमारे खाद्यान्न और कच्चे माल दोनो समस्याओ पर भयकर पडा। इस तरह वर्मा और पाकिस्तान के अलग होने से भारत के वार्षिक अन्न भाडार में २०-२२ लाख की क्षति पहुची।

उत्पादन मात्रा सम्बन्धी उपर्युक्त सूचनाको से स्पष्ट है कि १९१० और १९३८ के वर्षो में जहा चावल और गेंहू जैसे उच्च कोटि की उत्पादन मात्राओ में केवल क्रमश ३ ५ और ४ २ प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहा ज्वार, जी, वाजरा और मक्का जैसी निम्नकोटि की फसलो की उत्पादन मात्रा में क्रमश १०९ ७ प्रतिशत, ५७ १ प्रतिशत, २५ ० प्रतिशत और ५ ० प्रतिशत की वृद्धि हुई। फलस्वरूप हमारे दैनिक जीवन के आहार में पौष्टिक अन्न की जगह पर निकृष्ट भोजन का व्यवहार होता गया और जीवनी-शक्ति की कमी होती गयी।

साधारण रूप से व्यवस्थित भोजन के लिए अन्न के अतिरिक्त फल-शाक-सब्जी और कन्द तथा मास की आवश्यकता होती है। इनको मिलाकर यूरोप में प्रति व्यक्ति औसतन् १ ५ एकड कृषिभूमि पडती है, परन्तु भारत में यह क्षेत्रफल केवल ० ७७ एकड ही है। यदि भारत को अधिकाश शाकाहारी भी माना जाय तो सन्तुलित आहार के लिए फलो और तरकारियो का उत्पादन पर्याप्त होना आवश्यक है। परन्तु तथ्य इसके विरुद्ध है। १९४१ के आकडो के अनुसार कुल क्षेत्रफल की ८० प्रतिशत कर्षित भूमि में साग-सब्जी और फल आदि की खेती का स्थान केवल ४ ६ प्रतिशत है। यही नही समग्र रूप से देखने पर पौष्टिक आहार के लिए आवश्यक उन फलो और तरकारियो का उत्पादन भी कम होता गया है। जहा अखड भारत मे इनकी खेती का क्षेत्रफल लगभग ४०–४५ लाख एकड था १९२० से १९४० तक यही औसत कायम रहा—वहा १९४१ में यह कम होकर केवल ३९ लाख एकड रह गया—१९१३–१४ में तो शाक-सब्जी और कन्दो का सामहिक क्षेत्रफल ४७ लाख एकड के लगभग रहा।

ऊपर के सक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट है कि हमारा खाद्यान्न सकट स्थायी कारणो का ही प्रभाव है और इसमें निरन्तर वर्द्धमान जनसंख्या के साथ निरन्तर ह्रासमान अन्नोत्पादन का ही प्रमुख हाथ है। मात्रा और गुण दोनो दृष्टियो मे यही वात है। वर्मा विभाजन और पाकिस्तान वटवारा भले ही आकस्मिक कारण रहे हो। परन्तु अनिवार्य वढती आवादी, घटता अन्नोत्पादन, खेती की ह्रासमान उत्पादकता, एव पौष्टिक फसलो का अपर्याप्त स्थान व उत्पादन ही हमारी खाद्य समस्या के रहस्य हैं जो १८९० से आरम्भ हुई, १९२१ से उग्रतर हुई, वर्मा और पाकिस्तान विभाजन से जिसे प्रोत्साहन मिला और युद्धोत्तरकालीन भारत में अत्यन्त विकट होकर राष्ट्र की सर्व प्रथम समस्या वन उठी है।

इसके पूर्व कि हम खाद्यान्न सकट के निराकरण का व्यावहारिक अध्ययन करें, यह आवश्यक है कि तत्सम्बन्धी पिछले प्रयत्नो पर दृष्टिपात कर लें, क्योकि विगत नीति की सापेक्ष सफलता भावी नीति-निर्धारण में सहायक होगी। जैसा पहले कहा जा चुका है, भारत की खाद्य समस्या वहुत पुरानी है परन्तु लगभग द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ तक वही भ्रामक मत प्रचलित था कि हमारे यहा भोजन समस्या है ही नही। फलस्वरूप एक अविकल योजना के रूप में सरकार की तरफ से कोई प्रयत्न नही किया गया। विनाशकारी युद्ध की प्रगति में रत ब्रिटिश सरकार वगाल अकाल की विभीषिका की ओर भी लगभग उदासीन ही रही। इसके सिवा कि १९४२–४३ में केन्द्र मे खाद्यविभाग की स्थापना हुई और खाद्यान्न-नीति समिति ने कुछ सुझाव उपस्थित किये, कोई ठोस कदम इस दिशा में नही उठाया गया। यद्यपि 'अधिक अन्न-उपजाओ' आन्दोलन का श्रीगणेश १९४३ में ही किया गया था परन्तु इसकी प्रगति स्वतत्र राष्ट्रीय सरकार के तत्त्वावधान में ही हो सकी, क्योंकि पाकिस्तान के विभाजन से सरकार इधर अधिक जागरूक रहने लगी। इस सम्वन्ध मे किये गये सरकारी प्रयत्नो को हम निम्नलिखित खडो में देख सकते है।

(अ) अधिक अन्न उपजाओ-आन्दोलन (१९४३ से १९४७), १९४३ में आरम्भ हुए इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य था (१) तालाव, कुआ, वाध और ट्यूववेल वगैरह से सिचाई की अतिरिक्त सुविधा प्रदान करके, (२) साधारण और केमिकल खादो के उपयोग से (३) वजर भूमि उद्धार योजनाओ से खेती में विस्तार करके तथा (४) उच्च कोटि के वीज के प्रचार से अधिक खाद्यान्न उत्पादन करना। सरकार ने वीज, खाद वगैरह के प्रवन्ध व वितरण तथा वजर भूमि उद्धार वगैरह के लिए आशिक आर्थिक मदद द्वारा खेतिहरो को काफी प्रोत्साहन देने का प्रयत्न किया। इस आन्दोलन के अन्तर्गत सरकार की ओर से ४ २ लाख टन अमोनियम सल्फेट नामक रासायनिक खाद, ३२१ लाख टन कम्पोस्ट, ४८ ४ लाख टन खली तथा ४ लाख टन अच्छे वीज का खेतिहरो के बीच वितरण किया गया। सिचाई के लिए ६४२१७ साधारण कुए खुदे, ४१७ नल-कूप गडे, ३००० तालावो का प्रवन्ध हुआ तथा छोटी-वडी लगभग २२००० सिचाई की योजनाए पूरी की गयी। किन्तु लाखों रुपयों के व्यय और ४-५ वर्षो की अवधि के पश्चात भी आन्दोलन से कोई विशेष लाभ न हो सका। इसके कारण कुल केवल ९० लाख एकडो में खेती का विस्तार हुआ और खाद्यान्न के उत्पादन में केवल २० लाख टन की वृद्धि हो सकी। उत्पादन में केवल २० लाख टन की वृद्धि हो सकी। १९४३–४७ के पाच वर्षो में आन्दोलन की प्रगति के लिये केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारो को कुल

लगभग १५ करोड रुपयो की सहायता दी जिसमे ६॥ करोड रुपये कर्ज और ८॥ करोड रुपये अनुदान के रूप में दिये गये थे।

(व) खाद्यान्न की आत्म-निर्भरता योजना—अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन की धीमी प्रगति को देखकर १९४७ से इसके स्वरूप को वदला गया और इसे व्यापक रूप देकर योजना में परिणत करने का प्रयत्न किया गया और १९५१ क मार्च तक इसके द्वारा देश को खाद्यान्न के सम्बन्ध मे पूर्णरूपेण स्वावलम्बो बनाने का लक्ष्य रखा गया परन्तु बाद में इस लक्ष्य को बढाकर १९५५ मार्च तक कर दिया गया। खाद्यान्न की इस आत्मनिर्भरता पचवर्षीय योजना का कुल व्यय २८२ करोड रु० रखा गया तथा मार्च १९५२ तक ४४ लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया गया—जिसमें ३६ लाख टन खुली खेती से, ३ लाख टन बजर भूमि उद्धार से, २८ लाख टन नल कूप सिंचाई से तथा २२ लाख टन ईख-क्षेत्रफल के एक भाग को भोजनोत्पादन में लगाने का निश्चय किया गया। इस योजना की मुख्य विशेषताए हैं (१) केन्द्रोय ट्रैक्टर सस्था की व्यवस्था, जिसका मुख्य काम है बजर भूमि उद्धार, (२) केला, पपीता तथा साग-सब्जी जैसे दूसरे खाद्यान्नो के उत्पादन को प्रोत्साहन और (३) लगभग ६२ लाख एकड बजर भूमि का उद्धार। विशेष बात इस योजना को यह थी कि इसमें प्रयत्न और लक्ष्य में अधिकतम सामजस्य लाने के लिये एक-एक वर्ष के अलग-अलग लक्ष्य निश्चित किये गये। इस योजना के फल कुछ उत्साहवर्द्धक रहे। १९४९–५० और १९५०–५१ में क्रमश ८ लाख और १४ लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न का उत्पादन हुआ, परन्तु चूंकि १९५१–५२ में प्राकृतिक कोप के कारण लगभग ८–९ लाख टन की बर्बादी हुई, इस कारण वास्तविक अतिरिक्त उत्पादन वृद्धि केवल १४ लाख टन ही रही। इसी बीच १९५० में आवश्यकता महसूस हाने पर एकीकृत उत्पादन योजना के द्वारा अन्नोत्पादन के साथ-साथ कपास और पाट के उत्पादन वृद्धि की भी योजना अपनाई गयी।

(स) अधिक अन्न उपजाओ—आन्दोलन जाच समिति (१९५२)–युद्धकालीन १९४३ से लेकर १९५०–५१ तक सरकार ने कुल लगभग ६७५ करोड रुपया अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन पर खर्च किया परन्तु फिर भी सफलता सन्तोपजनक नही रही क्योकि १९४९–५१ के दो वर्षो के लिए निश्चित २७ लाख टन अतिरिक्त अन्नोत्पादन लक्ष्य में केवल ५२ प्रतिशत अर्थात् १४ लाख टन ही प्राप्त हो सका। फलस्वरूप सरकार ने फरवरी १९५२ में खाद्यान्न उत्पादन योजना की प्रगति को जाच और आवश्यक उपयोगी सुझावो के लिए श्री कृष्णमाचावी को अध्यक्षता में जी० एम० एफ० इन्क्वायरी कमिटी की स्थापना की।

समिति ने आन्दोलन की धीमी प्रगति के कारणो पर प्रकाश डालते हुए वडे उपयोगी सुझाव पेश किये ... समिति की राय मे अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन ... अथवा असफलता के प्रधान कारण हो रहे ... ग्रामीण ... जीवन के केवल एकागी पक्ष ... यह ... आधार पर सगठित था। ... प्रगति के लिए आन्दोलन के सगठन का सुझाव देकर इस बात पर जोर दिया है कि इसके द्वारा ग्रामीण जीवन के सर्वांगीण फसल में समुन्नति लाने का प्रयास किया जाय। इसके लिये समिति ने (१) अधिकतम १० वर्षो की अवधि मे ही ग्रामीण विस्तार सेवा योजना की सिफारिश की है तथा (२) आन्दोलन को स्थायी अथवा दीर्घकालीन आधार पर सगठित करने का सुझाव दिया है—जिसका मुख्य कार्य हो खेतो कला का विकास, व्यापक प्रचार एव प्रसार, लघु सिंचाई योजनाओ पर जोर और खाद्यान्न तथा खेती मत्रालय पर पचवर्षीय योजनागत व्यय के अतिरिक्त लगभग १० करोड रुपयो का प्रतिवर्ष अतिरिक्त व्यय। केन्द्रीय सरकार ने लगभग सभी सुझावो को स्वोकार किया है। स्मरण हो कि १९५३ अक्टूबर में उद्घाटित स्थायी राष्ट्रीय (विशेषकर) ग्रामीण विस्तार सेवा योजनायें विगत अधिक अन्न उपजाओ आन्दालन के ही विकसित रूप हैं।

(द) खाद्यान्न का आयात–अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन की प्रगति से स्पष्ट है कि इसके द्वारा राष्ट्र का खाद्यान्नाभाव कभी भी पूरा नही हो सकता। फलस्वरूप सरकार १९४८ से ही विदेशो से अन्न मगाती रही है। पीछे हम इनका विस्तृत विवरण दे चुके हैं, जिसके अनुसार राष्ट्र ने १९४८ से १९५२ के पाच वर्षों में कुल लगभग १७३ करोड टन खाद्यान्न का आयात किया और इसके लिए लगभग ७७३ करोड रुपये का व्यय किया।

(य) नियत्रण-राशनिग, अन्न-वसूली व वितरण, खाद्यान्न का सुरक्षित भाडार तथा विनियत्रण खाद्यान्न की कमी के कारण देश में नवम्बर १९४७ में पूर्ण खाद्यान्न नियत्रण था। परन्तु पुण्यस्मृति महात्मा गाधी के दबाव तथा १९४८ की भावी उत्पादन मात्रा के अच्छे भविष्य की आशा पर दिसम्बर १९४७ में सरकार ने क्रमिक विनियत्रण की नीति अपनायी। १९४८ के लिए सुनहरे दृश्य उपस्थित किये गये। परन्तु घटना-चक्र ने आशाओ पर पानो फेर दिया और क्रमिक विनियत्रण-नोति ने जुलाई-अगस्त १९४८ में आम जनता के लिये भोजन की समस्या बडी विकट कर दिया। फलस्वरूप १९४८ दिसम्बर में पुन नियत्रण लागू किया गया। अभावग्रस्त क्षेत्रो और आधिक्यवाले क्षेत्रो के बीच यथाशक्ति समुचित सम्पर्क स्थापित किया गया तथा सुरक्षित अन्न-भाडार को ३०००० टन से बढाकर दिसम्बर १९४८ तक ९०,००० टन करने का निश्चय हुआ। तब से १९५२ अक्तूबर तक नियत्रण ही कायम रहा। इसके पश्चात राष्ट्र भर में विभिन्न राज्यो को पुन विनियत्रण की ओर अग्रसर होने की छूट मिली। इस दिशा में यह आधुनिकतम खाद्यान्न नीति है जिसे नियत्रण मे विनियन्त्रण कहा जा सकता है क्योकि मोलिक नीति ... की है परन्तु कुछ ढीलापन के साथ—जैसे अन्तर्प्रान्तीय अन्न ... प्रतिबन्ध के रहते हुए भी अन्तर्प्रान्तीय अन्न की खरीद परन्तु ... पर, तथा अतिथि स्वागत पर प्रतिबन्ध रहते हुए भी स ... तथा खुले बाजार के साथ-साथ सरकारी उचित मूल्य ... की यह ... नीति परिस्थितियो का ... रही है। ... पिछले साल की अपेक्षा न ... अच्छी है

तथा सरकार का सुरक्षित अन्न-भाडार भी जनवरी १९५२ मे १३ ३ लाख टन से वढकर जून १९५२ में ३३ १ लाख टन पर पहुंच गया और १९५३ में अब तक इस भाडार की स्थिति सरकारी घोषणाओ में काफी सन्तोषजनक वतायी जा रही है। इसके अतिरिक्त, जैसी आशा की गयी थी अन्नोत्पादन क्षेत्र में भी काफी सफलता मिली है। अन्न फसलो का क्षेत्रफल वढ गया है। विनियत्रण-जनित आरम्भिक मूल्य वढने से किसान को प्रेरणा मिली है क्योकि १९५१ की अपेक्षा १९५२ के खरीफ क्षेत्रफल में लगभग ६५० लाख एकड को वृद्धि हुई है तथा लगभग सभी राज्यो में खाद्यान्न का उत्पादन वढा है।

(क) प्रथम पचवर्षीय योजना में खाद्यान्न उत्पादन म सवसे अधिक महत्त्व कृषि को और उसमें भी खाद्यान्न उत्पादन को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। खेती विस्तार, घनी खेती, वजर भूमि-उद्धार, रासायनिक खाद, अच्छे वीज वगैरह की सहायता से १३ ७६ पौंड प्रति वयस्क की दर पर १९५५–५६ तक देश को भोजन के सम्बन्ध में स्वावलम्वी वनान का सकल्प है। योजना के अतिम वर्ष तक निम्नलिखित विकास प्रगति अतिरिक्त रूप से प्राप्त होगी —

अतिरिक्त सिंचाई सुविधा १९० लाख एकड में जिसमें केन्द्रीय ट्रैक्टर सस्था १४ लाख एकड, विभिन्न राज्य १२ लाख एकड और सहायता प्राप्त किसान ४८ लाख एकड वजर भूमि का उद्धार करेंगे।

वजर भूमि उद्धार .	७४ लाख एकड में
यान्त्रिक खेती	२४ लाख एकड में
वाध, जल निकासी आदि से खेती विकास	३० लाख एकड की
खादो (रासायनिक) का उपयोग	३ लाख एकड की

और इस तरह खाद्यान्न उत्पादन को मिलाकर कृषि पर इस योजना के कुल व्यय का लगभग ३८ प्रतिशत खर्च होगा केवल खाद्यान्नोत्पादन पर लगभग १४५ करोड रुपया। इस पर १९५५–५६ तक प्रतिवर्ष लगभग ७६ लाख टन अतिरिक्त अन्न का उत्पादन होगा—जिसमें चावल की मात्रा ५४० लाख टन, गेहू की २० लाख टन, चना एव दूसरी दालो की १० लाख टन तथा ज्वार-वाजरा वगैरह की ६ लाख टन होगी। विभिन्न साधनो से कुल ७६ लाख टन खाद्यान्न प्राप्ति का विवरण इस प्रकार है —

साधन	अतिरिक्त खाद्योत्पादन
वृहत सिचाई	२००८७ हजार टन
लघु सिंचाई .	२३८४४ „ „
वजर भूमि उद्धार एव विकास	१५१२५ „ „
रासायनिक एव देशी खाद .	११४७९ „ „
विकसित वीज	५५६६ „ „
कुल योग	८११० १ हजार टन
ऋण (–) मुद्रा फसल उत्पादन	५००० हजार „
अन्तिम शुद्ध खाद्यान्न उत्पादन .	७६१० १ „ ,
अर्थात्	७६ लाख टन

सरकारी विज्ञप्तियो और वर्त्तमान में खाद्यान्न मूल्य तथा मात्रा पर घ्यान देने मे ज्ञात होता है कि देश ने खाद्यान्न-स्तर पर ठोस प्रगतिशील कदम उठाया है। १९५२ में ही केन्द्रीय सरकार के पास सुरक्षित अन्न भाडार मे पर्याप्त खाद्यान्न था, जिससे क्रमिक विनियत्रण की नीति अपनाई गयी। अप्रिल १९५३ में खाद्यान्न मत्री श्री रफी अहमद किदवई के अनुसार, अब हमारी भोजन समस्या लगभग सुलझ सी गयी है। हमें १९५४ में १० लाख टन से अधिक गेहू के आयात को आवश्यकता नही होगी—निश्चित ही यह अत्यन्त आशाजनक स्थिति थी क्योकि हमारे गेहू-आयात की मात्रा पिछले वर्षो १९५१, १९५२ और १९५३ में क्रमश ४७ लाख टन, ३९ लाख टन और २० लाख टन थी। श्री पजावराव देशमुख के मतानुसार देश मे दो वर्षो १९५३–५४ मे चावल का आयात दुःस्थिति के कारण नही वल्कि अन्न भाडार को अत्यधिक ठोस करने के लिए किया गया। १९५२-५३ में चावल, गेहू तथा अन्य खाद्यान्नो की फसल अत्यन्त सन्तोषजनक रही। पजाव ने १९५२ के ३५००० टन चावल की अपेक्षा १९५३ में १,२५,००० टन चावल का आयोजन किया है और १९५३–५४ में इसकी मात्रा के २ ३ लाख टन पूर्ण हुआ है। १९५२–५३ में भारत में अवतक अधिकतम चावल अर्थात् २३४ लाख टन चावल का उत्पादन हुआ, १९५३–५४ के लक्षण और भी सन्तोषजनक दीखे। १९४५–४७६ से लेकर, अवतक देश में गेहू का उत्पादन १९५२–५३ में अधिकतम अर्थात् लगभग ६७ लाख टन हुआ है। जी और मक्का में भी १९५२–५३ में अधिकतम उत्पादन अर्थत् क्रमश २६ ६ लाख टन और २ ६ लाख टन हुआ था। लगभग सभी राज्यो मे खाद्यान्न उत्पादन मे वृद्धि हुई और १९५१ को अपेक्षा १९५२ के खरीफ खाद्यान्न क्षेत्रफल मे कुल मिलाकर लगभग ६५० लाख एकड की वृद्धि हुई है।

ऊपर के विवरण से यह ज्ञात होता है कि हमारी खाद्यान्न समस्या का हल लगभग निकल चुका है, परन्तु ऐसा सोचना सर्व प्रथम असगत होगा और दूसरी, हमारी समस्या सम्वन्धी कुछ निहित कठिनाइयो की ओर से मुह मोडना होगा। प्रथमत उज्वल भविष्य की आशा १९५३-५४ की खाद्यान्न मात्रा की भावी सम्भावना पर आधारित है, दूसरे १९५२–५३ के उत्पादन को तुलना १९५१–५२ के उत्पादन से की जाती है, जो वर्ष (अर्थात् १९५१–५२) भारतीय कृषि का साधारण नही अति ही दुखदायी वर्ष था, तीसरे (जैसे सरकारी विज्ञप्तियों में आजकल वहुधा देखा जाता है) वास्तविक कार्य-सम्पादन और प्रकाशित विवरण में पर्याप्त विमुख अन्तर की ऊची सम्भावना है, चौथे अनुमान प्रति वयस्क के प्रतिदिन की न्यूनतम खाद्यान्न मात्रा (केवल १३ ६७ औंस) पर आधारित है। और अन्तत इसमें पौष्टिक भोजन-तत्त्व को लगभग नही के वरावर स्थान है।

अस्तु, यह कहना कि १९५२–५३ मे आगे हमारा खाद्यान्न-भविष्य अति ही उज्जवल है, सर्वथा सत्य नही। ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि हमारी खाद्यान्न समस्या के मूल में वढती आवादी और घटते उत्पादन का असन्तुलन नामक स्थायी कारण काम करता है। अव भी इस असन्तुलन की गहराई प्रशस्त है। ऐसी परिस्थिति में (१) दुखदायी वर्ष १९५१–५२ की तुलना म १९५२–५३ की अच्छी फसल तथा

(२) १९५३–५४ की सन्तोषजनक उत्पादन-मात्रा जैसी अल्पकालीन एव आकस्मिक प्रवृत्तियो पर विश्वास करके भोजन समस्या के स्थायी निराकरण की चर्चा दुराशामात्र ही होगी। ईश्वर करे हमारे प्रयत्न सफल हो, परन्तु वर्त्तमान मे और अधिक परिश्रम करना है। जिस देश में एक-तरफ आबादी-वृद्धि की दर प्रति मिनट ८ है और प्रतिवर्ष ४४–४५ लाख है और दूसरी तरफ खाद्यान्न-उत्पादन में क्रमागत उत्पादन-ह्रास-नियम की प्रवृति उग्रता से कार्यशील है, वहा खाद्यान्न समस्या का प्रधान हल है एक ओर खाद्योत्पादन-वृद्धि तथा दूसरी ओर आबादी वृद्धि पर नियत्रण।

खाद्यान्न में वृद्धि हमें विस्तृत खेती और गहरी खेती दोनो तरीको से लानी होगी। दोनो के लिए पर्याप्त सम्भावना भी है। जहा तक विस्तृत खेती का प्रश्न है निम्नलिखित तालिका काफी उपयोगी है, जिसका सम्बन्ध भारत के कुल भूमि-उपयोग से है —

उपयोग	क्षेत्रफल	कुल क्षेत्रफल
१ जगल	९३० लाख एकड	१५ प्रतिशत
२ खालिस जोतभूमि	२६६० " "	४३ "
३ वर्तमान परती	५८० " "	९ "
४ जोतयोग्य परती	९८० " "	१६ "
५ जोत के अयोग्य भूमि	९६० " "	१६ "
	६१५० " "	१,००००

अर्थात् वर्त्तमान में हम अपनी भूमि के केवल ४३ प्रतिशत में खेती करते हैं परन्तु उसको वढाकर हम आसानी से ५९–६० प्रतिशत कर सकते हैं। १९४३ से ही कार्यशील वजर भूमि-उद्धार योजनाओ का यही महत्त्व है। यद्यपि ग्रो० मो० फूड-कैम्पेन के अन्दर लगभग ५० लाख एकड भूमि का उद्धार हुआ है और प्रथम पचवर्षीय योजना मे ७४ लाख टन के उद्धार का आयोजन है, परन्तु हमे लक्ष्य और विस्तृत करने होगे, साथ ही उद्धार की प्रगति बढानी होगी क्योकि तत्सम्बन्धी पिछले प्रयत्न इस दिशा में लगभग दीर्घसूत्री रहे है। यदि ८८० लाख एकड वजर भूमि का उद्धार हो जाय तो वह हमारी खाद्यान्न समस्या के सुलझाव का एक स्थायी साधन होगा।

गहरी खेती अच्छी सिंचाई-सुविधा, उत्तम बीज, देशी और रासायनिक खादो के वैज्ञानिक उपयोग, विकसित औजारो के उपयोग तथा कीडे-मकोडो से सुरक्षा आदि—से भी हमारी खेती के प्रति एकड उत्पादन वढने की काफी सम्भावना है। सामान्यत हमारी फसलो के प्रति एकड उत्पादन में २० प्रतिशत से ३० प्रतिशत तक की वृद्धि लायी जा सकती है—२० प्रतिशत अच्छी खाद से, ५ प्रतिशत अच्छे बीजो के उपयोग मे तथा ५ प्रतिशत कीडे-मकोडे से रक्षा द्वारा चावल और गेहू की अवस्था मे यह सम्भावना क्रमश ५० प्रतिशत और १०० प्रतिशत है। इस सन्दर्भ में, जैसा कृष्णमाचारी समिति का सुझाव है, खाद्यान्न मूल्य की उचित सीमा का निर्द्धारण अत्यन्त आवश्यक है ताकि किसान को उत्पादन वृद्धि का प्रोत्साहन मिल सके। उत्पादन प्रतियोगिता के व्यापक प्रचार से इस प्रवृत्ति को पर्याप्त सफलता मिलेगी। परन्तु यहा सबसे अधिक महत्त्व है भूमि-सुधार योजनाओ द्वारा कार्य सम्पादन। जमीन्दारियो का उन्मूलन हो रहा है परन्तु उसके स्थान पर समुचित भूमि व्यवस्था का सर्वत्र अभाव है। चाहे भूमि वितरण हो, चाहे कोई भी वैकल्पिक भूमि व्यवस्था हो, उत्पादन वृद्धि के लिए किसान को (१) न्यूनतम भूमि मात्रा (२) भूमि पर स्थायी अधिकार (३) तथा शोषण का अन्त, ये तीन सुविधाए अवश्य देनी होगी। तत्पश्चात् सहकारिता पर आधारित खेती का सगठन।

परन्तु उत्पादन मात्रा की वृद्धि से कम महत्त्वपूर्ण पौष्टिक खाद्य का उत्पादन नही है। पिछले विवरण से यह स्पष्ट है कि किस प्रकार प्रथम महायुद्ध के पूर्वकाल से ही चावल और गेहू का क्षेत्रफल कुछ अशो में निम्न कोटि की फसलो के उपयोग में आ रहा है। इस अस्वास्थ्यकर प्रवृत्ति को रोकना अत्यन्त आवश्यक है, साथ ही सिंचाई-प्राप्त क्षेत्रो मे चावल व गेहू नामक खाद्यो का उत्पादन बढाना चाहिये। साग-सब्जी का क्षेत्रफल जो वर्त्तमान मे केवल ४६ प्रतिशत है—बढना वहुत जरूरी है क्योकि एक शाकाहारवहुल राष्ट्र के लिये इनका स्वास्थ्य-महत्त्व काफी है। इस सन्दर्भ में मास-मछली तथा अडा वगैरह के उपयोग के प्रचार का सरकारी कार्य बडा ही सराहनीय है। आज के युग में हमारे देश में लोगो की भोजन की आदत मे भी परिवर्त्तन लाना जरूरी है। चावल की अपेक्षा गेहू का अधिक उपयोग, साग-सब्जी तथा मछली-मास व अडा के उपयोग का व्यापक प्रचार सतुलित आहार के लिए वडा लाभप्रद सिद्ध होगा।

आबादी वृद्धि का नियत्रण हमारी खाद्यान्न समस्या का दूसरा स्थायी हल है। पिछले दशक में यह वृद्धि दर १ २५% प्रतिवर्ष अर्थात् १२०० प्रति घटा है। दूसरे शब्दो में भारत अपनी जनसख्या-वृद्धि की वर्त्तमान दर पर हर दसवें वर्ष एक इग्लैंड और हर छठवे वर्ष एक आस्ट्रेलिया बसा सकता है। मध्यवर्त्ती काल में भोजन-प्रशासन व्यवस्था का सुधार अत्यन्त आवश्यक है। जब तक देश पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर नही हो जाता है, हमें न्यून या अधिक मात्रा में नियत्रण व्यवस्था को रखना होगा। इस बीच सरकार के लिये सुरक्षित अन्न भाडार को काफी सुदृढ करना चाहिये। इस में हम सरकार के उन प्रयत्नो की सराहना करते हैं, जिनके द्वारा वह अन्य देशो से खाद्यान्न-समझौता करके अन्न भाडार को ठोस कर रही है। इनमे मुख्य है (१) १७ अप्रील १९५३ का अन्तर्राष्ट्रीय गेहू समझौता, जिसके अनुसार भारत का कोटा ४५ लाख टन का है, (२) १९५१ का बर्मा-चावल समझौता, जिसके अनुसार हमें प्रतिवर्ष बर्मा से ४ वर्षों तक ३५ लाख टन चावल प्राप्त होगा तथा (३) मार्च १९५३ का समझौता जिसके अनुसार हमें १५ लाख टन चावल मिलने का आयोजन है। खाद्यान्न समस्या के सफल एव स्थायी हल निकलने तक इस प्रकार का सरक्षात्मक आयोजन आकस्मिक परिस्थितियो के लिए परम अनिवार्य हैं।

भूमि का कायाकल्प

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

भारतवर्ष में प्रति वर्ष २ अरब ७० करोड एकड फीट पानी वादलो द्वारा वहुत मोटे अदाज मे इस प्रकार वितरित होता है —

(१) १३५ करोड एकड फीट पानी भाप वनकर उड जाता है, धरती गीली करता है, भूगर्भ में चला जाता है अथवा बह कर समुद्र में पहुच जाता है।

(२) वाकी १३५ करोड एकड फीट पानी भूमि से वह कर नदियो द्वारा समुद्र में पहुच जाता है अथवा झील व तालावो मे एकत्र होता है।

(३) इस १३५ करोड एकड फीट पानी मे से सिर्फ एक करोड एकड फीट पानी मनुष्यो और पशुओ के पीने एव अन्य कामो में आता है और ७॥ करोड के करीव सिंचाई के काम मे।

भारत मे ३१॥। करोड एकड भूमि जोती-वोयी जाती है। इसे सींचने के लिये हमे ४५ करोड एकड फीट पानी की जरूरत है।

यदि अगले दस वर्षो मे सिंचाई की हमारी छोटी-वडी सभी योजनाए सफल रूप से कार्यान्वित हो जाय, तो हमे १० करोड एकड फीट पानी और मिलने लगेगा। किन्तु तवतक हमारी जनसख्या ४० करोड और पशु सख्या २० करोड पर पहुच जायगी। इस आवादी के निजी उपयोग और भूमि की सिंचाई के लिए ५० करोड एकड फीट पानी की जरूरत होगी जवकि आज के अदाज से पानी मिल सकेगा सिर्फ १७॥ करोड एकड फीट।

१७॥ करोड एकड फीट पानी मे ४॥। करोड एकड की आज की सिंचाई वढकर ७॥ करोड एकड हो जायगी।

भारत की जनसख्या आजकल ३६। करोड है। १७॥ करोड पशु, ८ करोड भेडें-वकरी और ७ करोड वन्दर एव अन्य वन पशु हैं। १९६१ में हो जायेंगे क्रमश ४०,२०, ८॥। और ७॥। करोड।

आजकल हम ४॥ करोड टन खाद्यान्न उत्पन्न करते है। ८० लाख टन दाल चना और ३०–५० लाख टन अनाज विदेश से आयात करते है। जानवरो के लिए ७५ करोड टन घास-चारा निपजाते हैं। अगर केवल खाद्यान्न को ही ले तो वर्तमान आवादी एव जानवरो की उचित आवश्यकता की पूर्ति के लिए ६ करोड टन खाद्यान्न और एक अरव टन घास-चारे की जरूरत होगी। इसके अतिरिक्त १० लाख टन अनाज चाहिए वन्दरो एव अन्य जगली जानवरो के लिए भी। इस प्रकार दूसरे अन्य उपयोगी पशुओ के लिए भी हमें ७० लाख टन अनाज व २॥ करोड टन घास-चारे की कमी पड रही है।

इसी हिसाव से १९६१ की आवादी के लिये हमे ५ करोड ६० लाख टन खाद्यान्न तथा ११ करोड़ टन घास-चारा चाहिए और इसके ऊपर १० लाख टन अनाज वन्दरो तथा अन्य जगली जानवरो के लिए। इस जरूरत और अव की पैदावार के वीच के अन्तर को अपना उत्पादन वढाकर पूरा करना होगा। करीव १ करोड २० लाख टन अनाज और ३५ करोड टन घास-चारा और अधिक कैसे उपजाया जाय? यह एक वडी समस्या है।

(१) सिंचाई की नयी योजनाओ के अनुसार करीव २॥। करोड एकड भूमि सीची जा सकेगी और उससे ५० लाख टन अनाज ज्यादा-से-ज्यादा और पैदा हो सकेगा।

(२) यदि हमे जगलो और पेडो का पूरा लाभ उठाना है, तो ८ करोड ४० लाख एकड जगलो की जगह हमें चाहिए, १९ करोड एकड जगल। यदि हम १० वर्ष मे ३० करोड पेड भी लगायेंगे तो वे होंगे १० लाख एकड के वरावर ही। पेडो से फल-पत्ते मिलते है, ईधन मिलता है, जिससे गोवर की वचत खाद के लिए होती है, धरती में नमी कायम रहती है, मिट्टी वहकर नही जा सकती और उपजाऊ भूमि क्षय से वचती है। इन सवके फलस्वरूप करीव २॥ लाख टन अनाज की अधिक निपज होगी।

(३) खेती करने योग्य सारी भूमि ४० करोड एकड है, जिसमें से १२ करोड ३० लाख एकड भूमि की मिट्टी धुल जाती है, २२ करोड ४८ लाख एकड मे खेती होती है और ६ करोड २० लाख एकड वजर है ऐसी ही १ करोड ३० लाख एकड भूमि जिसे जोतने योग्य माना गया है, पर जो वजर पडी है, उसमें से केवल एक करोड एकड भूमि का ही निश्चय रूप से वोआ जाना विदित है। यदि इसे अगले १० वर्ष में जोत-वो लिया जाय, तो ३० लाख टन अनाज और मिल सकेगा।

इस प्रकार फिर भी करीब ४० लाख टन अनाज की कमी पड़ेगी और इसके अतिरिक्त दाल-चने और घास-चारे की। और यह कभी पूरी हो सकेगी तो उस ५ करोड से ७॥ करोड एकड भूमि के द्वारा ही जिसमें सिंचाई सभव होगी। उस भूमि में अच्छा बीज बोना होगा, आवश्यक खाद देनी होगी, उसका जीव-जतुओ से बचाव करना होगा, बरसात और सिंचाई का सही उपयोग करना होगा।

(४) इस प्रकार की घनी खेती से एक तिहाई टन प्रति एकड की साधारण निपज में एक तिहाई की वृद्धि सभव है अर्थात् प्रति एकड एक दशाश टन से कुल ५ करोड ऐसी भूमि में ५० लाख टन अधिक अनाज की आशा की जा सकती है।

लेकिन यह अनुमान भी पूरी तौर से विश्वसनीय नही है। पानी की कमी दूर हो जाने पर भी यह कैसे कहा जा सकता है कि हर जगह की उपज और खेती एक समान ही होगी। मान लीजिए येन-केन-प्रकारेण एक समान हो भी गयी तो सदा एक समान बनी ही रहेगी इसकी क्या गारटी है ?

तब इन सभावित कठिनाइयो से किस प्रकार रक्षा की जाय ? इसका एक ही उत्तर है और वह है खादो की उपयोगिता। प्रति-एकड भूमि में ८२० पौंड की उपज को १३०० पौंड करने के लिए १२ लाख टन गधक-क्षार, ८ लाख टन स्फुर अम्ल (सुपर फास्फेट), ७९ लाख टन मलवा और १७ लाख टन खली की आवश्यकता होगी।

यहा हम पशुधन के महत्व को भी नही भूल सकते। पशु भूमि की रक्षा के प्रमुख साधन हैं। गोमाता और नन्दी की पूजा के पीछे यही रहस्य छिपा है जिस पर हम गम्भीरता से विचार नही करते। हमारे देश में १३ करोड ४० लाख गायें और साड हैं। इसमें से साढे पाच करोड बैल हैं जो अन्नोत्पादन और सिंचाई कार्य में योग प्रदान करते हैं। इनका गोबर और इनकी हड्डिया तक भूमि को उपजाऊ बनाने में अत्यधिक सहायक होती हैं। हमारे पशुओ से हम एक करोड ८० लाख टन दूध प्राप्त होता है। प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में ५ औंस दूध पडता है जबकि प्रत्येक व्यक्ति को कम-से-कम १६ औंस दूध मिलना चाहिये। इस अभाव की पूर्त्ति तभी की जा सकती है जबकि हम उपयोगी पशुओ की रक्षा करना सीख लें। अनुपयोगी पशुओ को उपयोगी पशुओ से अलग रखना चाहिये, क्योकि उपयोगी पशुओ के लिए ही चारे का पहले से अभाव है।

शहरो की बढ़ती हुई आबादी से भी बडी-बडी समस्यायें पैदा हो गयी हैं। पानी का अभाव है और शहरी लोगो को बहुत पानी चाहिए। उनके स्वास्थ्य के लिए तमाम चीजो की आवश्यकता पडती है लेकिन बनावटी आदतो के कारण वे धरती को बहुत कम पानी लौटाकर देते हैं। साथ ही जो कुछ मलवा आदि एकत्र होता है उसका समुचित उपयोग भी नही होता।

शहरो मे लोग बडे-बडे कीमती मकानो में रहते हैं। अच्छी लकडी का सामान भी उपयोग में लाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कितने ही वृक्षो का दुरुपयोग हुआ और तालाबो आदि के निर्माण में जो पत्थर काम में आ सकता था वह न आ सका। ये बातें देखने में मामूली जान पडती हैं, लेकिन इनका बहुत बडा महत्त्व है।

देश मे अन्न की रक्षा और वृद्धि के लिए हमे अपनी आदतें भी बदलनी चाहिये। भोजन की आदतो का बदलना खास तौर पर जरूरी है।

सक्षेप में, हमें अपने जीवन-दर्शन का बीज फिर धरती पर बोना है। भूमि ग्रामो, और ग्रामीणो में नयी जिन्दगी लानी है आज यही हमारा धर्म होना चाहिए।

बिहार के जिन हिस्सो में सामुदायिक विकास योजनाए कार्यान्वित की जा रही है, उन क्षेत्रो के परिदर्शन से दर्शक पर अमिट छाप पड जाती है। हम देखते है कि स्वस्थ एव हट्टे-कट्टे ग्रामीण अपने को वस्तुत स्वच्छ एव रजक परिवेश मे पुनस्संस्थापित करते जा रहे है। अबतक, अविश्वसनीय एव अकल्प ग्रामीण सामुदायिक अर्थ व्यवस्था की ओर प्रगति हो रही है। यह भी सत्य है कि ग्रामस्तरीय कार्यकर्त्ताओ को ग्रामीणो को समझा-बुझाकर नये रास्ते पर लाने में पर्याप्त समय लगा है। पर, अब ग्रामीण सहयोगिता के आधारो को समझ गये है और प्रत्येक ग्रामीण कृतसकल्प हो चुका है।

पुरानी रुढिगत अध मान्यताए समाप्त होती जा रही है और नवादर्श पर सस्थापित ग्रामीण जीवन की नीव सुदृट होती जा रही है। हमारा समाज युगो से अलस था, अकर्मण्य था, अब उसी समाज में चेतना का सचार कर दिया गया है तथा जागरण की स्थिति प्राय पूरी हो चुकी है। यह सफलता सतत प्रयास के अनन्तर मिली है।

ग्राम्य मस्तिष्क रुक्ष था, अपरिवर्त्तित, लेकिन इसके विरुद्ध निश्चित प्रयास शनै शनै किये जाने लगे। उनकी रुझान इधर हुई तब ये न केवल मनोवैज्ञानिक स्तर प्रस्तुत हो गये है बल्कि जो कुछ भी कहा गया है उसे पूर्ण करने को पूरे उतावले दीखते है। ये पूर्ण अवविश्वासी नवादर्श प्राप्त करने के निमित्त अपने स्वार्थो को छोडने के लिए भी कमर कस चुके है।

इस सफलता के लिये सरकार को नये मुलाजिमो का कृतज्ञ रहना चाहिए। इन नये अफसरो ने आत्मा के समस्त बल से इस दिशा में अभियान किया। इन अफसरो ने गावो में जाकर वहा की स्थिति का अध्ययन किया, किसानो के दैनदिन जीवन की कठिनाइयो का सूक्ष्म अध्ययन किया, अप्रस्तुत जनता को प्रस्तुत किया। भारत का किसान ही पूरे समाज मे ऐसा वर्ग है जो केवल फसल के दिनो में ही श्रम करके वाकी समय मे सुख से आराम करता है।

सामुदायिक विकास अफसरो ने अपनी कठिनाइयो की वावत मुझे वतलाया है। वे पहले-पहल जब पैंट और कमीज पहन कर गावो में किसानो के वीच जाते थे तब उनका मखौल उडाया जाता था। गाव की जनता समझती थी कि इन अफसरो को गावो के कार्यो मे दखल नही देना चाहिए। लेकिन नवजवान अफसर तो स्वतत्र भारत की भावना से परिचित हो चुके थे। पैंट ऊपर उठाकर वे वाढ पीडित क्षेत्रो में भी गये। केवल इतना ही नही। वे गावो में रहे, सोये और खाया। अब किसान उन्हे नये भारत के नया साहव मानते है।

निम्नतम स्तर से नियोजन करने की भावना ग्रामीणो के मन में घर कर गयी है। अब सामूहिक कल्याण के आधार पर सोचने का क्रम द्रुत गति से घर करता जा रहा है। इस युग का ग्रामीण अब समझने लगा है कि उसका हित गाव के हित के साथ सलग्न है। सभी क्षेत्रो में नये वुनियादी स्कूल स्थापित कर दिये गये है। ग्राम पचायतो में अब मुकदमे का फैसला किया जाने लगा है। अत अशान्ति की आशकाए दिनोदिन कम होती जा रही है। सहयोग समितियो की स्थापनाओ से किसानो को गर्दनतोड सूदखोरो से मुक्ति मिलती जा रही है। सुधरे हुए वीज सुलभ होते जा रहे है। जापानी कृषि प्रणाली अब साधारण सी वात होती जा रही है और सिचाई के लिए पम्पो का इन्तजाम आम दृश्य हो गये है।

एक सरसरी नजर में गावो के जनबल, उत्पादन और जानवर देखे जा सकते हैं।

भौतिक प्रगति के साथ-साथ सास्कृतिक पुनर्जागरण भी परिलक्षित हो रहा है। सामाजिक शिक्षण केन्द्रो में न केवल शिक्षा ही दी जाती है बल्कि जनकलाओ तथा ग्रामीण आमोदो के स्वरूपो का निखार भी हो रहा है। छोटे-छोटे गावो में भी अब पार्क बनाने लगे है। ग्रामीण कला और दस्तकारी दोनो ही, नये स्वरूप ग्रहण कर रहे है।

आज यदि ग्रामीणो से बात की जाय तब उनकी रुचि का ठीक-ठीक पता चल जाता है। ग्रामीण राजनीति में दिलचस्पी उस स्तर पर लेता है जिस स्तर पर अन्य प्रजातत्र देश के लोग लेते है लेकिन उनकी आकाक्षा समृद्ध सुन्दरतम गावो के निमित्त अधिक रहती है। गावोकी सफाई बडे पैमाने पर हो रही है। सामुदायिक योजना के अन्तर्गत शायद ही ऐसा कोई गाव है जहा कूडा-कतवार जमा रहता हो। इन साफ-सुथरे गावो में जाने पर बिहार के किसी भी शहर के स्लमो का स्मरण हो जाता है और अब इन गावो की तुलना में शहरो की गदगी बुरी लगती है।

नई परिस्थितियो के अनुकूल बिहार जैसे पिछडे प्रान्त की महिलाए भी पर्दा छोडकर आगे बढ आई हैं। बच्चे के भविष्य की चिन्ता में गाव की स्त्रिया बद्ध परिकर हो गई है। जमीन्दारी उन्मूलन कानून पास हो जाने के कारण दबे-पिसे किसान सबल दीख पड रहे है। सम्मिलित परिवार के विघटन से, सभी जातियो में शिक्षा के प्रचार के कारण, नई प्रवृतिया जाग्रत हो गई है।

लेकिन इन प्रगतियो के अलावा एक चेतावनी भी है। जन साधारण के शत्रुओ की कमी नही है। गाव गदी राजनीति के अखाडे है। प्रबल राजनीतिज्ञ गावो में काम करने पर तुले हुए हैं। जाति और दल अभी है। देहाती समाज को इन दोनो शत्रुओ से रक्षा करने की आवश्यकता है। सदियो से गाव पिछडे हुए है और ग्रामीण समाज में परिवर्त्तन शीघ्र होने की सभावना बनी रहती है। ग्रामीणो को प्रगति के रास्ते पर निक्षिप्त रखने के लिए उचित एव पर्याप्त प्रेरणा देने की आवश्यकता है।

अफसरो, ग्रामस्तरीय कार्यकर्त्ताओ तथा औरो की अपेक्षा ग्राम-पचायतो को इस प्रगति के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। प्रत्येक पचायत प्रजातात्रिक केन्द्र की तरह कार्यरत है। बूढे लोगो को भी नये लोगो की कार्यकारी क्षमता पूरा विश्वास पैदा हो गया है और ये बूढे, जो प्रगति के बाधक माने जाते है, बिलकुल मानो बदल गये है। गावो में दायित्व वहन करनेवाले लोगो की अवस्था बीस से तीस वर्ष तक की है। ये नवजवान अन्य राष्ट्रो की प्रगति के साथ कदम मिलाने को उत्सुक रहते हैं।

सामुदायिक विकास योजनाओ के केन्द्र चम्पारण जिले के मलेरिया ग्रस्त दलदल में भी है और छोटानागपुर के जगली और पहाडी क्षेत्रो में भी तथा इन सभी वितरीत भौगोलिक अवस्थाओ के निवासियो के कल्याण के निमित्त कार्य त्वरित गति से बडे पैमाने पर हो रहे है। प्रत्येक इलाके के विपरीत ज्वलत आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक आदि समस्याए हैं। ठीक इसी प्रकार प्रत्येक क्षेत्र के लोगो की श्रम-शक्ति में भी पर्याप्त अन्तर है, स्वभावो में भी परम्पराओ के अनुकूल।

विविधताओ के बावजूद सभी क्षेत्रो के निवासी आर्थिक विकास में दिलचस्पी ले रहे है और अति शीघ्र उन्नति के अन्तिम सोपान तक पहुच जाने को उत्सुक है। इस गति को कई क्षेत्रो मे देखने के पश्चात भय केवल इस बात का होता है कि कही प्रतिगामी शक्तिया भी समानान्तर गति से काम न करने लग जाय। ऐसी आशा की जाती है कि ग्राम पचायतो के कार्यों के कारण और राष्ट्रीय विस्तार मडलो की वजह से विकास का मार्ग सदैव साफ रहेगा।

उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार कानून

डाक्टर जी० डी० अग्रवाल

१८५९ में बंगाल टेनेंसी ऐक्ट ही ऐसा कानून था जिससे जमीन्दारो के चंगुलों से किसानो को थोडी राहत मिली और उन्हें मालिकाना प्राप्त हुआ था। उसके बाद से जितने कानून स्वीकृत हुए उनका उद्देश्य था किसानो को बेदखली से बचाना ही। १८८६ मे अवध टेनेंसी रेंट ऐक्ट की २२वी धारा के मुताबिक बेदखल करते समय एक वर्ष का मुआवजा जमीन्दार द्वारा दिये जाने की व्यवस्था थी और इसके अतिरिक्त एक वर्ष मे किसान को कृषि की तरक्की में जितनी लागत लगी उसे प्राप्त करने का हक उसे प्राप्त था। १९२१ के अवध रेंट ऐक्ट के अनुसार किसानो से नजराना लेने पर रोक लगा दी गई। १९२६ के आगरा टेनेंसी ऐक्ट द्वारा प्रत्येक किसान को मालकियत दी गई और ऐसा अधिकार दिया गया कि वह अपने खेत बेच सकता है या किसी के हाथ उसे बदल भी दे सकता था। १९३६ के यू० पी० टेनेंसी के अनुसार सभी श्रेणी के किसानो को भूमि पर मालकियत दे दी गई। सिर जमीन की हदबन्दी के प्रयास भी कियेगये, कानून द्वारा भूमि कर में कमी-बेशी करने की गुंजाइश रखी गयी। रैयतो को जमीन में मकान बनाने के अधिकार भी प्राप्त हुए।

प्राय एक सौ वर्षों के अनुभव के पश्चात यह स्पष्ट हो गया कि केवल काश्त बना देने से ही रैयतो की स्थिति मे सुधार सभव नही था तथा केवल कानूनो से ही बद्ध जमीन्दारी प्रथा की बुराइयो से उनकी रक्षा नही की जा सकती है। बहुत से जमीन्दार गांवो के महाजन भी थे। अत किसानो के आर्थिक जीवन पर उनका पूरा अधिकार रहता था। धीरे-धीरे यह अनुभूत हुआ कि जब तक कृषि कानूनो में आमूल परिवर्तन नही कर दिये जाते तबतक किसानो की स्थिति सुधर नही सकती। बिना ऐसे कानूनो के न तो किसान सुखी रह सकते हैं और न उत्पादन की ही अभिवृद्धि हो सकती है। इसी बीच भूमि को मालकियत के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी भाव उदित हुए। कई स्थानो में जमीन्दारियो के उन्मूलन का इतिहास भी प्रेरणा देने के लिए पर्याप्त था। अब कोई भी व्यक्ति जमीन्दारी प्रथा मे सुधार की बात नही सोचता था बल्कि देश के लोगो के समक्ष जमीन्दारी उन्मूलन का ही प्रश्न प्रमुख रह गया था। २६ जनवरी १९५१ को उत्तर प्रदेश की सरकार ने जमीन्दारी उन्मूलन का श्रीगणेश कर दिया तथा १९५० में ही प्रस्तुत उत्तर प्रदेश जमीन्दारी उन्मूलन तथा भूमि-सुधार कानून स्वीकृत कर लिया गया। १९५२ मे इसमें कई सशोधन किये गये।

जमीन्दारी उन्मूलन कानून के सूत्र निम्न तरीके के है —

(१) पहली जुलाई १९५२ मे जमीन्दारी खतम कर दी गई है और इसी तिथि मे जमीन्दारियो पर सरकार का अधिकार हो जायगा।

(२) राज्य और किसान के बीच के सभी प्रकार के माध्यम समाप्त कर दिये गये। खेतो की बन्दोबस्ती केवल शरीर से अशक्त व्यक्ति, नाबालिग बच्चे तथा विधवाए ही कर सकती है। कई राज्यो में बन्दोबस्ती के कारण जमीन को गिरवी का स्वरुप दे दिया गया।

(३) रैयतो की जितनी किस्में थी वे सब-के-सब हटा दी गई। अब नये कानून के अनुसार तीन प्रकार के कृषक रहेंगे (१) भूमिधर (२) सिरदार (३) असामी और (४) अधिवासी।

कुछ अवधि के पश्चात केवल भूमिधर तथा असामी ही रह सकते है। इससे राजस्व सबधी रेकार्डो का साधारणीकरण हो सकेगा तथा किसानो के मुकदमेबाजिया कम हो जायगी।

केवल भूमिधरो को ही भूमि बन्दोबस्ती करने का अधिकार प्राप्त है। इन्हें यह भी अधिकार है कि वे अपनी भूमि का चाहे जैसा और जिस प्रकार उपयोग कर सकें या उसे परती रख सकें। भूमिधर खेती साझी के साथ करा सकता है। साझी को उपज का हिस्सा मिलता है। सिरदार

भूतपूर्व प्रमुख किसान माने गये हैं। जो लोग सरकार को २५० रुपये भूमि कर देते थे उन्हें भी सिरदार मान लिया गया है। जो जमीन सिर या खुदकाश्त को श्रेणी में नही हो उसे कोई भी सिरदार बधक या गिरवी नही रख सकता जब तक वह उसका अधिकार प्राप्त न कर ले और ऐसा अधिकार प्राप्त करने के लिए पाचगुणा कर देना जरूरी हो जायगा।

असामी उन रैयतो को कहा जाता है जिन्हें पहले भूमि पर किसी प्रकार का अधिकार नही था। अधिवासी उनलोगो को कहा जाता है जो २५० रुपये वार्षिक कर देनेवाले मध्यस्थो के असामी थे। लेकिन ऐसी श्रेणी के लोग अधिक दिन तक अवस्थित नही रहेंगे। और इनके लिए दूसरी कानूनी व्यवस्था शीघ्र ही की जायगी।

सिरदार, असामी और अधिवासी अपनी भूमि पर केवल खेती कर सकते हैं। खेती के अलावा वे उस पर बागवानी या पशुपालन कर सकते हैं। अगर भूमि दो वर्ष तक परती पडी रह गयी तब वे उसके हकदार नही रहेंगे। ऐसी जमीन पर गाव समाज का अधिकार रहेगा। सिरदार भी साझी रखकर खेती करा सकता है। सिरदार भी अपनी जमीन का जैसा चाहे इन्तजाम कर सकता है। असामी का अधिकार उसी समय समाप्त हो जाता है जब उसका मालिक अधिकारच्युत हो जाता है। असामी पर अगर लगान अधिक बाकी हो गया तब उसे बेदखल किया जा सकता है या जब बन्दोबस्ती की अवधि खत्म हो जाती है या जब भूमिधर उस भूमि पर स्वत खेती करना चाहता हो। अधिवासी भी इसी तरीके से बेदखल किये जा सकते हैं।

नये कानूनो के अनुसार प्रत्येक किस्म के किसान को अपनी भूमि की तरक्की करने के लिए सभी प्रकार के उपाय काम में लाने का अधिकार प्राप्त है। अधिक उपजाऊ इलाको में तीस एकड की हदबंदी रखी गई है। और जिन इलाको में जमीन कम उपजाऊ है उन क्षेत्रो में ४५ एकड की हदबदी स्वीकृत की गयी है। सवा छ से दस एकड तक की होल्डिगो का विभाजन, नये कानून से एकदम रोक दिया गया है। कृषि सहयोग समिति के लिए भूमि की अदला-बदली हो सकती है और होल्डिगो के स्थायित्व के लिए भी। सहयोगिता के लिए भूमिधर और सिरदार कलक्टर से अधिकार माग ले सकते हैं। अगर कर में किसी प्रकार का अन्तर हो तो कलक्टर आज्ञा नही दे सकता है। कर वसूली के लिए अमीन बहाल किये गये हैं जिन्हें ग्राम पचायतो से सभी प्रकार का सहयोग मिलता है। पहली अप्रिल १९५३ से ही २८२ पचायतो को कर वसूल करने के अधिकार दे दिये गये हैं। इस कार्य के लिये सवा छ प्रतिशत कमीशन पचायत को प्राप्त हो सकेगा। धार्मिक सम्पत्ति एव वक्फो की सम्पत्ति पर भी कर निर्धारण किया गया है।

जितने लोगो को भूमि पर परिवर्त्तन का अधिकार है उन्हें उनकी खुदकाश्त जमीनो पर भूमिधारो हक दे दिया गया है। बाग-बगीचो के मालिको को भी यह अधिकार प्राप्त है। सिरदार अपने लगान का दस-गुना दे देने पर भूमिधर हो जा सकता है। ऐसी रकम एकमुश्त दी जा सकती है या चार छमाही किश्तो में। सरकारी विज्ञप्ति के तीन महीने पश्चात भूमिधारी हक समाप्त हो सकते हैं। अधिवासी पहली जुलाई १९५७ से भूमिधर हो सकते हैं। लेकिन इसके लिए उन्हें दो शर्त्तों का पालन करना पडेगा (१) अपने जमीन्दार से लिखित सहमति लेनी पडेगी (२) सरकार को दिये जानेवाले लगान का पन्द्रहगुना देना पडेगा। गाव समाज के अधिकार की भूमि पर अगर कोई सिरदारी हक प्राप्त करना चाहेगा तो उसे लगान का दसगुना एक वर्ष में चुका देना होगा और वह भूमि-धर हो जायगा। जमीन्दारी उन्मूलन कानून में भूमिधारी अधिकार प्राप्त करने के लिए क्षतिपूरक बाड दिये जाने की व्यवस्था की गई है। एक सौ रुपये के बाड की कीमत नकद ८० रुपये के बराबर समझी जायगी।

भूमिधारी अधिकार प्राप्त हो जाने पर सिरदार और अधिवासी के लगान आधे हो जायेंगे और तबतक नही बढाये जा सकते जबतक इस कानून के लागू होने के दिन से चालीस वर्ष नही पूरे हो जाय। जमीन्दारी उन्मूलन कानून के अन्तर्गत जमीन्दारी उन्मूलन कोष की वसूली ३३ ६१ करोड रुपये की थी। यह रकम कुल १५६ ३३ करोड के अनुमान का २१ ४९ प्रतिशत है। उसी समय तक ३६,६६,७६२ अधिकार पत्र भी दे दिये गये।

गावो में जितने भूमिविहीन किसान थे वे अपने मकानो, आसपास की थोडी जमीनो, कुओ और पेडो के मालिक हो गये हैं। गाव के अन्य निवासियो की तरह ही गाव की समस्त गैर आबाद भूमि पर, जिसका अधिकार गाव समाज को दे दिया गया है, उनका भी अधिकार है। गाव समाज भूमिहीनो को पहले जमीन बन्दोबस्त करता है। उत्तर प्रदेश में गाव समाजो को कुल मिलाकर ९३ लाख एकड परती जमीन दी गई है। इसमें से २० लाख एकड भूमिहीनो को दी जायगी।

गाव समाज के, दस और दस से अधिक व्यक्ति, अगर इन लोगो के पास सिरदारी या भूमिधारी का प्रमाण पत्र हो, तब सहयोगिता के आधार पर कृषि आरम्भ कर सकते हैं। लेकिन इसके लिए कम-से-कम तीस एकड भूमि की आवश्यकता है। सहयोग कृषि के रजिस्ट्रेशन हो जाने पर वह तबतक स्थायी रहेगा जबतक सब लोग स्वेच्छा से हट न जाय, उसे विश्रृखल नही कर दें।

किसी भी अनार्थिक होल्डिग में सहयोग कृषि आरम्भ करने के पृथक अधिनियम है। अनार्थिक होल्डिगो की विशिष्ट परिभाषा भी कर दी गई है। अगर भूमिधर या सिरदार अनार्थिक होल्डिगो में सहयोग कृषि करने के लिए आवेदन करेंगे तब उन सबो की जमीन भी सहयोग कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत कर दी जायगी। इसी कानून के अन्तर्गत उन किसानो को सरकारी सहायता दी जायगी जिनके खेत अनार्थिक है और जिन पर अधिकार कर लिया गया है।

प्रत्येक गाव में ६ अगस्त १९५२ में ही गाव समाज स्थापित कर दिये गये थे। जिस गाव में पचास आदमी से कम हो उन गावो को पास के गावो में सम्मिलित कर दिया गया था। अबतक ८५००० गाव समाजो की स्थापना की जा चुकी है। गाव समाज के अन्तगत आनेवाले गाव या गावो की परिधि को सर्किल या क्षेत्र कहते हैं। उस क्षेत्र के सभी जनोपयोगी चीजें गाव समाज के अन्तर्गत रख दी गई हैं। पुन गाव समाज का उस भूमि पर भी अधिकार हो जाता है (१) जिसका कोई वारिस नही हो (२) जिस भूमि पर सिरदार या असामी बेदखल किये जा चुके हो

(३) जिसे सिरदार या असामी छोड़ चुके हो (४) जिस पर कानून के अनुसार गाव समाज को अधिकार प्राप्त हो चुका हो।

प्रत्येक गाव के बालिग औरत और मर्द गाव समाज के सदस्य माने जाते हैं, गाव समाज को मुकदमा दायर करने का, फैसला देने का अधिकार है। अबतक के अनुभवो से पता चला है कि गाव समाजो के अधिकार एकदम छोटे हैं या यो कहना चाहिये कि प्रशासनिक सुविधा के लिहाज से गाव समाज छोटे पडते हैं। अब ऐसा विचार किया गया है कि जिस गाव में २५० छोटे-बडे लोग रहते हो उसे आसपास के गावो में मिला दिया जाय। इससे कई सुविधाए होगी और इसका ख्याल रखा जायगा। ऐसा कर देने से गाव समाजो की सख्या ८५००० से ६५००० तक हो जायगी।

गाव समाज का समस्त काम भूमि-व्यवस्था समिति करती है। गाव समाज के सदस्य भूमि-व्यवस्था समिति के सदस्य होते हैं। सदस्यो की संख्या अगर पाच से कम हो तब कलक्टर की नामजदगी से सख्या पाच कर दी जाती है। भूमि व्यवस्था समिति का मत्री लेखपाल होता है। अध्यक्ष के आदेशानुसार लेखपाल सभी बहीखातो को ठीक रखता है। समिति भूमि के इन्तजाम मे पूर्ण तत्परता रखती है और अन्य सम्पत्तियो की निगरानी भी करती है जो समाज के अधिकार मे आ गये हैं। गाव समाज के मुख्य काम हैं (१) खाली जमीन का इन्तजाम (२) असामियो से लगान वसूल करना (३) गाव समाज की भूमि पर अगर किसी ने अधिकार कर लिया हो तब उसे बेदखल करना (४) सरकार की तरफ से भी भूमिकर वसूल करना (५) जमीन का नियोजित उपयोग करना (६) तालाबो, मत्स्यागारो, नालियो एव रास्तो का निरीक्षण करना। भूमि व्यवस्था समिति के सदस्यो की ट्रेनिंग के लिए सरकार ने ट्रेनिंग देने का इन्तजाम किया है ताकि वे अपने दायित्वो का निर्वाह बखूबी कर सकें। उनके अनुसरण के लिए गाव समाज कानून की पुस्तिका भी प्रकाशित करा दी गई है। ऐसी समितिया अपने अधिकारो का दुरुपयोग नही करें अत सरकार ने उनके सामयिक निरीक्षण का दायित्व अपने ऊपर ही रखा है। अत भूमि-व्यवस्था समिति सरकारी आदेशो का पूर्णतया पालन करेगी। अगर समिति सरकारी आदेशो का पालन नही कर सके तब सरकार उसे विघटित कर दे सकती है। यह काम तब दूसरे जरिये से कराया जा सकता है। भूमि व्यवस्था समिति के कार्यो के निरीक्षण के लिए राजस्व विभाग के अधिकारी हैं। ये लोग समिति के कार्यो की रिपोर्ट सबडिवीजनल अफसर को देते हैं।

जमीन्दारी उन्मूलन कानून के अन्तर्गत बीचवानो को मुआवजा देने का निश्चय है। उन्हें उनकी वार्षिक आय का आठगुना दिया जायगा। इस रकम पर प्रतिवर्ष ढाई प्रतिशत सूद दिये जाने का इन्तजाम भी है। अन्तरिम रकम देने की गुजाइश नही है। दस हजार या उससे ऊपर आमदनीवालो को पुनस्सस्थापन व्यय नही दिया जायगा। अन्य कम आयवालो को उनकी आमदनी का बीसगुना दिया जायगा।

प्रत्येक गाव समाज की तरफ जमीन रहेगी जिसका उपयोग जलावन उत्पादन में किया जाय, बाग-बगीचे, फल-फूल आदि लगाये जाय और चारागाह के काम आवे। कानून बनाकर प्रत्येक गाव के लिए इतनी जमीन मानो सुरक्षित रखने का आदेश दे दिया गया है। लेकिन गाव की दश प्रतिशत जमीन सुरक्षित रहनी ही चाहिए और गाव समाज चाहे तब अधिक भूमि भी रिजर्व रख सकता है।

खाली या परती भूमि की बदोबस्ती के सम्बन्ध मे कुछ अन्य नियम भी हैं यानी परती जमीन मे से एक किसान को साढे सात बीघे जमीन दो जा सकती है। ऐसी जमीन केवल भूमिहीनो को ही बन्दोबस्त की सकती है। एक होल्डिंग पाच बीघे से अधिक की नही हो सकती। भूमिधर और सिरदार को सवा छ बीघे जमीन की एक होल्डिंग दी जा सकती है।

जो रैयत अपने खेतो में बराबर अन्न नही उपजा सकते उन्हें उसमें बाग लगाने का हक दिया गया है। बागबानी को प्रोत्साहित करने के हेतु बगीचो की जमीनो पर लगान नही वसूल किया जायगा। उन भूमिधरो और सिरदारो की जमीनो का लगान भी नही लिया जायगा जिनमें कानून में दर्ज उपयोगी लकडियो के पेड वे लगावेंगे।

भूमिधरो और सिरदारो को तकावी कर्ज भी दिये जाने का इन्तजाम है। जब जमीन्दारी उन्मूलन कानून जगलो और परती भूमि पर नहीं लागू किया गया था तब ग्रामीणो को उससे थोडा लाभ होता था। हल जुआठ आदि के लिए लकडिया भी मिल जाया करती थी और जानवरो को चरने की पर्याप्त जगह भी सुलभ थी। सरकार ने इस बात का ख्याल रखा है कि जनता के इन अधिकारो का हनन नही हो। इसके लिए वाजीबुल अर्ज और दस्तूरदेही के अन्तर्गत किसानो की सुनवाई इन लाभो के निमित्त की जायगी।

पटवारियो को पहले कागजात मे नाम दर्ज करने की जो छूट दी गई थी उसे समाप्त कर दिया गया है। पटवारी या लेखपाल का कर्तव्य अब इतना ही है कि वह जमीन सम्बन्धी गलत परचो को देखें और ऊपर के अधिकारी को जाच करने के लिए इत्तिला दे। खतियान और खसरा मे लेखपाल किसी भी प्रकार का दर्ज खुद नहीं कर सकता है। पहले लेखपालो के तबादले का मामला नैयायिक था और अपने तबादले के सम्बन्ध मे एक लेखपाल राजस्व बोर्ड मे अर्जी कर सकता था, पर, अब जिलाधीशो को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे लेखपालो का तबादला काम की सुविधा के मुताबिक कर सकते हैं। इन सुधारो का किसानो ने बडा स्वागत किया है।

१९५३ में उत्तर प्रदेशीय सरकार ने चकबन्दी कानून पास किया। इस कानून के मुताबिक ६ वर्षो मे पूरे राज्य में चकबन्दी पूरी कर दी जायगी। चकबन्दी से केवल भूमि का पुनर्वितरण ही नहीं होगा बल्कि गावो का समस्त नक्शा भी बदल जायगा। और सडको की सुव्यवस्था, नालियो का इन्तजाम, आबादी जमीन की वृद्धि, खाद के गड्ढे, स्कूल, खेल-कूद के मैदान, तालाब तथा अन्य कई प्रकार के सामान ऐसे मुहैया हो जायेगे ताकि ग्राम्य-जीवन सुन्दर और सुखमय हो सके।

जमीन्दारी उन्मूलन कानून से भूमि के असली जोतनेवालो का बहुत दिनो का सजोया हुआ स्वप्न पूरा हो गया है। अब किसान पूरे उत्तर प्रदेश मे अपनी जमीन का मालिक हो चुका है। वह कर देगा और अपनी जमीन की उपज घर ले जायगा।

राजस्थान में भूमि सुधार

श्री दूल सिंह

किसी भी राज्य व्यवस्था में किसानो को राहत दिलाने के उद्देश्य से बनाये गये कानून के तीन मुख्य ग्राधार होते हैं (१) वन्दोवस्ती की अवधि की सुरक्षा (२) मालगुजारी का निर्धारण (३) मध्यस्थो का उन्मूलन। राजस्थान के भूमि सुधार कानूनो की समीक्षा इन्ही ग्राधारो पर की जा सकती है।

अवधि की सुरक्षा

हाल के वर्षों में लगभग सभी प्रगतिशील राज्यो ने जमीन्दारो ग्रौर रैयतो के सम्बन्ध को नियत्रित एव निश्चित करने के लिए उचित कारवाई की है। राजपूताना की पुरानी रियासतो के टेनेन्सी कानून मे जमीन्दारो ग्रौर रैयतो के सम्बन्ध निर्धारित किये गये थे। इनमें से प्रमुख कानून हैं (१) जयपुर टेनेन्सी एेक्ट (१९४५), (२) बीकानेर लैंड रेवेन्यू एेक्ट (१९४५), (३) जयपुर राज्य ग्राट्स लैंड टेन्योर ऐक्ट (१९४७) ग्रौर (४) मारवाड टेनेन्सी ऐक्ट (१९४९)। ये कानून ग्रत्यन्त ही दकियानूमी हैं ग्रौर ग्रधिक-से-ग्रधिक भिन्न-भिन्न स्थानो में प्रचलित भूमि व्यवस्था को कानूनी रूप देते हैं। ये कानून कोई महत्त्वपूर्ण टेनेन्सी सुधार के लिए नही वनाये गये थे ग्रौर न उनका उद्देश्य पूर्वकाल से शोषित-शासित किसानो को ग्रधिकार ही दिलाना था। जयपुर स्टेट्स ग्राटस टेन्योर ऐक्ट ग्रौर मारवाड टेनेन्सी ऐक्ट को छोडकर खालसा या पहले से उपार्जित रैयतो के ग्रधिकारो के समान, गम्भीर क्षेत्रो में रैयतो को ग्रधिकार दिलाने की कोई खास चेष्टा नही की गई। ये दो कानून जागीर रैयतो को, उनके ग्रधिकार को जमीन पर खातेदारी या मालिकाना हक प्रदान करते हैं। रैयतो के वर्ग ग्रौर उनके ग्रधिकार के स्वरूपो को लेकर कानूनो मे पर्याप्त विभिन्नता है। उत्तराधिकार या परिवर्त्तन के द्वारा जमीन पर ग्रधिकार प्राप्त करने के नियमो मे भी एकरूपता नही है। ग्रधिकार परिवर्तन की ग्रपेक्षा उत्तराधिकार की पद्धति ग्रधिक प्रचलित है।

खुदकाश्त का प्रश्न

इन टेनेन्सी कानूनो के ग्रन्तर्गत खुदकाश्त की समस्या एक विचित्र प्रकार की है। सम्पूर्ण राजस्थान मे खदकाश्त, सीर या हवेली का प्रश्न एक खास महत्त्व रखता है। खुदकाश्त के मानी हैं जागीरदार की निजी जोत की जमीन। पिछले कुछ दिनो में ही इसकी प्रमुखता हो गई है, जब से कृषिजन्य पदार्थों के मूल्य में वृद्धि से जमीन पाने की एक होड सी लग गई। बडे-बडे जागीरदारो ने जब देखा कि जागीरें जब्त की जा सकती है तब उनमें स्वत खेती करने की भावना प्रचडतर हो गई। उन्हें यह ग्राशा बधी कि जागीरो के जब्त होने पर भी उनकी जोत की जमीनें उनके पास ही रहेंगी। ग्रौर खासकर यह समस्या इतनी गभीर नही होती ग्रगर छोटे-छोटे जमीन्दारो के सामने नकद मालगुजारी का प्रश्न पैदा न हुग्रा होता।

जयपुर व जोधपुर टेनेन्सी कानून

खुदकाश्त जमीनो पर कब्जा पाने तथा उसे निर्धारित करने के लिए जयपुर ग्रौर जोधपुर टेनेन्सी कानूनो के ग्रन्दर विशेष व्यवस्था है। इसकी मुख्य शक्लें निम्नानुकूल है

(१) जोधपुर कानून के ग्रन्तर्गत खुदकाश्त भूमि में हेरफेर की गुजाइश है जबकि जयपुर स्टेट्स ग्राट लैंड टेन्योर ऐक्ट के ग्रन्तर्गत ऐसी कोई सभावना नही है।

(२) जागीरदार की सीर जमीनें वे हैं जो कानून के लागू होने के पूर्व उनकी जोत में थी, या कानून के लागू होने के बाद ऐसी जमीन, जिसे वे कम-से-कम पिछले छ सालो से जोतते ग्रा रहे हो, किन्तु खुदकाश्त के लिए नई जमीनो पर कब्जा करने की कोई व्यवस्था नही है। जयपुर ऐक्ट के ग्रन्तर्गत जमीन्दारो की जायज जरूरतो की पूर्त्ति के लिए ऐसी जमीनो पर कब्जा पाने की व्यवस्था है जो दुबारे बन्दोबस्त कर दी गई हैं, जिन पर गैर खेतिहरो का ग्रधिकार हो, गैर खेतिहरो की जमीनें, इस्टेट होल्डरो के ग्रपने खर्च से निर्मित पक्के कुग्रो के इर्द-गिर्द की जमीनें ग्रौर बारह वर्ष से कम से खातेदार रैयतो के कब्जे की जमीनें। इन दोनो कानूनो में ग्रन्तर इतना ही है कि दोनो क्षेत्रो की स्थानीय समस्याए ग्रलग-ग्रलग हैं। जोधपुर मे काफी जमीन प्राप्य है जबकि जयपुर के कुछ हिस्सो में, जैसे, उदयपुरवाटी, टोडावाटी ग्रौर शेखावाटी में खुदकाश्त की समस्या सरकार के लिए ग्रत्यन्त ही उलझनपूर्ण बन गई है क्योकि इन क्षेत्रो में

छोटे-छोटे किसानो के पास जमीन की बहुत कमी है । उसी कानून की खुदकाश्त सबधी धाराओ के मुख्य दोष यह थे कि वे रैयतो को सुरक्षा नही प्रदान करते जिन्हे परम्परा से जमीन पर मालिकाना हक प्राप्त है । मालिको की इच्छा मात्र पर निर्भर किसानो की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई । इस कानून का दूसरा मुख्य दोष यह था कि जागीरदारो द्वारा नाजायज बेदखली के खिलाफ रैयतो की सुरक्षा की भी कोई व्यवस्था सभव नही थी । यह समस्या इतना उग्र रूप नही धारण कर लेती तथा जागीरदारो को जुल्म की भी छूट नही होती अगर कानून निर्माता केवल एक और धारा जोड देते कि परम्परा से किसानो की जोत की जमीनो से वे बेदखल नही किये जा सकते ।

राजस्थान प्रोटेक्शन आव टेनेन्ट्स आर्डिनेंस (१९४९)

राजस्थान राज्य ने किसानों को कुछ सामयिक सुविधा प्रदान करने के लिए यह पहला कदम उठाया । बेदखली से बचाने के उद्देश्य से राजस्थान सरकार ने जून १९४९ में राजस्थान प्रोटेक्शन आव टेनेन्ट्स आर्डिनेंस जारी किया । इस कानून के अनुसार वे सभी रैयत १ एप्रिल १९४८ से जो जमीन जोत रहे थे, या जो उसके बाद बेदखल कर दिये गये थे, पर काबिज कर दिये गये । इस आर्डिनेंस की चौथी धारा के अनुसार कोई भी किसान किसी भी कारण से अपनी जोत के सम्पूर्ण या किसी भी भाग से वचित नही किया जा सकता । इसमें बेदखल रैयतो को शीघ्र-से-शीघ्र अपनी जमीन पर एक महल बेदखली विरोधी न्यायालय के द्वारा अधिकार प्राप्त कराने की भी व्यवस्था कराई गई है । इस आर्डिनेस की दूसरी विशेषता यह है कि जो रैयत बेदखली विरोधी न्यायालय के अधिकारो के फैसले से सतुष्ट नही है वह रेवेन्यू बोर्ड के समक्ष अपील कर सकने का हकदार है, जिसका फैसला अन्तिम तौर पर मान्य समझा जायगा । इसका सर्वाधिक लाभ यह हुआ कि किसान मुकदमेबाजी की परेशानी एव उसके व्यय से बच गये । किन्तु बाद में कतिपय स्वार्थियो ने इस अदालत को भी प्रभावित कर कई रैयतो को बेदखल कर देने में सफलता पाई है । इसके परिणामस्वरूप कई जिलो में बेदखली विरोधी अदालतो में मुकदमो की सख्या में अधिक वृद्धि हो गई है ।

राजस्थान टेनेन्सी ऐक्ट

प्रचलित भूमि व्यवस्था सम्बन्धी कानून के प्रत्यक्ष दोषो को देखते हुए इस ऐक्ट को स्वीकृत किया गया । इस ऐक्ट के द्वारा तीन प्रकार के रैयतो का वर्गीकरण किया गया है जिनके नाम है (१) खातेदार (२) गैर खातेदार और (३) अन्दर रैयत । खातेदार रैयतो को उत्तराधिकार और परिवर्त्तन के अधिकार प्रदान किये गये है बशर्ते इस प्रकार के परिवर्त्तन को प्राप्त करनेवाले की जमीन ७५ एकड सूखी जमीन से अधिक न हो । खुदकाश्त जमीनो को छोडकर अन्दर रैयतो के साथ बन्दोबस्ती जायज है बशर्ते रैयत राज्य और वास्तविक जोतनेवाले के बीच कोई मुनाफा स्वय नही ले । रैयतो को तरक्की करने तथा घरेलू एव कृषि कार्यो के लिए वृक्ष काटने का अधिकार है । बाकी मालगुजारी के नही अदा करने, लगातार तीन साल तक जमीन नही आबाद करने तथा रैयती शर्तों के नही पालन करने पर रैयतो को जमीन से बेदखल कर दिये जाने की भी व्यवस्था इस कानून मे है । इस कानून के अन्तर्गत नाजायज बेदखली को समाप्त करने की भी गुजाईश रखी गई है ।

कर निर्द्धारण

किसी भी भूमि-व्यवस्था के अन्तर्गत सबसे कठिन समस्या कर निर्धारण की है, जो रैयत जमीन के मालिक को देते है । राजस्थान मे यह समस्या और भी अधिक उलझनपूर्ण रही है, क्योकि इसमें सम्मिलित होनेवाली रियासतो में सन् १९५० के पूर्व तक कोई लिखित कानून नही थे । अधिकतर रियासतो में बन्दोबस्ती की व्यवस्था तथा कर वसूली अव्यवस्थित आर्डिनेन्सो, नियमो, रेगूलशनो, सूचनाओ, सर्कूलरो, हिदायतो और सरकारो के द्वारा होती थी । इधर थोडे दिनो से बन्दोबस्ती कानूनी तौर पर होने लगी है और इस सम्बन्ध में कुछ कानून स्वीकार भी किये गये हैं, जिनकी चर्चा हम इसी लेख में करने जा रहे है । जहा तक मालगुजारी के निर्धारण का प्रश्न है, रैयती कानून बहुत ही अस्पष्ट था । राजस्थान राज्य की स्थापना के बाद जमीन जोतनेवालो को राहत दिलाने की आवश्यकता को प्राथमिकता दी गयी, जिससे जागीरदारो और जमीन्दारो की बेदखली के अधिकार में कमी हो ।

राजस्थान के बहुत से भागो मे जागीरदार सदियो से उपज के रूप मे कर लेते रहे है । जमीन की अवस्था और रैयतो में प्रतिस्पर्धा के अनुसार जागीरदार के हिस्से छठे भाग से आधे हिस्से तक होते थे । केवल महगी के दिनो को छोडकर साधारण समय मे यह पद्धति ठीक ही काम करती थी । पिछली लडाई और उसके बाद अन्न के मूल्य में अभूतपूर्व वृद्धि के बाद मुकदमो और सघर्षो का सिलसिला आरम्भ हुआ । इसलिए जून, १९५१ में राजस्थान सरकार को राजस्थान प्रोड्यूस रेन्ट्स रेगुलेटिंग ऐक्ट लागू करना पडा । इस कानून के लागू होने से किसी भी जागीरदार को उपज की एक चौथाई से अधिक लेने का अधिकार नही रह गया । मात्र इस कानून से ही समस्या का अन्त नही हुआ, बल्कि कुछ ही दिनो में निम्न बुराइया सामने आने लगी — .

(१) इसके अस्थायी होने से बहुत से जमीन्दार इसे लागू ही नही होने दिये ।

(२) कुछ स्थानो पर यह अनुपात पहले से कर के रूप में निर्धारित अनुपात से भी अधिक हो गया । निकटतम राज्य अजमेर की तुलना में अधिकतम अनुपात भी अधिक था ।

(३) "कुल उत्पादन" शब्द की परिभाषा भी निश्चित नही की गयी थी, इसलिए, बहुत स्थलो पर यही झगडे का कारण बन गया ।

(४) आवश्यक रूप से इस कानून का क्षेत्र केवल गैर बन्दोबस्त इलाके तक ही सीमित कर दिया गया ।

(५) निर्धारित अधिकतम अनुपात से अधिक कर वसूलने की अवस्था में किसानो की सुरक्षा के लिए इस कानून के अन्तर्गत राज्य प्रशासन को अधिकार नही प्राप्त था ।

१९५२ में इस कानून को सुधार कर कुछ दोषो का निराकरण किया गया । इसकी अवधि और क्षेत्र में वृद्धि कर इसे सभी कृषिजन्य भूमि पर

लागू कर दिया गया है। "कुल उपज" की परिभाषा भी इस प्रकार की कर दी गई है कि उसमें भूसा, घास तथा अन्य प्राकृतिक उपज सम्मिलित नही है।

१९५२ के सुधार कानून का सबसे प्रमुख अश यह है कि एक चौथाई कर को कम कर एक का छटा भाग कर दिया गया। किन्तु गर्दन तोड कर्ज से पीडित किसानो को इस परिवर्तन से भी राहत नही मिल सकती है, जबतक कि जिला अधिकारियो को इसे लागू करने के लिए विशेष प्रशासनिक अधिकार नही प्रदान किये जाते।

राजस्थान उच्च न्यायालय मे जागीरदारो ने प्रोड्यूस रेन्ट रेगुलेटिंग ऐक्ट की मान्यता पर भी प्रश्न उठाया था। जागीरदारो की ओर से यह दलील दी गयी थी कि इस कानून में सघ विधान की धारा १४ में दिये गये समान सुरक्षा के अधिकार की अवहेलना का भाव है और जमीदारो के विरुद्ध रैयतो के पक्ष में विभेद पैदा करता है। उनकी ओर से यह भी कहा गया कि यह कानून सघ विधान की धारा १९(१) की भी अवहेलना करता है और जमीन्दारो को अपनी सपत्ति रखने में दखलन्दाजी करता है क्योकि मनमाने ढग से उनकी आमदनी एक तिहाई और एक चौथाई से घटाकर षष्ठाश कर दिया गया था। जागीरदारो के प्रथम विवाद के विषय में मुख्य न्यायाधीश श्री वाचू तथा उनके साथी न्यायाधीशो ने कहा कि अगर इस दलील को मान ली जाय तो एक विशेष वर्ग के नागरिको के कल्याण के लिए सभी सुधारो की जड पर कुठाराघात होगा और अपने विधान की आत्मा का गला घोटना होगा। जहा तक दूसरी दलील का प्रश्न है, यह स्थिर किया गया कि कृषि-शान्ति की उपलब्धि के लिए इस कानून का स्वीकार किया जाना आवश्यक था, तथा कुल उपज का षष्ठाश विल्कुल न्यायसगत है और यह भी नही कहा जा सकता कि जमीन्दारो का हिस्सा उलझनपूर्ण वना दिया गया है या उसे मिल्कियत के मात्र निरर्थक अश ही छोड गये है। तमाम परिस्थितियो पर पूर्ण सतर्कता से विचार करने के पश्चात न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुचा कि रेन्ट्स रेगुलेटिंग ऐक्ट विद्वेष-मूलक नही है बल्कि इसने सपत्ति रखने पर केवल न्यायसगत सीमा निर्धारण किया है।

जमीन्दारो के रैयतो को राहत पहुचाने के लिए राजस्थान एग्रिकल्चरल रेन्ट्स कट्रोल ऐक्ट, १९५२ एक दूसरा कदम है। इसे अलवर और भरतपुर जिलो पर लागू किया गया। इस कानून का मुख्य उद्देश्य राज्य के कुछ हिस्सो में जमीन्दारो द्वारा जान-बूझ कर अधिक लगान वसूली पर नियत्रण करना था। इसके अभाव मे रैयतो की हालत बहुत वदतर हो रही थी। इस कानून के द्वारा निर्धारित भूमिकर के दुगुना लगान तक ही जमीन्दार वसूल कर सकते है इसमें शहरी हिस्सो (जिसकी आवादी १५,००० है), में पडनेवाली, विधवाओ, नावालिगो, निस्सहायो और विद्यार्थियो, जिनकी आयु २१ साल से कम है, को वाद दिया गया है। इस कानून का दूसरा प्रमुख रूप यह है कि यह पैदावार के रूप मे कर लेने की जगह द्रव्य के रूप मे लेने की गुजाइश प्रदान करता है। रैयतो मे एक आवेदन प्राप्त कर उसी प्रकार की जमीन के लिए, जो किसी निकट की वस्ती मे हो सकती है, तहसीलदार निर्धारित दर पर कर को उसी के रूप मे भी कर दे सकता है। तहसीलदार द्वारा कर निर्धारण से सतुष्टि नही होने पर रैयत कलक्टर के यहा अपील कर सकता है, जिसका फैसला अन्तिम होगा।

राज्य विधान सभा द्वारा स्वीकृत राजस्थान समरी सेट्लमेंट ऐक्ट १९५३ एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कानून है। राज्य के गैर वन्दोवस्त क्षेत्रो में कर निर्धारण के लिए यह एक सक्षिप्त पद्धति प्रदान करता है। यद्यपि सभी खालसा जमीनें और गैर खालसा जमीनो का भी एक प्रमुख भाग साधारण ढग से बन्दोबस्त किया जा चुका है फिर भी राज्य में वहुत से खतरनाक भाग अभी भी ऐसे हैं जहा भूमि के स्वत्व का कोई लेखाजोखा नही है। और जहा बाकायदा वन्दोवस्ती में अभी कुछ साल और लगेंगे। अत समरी सेट्लमेंट ऐक्ट समस्या के हल के लिए एक 'क्षिप्रमार्ग' है। यह बन्दोवस्ती विभाग के कर्मचारियो को रैयतो के अधिकार, भूमि की किस्म, सिंचाई की अवस्था तथा अन्यान्य सुविधाओ को देखते हुए गैर बन्दोवस्त क्षेत्रो में कर निर्धारण का अधिकार प्रदान करता है। इन तथ्यो के आधार पर तबतक अस्थायी तौर पर कर निर्धारण कर दिया जाता है, जबतक कि बाकायदा बन्दोबस्ती नही हो जाती। इस पद्धति से, निस्सन्देह ही शेखावाटी आदि खतरनाक क्षेत्रो में रैयतो को राहत मिली है जहा छोटे जमीन्दारो ने, जो स्थानीय तौर पर भोमिया कहलाते है, निराश होकर पूर्ण आतक फैला रखा था।

बीच के तत्त्वो का अन्त

राज्य द्वारा स्वीकृत राजस्थान लैण्ड रिफार्म्स एण्ड रीजम्प्शन ऐक्ट, १९५२ एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कदम है। १९४९ मे राजस्थान राज्य के निर्माण के पश्चात केन्द्रीय सरकार ने राजस्थान और मध्यभारत में जागीरदारी और जमीन्दारी व्यवस्था की जाच तथा भूमि सुधार सम्बन्धी सुझाव उपस्थित करने के लिए वेंकटाचार कमिटी की नियुक्ति की थी। इस कमिटी ने १९४९ में अपना प्रतिवेदन उपस्थित किया। इस प्रतिवेदन का निष्पक्ष होकर जाच करने पर यह स्पष्ट विदित होता है कि कमिटी ने उग्र विचारो से अलग रहकर सर्व सम्मति से यह सुझाव पेश किया था कि जागीरदारी और जमीन्दारी व्यवस्था की आवश्यकता अब समाप्त हो चुकी है और इसलिए उनका अन्त आवश्यक है। इस कमिटी के अनुसार जागीरदारो और जमीन्दारो को अपनी होल्डिंग पर कोई मालिकाना हक नही है और इसलिए वे अधिक कर के रूप में कोई मुआवजा की माग नही कर सकते। अन्त में यह स्वीकार किया गया कि सामाजिक न्याय के आधार पर जमीन्दारो को मुआवजा के रूप में कुछ आर्थिक सहायता प्रदान की जाय। इन सुझावो के अनुसार राजस्थान सरकार ने जागीरदारी और जमीन्दारी प्रथा के अन्त के लिए नवम्बर १९५१ में एक विधेयक उपस्थित किया जा फरवरी १९५२ में कानून बन गया। इस कानून का मुख्य उद्देश्य भूमि व्यवस्था से बीच के तत्त्वो का अन्त करना है।

कानून की परिधि

यद्यपि कानून सम्पूर्ण राजस्थान राज्य पर लागू है किन्तु निम्न दो प्रकार की जागीरो को इससे अलग रखा गया है

(अ) वह जागीर जिसकी अमदनी से किसी धार्मिक पूजा-पाठ के स्थानो का खर्च चलता है या पूजा-पाठ में लगायी जाती है और
(व) जिस जागीर की आमदनी ५,००० रु० से कम है।

सम्भवत: वेंकटाचार कमिटी के विचारो के आधार पर ही द्वितीय श्रेणी की जागीर इस कानून की परिधि से अलग रखी गयी है। कमिटी ने जागीरो को तीन श्रेणिया में विभक्त किया है---(१) एक या अधिक गावो की जागीरें, (२) खालसा गावो में छिट-फुट जमीन की मिल्कियत और (३) धार्मिक और दातव्य सस्थाओ की व्यवस्था के लिए निर्धारित जागीरें। कमिटी के विचार के अनुसार भूमि-सुधार के लिए छोटी मिल्कियतो को समाप्त करना उतना आवश्यक नही था जितना कि वडी जागीरो को। निस्सन्देह यह दृष्टिकोण दोषपूर्ण है क्योकि समय-समय पर शोषित किसानो पर ये छोटे जमीन्दार बहुत ही जुल्म ढाते रहे है। भोमिया तो सभी स्थानो पर एक सी अव्यवस्था फैलाते रहे है, खासकर तोरावाटी और उदयपुरवाटी तो इनके अपराधो के लिए प्रख्यात हो चुका है। इससे यह साफ जाहिर होता है कि वडी-वडी जागीरो से भी पूर्व छोटी जागीरो का समाप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

धार्मिक और दातव्य अनुदानो के सम्बन्ध मे भी इस कमिटी ने पुरानी व्यवस्था को समाप्त कर स्टेचुटरी इनडाउमेंट बोर्ड के सगठन का सुझाव दिया था। किन्तु कानून यह काम करने में असफल रहा क्योकि धार्मिक और दातव्य अनुदानो को इस कानून की सीमा से बाहर रखा गया है। इस सम्बन्ध मे मद्रास और मैसूर राज्यो की तुलना मे राजस्थान का कानून बहुत पीछे है।

रीजम्पशन (पुनर्ग्रहण) का परिणाम

जागीर के पुनर्ग्रहण के पश्चात जागीरदारो की जागीर भूमि, जगल, वृक्ष, कुआ, खान, खनिज, बाजार इत्यादि बिना किसी अवरोध के सरकार द्वारा ग्रहण कर लिये गए। उन जमीनो की तमाम आमदनी सीधे सरकार को मिलने लगी। जागीरदारो द्वारा किसी तीसरी पार्टी के नाम किये गये बन्धको आदि को सरकार ने मजूर नही किया। जागीर सम्बन्धी सभी आमदनी जागीरदारो को मिलना तथा उनसे कोई भी मालगुजारी आदि का वसूला जाना राज्य द्वारा बन्द करा दिया गया। किन्तु जागीरदारो के ऊपर जो सरकारी कर्ज थे, उसे मसूख नही किया गया तथा रैयतो से अपनी बाकी मालगुजारी वसूल करने का उनका अधिकार सुरक्षित माना गया। जागीरदारो के अन्दर के सभी स्कूल, दफ्तर, अस्पताल, और जन-कार्य सम्बन्धी अन्यान्य मकान सरकार को हस्तान्तरित कर दिये गये लेकिन व्यक्तिगत जमीन, मकान, कुआ, पोखरा, घरबारा, घेरा, बगीचा इत्यादि पर जागीरदारो के हक बरकरार रहे। १ जनवरी १९४९ को या इससे पूर्व रीजम्पशन को मद्देनजर रखकर किये गये तमाम बन्दोबस्तो को भी जागीर आयोग द्वारा रद्द किये जाने योग्य माना गया। कानून मे कलक्टर को यह अधिकार दिया गया कि रीजम्पशन के पश्चात अगर जागीरदार गैर कानूनी ढग से वसूली करते है, तो उन्हें इस प्रकार की वसूली वापिस करनी होगी और दडस्वरूप ५०० रु० तक जुर्माना भी देना होगा।

मुआवजा की अदायगी

कानून की दूसरी अनुसूची के अनुसार जागीरो की आमदनी का दसगुणा सरकार जागीरदारो को मुआवजा के रूप में अदा करेगी। इस्टेट मालिको को दिये गये मुआवजा ने जमीन्दार भी मुआवजा पाने के हकदार घोषित किये गये। कानून की तीसरी अनुसूची में वर्णित धाराओ के अनुसार उनका मुआवजा भी उनकी आमदनी का दसगुणा होगा।

मुआवजा का निर्णय जागीर आयुक्त करेंगे जो जागीर आय से मिलनेवाला निर्वाह-भत्ता, जमीन्दारो को दिये जानेवाला मुआवजा तथा अन्य साझीदार को मिलनेवाले अश का भी निर्णय करेगे। इन द्रव्यो के अतिरिक्त सरकार से लिये गये कर्ज की रकम को घटा कर वे १५ सालाना किश्त में जागीरदारो को मुआवजा अदा करेंगे। कानून के अनुसार जमीन पर सरकारी कब्जा होने के दिनो से मुआवजा की अदायगी के दिनो तक जागीरदारो को मुआवजा की रकम पर अढाई प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से साधारण व्याज भी मिलेगा। अन्य हकदारो (जिनके लिए मुआवजा की रकम मे हिस्से निकाले जायेगे) को भी उतने ही दिनो मे रुपये मिलेंगे जितने किश्तो मे जागीरदारो को मुआवजा की रकम दी जायेगी। जागीरदार की मृत्यु की अवस्था मे बाकी बची हुई रकम उसके कानूनी हकदार को मिलेगी। मुआवजा के सम्बन्ध में यह कानून वेंकटाचार कमिटी के सुझावो से थोडा भिन्न है क्योकि उक्त कमिटी ने छोटे जागीरदारो को वडे जागीरदारो की अपेक्षा अधिक सहायता का सुझाव दिया था। यह बहुत सुन्दर होता अगर मुआवजा सामाजिक न्याय पर आधारित होता।

खुदकाश्त जमीनो को जागीरदारो के हाथ बन्दोबस्त करने की आवश्यकता को यह कानून स्वीकार करता है। अगर किसी जागीरदार को खुदकाश्त जमीन नही है या निर्णय की गयी अधिकतम सीमा से कम है, तो उसे कलक्टर अथवा इसी कार्य के लिए सरकार द्वारा नियुक्त समिति के द्वारा जमीन बन्दोबस्त की जा सकती है। जमीन की अधिकतम सीमा जागीर के क्षेत्र के अनुसार आनुपातिक ढग से निर्णय किया जायेगा, किन्तु किसी भी परिस्थिति मे खुदकाश्त जमीन का रकबा ५०० एकड से अधिक नही माना जायगा। खुदकाश्त के लिए आवश्यक जमीनें वे होगी जिन्हें रैयतो अथवा दर-रैयतो ने छोड दिया है या वापिस कर दिया है तथा जागीर के अन्दर खेती करने योग्य परती जमीने है। अगर छोडी गयी जमीनें प्राप्य नही है, तो वैसी परिस्थिति मे खुदकाश्त के लिए निर्धारित खेती योग्य अधिक जमीन रखनेवालो से लेकर खुदकाश्त के लिए दी जायगी। इस प्रकार कानून ऐसी जमीन को भी खुदकाश्त के रूप मे प्रदान करने की व्यवस्था प्रदान करता जो रैयतो की जोत में है। यद्यपि जागीरदारो के भी कुछ जमीन जोतने के अधिकार को लोग स्वीकार करते है फिर भी इस बात की कटु आलोचना हुई है कि यह समय नया भूमि-व्यवस्था के सिद्धान्त के विपरीत है। एक रैयत को उसकी जोत की जमीन से जागीरदार को खुदकाश्त जमीन प्रदान करने के लिए बेदखल कर देने को प्रतिगामी कदम कहा जायगा तथा आश्चर्य तो तब होता है कि किस प्रकार कानून की किताब में इसको जगह मिल गयी, वेंकटाचार कमिटी ने यह स्पष्ट कहा था कि किसी भी जागीरदार को रैयतो को बेदखल कर खुदकाश्त जमीन नही दी जाय चाहे वह किसी भी श्रेणी का हो। खुदकाश्त की धारा में एक प्रत्यक्ष दुर्गुण यह है कि खुदकाश्त का क्षेत्र बहुत बडा रखा गया है।

पन्त रिपोर्ट और उसके बाद

यद्यपि यह कानून १९५२ के आरम्भ में ही स्वीकृत हो चुका था लेकिन जागीरो द्वारा राज्य उच्च न्यायालय मे आदेश के लिए आवेदन उपस्थित करने के कारण तत्काल लागू नही किया जा सका। बन्दोबस्ती को शीघ्र पूरा करने के लिए राजस्थान सरकार और जागीरदार दोनो ही विवादास्पद विपयो, जैसे खुदकाश्त की बन्दोबस्ती और मुआवजा को पडित गोविन्द वल्लभ पन्त के यहा उपस्थित करने के लिए राजी हुये। पडित पत ने सारी वातो की छानवीन कर अपना सुझाव उपस्थित किया। पडित नेहरू के आदेशानुसार ही यह बात पडित पत के समक्ष पेश की गयी थी इसलिए उन्हें इस विवाद मे एक प्रकार का पच माना गया। पडित पत ने देने और लेने के आधार पर यथासभव मेल-मिलाप का हल पेश किया। यद्यपि दोनो दलो ने इस रिपोर्ट को स्वीकार किया, किन्तु, राजस्थान क्षत्रिय महासभा ने प्रधान मत्री नेहरू के समक्ष पत रिपोर्ट के बहुत से अशो को चुनौती देते हुए एक स्मृति-पत्र उपस्थित किया जिसमें मुआवजा देने की पद्धति पर उनकी विशेष आपत्ति थी। जागीरदार चाहते थे कि आधी मुआवजा उन्हें पहले मिल जाये और वाकी आधा दस अर्द्ध-वार्षिक किश्तो मे। पडित नेहरू ने इस विषय पर अपने फैसले में कोई विश्वास नही दिलाया क्योकि उन्होने इसको सिद्धान्त का विषय नही मानकर आर्थिक स्थिति और श्रोतो का विषय माना। खुदकाश्त एव अन्य विपयो पर उन्होने जागीरदारो से साफ-साफ कहा कि तमाम भूमि कानूनो का उद्देश्य जोतनेवालो और राज्य के वीच से तीसरे व्यक्ति का अन्त करना है और इसी उद्देश्य से देश के सभी राज्यो में इस प्रकार के कानून वनाये जा रहे हैं। अन्तत यह तय पाया कि १९४८ तक उनके प्रत्यक्ष अधिकार की जमीनें और वे जमीनें जिन पर से १९४९ के राजस्थान प्रोटेक्शन आव टीनेन्ट्स आर्डिनेन्स के कारण रैयतो की नही हटा सके, जागीरदारो को वापिस कर दी जाय। किन्तु जिन जमीनो को रैयत बहुत लम्बे अर्से से जोतते आ रहे हैं उनपर से उन्हें बेदखल नही किया जा सकता। ऐसी जमीनो के वदले जागीरदार अपने लिए अन्य स्थानो से जमीन प्राप्त कर सकते हैं। प्रधान मत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा है कि राजस्थान की भूमि समस्या का हल, चन्द छोटे-मोटे परिवर्त्तनो को छोडकर पन्त रिपोर्ट के आधार पर ही करना चाहिए।

पन्त रिपोर्ट के फलस्वरूप जमीन्दारो को अस्थायी रैयतो की जमीन पर निश्चय ही लाभ हुआ किन्तु सबसे वडी बात, जो इसमें कही गई है, वह है तमाम जागीरो पर सरकार का कब्जा चाहे उसकी आमदनी कम हो या अधिक। सैद्धान्तिक रूप से राजस्थान सरकार और जागीरदारो ने इसे मान लिया है तथा तदनुरूप काननी सुधार किये जा रहे है।

राजस्थान भूमि सुधार का नया रूप

राज्य सभा ने १९५४ के मध्य मे राजस्थान लैंड रिफार्म्स ऐण्ड रीजम्पशन आफ जागीर (अमेन्डमेंट) ऐक्ट स्वीकार किया। राष्ट्रपति ने अपना हस्ताक्षर करते हुए इसे १८ फरवरी १९५२ से ही लागू करने की अनुमति प्रदान की है अर्थात् मौलिक कानून के आरम्भ की तिथि से। इस अनुसार अब यह कानन उन जागीरो पर भी लागू होगा जिनकी आय धार्मिक सस्थाओ की व्यवस्था पर खर्च होती थी या ५००० सालाना से कम थी। दूसरा परिवर्तन जो इस सुधार के द्वारा लागू किया गया है वह है जमीन्दारी का इस कानून से अलग कर अन्य कानून के जिम्मे करना। इस प्रकार यह कानून मात्र जागीरदारी को ही समाप्त करने के लिए सीमित कर दिया गया है।

जागीर जमीनो पर कर निर्धारण

इस कानून की एक अन्य मुख्य वात यह है कि अभी तक जागीरदारो से मिलनेवाली रकम को धीरे-धीरे भूमिकर के रूप में परिणत कर देना। जागीरदारो द्वारा दिये जानेवाले कर निर्णय उन्हें प्राप्त भूमिकर के आधार पर कलक्टर करेंगे। इसके वाद उनके द्वारा दिये जानेवाले भूमिकर को निम्नाकित ढग से आका जायेगा —

(क) १९५१–५२ के कृपि वर्षो के लिए उनके द्वारा सरकार को दिये जानेवाली रकम के वरावर।

(ख) इसके वाद पाच कृपि वर्षों तक मालगुजारी से होनेवाली आय का आठवा भाग या प्राप्त होनेवाली रकम के वरावर, जो अधिक होगा और,

(ग) १९५७–५८ के कृपि वर्ष और वाद के वर्षो में जागीर-जमीनो से होनेवाली मालगुजारी से होनेवाली आय का चौथा भाग।

रैयतो के द्वारा खातेदारी हक की प्राप्ति

उन रैयतो को छोडकर जो पहले से ही खातेदार, पट्टेदार या खादिमदार की हैसियत से भूमि पर वशक्रमानुसार और परिवर्त्तन योग्य अधिकार रखते हैं, वाकी सभी को खातेदारी अधिकार प्राप्त करने के लिए वार्षिक कर से दसगुना रकम राज्य के खजाने में जमा करना पडेगा। जागीर जमीन की व्यवस्था में इस प्रकार से प्राप्त सारी रकम सरकार की होगी। किन्तु अन्य स्थितियो में दो तिहाई जागीरदार को मिलेगी। पहले के रैयती कानून के अनुसार लगभग किसी भी रैयत को जमीन के परिवर्त्तन का पूर्ण अधिकार प्राप्त नही था यद्यपि कुछ को छोडकर बाकी सबो को परम्परागत वशक्रमानुसार भूमि जोतने का अधिकार था। राजस्थान की भौगोलिक अवस्था को देखते हुए खातेदारी अधिकार की प्राप्ति के लिए भुगतान की दर बहुत अधिक मालूम पडती है। यहा का अधिक क्षेत्र मरुभूमि है। परिणामस्वरूप खातेदारी अधिकार प्राप्त करना उनके लिए कठिन होगा। जमीन पर पूर्ण परिवर्त्तन का अधिकार भी श्रेयस्कर नही कहा जा सकता क्योकि ऐसी स्थिति मे जमीन महाजनो और बाहरो के हाथो में ही प्राय चली जाती है।

ऊपर कहे गये दोषो के अधिरिक्त भी कुछ बहुत भयकर दोष इस जागीर रीजम्पशन ऐक्ट में वर्त्तमान है। सर्व प्रथम तो इस कानून में उन जोतदारो के रैयती हक के विषय में कुछ भी नही कहा गया है जो अभी जमीन जोत रहे है, वशानुक्रम से उन्हें जोतने का अधिकार भी प्राप्त है, लेकिन द्रव्याभाव के कारण पूर्ण खातेदारी अधिकार हासिल करने में लाचार हैं। दूसरे इस कानून में परिवर्त्तन, दर-रैयती या बन्धकी के द्वारा जमीन के गैर जोतदारो के हाथ में चले जाने के विरुद्ध कोई सुरक्षा नही प्रदान की गयी है। इस प्रकार की व्यवस्था रहनी ही चाहिए जिसमे कि जमीन के जोतनेवाले और राज्य के वीच कोई तीसरा व्यक्ति नही रहे जैसा कि उत्तर प्रदेश जमीन्दारी उन्मूलन कानून में है।

पुनर्वास अनुदान

इस ऐक्ट के अन्तर्गत पुनर्वास अनुदान की व्यवस्था की गयी है। अब जागीरदारो को मुआविजा के अतिरिक्त पुनर्वास अनुदान भी मिलेगा जिसकी व्याख्या सशोधन के अनुसार कानून की तीसरी अनुसूची मे की गयी है। २५० रु० से ५,००० रु० तक की आमदनीवाले जागीरदारो को उनकी आय के ११ गुने से लेकर ५ गुने तक पुनर्वास अनुदान दिया जायगा। ५,००० रु० से अधिक आयवालो को चौगुना से दुगुना तक पुनर्वास अनुदान दिया जा सकता है किन्तु ऐसी परिस्थिति मे इस कानून के अनुसार इसका हिसाब लगा लेना होगा कि अनुदान और मुआविजा की रकम मिलाकर जागीर की आय मे दसगुणा नही हो। इसके अतिरिक्त ३० एकड से अधिक सिंचाई योग्य भूमि रखनेवाले जागीरदारो को और अधिक अनुदान देने की भी व्यवस्था है।

मुआविजा देने के सिद्धान्त मे भी सशोधन किया गया है। पुराने कानून के अनुसार जागीरदारो को दसगुना मुआविजा देने का विधान था किन्तु अब उन्हें केवल सातगुना ही मिलेगा, लेकिन, अगर अनुदान और मुआविजा दोनो को मिलाकर देखा जाय तो यह रकम पहले से कही अधिक हो जाती है जिसकी व्यवस्था मौलिक कानून की दूसरी अनुसूची मे की गयी थी। सुधार कानून में जागीरदारो द्वारा वसूल किये जानेवाले चुगी पर मुआविजा की व्यवस्था की गयी है। इस प्रकार जागीरदारो को अवदान, मुआविजा, खुदकाश्त के लिए अतिरिक्त मुआवजा और चुगी के लिए मुआविजा मिलाकर एक बडी रकम की व्यवस्था हो गयी है।

पाठशाला और दातव्य सस्थाओ को भी उनके हिस्से में पडनेवाली जागीरो के बदले उनकी आमदनी के बराबर रुपये सालाना मिला करेंगे। इस व्यवस्था से इन सस्थाओ को बहुत लाभ हुआ क्योकि अब बिना प्रयास के ही उन्हें रुपये मिल जाया करेंगे।

ऐसा प्रतीत होता है कि जागीरदारी उन्मूलन में राजस्थान की सरकार उन मानवीय सिद्धान्तो से प्रभावित हुई है, जिसकी स्थापना राजस्थान मध्यभारत जागीरदारी उन्मूलन कानून आयोग ने भी की थी। जागीरदारो को केवल मुआविजा और अनुदान ही नही मिलेगे बल्कि उनके आश्रितो को भी सुविधाए प्रदान की जायेंगी। नये कानून की धारा २७ की उपधारा २ के अन्तर्गत विधवाओ को विशेष सुविधा प्रदान की गयी है। इस प्रकार जागीरदारो की धार्मिक सस्थाओ और अवकाशप्राप्त कर्मचारियो को भी कुछ रुपये प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है। नयी धारा ३५ के अन्तर्गत मुआविजा की रकम नकद या बाड के रूप मे या कुछ नकद और कुछ बाड के रूप मे, जैसा सरकार निर्णय करेगी, दी जायेगी।

कानून की नयी धाराओ के अनुसार खुदकाश्त जमीन की बन्दोबस्ती अब इसी कार्य के लिए नियुक्त खुदकाश्त आयुक्त करेंगे जिनका फैसला अन्तिम रूप मे मान्य होगा। निस्सन्देह यह एक बडा दोष है क्योकि असन्तुष्ट पार्टी को बोर्ड आफ रेवेन्यू में अपील के अधिकार से वचित किया गया है।

जहा तक खुदकाश्त के रूप मे जागीरदारो को जमीन बन्दोबस्त करने का प्रश्न है, उसमे अब रैयतो को बेदखल करके जागीरदारो को जमीन देने का प्रश्न नही रह गया। हा, गैरखातेदार रैयतो को उस जमीन से बेदखल किया जा सकता है जो पहले जागीरदार के निजी जोत मे थी। इसके अतिरिक्त नयी सिचाई क्षेत्रो मे अन्दर जागीरो को रियायती शर्तो पर जमीने दी जा सकती है।

जागीर जमीन पर कर निर्धारण की धारायें निम्न दो प्रकार की जमीनो पर लागू नही की जायेगी, (क) वह जागीर जमीन जिसकी आमदनी किसी शैक्षणिक अथवा धार्मिक सस्था या धार्मिक कार्यो मे खर्च की जाती है और (ख) जिनकी आमदनी ५००) रु० से कम है।

जागीर जमीनो के रैयतो द्वारा खातेदारी अधिकार प्राप्त धाराओं का भी सुधार कानून में अन्त कर दिया गया है। राजस्थान की वर्तमान परिस्थिति में पुरानी धाराये अनुकूल नही कही जा सकती। इसलिए उन धाराओ का रद्द किया जाना अवश्य ही नही कदम माना जायेगा।

कश्मीर, हैदराबाद, आसाम, हिमाचल प्रदेश, पेप्सू, मध्यभारत पश्चिम बंगाल और सौराष्ट्र में भूमि सुधार की प्रगति

श्री कैलाश नाथ भारती

अबतक पूरे देश में भूमि-सुधार कानूनो की प्रगति जिस प्रकार चल रही है उससे अनुमान लगाया जा रहा है कि समस्त देश में भूमि की समस्या को अन्तिम समाधान दे दिया जायगा। लेकिन इसके बाद भी, जो खामिया रह जायगी, उनमें सशोधन के लिए विशेष तत्परता दिखाई पड रही है। यह देखा गया है कि बीच-बीच में स्वार्थ की शक्तिया इन कानूनो के रास्ते मे रोडे वनकर आती रही हैं जिस कारण कानूनो को अमली जामा पहनाने मे प्राय देर हो जा रही है। इससे सतोष होता है कि तमाम विरोधी अन्त में सहयोग करने को तत्पर हो जाते हैं। नीचे कई राज्यो के भूमि-सुधार कानूनो की प्रगति का औपचारिक विवरण है, हालाकि इन राज्यो मे पूरे तौर पर, कानून लागू नही है। कानून बना देना एक अलग बात है। उसी अमल में लाया जाना दूसरी बात। प्रसन्नता इस बात की है कि शनै - शनै नयी परिस्थितियो के अनुसार मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड रहा है।

कश्मीर में भूमि सुधार

एशिया मे सम्भवत कश्मीर ही ऐसा राज्य है जहा भूमि सुधार की प्रगति अत्यन्त क्षिप्र गति से हुई है। कार्यान्वियन अभी होता ही जा रहा है। कश्मीर मे भूमि सुधार कानून वन जाने से साढे छ लाख एकड जमीन जो जमीन्दारो के अधिकार मे थी, दो लाख किसान परिवारो के वीच वाट दी गई। इस कानून से लगभग दस लाख व्यक्तियो को लाभ पहुचा है। सबसे आश्चर्यजनक और अनुकरणीय वात तो यह रही कि किसी तरह का मुआविजा कश्मीर सरकार ने किसी को नहीं दिया।

स्वय कश्मीर के राजा के अधिकार में ही पूरी चार तहसीलें थी जिनमें कृषि योग्य दो लाख एकड जमीन थी। छनानी के जागीरदार साहब अकेले ही ४७ गावो के मालिक थे। दीवान साहब भी कोई १५ हजार एकड भूमि के मालिक थे। कश्मीर में भूमि के सम्बन्ध मे इतना बडा वैषम्य फैला हुआ था। किन्तु कानून की तेज रफ्तार ने सबकी जमीनें ले ली। भूमि सुधार कानून की कार्यान्विति के समय मदिरो और मस्जिदो की जमीनें भी ले ली गई। जमीन्दार जमीन्दार है चाहे उसे जागीरदार कहा जाय या मटाधीश।

भूमि सुधार के अन्तर्गत कश्मीर में एक व्यक्ति के पास केवल बीस एकड भूमि पर ही कब्जा रह सकता है। जमीन्दारो के साथ कुछ रियायत की गई और उन्हें २२ एकड भूमि रखने की छूट मिली। २५ और ५० एकडवाले जमीन्दार कोई वडे जमीन्दार नही कहे जा सकते हैं। किन्तु ये लोग स्वय खेती नही करते थे और केवल लगान पर बन्दोबस्त करके उसका लाभ उठाया करते थे। इससे किसानो पर अधिक बोझ बढता जाता था।

इसी सुधार के अन्तर्गत लगभग एक लाख साठ हजार जागीरी जमीन किसानो में बाट दी गई। जो जमीन कुछ दिन पहले चन्द लोगो की मिल्कियत थी, वही अब साठ हजार किसानो की मिल्कियत हो गई। और यह सारा काम केवल सोलह महीनो में हो गया। खेतो पर किसानो की मिल्कियत स्थापित कर देनेवाले इस कानून की इतनी लोकप्रियता बढी कि लोग उसे आजादी का मसविदा कह कर घोषित करते हैं।

इसके वाद कश्मीर सरकार ने भूमि-सुधार के अनेकानेक कानून वनाये। जम्मू और कश्मीर दुखी कर्जदार ऐक्ट का सृजन किया गया। इस कानून के अनुसार कर्ज देनेवाले और लेनेवाले दोनो को समझौता

बोर्ड में समझौते के लिए अर्जी देनी पड़ती थी। जिस दिन से यह कानून लागू हुआ उसी दिन से चार महीने की अवधि के अन्दर ही कर्ज देनेवाले के लिए आवेदन पत्र दाखिल कर देना जरूरी हो गया। बाद में कर्ज देने का उनका अधिकार ही खत्म हो जाता।

१५ अप्रिल १९५२ तक इन बोर्डों के सामने ४१२९५ दावे दाखिल किये गये और उन सबका फैसला कर दिया गया। दावे की कुल रकम ९६५९०३५ रुपये थी किन्तु सिर्फ २३०३८६६ रुपये के दावे को ही सरकार ने जायज माना। कर्ज मे इतनी कमी भारत मे किसी भी राज्य में नही हुई है। जापान की कृषि भी कुछ ऐसे ही तरीको से की गई है। कश्मीर सरकार ने इतना बडा परिवर्त्तन कम समय मे ला दिया और खेती की जमीन हजारो किसान परिवारो में बट गई। कश्मीर ने बराबर प्रगतिशीलता का उदाहरण देश के समक्ष रखा है। उसका जमीन सुधार कानून तो भारतवर्ष के लिए संकेत है।

हैदराबाद में भूमि सुधार

हिन्दू जनसंख्या बहुल मुसलमान नवाब के शासन के अन्तर्गत कराहनेवाली जनता को अब त्राण मिला है। १९४८ के सितम्बर में वहा की सैनिक सरकार ने एक कानून द्वारा सर्फेखास को दीवानी मे परिवर्त्तित कर दिया। निजाम की समस्त जमीन सरकार के कब्जे मे आ गई और उन्हें ५,००००० लाख वार्षिक निजी खर्जे के लिए दिया जाना निर्धारित किया गया। उसी साल जागीरदारी उन्मूलन कानून पास हुआ। १९५० मे रैयतवारी जमीन की स्थिति सुधारने के लिए टेनेन्सी और कृषि भूमि कानून पास किया गया। इन कानूनो के जरिये वहा के आदिवासियो का पुनर्स्सस्थापन होने लगा है।

हैदराबाद राज्य मे २५६०० वर्गमील जागीरें थी। पूरी भूमि के अनुपात मे ३०.९ प्रतिशत और इनका फैलाव ६३५५ गावो में था। जागीरो की आमदनी छोटे मक्ते मे ५०० सौ रुपये की थी और बडे पैगाह में २५००००० थी। अधिकाश जागीरदारो की अपनी व्यवस्थाएँ थी, इसी कारण विभिन्न क्षेत्रो मे भूमि प्रशासन भिन्न-भिन्न था और इनके फलस्वरूप किसानो की हालत सुधरती नही थी। सर्फेखास जब दीवानी मे परिवर्त्तित हो गया तब उससे जागीरदारो और हिस्सेदारो की सख्या एकदम कम हो गई। सैनिक गवर्नर ने उस समय इनके प्रशासन के लिए एक जागीर प्रशासक की नियुक्ति की।

हैदराबाद टेनेन्सी और कृषि भूमि कानून १० जून १९५० से लागू हो गया। इनके उद्देश्य यो हैं —

(१) राज्य और रैयत के बीच कोई बीचवान न रहे।
(२) किसानो की स्थिति सुधरे।
(३) जमीन अधिक माप मे एक ही व्यक्ति के जिम्मे न रहे और,
(४) जमीन को वैसे व्यक्ति के साथ बन्दोबस्त न की जाय जो खेती न करता हो।
(५) सहयोगिता के आधार पर कृषि को प्रोत्साहन दिया जाय।
(६) जमीन से खाद्यान्न का अधिकाधिक उत्पादन हो।

इन दो कानूनों में बराबर सुधार की गुजाइश बनी रहती है। योजना आयोग ने भी कतिपय सिफारिशें की है और क्षेत्रीय प्रशासको को तरह-तरह के अधिकार दिए गए है ताकि वे इन कानूनो को पूर्णतया काम में लगा सके।

आसाम में भूमि सुधार

आसाम सरकार ने अबतक ५ महत्त्वपूर्ण भूमि सुधार कानूनो को स्वीकृत कर लागू किया है। आसाम भूमि विस्तार एव अधिकार कानून द्वारा सरकार ने समस्त परती भूमि पर अधिकार कर लिया है जिसकी बन्दोबस्ती भूमिहीनो और विस्थापितो के साथ की जा चुकी है। यह कानून पहले १९४८ में स्वीकृत हुआ था और ४९–५० साल में भी इसमें पर्याप्त सुधार किय गए।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कानून है आसाम अधिकार सरक्षण और नियन्त्रण कानून, जिसके द्वारा आसाम के समतल जिलो के बटाईदारो का सरक्षण हुआ। इसके पहले अधिकारो के साथ जमीन के मालिक तरह-तरह के अत्याचार करते थे।

तीसरा महत्त्वपूर्ण कानून है आसाम इस्टेट व्यवस्था कानून, जिसके पास हो जाने से जगलो, पहाडो, बगीचो, तालाबो आदि की रक्षा निर्मम भू-पतियो के अत्याचार से की गई। पहले जमीन्दार इनका अतिशय दुरुपयोग करते थे। इस कानून के स्वीकृत होने पर कतिपय जमीन्दारो ने हाईकोर्ट मे मुकदमा तक दायर किया, लेकिन उन्हें सफलता नही मिली और २३ अप्रिल १९५३ से यह कानून लागू कर दिया गया तथा उपर्युक्त सभी चीजो पर सरकारी अधिकार हो गया।

चौथा कानून 'आसाम जमीन्दारी उन्मूलन' कानून है जिसे राष्ट्रपति ने २६ जुलाई १९५१ को स्वीकृति दे दी है। इसके खिलाफ भी जमीन्दारो ने मुकदमा दायर किया, लेकिन असफल रहे।

पश्चिम बगाल का भूमि सुधार

पश्चिम बगाल राज्य सरकार ने सबसे पहले (१९४९ मे 'नन-एग्रीकलचरल टेनेन्सी ऐक्ट' पास किया। इस कानून के पास होने के पहले शहरी इलाको मे रैयतो की हालत अच्छी नही थी। जमीन्दार के साथ इनका ठेका रहता था और किसी भी समय ये बेदखल किये जा सकते थे। इस कानून द्वारा शहरी इलाको के रैयतो को स्थायी उत्तराधिकार और तबादले के अधिकार प्राप्त हो गए।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कानून है प० ब० बरगादार ऐक्ट। इस कानून की सर्वाधिक जरूरत बगाल में थी, चूकि जमीन बन्दोबस्त करने के बाद मालिक फसल का तीन हिस्सा ले लेता था, जिसे 'तिभागा' कहते है। इस व्यवस्था के कारण उत्पादन में कमी हो गई थी और भाग चाषियो और मालिको मे बराबर असन्तोष रहता था। अब इस कानून के द्वारा उन्हें राहत मिल गई है। इस तरह के झगडो का फैसला एक बोर्ड के अधीन रहेगा।

हिमाचल प्रदेश में भूमि सुधार

भारत के उत्तर में स्थित पहाडी क्षेत्रोंवाले इस प्रदेश में भूमि-सुधार के लिए एक समिति बनाई गई थी जिसमें सरकारी तथा गैर सरकारी दोनो प्रकार के प्रतिनिधि थे। इस समिति के अध्यक्ष थे मुख्य मंत्री डाक्टर

वाई० एस० परमार। समिति को कृषि भूमि की अवस्था जाच करने में बहुत समय लगा और यह निश्चय किया गया कि इन्ही सिफारिशो के आधार पर भूमि सुधार कानून बनाये जायगे। समिति की सिफारिशो को जान लेना जरूरी है चूंकि इनसे ही नये समाज की स्थापना के उद्देश्यो का एक अन्दाज मिल जाता है।

(१) हिमाचल प्रदेश में जितनी भी छोटी-छोटी रियासतें विलीन हो गई हैं उनके मालिक "आला मालिक" कहलाते थे। राजस्व विभाग के खाते में इन आला मालिकों के अलावा इनसे छोटे-छोटे भूमिपतियो के नाम भी दर्ज रहते थे। लेकिन किसानो को जब चाहे बेदखल कर दिया जा सकता था। अब आला मालिको के नाम दर्ज होने की मनाही सरकार द्वारा कर दी गई है।

(२) बहुत दिनो से हिमाचल प्रदेश में छोटे-छोटे अन्य बन्दोबस्ती लेनेवाले किसान थे जिन्हे बेतु कहते है। इन बेतुओ को भूमि बन्दोबस्ती लेने के लिए जमीन्दारो की चाकरी बजानी पडती थी। १८८७ के पजाब टेनेन्सी ऐक्ट के मुताबिक अब बेतुओ को भी जमीन पर अधिकार दे दिया गया है। दसगुना लगान देने पर ये बेतु जमीन के मालिक भी हो सकते है।

(३) राज्य विधान सभा दो बिल स्वीकृत कर चुकी है और ये अब लागू भी कर दिये गये हैं। (१) पजाब टेनेन्सी (हिमालय प्रदेश सशोधन) बिल (२) हिमाचल प्रदेश टेनेन्ट्स (राइट्स ऐण्ड रेस्टोरेशन) बिल। इन दोनो बिलो के लागू हो जाने से किसानो की बेदखली एकदम रोक दी गई है। कोई किसान तभी बेदखल किया जा सकता है जब वह लगान न दे। ३० अगस्त १९५० से जो भी किसान बेदखल कर दिये गये हो उन्हे अपनी जमीन पर फिर से बेदखल दे दिया गया है। इसके लिए किसानो को केवल अर्जी देनी पडता है।

पेप्सू में भूमि सुधार

पेप्सू सरकार ने भी भूमि सुधार कानून बनाने में उत्साहजनक प्रगति की है। जमीन्दारी उन्मूलन कानून यहा भी स्वीकृत किया जा चुका है। बिस्वादारी उन्मूलन कानून सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कानून है। कपूरथला तथा फरीदकोट की रियासतो को सर्वाधिक जमीनें थी। इन दोनो रियासतो के किसान को जोत का हक दे दिया गया है। बिस्वेदारी कानून के अन्तर्गत भी किसानो को हक मिल चुका था। फरीदकाट और नालागढ रियासतो के अधिकारी आला मालिक समझे जाते थे। आला मालकियत अधिकार उन्मूलन कानून भी पास किया गया है। किसानों को बेदखल होने से रोकने के लिए पेप्सू टेनेन्सी ऐक्ट स्वीकृत किया जा चुका है।

होल्डिगो के खड-खड हो जाने से रोकने के लिए भी कानून बनाया गया है जिसका नाम है पेप्सू होल्डिग कसोलिडेशन ऐण्ड फ्रैग्मेंटेशन कानून। इन कानूनो के लिए अधिक उत्पादन, परती जमीन मे खेती करने तथा नियमित भूमि वितरण के निमित्त भी कानून बनाये गये है। पेप्सू आबोपैन्सी बिल और पेप्सू टेनेन्सी ऐण्ड एग्रीकलचरल लैंड्स बिल के पास कर दिये जाने पर जागीरदारो, जमीन्दारो और आला मालिको से किसानो को त्राण मिल गया है। लेकिन अभी जमीन की कई किस्में ऐसी है, जिनका पूर्णरूपेण समाधान बाकी है। इस दिशा में वहा की सरकार सतर्क एवं सक्रिय है। किसान भी केवल उसीको जमीन दे सकते हैं जो जमीन जोतते हो या उपज बढाने में रुचि रखते हो। किसान अगर अपनी जमीन परती छोड दें तब उस पर सरकार या तो स्वय खेती कर सकती है या दूसरे को जमीन बन्दोबस्त कर सकती है। ऐसी आशा की जाती है कि इन कानूनो से अधिकाधिक किसानो का कल्याण होगा। यह देखा गया है कि किसान सरकारी प्रयासो में पूर्ण सहयोग दे रहे हैं। किसान ही राज्य की अर्थ-व्यवस्था की रीढ हैं। सरकारी कानून इनकी दशा सुधारने की दिशा मे लग रहे हैं।

मध्यभारत में भूमि सुधार

मध्यभारत में रैयतवारी, जमीन्दारी और जागीरदारी प्रथाए चालू थी। ग्वालियर राज्य में जमीन्दारी प्रथा थी और वहा इन्तजाम अच्छा होता था। प्रारभ काल से ही मध्य भारत सरकार ने भूमि-सुधार कानून को लागू करने की चेष्टा की और इस दिशा में उन्हें अधिक सफलता मिली भी। जागीर इलाको के थाने तथा अन्य अदालतें सरकार के कब्जे में आ गई। लैंड रेकर्डस मेनटिनेन्स ऐक्ट पास करके इस दिशा म प्रयास आरम्भ किया गया। खालसा इलाको के लिए भी भूमि प्रशासन और रैयतवारी भूमि आय कानून बनाया गया। इन सबका कानूनो का उद्देश्य किसानो का सरक्षण था। उनकी बेदखली जो पहले बडे पैमाने पर की जाती थी, रोक दी गई।

इतना कर लेने के पश्चात जागीरदारी और जमीन्दारी उन्मूलन का काम शेष रह गया। लेकिन लोग इस दिशा में बिना पर्याप्त अध्ययन के किसी प्रकार का कानून बनाना जायज नही समझा जाता। अतएव जमीन्दारी उन्मूलन के सम्बन्ध में जाच करने के लिए एक समिति सघटित की गई जिसमें तीन गैर सरकारी और दो सरकारी सदस्य थे। नवम्बर १९४९ में ही कमिटी ने अपनी रिपोर्ट दे दी है। ठीक इसीके बाद सघीय सरकार ने एक ऐसी कमिटी का गठन किया जिसके ऊपर मध्य भारत और राजस्थान की जागीरदारी प्रथा की जाच करने के अधिकार सौंपे गये। इस समिति के अध्यक्ष श्री वेंकटाचार मनोनीत किये गये। इस समिति की रिपोर्ट भी उसी वर्ष दिसम्बर महीने मे दे दी गई।

इन्ही रिपोर्टों के आधार पर मध्य भारत जमीन्दारी उन्मूलन कानून पास किया गया और फिर जागीरदारी उन्मूलन कानून भी। इन दोनो महत्त्वपूर्ण कानूनो का उद्देश्य था राज्य और प्रजा के बीच के बीचवानो को समाप्त कर देना। जैसे ही जमीन्दारी उन्मूलन कानून पास हुआ वैसे ही जमीन्दारो ने हाईकोर्ट में मुकदमा दायर किया। जागीरदारो की ओर से भी इसी प्रकार की अर्जिया दी गई, अत इन दोनो कानूनो के शीघ्र ही लागू किये जाने में थोडी देर हो गई। जमीन्दारी उन्मूलन कानून की निम्न धाराए है

(१) खुदकाश्तो को छोडकर अन्य सभी जमीन सरकार के अधिकार में आ गई।

(२) सभी किसानो को पक्का रैयती अधिकार मिल गया। चाहे रैयत किसी भी श्रेणी का है।

(३) अन्य किसानो को भी किसी भी तरह से जमीन की बन्दोबस्ती लेते थे उन्हें भी पक्का अधिकार दे दिये गये।

(४) जमीन्दारो को देने के लिए मुआवजा का निर्धारण किया गया।

(५) जमीन्दारो के जायज कर्जदारो की अर्जियो पर विचार करना।

(६) जमीन्दारी के अन्दर की जमीनो के झगडो की सुनवाई और फैसला करना।

(७) उन जमीन्दारो को पुनस्स्थापन व्यय देना जो केवल कृषि पर ही जीवित रहते थे।

(८) पूरे राज्य में रैयतवारी प्रथा जारी करना, ग्रामो की व्यवस्था के लिए पटेलो और लेखपालो की व्यवस्था करना।

इसी प्रकार जागीरदारी उन्मूलन का कानून भी स्वीकृत किया गया है और उसकी विशेषताए भी कुछ इसी प्रकार की हैं।

सौराष्ट्र में भूमि सुधार

१५ फरवरी १९४८ मे सौराष्ट्र राज्य की रचना हुई। इस राज्य मे करीब दो सौ विविध जागीरदार और जमीन्दार थे। खालसा और गैर खालसा जमीन भी थी। ऐसी स्थिति म सरकार का पहला कर्त्तव्य था कि पूरे राज्य में एक प्रकार की भूमि व्यवस्था करें। सौराष्ट्र मे भूमिकर समस्या तीन भागो मे विभक्त थी और इन सबको का शीघ्र निर्णय कर देना सरकार का कर्त्तव्य हो जाता था। (१) सरकार और रैयतो के बीच नये सम्बन्ध पैदा करना (२) भूमि के अधिपतियो और किसानो के सम्बन्धो को स्थायी स्वरूप देना (३) और अन्त में जमीन्दारी और जागीरदारी प्रथा का उन्मूलन कर देना।

इस सिलसिले में तीन बिल पास किये गये (१) सौराष्ट्र भूमि सुधार कानून (२) सौराष्ट्र बरखाली उन्मूलन कानन और (३) सौराष्ट्र इस्टेट अधिकरण ऐक्ट। इस कानून के अनुसार ताल्लुकदारो, भागदारो, आयतो और मुलगिराजियो के अधिकारो में संशोधन कर दिया गया ताकि ये लोग अपने रैयतो के साथ मनमाना नही कर सके। दूसरे कानून के द्वारा बरखालीदार, जिनायीदार, चकारियत, खेराती और धर्मादाय इन सभी प्रकार की भूमियो के सम्बन्ध मे सुधार किये गये। तीसरे कानून के अनुसार खेती की जानेवाली भूमि के अलावा अन्य जमीनो पर सरकारी अधिकार कर लिया गया। इन कानूनो के लागू करने के पहले ३३००० गिरसादार थे। इसके अलावा १९००० बरखालीदार थे। गिरसादारो को तीन श्रेणियो में में विभक्त कर दिया गया। चूकि यहा भूमि की समस्या संश्लिष्ट थी। अतएव जमीन का वर्गीकरण भी कई प्रकार से किया गया। राज्य की आय बढ़ेगी, अधिक उत्पादन होगा और जमीन्दार-किसान के संघर्ष का एकदम खात्मा हो जायगा।

बिहार में भूमि सुधार की प्रगति

श्री रामलखन सिंह यादव

बिहार में भूमि सुधार की प्रगति को निम्न प्रमुख शीर्पको में वाटा जा सकता है —

(१) बीच के तत्त्वो का अन्त,

(२) टेनेन्सी सुधार

(३) चकले की हदवन्दी

(४) कृषि का पुनर्गठन जिसमें चकले की हदवन्दी और सहकारिता खेती का विकास और सहकारी ग्राम प्रवन्ध भी सम्मिलित है।

(१) बीच के तत्त्वो का अन्त

वीच के तत्त्वो के अन्त के लिए यहा कानून का निर्माण सर्व प्रथम १९४९ में हुआ, जिसे विहार जमीन्दारी उन्मूलन कानून, १९४९, कहते हैं। इस कानून की मान्यता को कुछ निहित स्वार्थवालो ने न्यायालय में चुनौती दी और कुछ मुकदमो में सरकार के विरुद्ध इन्जक्शन भी जारी किये गये। यह देखकर कि इस कानून में भूमि-सुधार की पूरी गुजाइश नही है, राज्य सरकार ने स्वय ही इसे रद्द करने का निर्णय किया। अत इस कानून को रद्द कर दिया गया और बिहार भूमि सुधार कानून, १९५०, को सितम्वर १९५० में स्वीकृत किया गया। इस कानून की मान्यता को भी चुनौती दी गयी। परिणामस्वरूप मई १९५२ से पूर्व वीच के तत्त्वो के अन्त का प्रारम्भ तव तक नही किया जा सका जवतक कि भारतीय सघ विधान की धारा ३१ में सुधार नही किया गया और सर्वोच्च न्यायालय ने उसे मान्यता नही प्रदान की।

(२) इस प्रकार वीच के तत्त्वो की समाप्ति के प्रथम चरण में, सितम्वर, १९५२ के अन्त तक राज्य सरकार ने १९५० के भूमि-सुधार कानून के अन्तर्गत उन जमीन्दारियो का अन्त कर दिया गया जिनकी आमदनी ५०,००० रु० सालाना मे अधिक थी। इस प्रकार से समाप्त होनेवाले तत्त्वो की सख्या १५५ थी। १९५२ के मितम्वर महीने से आरम्भ होनेवाले इस अभियान के दूसरे चरण मे गया, हजारीवाग, पलामू, और दरभगा जिले से ऐसे तत्त्वो की पूर्ण समाप्ति का निश्चय किया गया और इसकी प्राप्ति के लिए आवश्यक तैयारिया की गयी। १९५३–५४ की अवधि में राज्य के बाकी जिलो मे भी ५०,००० रु० से लेकर १०,००० रु० तक की आमदनीवाले बीच के तत्त्वो के अन्त का निर्णय भी लागू किया गया।

(३) विहार भूमि सुधार (अमेंडमेंट) कानून, १९५४ से पूर्व विहार भूमि सुधार कानून १९५० के अन्तर्गत प्रत्येक वीच के स्वार्थवालो को राज्य में उसके ऐसे स्वार्थ से सम्बन्धित वस्तुओ की सूची देनी पडती थी जिसे हासिल करना था। इससे उन्मूलन की गति बहुत धीमी हो गई थी। इसलिए राज्य सरकार ने १७ मई, १९५४ को उक्त कानून की धाराओ में आवश्यक सुधार कर इसे और भी अनुकूल वना लिया। इसके अनुसार राज्य सरकार को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वह विशिष्ट क्षेत्र अथवा राज्य के किसी भी भाग में पडनेवाले ऐसे स्वार्थ का अन्त तीन महीने की आम सूचना देकर कर सकती है। इसके वाद बीच के स्वार्थ के उन्मूलन की गति मे तीव्रता आ गयी और २६ जनवरी १९५५ तक राज्य के आठ जिलो अर्थात् आवादी और रकवा में आधे राज्य में क्षेत्रीय सूचना के द्वारा ऐसे तमाम स्वार्थों का अन्त कर दिया। इस कार्यक्रम में सम्मिलित होनेवाले जिलो के नाम है—गया, हजारीबाग, पलामू, मुगेर, पूर्णिया, सहरसा, दरभगा और चम्पारण। १ जनवरी १९५६ से वाकी बचे हुए जिलो—पटना, शाहावाद, मुजफ्फरपुर, सारन, भागलपुर, सताल परगना, राची, सिंहभूम और मानभूम (मानभूम सदर को छोडकर) में भी ऐसे तमाम स्वार्थों के अन्त कर देने का निश्चय किया जा चुका है। इस सम्बन्ध में आवश्यक घोपणा भी की जा चुकी है जो १९ अगस्त, १९५५ को प्रकाशित हो चुका है।

(४) और भी तीव्र गति से उन्मूलन के कार्यक्रम को पूरा करने में दो प्रमुख कठिनाइया रही है। ये है—गावो मे पर्याप्त प्रशासनिक यत्रो और आधुनिक भूमि-रेकार्डों का अभाव। छिट-फुट कागजो के सहारे गावो में मालगुजारी का निश्चय करना पडा। इस राज्य में तहसीलदार की कोटि के व्यक्तियो का पूर्णत अभाव है, क्योकि इस प्रकार के

मालगुजारी अफसर यहा होते ही नही रहे हैं। जुनियर सिविल सर्विस मे नियुक्ति के कार्यक्रम मे काफी वृद्धि की गयी है, और आशा है कि अगले चन्द वर्षो मे ही प्रशिक्षित अधिकारियो की कमी दूर हो जायगी। अस्त-गत स्वार्थवालो ने अपने सभी कागजात सरकार को सुपुर्द नही किये या उनके पास स्वय कागजो का अभाव था। मापी और बन्दोबस्ती हुए भी कितने वर्ष हो गये। सबसे आधुनिक रेकर्ड ३० वर्ष पुराने हैं। और बहुत से जिलो में ५० वर्ष पुराने। मापी और बन्दोबस्ती का सशोधन कार्य भी आरम्भ किया गया है और आशा है कि पूर्णिया जिले मे यह शीघ्र ही पूरा हो जायगा। अन्य जिलो मे इसके पूरा होने मे अभी कुछ समय लगेगा।

(२) टेनेन्सी सुधार

अवधि की सुरक्षा—बिहार मे कृषिजीवियो की सख्या ३ करोड ४६ लाख है, जिनमे ८८ लाख भूमिहीन कृषि मजदूर हैं, ३३ लाख दररैयत हैं और बाकी अधिकार प्राप्त रैयत हैं। इस राज्य मे अपना अधिकार नही रखनेवाले रैयतो की सख्या नगण्य है।

(२) बिहार टेनेन्सी ऐक्ट, छोटानागपुर टेनेन्सी ऐक्ट, या सताल परगना टेनेन्सी ऐक्ट की वर्तमान धाराओ के अन्तर्गत अधिकार प्राप्त रैयतो को अपनी जमीन पर स्थायी और वशानुगत अधिकार प्राप्त हैं। बेदखली या मालगुजारी मे वृद्धि के विरुद्ध उन्हे पूर्ण सुरक्षा प्राप्त है। इस सम्बन्ध मे उनकी स्थिति तथा मालिको की स्थिति में कोई अन्तर नही है, खास कर, अब जबकि जमीन्दारी उन्मूलन के बाद एक मात्र सरकार ही जमीन्दार है। इस वर्ग के रैयतो को उनके वर्त्तमान अधिकारो मे और किसी प्रकार की सुरक्षा की आवश्यकता नही है।

(३) कोई भी क्षेत्र जहा बिहार टेनेन्सी ऐक्ट लागू है, वहा कोई भी दर-रैयत, जो लगातार १२ वर्षो से जमीन जोत रहा है, उसे उस पर अधिकार स्वत प्राप्त है और सिवाय बाकी मालगुजारी की अदायगी में जमीन के बिक जाने तक वह उससे बेदखल नही किया जा सकता।

उन दर-रैयतो को भी, जिन्हे जमीन पर अधिकार प्राप्त नही है, जमीन से सिवा निम्न परिस्थितियो के बेदखल नही किया जा सकता —

(१) बाकी मालगुजारी नहीं देने पर,

(२) जमीन को इस प्रकार व्यवहार करने पर कि वह कृषि के लिये बेकार हो जाय, और

(३) जहा दर-रैयत रजीस्ट्री लीज के अनुसार प्रविष्ट कर चुका हो और लीज की शर्त्त समाप्त हो गयी हो।

अभी हाल तक मालिको द्वारा अपनी जोत के जमीन से बेदखल किये जाने पर दर-रैयतो को सिवा अदालत मे जाने के और कोई अन्य चारा नही था। अदालत मे मुकदमे या अत्यधिक खर्च और फैसला मे लम्बी अवधि के कारण गरीब रैयतो के लिए फैसले के दिन तक प्रतीक्षा करना असम्भव था। बेदखल दर-रैयत के लिए कठिनाई और अधिक बढ जाती थी क्योकि न तो रैयत उनके साथ कोई रजीस्ट्री लीज ही करता था और न किसी प्रकार की रसीद ही दी मिल सकती थी।

ऐसी परिस्थिति मे अपने दावे के पक्ष में किसी प्रकार का कागजी सबूत पेश कर सकना उनके लिए असभव था। दर रैयतो को गैर-कानूनी बेदखली से सुरक्षा प्रदान करने के लिए बिहार टेनेन्सी ऐक्ट में बिहार टेनेन्सी (सेकेन्ड अमेन्टमेट) ऐक्ट, १९५५ के द्वारा सुधार लाया गया है। इस सुधार कानून के अनुसार जिलाधीश को १ फरवरी, १९५३ से बेदखल किये गये दर-रैयतो को जमीन पर कब्जा दिलाने का विशेष अधिकार दिया गया है। १ दिसम्बर १९५५ से यह सुधार कानून लागू किया गया है।

अधिकार प्राप्त रैयतो और दर-रैयतो को पहले से ही वास की जमीन पर काफी अधिकार प्राप्त है और उन्हें कोई बेदखल नही कर सकता। जहा वास की जमीन रैयतो की कृषि भूमि का हिस्सा है, वहा भी यही नियम लागू होता है। अन्य स्थानो मे स्थानीय परम्परा और व्यवहार के अनुसार नियम लागू होता है। १ फरवरी, १९४८ से स्वीकृत बिहार प्रिवीलेज्ड परसन्स होमस्टेड टेनेन्सी ऐक्ट के अनुसार सभी व्यक्तियो को अपने वास की जमीन पर स्थायी अधिकार प्रदान कर दिया गया, जिसके अनुसार भूमिपति को केवल पूर्व निश्चयानुसार जायज मालगुजारी मात्र पाने का अधिकार रह गया। जिलाधीशो को यह अधिकार दिया गया कि गैर कानूनी बेदखली की स्थिति में रैयतो से आवेदन प्राप्त कर उन्हे वास की जमीन पर फिर से अधिकार दिलावे।

प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत योजना आयोग ने यह सुझाव दिया है कि भूमिकर किसी भी परिस्थिति मे उपज का चौथाई या पाचवा भाग से अधिक नही हो।

बिहार मे भूमि कर का औसत दर प्रति एकड ३ रु० से ४ रु० तक है जो जमीन की कुल उपज का १०वा से १५ वा भाग होता है।

अभी हाल तक रैयत अधिक-से-अधिक अपनी उपज का ५।२०वा भाग जमीन्दार को मालगुजारी के रूप मे देता था। बिहार टेनेन्सी (सेकेन्ड अमेंटमेट) ऐक्ट, १९५५ के अनुसार उसमें सुधार कर दिया गया है। अमेंडिग ऐक्ट के अनुसार कर का अधिकतम दर कुल उपज का ५।२० वा भाग निश्चित कर दिया गया है।

कुछ दिनो पूर्व तक दर रैयतो द्वारा मालिक को दिये जानेवाले उपज के हिस्से का कोई दर निश्चित नही था। बिहार टेनेन्सी (सेकेन्ड अमेंडमेंट) ऐक्ट, १९५५ के द्वारा अधिकतम हिस्सा भी तय कर दिया गया है। यह अधिकतम हिस्सा उपज का ७।२ वा भाग है।

बिहार टेनेन्सी ऐक्ट ने पहले ही नकद मालगुजारी की दर तय कर दिया है। बिहार टेनेन्सी ऐक्ट की वर्तमान धाराओ के अन्तर्गत उपज मे हिस्सा देनेवालो के लिए नकद मालगुजारी देने की व्यवस्था नही है। इसलिए राज्य सरकार ने उक्त धाराओ में सुधार लाने का फैसला किया है जिससे कि उपज में हिस्सा देनेवाले दर-रैयतो को भी नकद मालगुजारी देने की सुविधा प्रदान हो सके और वे राज्य सरकार द्वारा निश्चित अधिकतम मालगुजारी से अधिक देने से बच सकें।

जमीन्दारो द्वारा निजी खेती के लिए जमीन प्राप्त करने के अधिकार पर नियंत्रण

वर्तमान टेनेन्सी कानूनो के अन्तर्गत इस राज्य में जमीन्दारो को निजी खेती के लिए जमीन प्राप्त करने के लिए कोई भी अधिकार प्राप्त नही है। जहा तक दर-रैयतो का प्रश्न है, उनके मालिको को लिखित लीज की समाप्ति के बाद जमीन लौटा लेने का अधिकार है। लिखित

लीज से पूर्व जमीन पर कब्जा प्राप्त करने का अधिकार मालिको को नही है । राज्य सरकार ने रैयतो को निजी जोत के लिए जमीन लौटाने का अधिकार प्रदान करने का निश्चय किया है, बशर्ते कि इस सम्बन्ध में कानून बनाने में निम्न शर्तो का पालन हो —

(१) निजी जोत में जो जमीन वापिस की जायगी उसका क्षेत्रफल विहार एग्रिकल्चरल लैंड्स (सीलीग एण्ड मैनेजमेंट) बिल, १९५५ के अन्तर्गत निश्चित अधिक-से-अधिक हदवन्दी के आवे से अधिक नही हो। इसके अन्तर्गत रैयतो की पहले से निजी जोत की जमीन शामिल नही है।

(२) अधिकरण के अधिकार का उपयोग इस प्रकार किया जायगा जिसमें किसी अन्दर रैयत के पास दो एकड से कम भूमि न रह जाय। चाहे उस जमीन पर उसका मालिकाना हक हो या उसने वन्दोबस्ती ली हो। ऐसी प्रत्येक दशा में जहा स्वय रैयत खेत का मालिक हो और उसकी भूमि पाच एकड से अधिक भूमि नही हो, उसे तवदील की हुई भूमि पर अधिकार मिल जायगा ।

(३) प्रस्तावित कानून के लागू किये जाने के ६ महीने के अन्दर अधिकार प्राप्त का क्षेत्र दर्शाया जायगा। किन्तु इसकी अन्तिम सूची कलक्टर की स्वीकृति से तैयार की जायगी ।

(४) जमीन पर रैयतो द्वारा कब्जा करने का अधिकार प्रस्तावित कानून के लागू होने के तीन वर्षो तक रहेगा ।

(५) कब्जा करने के एक साल के अन्दर अगर रैयत जमीन को आवाद करने में असफल रहा अथवा चार साल के बाद भी वह जमीन को गैर-आवाद छोडेगा तो फिर कलक्टर को उसे उसी शर्त पर दर-रैयतो के साथ वन्दोवस्त करने का अधिकार है।

(६) इस कार्य के लिए "निजी खेती" के रैयत के सयुक्त परिवार के किसी सदस्य अथवा नौकर या मजदूर द्वारा की जानेवाली खेती भी सम्मिलित है ।

रैयत की जमीन को खरीदने का अधिकार

जहा तक अधिकार प्राप्त रैयतो का सम्बन्ध है, यह प्रश्न पैदा ही नही होता । किन्तु दर-रैयतो को, विहार एग्रिकल्चरल लैंड्स (सिलीग एण्ड मैनेजमेंट) बिल, १९५५ के अन्तर्गत जमीन खरीदने का अधिकार दिया गया है। वे जमीन्दारो की वह जमीन जो उक्त कानून द्वारा निश्चित अधिकतम सीमा से अविक है, खरीद सकते है, किन्तु इस रैयती हक की प्राप्ति के लिए उन्हे मालगुजारी का पन्द्रहगुना मुआविजा देना होगा। विना किसी अन्य विचार के यह अधिकार दर-रैयतो को देने का प्रस्ताव किया गया है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वे विशेष अवधि से जमीन जोतते ही हो। विल मे इसके लिए खास धाराए भी जोड ली गयी है।

राज्य सरकार ने दर रैयतो को, निर्धारित सीमा के अन्दर भी, उचित मुआविजा देकर रैयती हक खरीदने का अधिकार देने का निर्णय किया है। सरकार ने यह भी निर्णय किया है कि अगर निर्धारित समय के अन्दर रैयत जमीन को जोत मे नही लाता है, या लाकर भी जमीन को चार साल के अन्दर गैर आवाद छोड देना है तो उस जमीन को भी दर-रैयत को खरीदने का हक है। इस अधिकार का विस्तार उन दर-रैयतो के लिये भी किया गया है, जिन्होने विहार टेनेन्सी ऐक्ट की धारा ४८ ए के अन्दर अधिकार प्राप्त किया है।

भविष्य मे जमीन की दर वन्दोवस्ती के विपय में सरकार ने निम्नाकित कदम लेने का फैसला किया है और शीघ्रातिशीघ्र इस विपय में कानून वनाने की चेष्टा की जा रही है —

(१) जहा यह पहले से प्रचलित है, दर वन्दोवस्ती को नियमत. भविष्य के लिये वन्द कर देना चाहिए।

(२) दर-बन्दोवस्ती की छूट उन्ही परिस्थितियो में दी जा सकती है जहा रैयत अविवाहित, तलाक प्राप्त या परित्यक्ता स्त्री, या विधवा हो या नावालिग या शारीरिक, कानूनी या मानसिक रूप से अशक्त हो या सघ सरकार में सक्रिय सैनिक सेवा मे काम करता हो ।

(३) ऊपर कही गयी श्रेणी के व्यक्ति की स्थिति मे दर-वन्दोवस्ती केवल रजिस्ट्री लीज के द्वारा ही सभव है और वह भी कम से कम पाच साल की अविध के लिए। इस लीज की समाप्ति पहले भी हो जा सकती है, अगर रैयत स्वय जमीन जोतना चाहे, किन्तु इसके लिए उसे एक साल की पूर्व सूचना रैयत को देनी होगी। दर रैयतो को पहले भी बेदखल किया जा सकता है अगर वे मालगुजारी नही देते है या जमीन का इस प्रकार व्यवहार करते हैं कि वह खेती के लिए अयोग्य हो जाय।

(४) जहा तक उस जमीन का सवध है, जिसकी दर-वन्दोबस्ती हो चुकी है, दर-रैयतो को, चाहे वे कितने भी दिनो से उसे जोत रहे हो, बिना किसी मूल्य के उस पर हक प्राप्ति का अधिकार होना चाहिये । लेकिन उप अनुच्छेद २ में कहे गये व्यक्तियो की जमीन की स्थिति में यह नियम लागू नही होगा ।

कृषिजन्य भूमि का अकृषको के हाथ में जाने पर प्रतिबन्ध

वर्त्तमान कानून के अन्तर्गत कृषि जन्य भूमि की अकृषको के हाथो में बिक्री या लीज के द्वारा जाने पर (जहा ऐसा परिवर्त्तन अनुमत है) कोई प्रतिबन्ध नही है। इसके कारण बहुत से क्षेत्रो में भूमि कृषको के हाथ से निकलकर अकृपको के हाथ में चली आयी है। अकृषको के हाथ में कृपिजन्य भूमि के अधिक हिस्से का होना न तो किसी प्रकार की सतोष-प्रद कृषि अर्थ-व्यवस्था के ही अनुकूल होगा और न इस प्रकार की जमीन पर अधिक पैदावार ही सभव है।

अत राज्य सरकार ने निर्णय किया है कि प्रचलित भूमि कानून में इस प्रकार का सुधार किया जाय जिससे अकृषको के हाथ भूमि की विक्री न तो जायज हो और न इसकी अनुमति ही रहे। जमीन की बिक्री उसी स्थिति में सभव हो कि या तो खरीदनेवाले स्वय कृषक हो या खेती या मकान निर्माण या वगीचा लगाने के उद्देश्य से वह जमीन खरीद रहा हो।

(३) चकले की हदबन्दी

इस सम्बन्ध में योजना आयोग की सिफारिशो को इस प्रकार रखा जा सकता है —

(१) भविष्य में भूमि की प्राप्ति पर पूर्ण सीमा निर्धारित होनी चाहिये ।

(२) तत्काल हल के लिए प्रत्येक राज्य को कृषि तथा प्रवन्ध का स्तर और आवश्यक यत्र की स्थापना करते हुए भूमि व्यवस्था सम्बन्धी कानून बनाना चाहिये एक खास सीमा से ऊपर निश्चित होनेवाले फार्मो को दो भागो में विभाजित करना चाहिए—एक वह जिसका प्रवन्ध बहुत सुन्दर है और जिसके विभाजन से उत्पादन पर खास असर पड़ेगा और दूसरा वह, जिसके लिये यह स्तर आवश्यक नही है। दूसरे भाग की व्यवस्था में सरकार को भूमिहीन कृषकों को सहकारिता अथवा अन्य ढग से व्यवस्थित करने का प्रवन्ध करना चाहिये।

(३) कोई भी व्यक्ति कितनी जमीन रखे इसके लिए सीमा निर्धारित होनी चाहिये।

(१) भविष्य मे भूमि प्राप्ति की हदवन्दी के विषय पर राज्य सरकार विशेष रूप से विचार कर रही है।

(२) भूमि प्रवन्ध के सम्बन्ध में कानून और पूर्ण हदवन्दी—इस विषय में योजना आयोग की सिफारिशो को लागू करने के उद्देश्य से राज्य सरकार ने विहार एग्रिकल्चरल लैंड (सिलींग एण्ड मैनेजमेंट) बिल, १९५५ का मसविदा तैयार किया है जो विधान सभा के गत सत्र मे पेश होकर सेलेक्ट कमिटी को विचारार्थ सुपुर्द किया गया है। इस बिल के प्रमुख अंश हैं —

(१) स्वय मिलाकर पाच व्यक्तियो के परिवारवाले व्यक्ति को हदवन्दी का क्षेत्रफल मैदान इलाके मे ३० एकड और प्लाटो या कम उपजाऊ क्षेत्र में ५० एकड से अधिक नही हो।

(२) एक परिवार का अर्थ होगा भूमिपति, उसकी पत्नी, उसके पुत्र और पुत्रवधू, उसके पिता, माता, अविवाहिता पुत्री और बहन और उसके पोता-पोती।

(३) अगर भूमिपति के परिवार मे सदस्यो की सख्या पाच से अधिक होगी तो प्रत्येक अतिरिक्त व्यक्ति पीछे मैदान में पाच एकड और अन्य क्षेत्रो मे साढे आठ एकड जमीन उसके चकले मे जोडी जा सकती है बशर्ते की पूरा चकला ३०० एकड से अधिक नही हो।

(४) जहा भूमिपति के खेतो का पूरा रकवा हदवन्दी के रकबे से अधिक होगा वहा भूमिपति को यह अधिकार होगा कि उसके दर-रैयत के अन्दर की कौन-सी जमीन उसके चकले की हदवन्दी में सम्मिलित की जाय।

(५) हदवन्दी के क्षेत्र में मिलाये जानेवाले दर-रैयत की जमीन का क्रम टेनेन्सी कानून में स्पष्ट कर दिया जायगा।

(६) रैयत की हदवन्दी मे नही मिलायी गयी जमीन के दर-रैयत को मालगुजारी का पन्द्रहगुना मुआविजा खजाने मे जमा करने पर अधिकार प्राप्त होगा।

(७) हदवन्दी के रकवा से अधिक जमीन रखनेवाले भूमि-पति को निर्धारित किये जानेवाले सुन्दर खेती और पशुपालन के सिद्धान्त के आधार पर ही खेती करना पडेगा।

(८) निर्धारित अधिकारी को किसी भी भूमिपति अथवा भूमिपतियो के किसी भी गिरोह का अच्छी खेती और प्रवन्ध के स्तर को निश्चित करने अर्थात् अन्न की बुवाई और पशु पालन के सिद्धान्त के पालने के लिए आदेश करने का अधिकार होगा।

(९) निर्धारित अधिकारी द्वारा दिये गये आदेश को पालन करने मे अगर कोई भूमिपति असमर्थ है, तो उसे स्वेच्छा से अपनी जमीन अधिकारी को सौंप देना चाहिये या रजिस्टर्ड सहकारी कृषि सोसाइटीमें शरीक हो जाना चाहिये।

(१०) अगर कोई भूमि-पति निर्धारित अधिकारी की आज्ञा पालन में असफल रहता है और स्वेच्छा से अपना खेत वापिस नही करता अथवा सहकारी खेती मे सम्मिलित नही होता तो फिर वह अधिकारी की आज्ञा से अपनी जमीन से बेदखल किया जा सकता है।

(११) जहा भूमिपति आदेश नही मानने के कारण बेदखल कर दिया जाता है, उस जमीन को निर्धारित अधिकारी प्रत्यक्ष रूप से देख-भालकर सकता है या किसी रजिस्टर्ड को-आपरेटिव फार्मिंग सोसाइटी के द्वारा प्रवन्ध करा सकता है या अन्य भूमिपति अथवा खेतिहर मजदूरो के द्वारा खेती करा सकता है।

(१२) ऊपर की अवस्था मे भूमिपति की अपनी जमीन से बेदखली पाच वर्षो से अधिक की अवधि के लिए नही होगी और उस अवधि मे भूमिपतियो को वार्षिक तौर से द्रव्य देना होगा जो वास्तविक भूमि कर से कम नही होगा या जैसा अधिकारी निर्णय करेगा।

(१३) २०० एकड से अधिक जमीनवालो से जमीन सरकार १० गुना मुआविजा देकर प्राप्त करेगी।

(१४) इस प्रकार से प्राप्त जमीन को सरकार निर्धारित शर्त पर भूमिहीन खेतिहर मजदूरो के साथ बन्दोबस्त करेगी।

(४) कृषि का पुनर्गठन

चकलों का पुनर्गठन और टुकडों मे बंटने से बचाव—मध्यम और छोटे भूमिपतियो की समस्या का हल प्रदान करने के उद्देश्य से योजना आयोग ने राज्य सरकार से सिफारिश की है कि वे पूर्ण तत्परता के साथ चकले की हदवन्दी के कार्यक्रम को अमल में लावें। योजना आयोग की सिफारिशो को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए राज्य सरकार ने विहार कन्सोलिडेशन आफ होल्डिंग्स एण्ड प्रिवेन्शन आफ फ्रैगमेन्टेशन बिल, १९५५ प्रस्तुत किया है। इस बिल का उद्देश्य चकले की हदवन्दी करना तथा भविष्य मे जमीन का टुकड़ो मे बटने से रक्षा करना है। राज्य विधान सभा के पिछले सत्र मे इस बिल को उपस्थित किया गया था जो सेलेक्ट कमिटी को विचारार्थ सुपुर्द किया गया है।

इस बिल की विशेषताए ये हैं —

(१) राज्य सरकार स्वय अथवा भूमिपति के आवेदन प्राप्त कर सूचना प्रसारित कर किसी भी क्षेत्र मे चकले का पुनर्गठन आरम्भ कर सकती है।

(२) पुनर्गठन के लिए आवश्यक यन्त्र की स्थापना करना अर्थात् कन्सोलिडेशन अफसर सेटलमेंट अफसर, सेटलमेंट कमिश्नर आदि की नियुक्ति करना।

(३) जिन क्षेत्रो में ग्राम पचायतें सगठित नही हैं, उन क्षेत्रो में कन्सोलिडेशन अफसर को पुनर्गठन की योजना तैयार करने मे परामर्श करने के हेतु परामर्श समिति का सगठन करना ।

(४) कन्सोलिडेशन अधिकारियो की योजना को कार्यान्वित करने के लिए ग्राम सडक आदि को भी व्यक्तिगत जमीनो से मिलाने का अधिकार ।

(५) कन्सोलिडेशन के सिलसिले में उत्पन्न बातो मे अदालती काररवाई की मुमानियत ।

(६) पुनर्गठन से उत्पन्न परिवर्त्तन का नक्शा तथा अधिकार का रेकार्ड तैयार करना ।

(७) कम मान की भूमि प्राप्त करनेवालो को मुआविजा दिलाना तथा अधिक मान की भूमि प्राप्त करनेवालो से मुआवजा वसूलना ।

(८) पुनर्गठन के खर्च के पूरे या अश का मूल्याकन, बटवारा और वसूली ।

(९) पुनर्गठन के दौरान में खर्च या मुआविजा देने के लिए कृषको को भूमि विकास कर्ज या कृषि कर्ज देना ।

(१०) पुनर्गठन में परिवर्त्तन या अदला-बदली से मुक्त करना।

(११) इस सम्बन्ध में तमाम उपकरणो मे रजिस्ट्री से मुक्ति ।

(१२) राज्य सरकार द्वारा किसी स्थानीय क्षेत्र अथवा भूमि की किस्म को देखते हुए स्टैन्डर्ड क्षेत्र घोषित करना तथा भविष्य में परिवर्त्तन बिक्री आदि के द्वारा टुकडे होने से रक्षा करना। खेतो को टुकडे में विभाजित होने से बचाने के लिए आदर्श तरीका तो यह होता कि वशानुक्रम से व्यक्तिगत अधिकार प्राप्त करने के कानून में आवश्यक सशोधन किया जाय, किन्तु माल विभाग अभी इसे बहुत कठिन मानता है और इसीलिए वह इसके लिए सुझाव नही दे रहा है।

सहकारी खेती

राज्य सरकार ने सहकारी खेती को इस राज्य मे आरम्भ करने के प्रश्न के विभिन्न पहलुओ पर विचार करने के लिए एक समिति भी नियुक्त कर चुकी है। इस समिति की रिपोर्ट प्राप्त हो चुकी है और राज्य सरकार इस पर विचार कर रही है।

सहकारी ग्राम व्यवस्था

सहकारी ग्राम व्यवस्था सम्बन्धी योजना आयोग की सिफारिशो को लागू करने के उद्देश्य से सरकार धीरे-धीरे कर वसूली गाव की सामान्य भूमि, तथा गैरमजरुआ खास भूमि की व्यवस्था, छोटे-छोटे सिंचाई कार्य की मरम्मत आदि को ग्राम पचायत को सुपुर्द कर रही है।

प्राचीन भारत में ग्राम पंचायतें

श्री देवप्रसन्न मालवीय

स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले ने कभी कहा था कि अंग्रेज विदेशी शासकों के राज्य में "हमारी मानवता जितना ऊंचा उठाने की क्षमता रखती है वहां तक वह कभी नहीं पहुंच सकती और लकड़ी काटनेवाले औजारों और पानी खींचनेवालों की तरह अपने ही देश में हमारा भाग्य कुंठित हो गया है।" ऐसे विदेशी शासन से अहिंसात्मक रूप से अपनी स्वतन्त्रता पा लेने के पश्चात यह स्वाभाविक ही है कि हम आज अपनी मातृभूमि में चारों ओर आत्म अभिव्यक्ति एवं आत्मसंगठन के लिए गहरा प्रयास होता देख रहे हैं। डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने हमारे ग्रामीण समुदायों के लिए कहा है "वे ऐसे लोग हैं जिनमें सामाजिक प्रयोग और सामाजिक पुनर्रचना करने की एक निहित क्षमता सदा पायी गयी है।" नये भारत में होनेवाले उपर्युक्त प्रयोग स्वभावत हमको अपने ग्रामों में ही अधिक दृष्टिगोचर होते हैं जहां इस समय सम्पूर्ण ग्राम पर ग्रामीण समुदाय को सर्वोच्च अधिकार प्रदान करने के लिए भरसक कोशिश की जा रही है। अपने व्यक्तित्व को पूर्णरूप से विकसित करने के लिए, अपने स्वाभिमान को पूर्णरूप से स्थापित करने के लिए शान्ति एवं सौहार्द्र के अपने चिर संदेश को संसार को सुनाने के लिए यह अवश्यम्भावी ही है कि भारत स्वतन्त्रता प्राप्त करने के कुछ ही वर्षों के अन्दर अपनी ग्राम पंचायतों को पुनर्जीवित करने के लिए गहरा प्रयास करे, कारण ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से ग्राम पंचायतें ही भारतीय परम्पराओं एवं भारतीय प्रतिभा को व्यक्त करने की सर्वोच्च संस्थाएं रही हैं। अभी हाल ही गत मास में कांग्रेस कार्यकारिणी ने ग्राम पंचायतों पर जो प्रस्ताव स्वीकार किया उसमें उसने "भारत के विभिन्न भागों में पंचायत व्यवस्था के उत्तरोत्तर स्थापित किये जाने का स्वागत" किया था।

हमारी पंचायत परम्पराएं

कांग्रेस कार्यकारिणी ने अभी हाल ही कहा कि भारत में ग्राम पंचायतों का यह पुनर्स्थापन "न केवल भारत की प्राचीन परम्पराओं के अनुरूप ही है, वरन् यह आधुनिक स्थितियों के अनुकूल भी है।" पं० जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक हिन्दुस्तान की कहानी में कहा है कि 'रोमन साम्राज्य के समय सत्ताशाही की जो कल्पना थी, उस समय स्वामी और दास का जो ढांचा था, वह भारत में कभी नहीं पाया गया।" सिकन्दर महान के साथ एक यूनानी इतिहासकार आरियन आया था और उसने एक्सपेडीशियो एलक्ज़ान्ड्री नामक अपनी पुस्तक में सिकन्दर की फौजी चढ़ाइयों का जो वर्णन दिया है, उसमें उसने बड़ी प्रशंसा करते हुए कहा है कि "भारत में प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है।" सुप्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार एलफिन्स्टन ने लिखा है कि "आरियन के अनुसार लैसीडैमोनियों की ही तरह कोई भारतीय दास नहीं हो सकता। पर लैसीडैमोनियों के विपरीत भारतीय किसी और देशवालों को भी अपना दास नहीं बनाते हैं।" पं० जवाहर लाल नेहरू ने भी कहा है—"हिन्दुस्तान के किसान कभी भी किसी सामन्त के दास या अर्द्धदास नहीं रहे।" पंडित जी ने यह भी कहा है कि भारत में "हमारी भूमि व्यवस्था सहकारी एवं सामूहिक ग्रामों पर आधारित थी। व्यक्तियों के और कुटुम्बों के कुछ अधिकार भी थे और कुछ दायित्व भी थे, और वे दोनों परम्परागत नियमों के द्वारा निर्धारित और सुरक्षित होते थे।"

सन् १८७१ में सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान हेनरी सुमनर मेन ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पूर्व एवं पश्चिम के ग्रामीण समुदायों पर कुछ पांडित्यपूर्ण व्याख्यान दिए थे। उसने कहा "भारत की अपनी पुरानी प्रथा यही है कि ग्रामीण समुदाय मिलजुल कर ग्रामीण साधनों का उपभोग करते हैं और उन ग्रामीण समुदायों के अन्तर्गत कुटुम्ब रहकर उपयोग करता है। वहां व्यक्तियों को, भले ही वे अपने कुटुम्ब के अध्यक्ष ही क्यों न हों, अपनी सम्पत्ति को मनमाने तरीके से निपटाने का अधिकार नहीं होता। वह नियमानुसार स्वर्गीय होने पर अपना पद पर सकता है कि कुछ सकरी सीमाओं के अन्दर अपनी सम्पत्ति को अपने बच्चों में वितरित करने के लिए निर्देश दे दे।' और आगे मेन कहता है "मैं काफी अधिकारपूर्ण तरीके से यह कहता हूं कि भारत के उन भागों में जहां ग्रामीण समुदाय बहुत पूर्ण हैं और जहां उस समुदाय के अन्तर्गत रहनेवाले सभी

कुटुम्वो में प्राचीन काल से आनेवाली साम्पत्तिक समानता है, वहा वे अधिकार जो अन्यत्र गाव के मुखियो के पास पाये जाते हैं, ग्रामीण परिषद के पास हैं। सदा ही ग्रामीण समुदाय को एक प्रतिनिधि सस्था के रूप में देखा जाता है, निहित अधिकार प्राप्त किसी सगठन के रूप में नही, और ऐसी परिषदो के सदस्यो की सख्या भले ही कितनी हो, पर उसका नामकरण सदा वही रहता है जिससे प्राचीन काल से चले आनेवाले पाच व्यक्तियो का आभास होता है।"

केन्द्रीय एशिया में क्रीड़ा-स्थल से प्रथम महाप्रस्थान

वस्तुत भारतीय ग्रामो का अतीत, उसके कार्य के प्रमुख नियम, उसके अधिकारियो, कर्माचारियो एव निवासियो के लिए बने नियम, उसका मूलत स्वावलम्वी रूप, इत्यादि, ऐसी वाते हैं जो सर्वविदित हैं और प्रस्तुत लेख में हम उनकी चर्चा नही करना चाहते। गहरे ऐतिहासिक अनुसधानो ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव के प्रथम क्रीडा-स्थल केन्द्रीय एशिया से जब उनका महाप्रस्थान प्रारम्भ हुआ तो उनके एक गुट ने सुप्रसिद्ध ईरानी साम्राज्य की स्थापना की थी। एक दूसरा गुट भूमध्यसागर के दक्षिण में पहुचा और उत्तरी अफ्रीका के देशो को वसाया। एक और गुट भूमध्यसागर के उत्तर देशो को पहुच कर यूनानी, इटैलियन और स्पेनिश राज्यो को जन्म देता है। कुछ और भी उत्तर पहुचकर फ्रासीसी, आयरिश और प्रथम अग्रेज जातियो का पूर्वज बना। केंद्रीय एशिया से प्रस्थान करनेवाला एक और भी गुट और भी उत्तर जाकर स्लाव, ट्यूटन और स्केन्डिनेवियन देशो का प्रथम नागरिक बना। हमारे महान् आर्य पूर्वज भी इसी केन्द्रीय एशियाई प्रदेश से चलकर सिन्धु और गगा की नदियो के विशाल मैदानो में आकर बसे और जैसा हेनरी सुमनर मेन ने कहा है, ये सब अलग-अलग गुट अपने प्रारम्भिक प्राचीन क्रीडा-स्थल से वहा की ग्राम्य-व्यवस्था को लेकर आये। ऐतिहासिक अनुसधानो ने सिद्ध कर दिया है कि ये प्राचीन सामूहिक ग्राम्य-समुदाय यूरोप में और अमेरिका में भी पाये जाते थे परन्तु कालान्तर में वे विनष्ट हो गये, उनके अधिकार नष्ट-भ्रष्ट हो गये और उनके स्थान पर यूनानी और रोमन साम्राज्यो जैसी सस्थाए आ खडी हुई, जिनके अन्तर्गत मनुष्य का भयकर शोपण होता रहा, मानव-मानव को कुचलता रहा और गुलाम प्रथा और गुलामो का क्रय-विक्रय उस समाज का सबसे प्रमुख अग हो गया। बाद में उन गुलामो के विद्रोहो ने उन शोषक प्रथाओ को जड से हिला दिया। दास प्रथा के स्थान पर अर्द्ध-दास प्रथा आयी और सामन्ती शासन और सम्राट व्यवस्था चली और केन्द्रीय एशिया के क्रीडास्थल से आनेवाली ग्राम व्यवस्था के चिह्न न भी शेप न रहे।

भारत में भूमि पर निजी सम्पत्ति कभी नहीं

परन्तु हमारे भारत में विकाम क्रम विल्कुल भिन्न ही रहा। हम यहा भारत के इस विशिष्ट विकासक्रम के कारणो की समीक्षा नही करेंगे, परन्तु वास्तविकता यह है, जैसा प० जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दुस्तान की कहानी मे कहा है "भारत मे कभी धर्म पर आधारित सम्राट-व्यवस्था नही रही है। भारत मे राजा की शक्ति की जो कल्पना थी वह यूरोपीय सामन्तवाद से सर्वथा विभिन्न थी जिसके अन्तर्गत सम्राट का अधिकार उसके साम्राज्य के सब प्राणियो और सब वस्तुओं पर एक-छत्र माना जाता था। वह सम्राट यह अधिकार कुछ लाटो और वैरनो को प्रदान कर देता था और इस प्रकार एक के ऊपर एक अधिकार प्राप्त व्यक्तियो का ढड्ढा-सा खडा हो जाता था।"

भारतीय समाज के इस विशिष्ट विकासक्रम के सम्वन्ध में अर्थात् यहा पर दासो और अर्द्धदासो को रखनेवाली सामन्ती प्रथा के न होने के विषय में कुछ ही लोगो ने सदेह प्रकट किया है। सन् १९५२ में डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त द्वारा लिखित एक पुस्तक डायलेक्टिस आफ लैंड इकोनामिक्स इन इडिया हमारे सम्मुख है जिसमें विद्वान लेखक ने इस कल्पना को चुनौती दी है। विद्वान लेखक ने पुस्तक की भूमिका में कहा है कि सन् १९२१ में वह मास्को मे लेनिन से मिल थे और स्पष्टत वह मार्क्सवादी ही प्रतीत होते है, यद्यपि साम्यवाद के अधिष्ठाता मार्क्स और एगिल्स से उनके गहरे मतभेद भी मालूम होते हैं। एगिल्स ने ६ जून १८५३ को मार्क्स को एक पत्र लिखा था, उसमे उसने कहा था "सम्पूर्ण पूर्व को समझने के लिए भूमि मे व्यक्तिगत सम्पदा के अभाव के न होने को समझना ही वास्तविक कुजी है। इसीमें पूर्व का राजनीतिक और धार्मिक इतिहास छिपा हुआ है। पर इसका क्या कारण है कि पूर्व के निवासी कभी भी भूमि पर निजी सम्पत्ति की अवस्था को, उसके सामन्ती रूप मे भी, नही प्राप्त करते।" डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त एगिल्स के इस कथन से सर्वथा असहमत हैं और कुछ क्रुद्ध भी हैं और कहते हैं कि "हेनरी सुमनर मेन के गलत मार्ग प्रदर्शन के फलस्वरूप ही मार्क्स और एगिल्स इस गलत निष्कर्ष पर पहुचे कि भारत में कवाइली साम्यवाद था या साम्यवादी ग्राम थे, जिनको मार्क्स ने सुखद गणतत्र कहा है, और भारत मे सामन्तवाद विकसित नही हुआ।"

भारत के प्राचीन ग्रन्थो में ग्राम पचायतो की चर्चा

एक मार्क्सवादी द्वारा मार्क्स को गलत कहना चाहे जितना ही आश्चर्य-जनक और कौतूहलकारी हो, परन्तु इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त के विचार उन सूचनाओ से भिन्न हैं जो अपनी प्राचीन ग्राम पचायतो के सम्बन्ध में सस्कृत के ग्रन्थो, वेदो, उपनिषदो, पुराणो इत्यादि से हमको प्राप्त हैं।

जैसा स्वर्गीय श्री रमेशचन्द्र दत्त ने कहा है "भारत मे स्वायत्त शासन की प्रथा सबसे पूर्व विकसित हुई और सबसे लम्बे काल तक स्थापित रही।" ऋग्वेद में ग्रामणी अर्थात् ग्राम के नेता की चर्चा आती है। वाल्मीकि रामायण के बालकाड में कहा गया है कि राजा दशरथ के राज्य मे कोई ऐसा नही था जो लिखा-पढा न हो और "प्रत्येक व्यक्ति अपनी सासारिक सम्पत्ति से सतुष्ट था," और उस समय कोई निर्धन नही था। वाल्मीकि रामायण में जनपदो की चर्चा हुई है, और इसी जनपदीय व्यवस्था के अन्तर्गत, जो विभिन्न ग्रामीण गणतत्रो के सघरूप ही थे उस समय इतनी समृद्धि थी। हमारे सबसे प्राचीन नीति-निर्देशक मनु ने कहा है कि ग्राम ही शासन की प्रथम ईकाई है। एक ग्राम के ऊपर उनके अनुसार १० ग्रामो की ईकाई थी, फिर १०० ग्रामो की ईकाई, फिर १,००० ग्रामो की ईकाई थी, और इस प्रत्येक ग्राम समूहो का निजीशासन प्रबन्ध हुआ करता था। धर्मसूत्रो और धर्मशास्त्रो में भी गण और पुग की चर्चा आती है और ये दोनो ग्राम अथवा शहर नगरपालिकाओ के तुल्य थे।

महाभारत के वनपर्व मे, और फिर शान्तिपर्व मे, ग्राम्य समुदायो की चर्चा पायी जाती है और यह बतलाया जाता है कि ग्राम के नेताओ का क्या दायित्व है। बौद्ध जातक कथाओं में भी ग्राम्य सभाओ की बहुधा चर्चा मिलती है। एक राजा की प्रेयसी ने राजा से कहा कि उसे भी शासन मे अधिकार दिया जाय, तो राजा ने उत्तर दिया "प्रिये, अपने राज्य की जनता पर मेरा कोई भी अधिकार नही है, मै उनका स्वामी नही हू। मैं तो केवल उन पर ही कुछ अधिकार रखता हू जो विद्रोह करते है और गलती करते है।" स्वर्गीया डा० एनी बेसेन्ट ने कहा है "हमको कभी भी द्रविड़ अथवा आर्यकालीन भारत मे कोई भी ग्राम नही मिलता था जो स्वशासित न रहा हो। यही युगो-युगो तक चलनेवाली भारत की अनुपम समृद्धि का मूल स्रोत और कारण था।" सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान प्रो० राइज डेविड्स ने लिखा है, "बौद्ध पुस्तको मे कहा गया है कि ग्रामीण एकत्र होकर मुहल्ले बनाते थे, विश्रामगृह बनाते थे, सड़को की मरम्मत करते थे और उद्यान भी निर्मित करते थे।"

प्राचीन भारत की ग्राम्य व्यवस्था

दो प्राचीन पुस्तकें, कौटिलीय अर्थशास्त्र और शुक्रनीतिसार में, उस समय भारत मे प्रचलित ग्राम्य-व्यवस्था का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। उनमे बताया गया है कि ग्राम की भूमि पर ग्रामवालो का पूर्ण अधिकार था। प्राय प्रत्येक ग्राम मे तीन संस्थाए थी और उनकी निजी इमारतें भी थीं, यथा (१) मन्दिर और उसमे मिला हुआ तालाब जहा पूजा की जाती थी, (२) ग्राम की पाठशाला, (३) विश्रामगृह जहा यात्री ठहरते थे और जहा उनकी सेवा-शुश्रूषा की जाती थी। ग्राम की आबादी के क्षेत्र के शेष भाग मे ग्रामीणो के मकान थे, सड़के थीं और खुले स्थान थे। हर ग्रामीण के घर के साथ एक अहाता होता था और सब्जी उगाई जाती थी। उन पुस्तको में इस बात का आश्चर्यचकित करनेवाला वर्णन पाया जाता है कि किस प्रकार, कहा पर, कौन से पेड़ लगाए जाय। अर्थशास्त्र में इस बात की भी चर्चा है कि नये ग्रामो का निर्माण कहा और कैसे हो। कहा गया है। "राजा या तो नये स्थानो पर या पुराने उजड़े ग्रामो में बाहर से लोगों को बुलाकर या राज्य के बहुत ही घने बसे हिस्सो से लोगो को भेजकर नये ग्रामो का निर्माण कर सकता है।" कौटिल्य ने कहा है कि राजा का कर्त्तव्य है कि वह कुटुम्बो को ग्राम की एकता के सूत्र मे बांधे। अर्थ शास्त्र मे कहा गया है "कृषि करनेवाले शूद्र वर्ग के कम-से-कम ५०० घरानो को लेकर और उनका क्षेत्रफल एक या दो कोस से अधिक न रखकर ग्राम बसाये जायेगे ताकि वे एक दूसरे की सुरक्षा कर सकें। ग्रामो की सीमा नदी द्वारा, पर्वत द्वारा, वनो द्वारा या कटीले पेड़ो द्वारा गुफाओ द्वारा, कृत्रिम दीवारो द्वारा, अन्यथा अन्य वृक्षों द्वारा निर्धारित होगी।"

वस्तुतः कौटिल्य अर्थशास्त्र के काल मे (ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी) प्रत्येक ग्राम का राज्य सत्ता मे विशिष्ट स्थान था और सच तो यह है कि ग्राम ही पूरे राज्य शासन की बुनियाद थे। ये [illegible] न केवल सामाजिक कार्य ही करते थे, वरन् वे न्याय [illegible] भी करते थे।

भविष्य निर्माण के लिए महान् भूत का अध्ययन

हम इस चर्चा को आगे नही चलायेगे। वास्तव मे प्राचीन भारत की ग्राम पचायतो का अध्ययन बड़ा ही रोचक विषय है और उसको तो बहुत अध्ययन की आवश्यकता है। हम जानते है कि हमारे देश में कुछ ऐसे तत्त्व है जो हमारी प्राचीन पचायत व्यवस्था के महत्त्व को, उसके गौरव को नजरन्दाज करने की रुझान रखते है और वे उन हर प्रवृत्ति के विरोधी है जो उनके अनुसार उन पचायतो को "पुनर्जीवित" कराना चाहती है। हम कदापि प्राचीन पचायत व्यवस्था को बिल्कुल उसी रूप मे, "मक्षिका स्थाने मक्षिका" नही लेना चाहते। हमारे उस गौरवपूर्ण अतीत से लेकर अब तक जमाना बहुत बदल गया है और आज संसार की स्थिति उस समय की स्थिति से भिन्न है और हमको उन सब बातो को अपने मस्तिष्क में रखना होगा। हम यह भी जानते है कि प्राचीन और मध्ययुगीन काल मे कभी-कभी पचायतो पर तथाकथित उच्च वर्गो का आधिपत्य स्थापित हो गया और उसके द्वारा निर्धन वर्गो शूद्रो पर, अत्याचार किया गया। हम जब उन पचायतो की चर्चा करते है तो हमारा मकसद केवल इतना है कि हम अपने भूतकाल का अध्ययन करें ताकि हम उससे भी महान भविष्य निर्मित कर सके। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था ",आपको अपने देश के प्राचीन वैभव और गौरव की स्मृति दिलाने मे मेरा एक ही तात्पर्य है। बहुधा मुझसे कहा गया है कि पीछे की ओर देखने से अध पतन होता है, उसका कुछ फल नही होता, और हम लोगो को आगे देखना चाहिये। यही नही है, पर मत भूलिये, भूत के ऊपर ही भविष्य का निर्माण होता है। अत पीछे देखो, जहा तक देख सकते हो देखो। पीछे छूटे हुए अमरस्रोतो के जल को पियो और उसके बाद आगे देखो, आगे बढ़ो, भारत को इतना महान बनाओ, इतना चमकाओ जितना वह पहले कभी नही था। हमारे पूर्वज महान थे। हमको समझना चाहिये कि हमारे अपने अस्तित्व में क्या तत्त्व विद्यमान है, हमारी नसो मे कौन रक्त बहता है। हमे उस रक्त में विश्वास रखना चाहिये। उस रक्त ने भूतकाल मे क्या किया उसे समझना चाहिये, और उस विश्वास से अनुप्राणित होकर अपने महान भूत के गौरव को मस्तिष्क मे रखते हुए हमको एक ऐसे नये भारत का निर्माण करना है जो इतना महान हो जितना कि वह पहले कभी नही था।" अपनी पुस्तक राज्य सत्ता में अमरीका के प्रेसीडेंट स्वर्गीय वुड्रो विल्सन ने कहा था, "प्रत्येक राष्ट्र को, प्रत्येक देश के प्राणियो को अपने ही अनुभवो के आधार पर रहना चाहिये। जिस प्रकार एक व्यक्ति दूसरे से उसके अनुभव उधार नही ले सकता, वैसे ही एक राष्ट्र भी अनुभव उधार नही ले सकता। दूसरे लोगो का इतिहास अवश्य हमको प्रकाश दे सकता है परन्तु उसको अपने कार्य करने की [illegible] नहीं मिल सकती। प्रत्येक राष्ट्र का सदा अपने भूत से अटूट सम्बन्ध स्थापित रखना चाहिये।"

प्राचीन भारतीय ग्रामो पर नेहरू जी का मत

[illegible] इस बात पर जोर देना चाहते है जैसा कि श्री जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक हिन्दुस्तान की कहानी में कहा है, पाश्चात्य देशो के विपरीत, जहा समुद्र के उस पार [illegible]

ओर जहा व्यक्तिवाद को चरम सीमा पर पहुचाया गया, वहा हमारे भारत में "समूह को ही समाज सगठन की बुनियादी इकाई माना गया ।"

श्री नेहरू ने कहा है —"यह वाछनीय है कि हम भारत के पुराने सामाजिक ढाचे को समझें, जिसने हमारी जनता पर इतना गभीर और गहरा प्रभाव डाला है।" श्री नेहरू ने कहा है कि यह सामाजिक ढाचा तीन बातो पर आधारित था। प्रथम, स्वायत्त सत्ता सम्पन्न ग्रामीण समुदाय, द्वितीय, जाति सगठन, और तृतीय, सयुक्त परिवार। "इन तीनो में समुदाय का ही प्रभाव था, व्यक्ति का स्थान नीचा था।" और श्री नेहरू आगे कहते हैं "सामाजिक ढाचे के तीन खम्भे इस प्रकार सतह पर आधारित थे, व्यक्ति पर नही। उनका उद्देश्य था सामाजिक सुरक्षा, स्थायित्व और समूह को अर्थात् समाज को सुचारु रूप से स्थापित रखना। उसका उद्देश्य प्रगति करना नही था। अत प्रगति नही हुई। प्रत्येक समूह मे चाहे वह ग्राम समुदाय था, एक विशेष जाति के लोग थे अथवा सयुक्त कुटुम्ब था, एक सामुदायिक जीवन हुआ करता था जिसमें सबो के समान अधिकार होते थे, सबो में बराबरी थी और जनतान्त्रिक तरीको से काम किया जाता था। आज भी यदाकदा जो जाति पचायते पायी जाती है, वे भी जनतान्त्रिक प्रणाली के अनुसार ही काम करती है।"

हमारे यह ग्रामीण गणतत्र हिन्दू, मुस्लिम और पेशवाई हुकूमतो में वास्तविक जनतन्त्र और स्वायत्त शासन के अनुपम प्रयोग के रूप मे बराबर चलते रहे। केन्द्रीय शासन सत्ता द्वारा जो नियन्त्रण रखा जाता था वह कुछ विशिष्ट बातो तक ही सीमित रहता था, यथा, सिंचन सुविधाए, सुरक्षा-सेना की स्थापना और केन्द्रीय करो का सग्रह। और, ग्राम के स्तर पर सिंचन सुविधाए स्थापित रखना और ग्राम से राज्य के केन्द्रीय करो को वसूल करने मे ग्रामीण समुदाय ही प्रमुख भाग लिया करते थे। उस समय शासनयत्र का मूल रूप ग्राम समुदायो पर आधारित विकेन्द्रित व्यवस्था थी।

चोलों के गौरवपूर्ण इतिहास का एक पृष्ठ

भारत में छोटे तालाबों से सिंचाई की संभावनाएं

श्री न० व० गादरे

सन् १९४६ के अगस्त मास के प्रभात में मुझे एक दिन छोटे तालाबो की बहु-प्रयोजनीय उपयोगिता एक अन्तर्दृष्टि के रूप में मिली। उस समय मै बेलगाव में निरीक्षक अधिकारी के रूप मे बम्बई-मैसूर सीमा पर स्थित मदग तालाब के निरीक्षण के लिये गया था। घोर वर्षा हो रही थी। पानी के नाले बह रहे थे। पूना-बगलौर की सडक पर अपनी कार से जा रहा था, जिसकी छत पर पानी गिरने की ध्वनि मेरे कानो मे पड रही थी। तब मै जिला रोड पर दक्षिण की ओर चल पडा। मै एक ताल्लुका के कस्बे से गुजरा जहा एक छोटे तालाब के पास से सडक पच्चीस मील की दूरी तक फैली हुई थी। यहा मुझे अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई उसकी स्मृति मेरे मन में आज तक ताजी बनी हुई है। सारा दृश्य सुख और समृद्धि का दृश्य था।

मुझे यह जानने में परेशानी नही हुई कि यह अन्तर इजीनियर के हाथो की करामात थी। क्या इजीनियर ने ही यह सब परिवर्तन ला दिया और क्या उसे केवल मात्र एक आकस्मिक घटना ही समझी जाय ?

कर्नाटक ही ऐसा प्रदेश क्यो है जहा विस्तृत क्षेत्रो में छोटे तालाबो द्वारा सिंचाई इतनी सफलता के साथ होती है ? अग्रेजो की हुकूमत से उसकी पैदावार क्यो रुक गई ? और क्यो कोई सही सुधार अथवा व्यवस्था इन ७५ वर्षो तक नही हो सकी, इसके लिए इतने विशेष आयोग और समितिया बनाई गई थी ? हर साल क्यो ये छोटे तालाब बदतर हालत में होते जा रहे हैं ?

आधुनिक इजीनियरो की दृष्टि मे इन छोटे तालाबो की व्यवस्था इजीनियरो के आविष्कारो से हमेशा अछूती ही रही। शायद उन्होंने उनमें किसी प्रकार की योजना अथवा आकृति नही देखी। दुर्भाग्यवश ब्रिटिश हुकूमत ने इन छोटे तालाबो का स्वामित्व और नियत्रण अपने राजस्व विभाग के हाथ रखा तथा इजीनियर सगठनो के हाथो में तो यह अधीक्षण नाम मात्र को था। जब कही कोई परेशानी पैदा हो जाती और कलक्टर उसका हल निकालने मे असफल हो जाता तो इजीनियर उस परेशानी का निदान करने तथा उस पर नियत्रण करने के लिए बुलाए जाते। इजीनियर को इन परेशानियो के कारणो पर प्रशासनिक और निरोधात्मक अधिकार नही होता था। अगर कोई उत्साही इजीनियर 'चिकित्सक कार्य' से कुछ आगे करने के लिए हाथ-पैर बढाता तो उसे निकाल दिया जाता था।

सरकार की ओर से काफी समितियो और आयोगो के होते हुए भी गत शताब्दी मे छोटे तालाबो की अवस्था तीव्रता से बिगडती रही है तथा इसकी रोकथाम भी नही हुई है। इसके विपरीत कोई नया तालाब नही बनाया गया। आज ऐसा लगता है कि दो-एक शताब्दी के बाद यह व्यवस्था ही समाप्त हो जायगी, जैसा कि हर पुरानी व्यवस्था के साथ होता आया है। मुझे लगता है कि जो कुछ हो रहा है वह ठीक नही है। एक इजीनियर और नागरिक होने के नाते मुझे इसका विरोध करने का अधिकार प्राप्त है।

जब तक कि ऐतिहासिक और सास्कृतिक खोज इस सबध में कोई अच्छा विकल्प हमारे सामने नही लाती मै अपने "पानी सग्रह के दृष्टिकोण" को "चोल दृष्टिकोण" कहूगा। यह नाम करीकल और राजराज चोलो की पुण्य स्मृति मे रखा गया है जो हजार अथवा पद्रह सौ वर्ष पूर्व कावेरी ग्राड एनीकट तथा अन्य ऐसे ही कार्यों के निर्माता थे।

आधुनिक सिंचाई का इजीनियर बाधो, नालो और यातायात जैसी यान्त्रिक बातो को जानता है लेकिन छोटे तालाबो के विषय में उसने कभी चर्चा भी नही सुनी।

आधुनिक उच्च शिक्षा 'छोटे तालाबो की व्यवस्था के सिद्धान्त' के विषय में कुछ नही बतलाती है। परिणामस्वरूप इजीनियर असल मे तो

मिस्त्री बन जाता है या एक ओवरसीयर। लेकिन छोटे तालावो का इजीनियर, पानी देने और जमा करने तथा वर्षा की गति का तालाबो की दृष्टि से सतुलन करने के अतिरिक्त तालावो के आसपास फैले हुए मैदान की मिट्टी का निर्माता और उसे सुरक्षित रखनेवाला है। यह वैज्ञानिक जादूगर साधारण वर्षा के क्षेत्र को कम जमीन में बदल देता है। अपने जिले के स्वास्थ्य, जलवायु और जगलात की भी वह देख-रेख करता है और उस जिले का कर्मचारी मात्र ही न होकर स्वास्थ्य-रक्षक और राज्य का निर्माता भी होता है।

नालो को नदियो से और पानी की धाराओ को नालो से अलग रखना चाहिये, घोर बाढ के अलावा, वर्षा का पानी जमीन द्वारा ही सोख लिया जाना चाहिये। भूमि से मिट्टी का एक कण भी सागर मे नही जाना चाहिए।

अवकाश के समय मैने इस विचार को सिद्ध अथवा असिद्ध करनेवाले तथ्यो और आकडो के अध्ययन करने का प्रयास किया है। इसलिए मैने उत्तर आरकोट के कुछ तालावो को चुना क्योकि इनके बारे में सूचना आसानी से मिल सकती थी। इन तालावो का समग्र क्षेत्र नीचे लिखा है—*

इस इलाके में प्रतिवर्ष वर्षा ४४ इच के लगभग होती है। सम्भवत इसमें से २० इच पानी तो जमीन सोख लेती है और बाकी तालावो में चला जाता है। तालाव व्यवस्था का मुख्य प्रयोजन कम वर्षा-वाले प्रदेशो मे ऊची कीमत की फसलो को पानी पहुचाने का है।

छोटे तालाव का विकास आसपास के क्षेत्रो मे होना चाहिये। इनका विकास सम्भवत इसलिए नही हो सका क्योकि पहले इन सब स्थानो पर जगल थे। इस क्षेत्र का कुछ हिस्सा ही तालाबो के लिए उवर्युक्त है क्योकि बाकी हिस्सा पहाडी और ऊबड-खाबड है। अगर यह मान लिया जाय कि इस प्रदेश के आधे क्षेत्र में काफी छोटे तालावो का निर्माण किया जा सकता है तो इस निर्माण के द्वारा लगभग १२०० एकड भूमि उर्वर हो जायगी और १५०० एकड जमीन में चावल पैदा होने लगेगा। पूरे विकास के वाद इस क्षेत्र में नालो की शाखाए समाप्त हो जायेंगी जैसा कि चोल काल में छोटे तालावो के कारण होता था।

तब इन उर्वर और लाभप्रद क्षेत्रो के मौजूदा मालिको में जमीन को आपस में वाटने का काम राजस्व अधिकारियो का होगा। इसके लिए स्थानीय स्वेच्छा से श्रम जुटाने और आवश्यक साधन-सामग्री एकत्रित करने का काम भारत सेवक समाज का होगा जिसकी सहायता पी० डब्ल्यू डी० करेगी। इस योजना को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार को ऐच्छिक मजदूरो को यह आश्वासन देना पडेगा कि दस साल तक वे ही अपने श्रम का उपभोग कर सकेंगे तथा उन पर किसी प्रकार का कर इत्यादि नही लिया जायगा। लेकिन इस योजना को हाथ में लेने के पहले यह देखना होगा कि पानी के उपभोग में कोई कानूनी वाधा न आए, लेकिन इसकी सभावना इस तथ्य के कारण कम हो जाती है कि ग्राड एनीकट नहर ने अपने वहाव की दिशा में आनेवाले इलाको को पानी देने का उत्तरदायित्व ले लिया है। इस योजना को कार्यान्वित करते समय गाव के तमाम नक्शो की सहायता लेनी आवश्यक होगी। यह सम्भव है कि १ मील ४ इचो के नक्शे मिल सकते हैं, वैसे तो कुछ इलाका अभी भी जगलात गिना जाता है।

यह कहना व्यर्थ होगा कि आज कोई भी इजीनियर हो, आधुनिक अथवा पुरातन, गैर इजीनियरो के इस विचार से सहमत नही होगा कि तालाब को साफ करने से उसकी पानी रखने की शक्ति को सुरक्षित रखा जा सकता है। यह आर्थिक दृष्टि से असम्भव है क्योकि एक तालाब की सफाई करने में जो खर्चा होता है वह नया तालाब वनाने से बीसगुना है।

तालाव* व्यवस्था	अयाकट	अयाकट की औसत प्रति एकड सिंचित क्षेत्र	तालाब क्षेत्र	जल प्राप्ति	तालावो की औसत गहराई	तालाब भरने की औसत दर
१	२	३	४	५	६	७
सख्या	एकड	एकड	एकड	क्यूसेक	फुट	
१	१२९०	५०	०७५	४२	२७	१८
२	४१६	६१	०६०	६३	४१	१६
३	१६१२	७३	०६९	११८	२७	१८
४	१२४७	३८	०६७	६०	४०	१४
५	८४८	६३	०९०	११०	३६	१२
६	५६७	७०	०८५	६२	४६	११
७	५०७०	५३	०८०	८०	३१	१५

उपर्युक्त तालिका मे ४,६ और ७वे कालमो का उत्पादन हरेक गुट के लिए कृत्रिम सिचाई की गहराई को निम्नाकित रूप मे मोटे तौर पर प्रगट करता है।

गुट [illegible]या	१	२	३	४	५	६	७
[illegible]नो मे	८८	४७	४१	४४	४७	५२	४५

भारत की आर्थिक प्रगति

श्री गगनविहारी लाल मेहता

भारत की आर्थिक समस्याओ ने गत २–३ वर्षों के भीतर काफी दिलचस्पी पैदा की है। इस समय हम प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में हैं।

प्रथम पचवर्षीय योजना में मुख्य रूप से खेती पर जोर दिया गया था। योजना के अन्तर्गत, सार्वजनिक विनियोग का लगभग ४६ प्रतिशत अश खेती की पैदावार वढाने के उद्देश्य से अपनाये गये उपायो और सिंचाई तथा शक्ति सम्बन्धी योजनाओ पर प्रयुक्त किया गया था। हमारा लक्ष्य यह था कि पाच वर्ष के बाद हमारे खाद्यान्नो का उत्पादन १४ प्रतिशत वढ जाय। कपास, गन्ना तथा खेती की दूसरी पैदावारो के सम्बन्ध में भी इसी तरह के लक्ष्य निश्चित किये गये थे। हमें इस दिशा में पर्याप्त सफलता मिली है और खेती के उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई है। खाद्यान्नो की पूर्ति तथा खेती की दूसरी पैदावारो की वृद्धि में इस प्रकार के सुधार के फलस्वरूप हम अपने लोगो की दैनिक आवश्यकताए पूरी करने में समर्थ रहे है। इस कारण हमें विदेशो से अधिक आयात नही करना पडा है और खाद्य-नियत्रण की परेशानी भी नही उठानी पडी है।

खेती के उत्पादन में वृद्धि

निस्सदेह, खेती की पैदावार की वृद्धि का एक कारण यह भी था कि मौसम अनुकूल रहा। किन्तु, विकास सम्बन्धी विशेष उपायो के अपनाने तथा योजनाओ के पूर्ण हो जाने के कारण ही यह वृद्धि अधिकाशत समव हो सकी। योजना आयोग ने अनुमान लगाया है कि उत्पादन-वृद्धि का लगभग आधा अश विकास सम्बन्धी प्रयत्नो का परिणाम रहा है। प्रमाण के रूप में मैं यह वताना चाहता हू कि यद्यपि सिंचाई और शक्ति सवधी हमारी अनेक वडी-वडी वहु-उद्देश्यीय योजनाए अभी पूरी नही हो रही हैं, तथापि हमारे सिंचित क्षेत्र मे लगभग १ करोड २० लाख एकड अथवा २५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। रासायनिक खादो का प्रयोग वरावर वढ रहा है और यह प्रति वर्ष २ लाख टन से वढकर चालू वर्ष में लगभग ६ लाख टन तक पहुच गया है। इसी प्रकार का विस्तार हमारी विजली की पूर्ति में भी हुआ है। पिछले तीन वर्षो के भीतर हमारी विद्युत उत्पादन क्षमता २ करोड ३० लाख किलोवाट से वढकर ३ करोड किलोवाट तक पहुच गयी है। अगले एक-दो वर्षों में जैसे-जैसे हमारी वहु-उद्देशीय योजनाए पूरी होती जायेंगी, वैसे-ही-वैसे सिंचाई वाले क्षेत्र और विजली की पूर्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होने की आशा है।

औद्योगिक विकास

औद्योगिक क्षेत्र में कुछ नवीन वडे उद्योगो ने उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है। सरकारी उद्योगो में सिन्द्री का खाद का कारखाना उल्लेखनीय है जहा प्रतिदिन १ हजार टन रासायनिक खाद तैयार हो सकती है। यह कारखाना पिछले दो वर्षों से खाद का उत्पादन कर रहा है। चित्तरजन का रेल-इजिन का कारखाना प्रतिवर्ष १०० लोकोमोटिव तैयार कर सकता है। इसके अलावा, सरकारी उद्योगो में पेनिसिलीन, डी० डी० टी और अखवारी कागज के कारखाने भी उल्लेखनीय हैं। अभी दो सप्ताह पहले दो और कारखाने ने उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है। इनमे से एक रेल के डिब्बे और दूसरा मशीनी औजार तैयार कर रहा है। वैयक्तिक उपक्रम ने भी विकास में योग दिया है। वैयक्तिक क्षेत्र के उद्योगो में उत्पादन ही नही वढ रहा है, वल्कि नये कारखाने भी खुले है। औद्योगिक उत्पादन का समूचा सकेताक सन् १९५० के १०५ से वढकर सन् १९५५ के पहले तीन महीनो में १५२ तक पहुच गया। उत्पादन की यह वृद्धि वरावर जारी है। सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन वढकर प्रतिवर्ष ५०० करोड गज सूती कपडे तक पहुच गया है। यह उत्पादन अब तक का सवसे अधिक उत्पादन है। इसके वल पर भारत सूती वस्त्र के निर्यात करनेवाले देशो में दूसरा स्थान प्राप्त कर चुका है। कागज उद्योग का उत्पादन भी ५० प्रतिशत वढ गया है। सिमेंट का उत्पादन सन् १९५०–५१ के २ करोड ७० लाख टन से वढकर सन् १९५४–५५ मे ४ करोड टन तक पहुच गया। वहुत से कारखाने हल्के इजीनियरिंग के सामान भी तैयार कर रहे हैं और उनका उत्पादन पूरी क्षमता भर हो रहा है। विदेशी वैयक्तिक पूजी और प्राविधिक निपुणता ने भी हमारे औद्योगिक विकास में पर्याप्त योग दिया है।

मैं जो चित्र उपस्थित कर रहा हू वह भारत के सर्वतोन्मुखी विकास का द्योतक है। हमारी प्रगति सभी क्षेत्रो में दृढ और व्यापक है। यह विकास जहा सार्वजनिक और वैयक्तिक, कृषि और उद्योग, यातायात और विजली—सच पूछिये, तो समस्त आर्थिक क्षेत्र में दिखलायी पड रहा है, वही शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण की दिशाए भी अछूती नही वची हैं। योजना में यह कल्पना की गयी थी कि हमारी राष्ट्रीय आय

५ वर्षो के वाद ११ प्रतिशत बढ जायगी । किन्तु, तीन वर्षों के भीतर स्थिर मूल्यो के रूप में हमारी राष्ट्रीय आय वस्तुत १२ ४ प्रतिशत बढ गयी है। यदि हम पिछले दो-एक वर्षों में मौसम की अनुकलता का योग स्वीकार कर लें, तो भी यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि हमारी राष्ट्रीय आय की वृद्धि की वार्षिक दर जनसख्या वृद्धि की दर की अपेक्षा काफी अधिक हो गयी है ।

हमारे विकास सम्बन्धी प्रयत्न प्रतिवर्ष बढते ही जा रहे हैं। सन् १९५४–५५ में सार्वजनिक क्षेत्र के हमारे व्यय अनुमानत ११ अरब डालर के रहे। चालू वर्ष में केन्द्रीय और राज्य सरकारो ने १५ अरब डालर विकास कार्यों पर व्यय करने का निश्चय किया है । जुलाई १९५५ में समाप्त होनेवाले १२ महीनो के भीतर उद्योगपतियो को लगभग ३७७ स्वीकृति-पत्र नये उद्योगो की स्थापना करने, अथवा वर्त्तमान उद्योगो के विस्तार के लिए प्रदान किये गये थे । इनमें से १०५ नये औद्योगिक कारखानो के लिए थे । इस प्रकार, विकास की गति तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है। किन्तु, हम अभी रुकना नही चाहते। वस्तुत हमारा उत्साह उत्तरोत्तर बढता ही जा रहा है ।

दरअसल, हमने अभी तक जो सफलता प्राप्त की है, वह तो सिर्फ शुरुआत है। हमने युद्ध और विभाजन के प्रभावो से अपनी आर्थिक व्यवस्था पर हुई क्षतियो को पूरा कर लिया है। एक ठोस नीव रखी जा चुकी है, लेकिन उस पर एक शक्तिशाली ढाचा खडा करने का कार्य पडा ही हुआ है। यद्यपि भारतीय जनता की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय ५३ से बढकर ५८ डालर हो गयी है, फिर भी वह वेहद कम है। जमीन पर जनसख्या का भार वढता ही जा रहा है, क्योकि कारखानो में कुल रोजगार प्राप्त लोगो की २ प्रतिशत सख्या को ही काम प्राप्त है। गावो और शहरो में काफी वेरोजगारी और अर्द्ध बेरोजगारी है। इसके अलावा, देश की श्रम-शक्ति मे प्रति वर्ष १५ लाख से २० लाख लोगो की वृद्धि हो रही है जिन्हें रोजगार देने की समस्या है ।

द्वितीय योजना की तैयारी

इस पृष्ठभूमि पर ही द्वितीय पचवर्षीय योजना की तैयारी हो रही है। भारत में आयोजन एक लोकतत्रात्मक प्रक्रिया है। इसका अर्थ यह है कि लक्ष्यो, साधनो और कार्यक्रमो की प्राथमिकता के सबध में जनता मे काफी वार्त्ताए चल रही है। अभी यह योजना अपनी तैयारी में है। अत इसके सम्बन्ध में विस्तार के साथ कुछ कहना सम्भव नही है। किन्तु, उसकी कुछ मोटी-मोटी वातें विल्कुल साफ हैं ।

भारत मे सभी विकास सम्बन्धी प्रयत्नो का प्रमुख उद्देश्य जनता के जीवन-स्तर को शीघ्रातिशीघ्र ऊचा उठाना है। जहा जीवन-स्तर बहुत ही नीचा है, वहा इस दिशा में बहुत वडी कमी पूरी करनी है। अत, इसमें समय का तत्त्व स्वभावत महत्त्वपूर्ण वन जाता है। प्रथम पचवर्षीय योजना का अनुभव बताता है कि हमने राष्ट्रीय आय में ३ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की है। योजना ढाचा के निर्माताओ ने यह विचार प्रकट किया है कि यदि दृढ निश्चय के साथ प्रयत्न किये जाय तो यह वृद्धि ५ प्रतिशत तक पहुच सकती है। इस सम्बन्ध मे योजना का जो रूप होगा, उस पर अभी वार्त्ता चल रही है। अत अभी से कुछ नही कहा जा सकता । फिर भी यह बात स्पष्ट है कि द्वितीय पचवर्षीय योजना में आर्थिक विकास की दर काफी ऊची रहेगी और इसलिए, हमें यथासाध्य अधिकतम प्रयत्न करने पडेंगे। इसमें विनियोग की मात्रा भी पहली योजना से बहुत अधिक होगी ।

उद्योगो की प्रधानता

भारत जैसे घनी आबादीवाले देश के सामने विकास सवंधी समस्या का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष आर्थिक व्यवस्था को विविधतापूर्ण बनाने और रोजगार के अवसर वढाने से सवध रखता है। हमारे वित्त मत्री ने अभी हाल में बताया था कि हमारे यहा लगभग डेढ़ करोड लोग बेरोजगार हैं। योजना का जो ढाचा तैयार किया गया, उसमें ११० लाख वे रोजगार का लक्ष्य बताया गया है ।

प्रथम पचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास को कम प्राथमिकता प्रदान की गयी थी, क्योकि उस समय हमारे सामने खाद्याभाव की समस्या सवसे प्रमुख थो । उस समय ग्रामीण क्षेत्रो से निराशा और स्थिरता की भावना का मिटाना आवश्यक समझा गया था । मैंने ऊपर बताया है कि इस दिशा में हमने गत तीन वर्षों में काफी उन्नति की है । अत दूसरी योजना में मुख्य जोर उद्योगो के विकास पर दिया जा रहा है । इन पर अधिक-से-अधिक व्यय किया जायगा, ताकि उत्पादन भी वढे और रोजगार भी । लेकिन, इसका मतलब यह नही कि अन्य क्षेत्रो में विकास अवरुद्ध रहेगा । वस्तुत स्वय उद्योगो का विकास तब तक सभव नही, जब तक यातायात और सचार, शक्ति, खनिज, आदि आधार-भूत आवश्यकता के क्षेत्रो में भी विकास न कर लिया जाय ।

जनता का सहयोग

लोकतत्रात्मक व्यवस्थावाले देश में आयोजन तभी सफल हो सकता है जब जनता का सहयोग प्राप्त हो, और उसकी भावनाओ और अभिलाषाओ को मान्यता प्रदान की गयी हो। ससार भर में यह विचार फैला हुआ है कि आर्थिक उन्नति के परिणामो का वितरण अधिक-से-अधिक व्यापक रूप में होना चाहिए, ताकि कुछ थोडे ही लोगो के हाथ में आर्थिक शक्ति केन्द्रित न होने पावे। यही धारणा 'समाजवादी ढग के समाज' के हमारे लक्ष्य में अन्तर्निहित है। पहले, देश के सबसे वडे राजनीतिक दल, काग्रेस ने इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया, और बाद में, भारतीय ससद ने इसे देश के आर्थिक आयोजन का उद्देश्य मान लिया। इसके सम्बन्ध में हमारे देश के बाहर कुछ भ्रम भी फैल गया है, अत इस पर भी सक्षेप में कहूगा ।

'समाजवादी ढग के समाज' का उद्देश्य एक अर्थ में हमारे लिए कोई नयी वात नही है। वस्तुत, यह उन भावनाओ का समन्वय है जो स्वतत्रता-की प्राप्ति के वाद हमारी सामाजिक और आर्थिक नीति का मार्ग प्रदर्शन कर रही है। हमारे विधान में भी हमारा आदर्श कल्याणकारी राज्य निश्चित किया जा चुका है, जो सामाजिक न्याय पर आधारित होगा, और जिसमें स्वामित्व और समाज के भौतिक साधन इस प्रकार वितरित होगे कि उनसे सार्वजनिक कल्याण मे वृद्धि होगी और कुछ थोडे लोगो के हाथो में ही सपत्ति केन्द्रित न होने पायेगी । मै इस सम्बन्ध में वर्ल्ड टूडे नामक पत्रिका में प्रकाशित एक लेख का उद्धरण देना चाहूगा

जो इस दिशा में अच्छा प्रकाश डालता है। इसमें कहा गया है. "भारत उन्मूलन नही करता, वह सशोधन करता है । पश्चिम से उसे जो विचार और प्रविधिया मिल रही हैं, उन्हें ग्रहण करके, वह स्वय अपने विचारो, विशेष कर हिन्दू परम्पराओ, के साथ उन्हें समन्वित कर रहा है। इस प्रकार, वह एक नवीन सामजस्य उत्पन्न कर रहा है जो कालान्तर से विश्व के अर्द्धविकसित देशो के लिए हिंसा विना परिवर्त्तन और भय विना समानता का नमूना बन जायगा। भारतीय राजनीतिक परम्परा निरन्तरता को महत्त्व देती है, बाधाओ को नही, समुचित ढग पर निर्मित सत्ता को महत्त्व देती है, क्रान्तिकारी वैधानिकता को नही।" वस्तुत हम जनता के लिए, और जनता द्वारा आयोजन में ही विश्वास करते है।

वैयक्तिक पूंजी और उपक्रम

हम जिस प्रकार के समाज की कल्पना कर रहे हैं, उसमें वैयक्तिक उपक्रम का निष्क्रमण नही होगा। वस्तुत, एक व्यापक क्षेत्र मे वैयक्तिक साहस को उसकी क्रियाशीलता की पूरी छूट प्राप्त है। पिछले वर्षों में वैयक्तिक क्षेत्र द्वारा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हमारे इस क्षेत्र की स्वतत्रता का अपहरण नही हुआ है।

भारत वैयक्तिक उद्योगो का राष्ट्रीकरण किसी सिद्धान्त के वशीभूत होकर नही करना चाहता। वह उद्योगो की क्रियाशीलता में हस्तक्षेप भी नही करना चाहता। हमारा सबसे प्रमुख आर्थिक क्षेत्र, अर्थात् कृषि, तो एकदम व्यक्तिगत किसानो के हाथो मे ही है। हम केवल यही चाहते हैं कि खेत के जोतने-बोनेवाले ही उसके स्वामी रहे। हमारे गत वर्षों के अनुभव ने भी यह सिद्ध कर दिया हे कि सरकार और वैयक्तिक हित, जिनमें विदेशी भी शामिल हैं, अनेक क्षेत्रो में सहयोग से काम कर सकते हैं। सरकार वैयक्तिक उद्योगो को विकसित करने में तरह-तरह से सहायता भी देती है।

सार्वजनिक क्षेत्र के विकास ने अनेक दृष्टियो से वैयक्तिक क्षेत्र के विकास में सहायता पहुचायी है और सरकार तथा वैयक्तिक क्षेत्र में उत्तरोत्तर बढता हुआ सहयोग रहा है। मैं कहूगा कि हम आज की समस्याओ को कल के नारो द्वारा नही हल कर सकते। जैसा कि कई वर्ष पहले एक अनुदारदलीय अग्रेज नेता ने कहा था, "आज हम सभी समाजवादी हैं।" आज जन कल्याण के लिए सरकार का आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हिस्सा लेना अनिवार्य हो गया है। यह स्थिति आज अविकसित राष्ट्रो के लिए और भी अधिक महत्त्व रखती है। मैंने भारत में विदेशी वैयक्तिक पूजी के भविष्य पर विशेष रूप से कुछ नही कहा है, क्योकि हम उत्पादन के ढग के किसी विदेशी या भारतीय उपक्रम में कोई खास भेद नही करते। हमारे प्रधान मत्री ने अभी हाल में ही कहा है कि देश के औद्योगिक उत्पादन के स्तर में सुधार करने के उद्देश्य से अन्य देशो के साथ सबध और सम्पर्क बढाना होगा। हमने विदेशी पूजी के सम्बन्ध मे अपना दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। हम इस सम्बन्ध मे किसी प्रकार का भेद-भाव नही करेंगे।

हमारे भावी समाज की जो रूपरेखा सोची गयी है उसमें राज्य की सक्रियता उत्तरोत्तर बढती जायगी, जिससे आर्थिक विकास होता जाय, कुछ ही लोगो के पास सपत्ति अनुचित रूप से केन्द्रित न होने पाये और राष्ट्रीय सम्पत्ति का उचित बटवारा हो सके। हमारा लक्ष्य है सर्व साधारण का कल्याण। हमारा प्रयत्न रूढिवादी नही, बल्कि गतिमान है। आज के युग में हमे सामाजिक न्याय को आर्थिक नीति के रूप मे रूपान्तरित करना आवश्यक हो गया है। इस कठिन कार्य मे मुझे विश्वास है कि हमें उन सभी का सहयोग और उनकी सद्भावना प्राप्त होती रहेगी, जो समानता और स्वतत्रता को महत्त्व देते हैं।

ग्राम पंचायत और ग्रामीण विकास

श्री त्रिलोक सिंह

ग्राम पचायत को ग्रामीण-विकास के केन्द्र में स्थापित करने का प्रयत्न वस्तुत, प्राचीन नाम के अन्तर्गत, एक नवीन सस्था की स्थापना का प्रयत्न है। नवीन और प्राचीन पचायतो की सामाजिक पृष्ठ-भूमि एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है और उनके उद्देश्य, कार्य और अभिप्राय भी भिन्न-भिन्न हैं।

वर्त्तमान स्थिति

अब हम ग्रामपचायत का पुनर्निर्माण करने जा रहे है। ऐसी हालत में ग्रामीण समाज जिस प्रकार की अन्तर्कालीन स्थिति से गुजर रहा है उसका महत्त्व स्वीकार करना ही पडेगा। कई दशाब्दियो से एक सुसवद्ध सामाजिक सघटन के रूप में ग्राम समाज धीरे-धीरे, लेकिन नियमित रूप से, पतनोन्मुख है। ऐसी हालत में, जबकि गाव के भीतर और उसके बाहर व्यक्तिगत हितो की सिद्धि अधिकाधिक सामान्य रूप धारण करती जा रही है, अपने सदस्यो पर समाज का प्रभाव क्रमश घटता जा रहा है। भूमि के स्वामित्व में असमानता की वृद्धि, खेती न करनेवाले लोगो के हाथो में अधिकाधिक जमीन का चला जाना और गाव छोड कर शहरो में जाना इस प्रगतिशील प्रवृत्ति के ज्वलन्त प्रमाण हैं। अपनी जनसख्या की तुलना मे भारत के गावो का पेशावार ढाचा इस समय जितना मुख्य रूप से ग्रामीण है, उतना शायद आज से १०० या ५० वर्ष पहले नही था। जनसख्या के वढ जाने की वजह से लगातार और पूरे समय के रोजगार के अवसरो का अभाव पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट हो गया है। इस कारण ग्राम समाज के कुछ वर्गों, जैसे छोटे भूस्वामियो, काश्तकारो, मजदूरो और कारीगरो की हालत वडी खराब हो गयी है और उन्हे वहुत कष्ट उठाना पडा है।

हाल मे जो भूमि सुधार हुए है, उनके फलस्वरूप जमीन के स्वामित्व सबधी असमानता कम होने लगी है लेकिन पर्याप्त रूप में नही। गाव के पुराने नेतृत्व की स्थिति और उसके प्रभाव घटते जा रहे हैं, किन्तु उनका स्थान ग्रहण करनेवाले नये नेतृत्व का उद्भव नही हो पा रहा है। जातीय प्रथा का सामाजिक प्रभाव घट गया है, लेकिन उसका आर्थिक प्रभाव बढ गया है, खास तौर पर अनुसूचित और पिछडी जातियो के लिए। शायद उत्पादन के स्वतत्र साधनो के अभाव या वैकल्पिक अवसरो की कमी के कारण ही ऐसा हो रहा है। जमीन की उत्पादन-क्षमता में वृद्धि के लक्षण अवश्य दिखलायी पड रहे हैं, लेकिन यह वृद्धि अभी इतनी कम है कि उसके कारण अभी ग्रामीण गरीबो के घटने में कोई विशेष सहायता मिलती दिखलायी नही पडती। देश की अर्थ-व्यवस्था ने अपने समूचे रूप मे उन्नति की है, लेकिन जनसख्या और उत्पादन के बीच की खाई के कम होने के सकेत नही मिल रहे हैं।

इस स्थिति में ग्राम समाज के भीतर हित-सघर्ष तीव्र हो उठा है और यह प्रक्रिया अभी भी जारी है। अब ऐसे मूल्य बहुत ही कम है, जिसका सबध सारे समाज में सामान्य रूप में हो, और इनमें तो कोई शक ही नही है कि कोई ऐसा सार्वजनिक उद्देश्य नही रह गया है जो समान रूप से सभी वर्गों को प्रेरित कर सके। बहुत सी नयी बातो से कुछ लोगो को लाभ होता है और दूसरो को हानि। इस सम्वन्ध में, जमीन्दार के ट्रैक्टर और बिजली के कनेक्शन का दृष्टान्त दिया जा सकता है जिससे गाव के उपक्रमी को चावल और आटे की चक्की के लिए बिजली मिलती है। एक ही बात से, जहा एक ओर, कुछ लोगो की उन्नति होती है और वे समृद्ध होते हैं, वही दूसरी ओर दूसरे लोगो की गरीबी बढती जाती है। समाज में इतनी शक्ति नही प्रतीत होती है कि वह इनमें से किसी एक प्रवृत्ति को भी रोक पाये।

इस प्रकार, नवीन ग्राम पचायत का जन्म एक ऐसे समाज में हो रहा है, जिसमें अपनी एकता और अपने अन्त सम्बन्ध में अपना विश्वास प्राय खो सा दिया है, और जिसके सदस्य अपने हितो की भिन्नता के प्रति अधिकाधिक जागरूक होते जा रहे हैं, ऐसा भी प्रतीत हो सकता है कि जिन आधारो पर ग्रामीण लोकतत्र का शिलान्यास करना है, वे अब स्थिर नही रह गये है। ऐसी हालत में, गाव के आर्थिक और सामाजिक

विकास के साधन के रूप में पचायतो को भला कितनी सफलता मिल सकती है ?

सफलता की शर्त्तें

चाहे हम ग्राम पचायत को ग्रामीण-विकास की दिशा में पहला कदम मानें, चाहे परिवर्त्तन और पुनर्निर्माण की दिशा का अग्रणी, एक बात बिल्कुल निश्चित है कि इसे सफलता उसी सीमा तक प्राप्त हो सकेगी, जहा तक (१) यह एक समानतापूर्ण सामाजिक ढाचे के भीतर, जिसमें समाज के विभिन्न वर्ग सार्वजनिक प्रेरणाओ और भावनाओ से प्रेरित हो, क्रियाशील होगी और (२) ग्रामीण जीवन का आर्थिक आधार विस्तृत और सबल बनाया जा सकेगा। पहली शर्त्त तो पचायतो के पिछले इतिहास और उन पर सौंपी गयी जिम्मेदारियो से ही निकली है, किन्तु दूसरी शर्त्त पिछली कुछ दशाब्दियो के भीतर जनसख्या की वृद्धि और आर्थिक विकासो पर आधारित है। उन लोगो के लिए जो पचायतो को ग्रामीण-पुनर्निर्माण का साधन बनाना चाहते हैं, पहला सवाल पचायतो के स्वरूप और सघटन (जो निस्सदेह महत्त्वपूर्ण है) से उतना सबध नही है, जितना उस ढग से जिसमें उपर्युक्त दोनो शर्त्त पूरी की जा सकती हैं। ऐसी हालत में, परिवर्त्तन के वे कौन से सिद्धान्त हैं, जो ग्राम पचायतो की धारणाओ में निहित हैं और आज के गाव में उसकी स्थापना की शर्त्त बने हुए हैं ?

रोजगार की समस्या

ग्राम पचायतो के लिए जिन कामो का प्रस्ताव किया गया है, उन्हें कार्यान्वित करने में उनको समर्थ बनाने के लिए यह जरूरी है कि ग्रामीण समाज को इस प्रकार परिवर्त्तित कर दिया जाय कि वह एक ओर तो अपने सभी सदस्यो को पद और अवसर की समानता प्रदान कर सकें, और दूसरी ओर, व्यक्तिगत मजदूरो के लिए लाभप्रद रोजगार का प्रबन्ध कर सकें। जाहिर है कि जमीन के स्वामित्व मे गहरी असमानता का अस्तित्व इन उद्देश्यो से मेल नही खाता, और व्यक्तिगत अराजियो को सीमित कर देना उन्नति करने की आवश्यक शर्त्त है। फिर भी, इस कारण कि अधिकाश किसान गरीब हैं, जमीनवाले लोगो और भूमिहीन लोगो का भेद जारी रहेगा। इस समय जो लोग भूस्वामी या काश्तकार के रूप में जमीन जोतते-बोते हैं, उनमे से अधिकाश इसी रूप मे बने रहेंगे, हालाकि जैसे-जैसे भूमि सुधार लागू होगे, वैसे-वैसे अधिकाश काश्तकार भूस्वामी बनते जायेंगे। अत, भूमि के पुनर्वितरण के फलस्वरूप भूमिहीनो, और खास तौर पर परिगणित और पिछडी जातियो के लोगो के जीवन-स्तर मे बहुत ही कम, और सच तो यह है कि केवल सामान्य, सुधार ही हो पायगा। यह परिणाम हासिल करना असमानता दूर करने की अपेक्षा अधिक कठिन काम है। इसके लिए ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के परिवर्त्तन के ढग और राष्ट्रीय आयोजन के बीच अधिक समन्वय की आवश्यकता है।

ग्रामीण जनसख्या के एक बहुत बडे वर्ग को नये काम की तलाश मे शहरो में जाना ही पडेगा। अगर नई औद्योगिक ईकाइयो को स्थापित करने के सम्बन्ध में अन्य बातो के साथ ही, घनी आबादी के क्षेत्रो की सतुलित अर्थ व्यवस्था पर उचित ध्यान दिया जाय, तो ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था पर औद्योगीकरण का प्रभाव बहुत लाभप्रद सिद्ध होगा। अगर शहरी और ग्रामीण अर्थ व्यवस्थाओ के आयोजन में निकटतर समन्वय हो जाय, तो भी जमीन पर काफी भार बना रहेगा। उस हालत में भी, गावो के सम्भावित मजदूरो की एक बडी सख्या को जमीन पर, और उन पेशो मे जो ग्रामीण क्षेत्रो में विकसित हो सकते हैं, रोजगार की तलाश करनी ही पडेगी।

खेती की पैदावार को बढाने में ग्राम पचायतो तथा अन्य सस्थाओ के कार्यों का महत्त्व उचित रूप में स्वीकार किया जा रहा है, लेकिन अभी तक यह बात समझ में नही आ सकी है कि ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में काम और सेवाओ के नये रूप किस प्रकार और किसके द्वारा विकसित करने होगे। गावो में रोजगार के नये अवसर स्वत उत्पन्न नही हो सकते। और न वे शहरी विकास और ग्रामीण क्षेत्रो मे क्रियाशील व्यापारियो, ठेकेदारो और छोटे उपक्रमियो के उपक्रमो के फलस्वरूप उत्पन्न होगे। अत यदि ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था की विविधता का केवल औद्योगीकरण, जो अधिकाशत गावो से दूर बडे शहरो में ही केन्द्रित है, के माध्यमिक और अप्रत्यक्ष प्रभावो पर ही अवलम्बित नही होता है तो ग्राम पचायत को रोजगार के पर्याप्त अवसर पैदा करने और उन्हे कायम रखने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी होगी। अन्य शब्दो मे, ग्राम पचायतो को स्थानीय उपलब्ध जनशक्ति के उपयोग के लिए साधनो के विकास और विभिन्न रूपो में रोजगार के अवसर जुटाने की जिम्मेदारी उठानी पडेगी।

आन्तरिक और बाह्य शर्त्तें

किसी भी समय, अनुकूल परिस्थितियो के अन्तर्गत भी, इस प्रकार के उद्देश्य की सिद्धि बेहद कठिन होगी। इस प्रकार के स्थानीय विकास के लिये कुछ बाहरी बातो का, कम-से-कम, अनुकूल होना तो जरूरी है ही। इन बातो का सम्बन्ध मुख्यत उद्योग के स्थानीकरण के लिए अपनाये गये आधार से, बडे और छोटे उद्योगो के सम्मिलित उत्पादित कार्यक्रमो के कार्यान्वित होने से और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था से विशेष रूप से सम्बद्ध उद्योगो के लिए सामान्य स्वरूप में सहकारी और सार्वजनिक प्रबन्ध को स्वीकार करने से है। इन बाहरी शर्त्तों का पूरा करना बहुत ही कठिन है और साथ ही, वे स्वत पर्याप्त नही हो सकेंगे। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था से सबधित कुछ आन्तरिक शर्त्तों का पूरा करना भी जरूरी होगा। इन आन्तरिक शर्त्तों का सबध सघटन, प्राविधिक परिवर्त्तन और साम्पत्तिक सबधो से है। इन पर सक्षेप में विचार करना जरूरी है।

सहकारी ग्राम-प्रबंध

यद्यपि बहुत से उद्देश्यो की सिद्धि के लिए व्यक्तिगत गावो के बजाय, ग्राम-समूह ही उपर्युक्त आयोजन-ईकाई का निर्माण करते हैं, फिर भी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के और अधिक विकास के लिए सयुक्त अथवा सहकारी ग्राम प्रबन्ध की धारणा बहुत महत्त्व रखती है। इसका मतलब यह है कि गाव की जमीन और सारे साधनो का प्रबन्ध और विकास समूचे ग्राम समाज के कल्याण के लिए ही होना चाहिये। अन्य शब्दो में समूचा गाव ही एक आर्थिक ईकाई हो जिसमें खेती और दूसरे पेशो का सघटन, समाज द्वारा या उसकी ओर से, अधिकतम उत्पादन और रोजगार

हासिल करने के उद्देश्य को सामने रख कर किया जाता हो। इस ईकाई के भीतर व्यक्तिगत उत्पादको, सहकारी सस्थाओ और सार्वजनिक कार्यों के लिए उचित क्षेत्र होना चाहिये। इन क्षेत्रो में किसका अनुपात कितना हो, इस बात का सम्बन्ध उन्नति और विकास तथा यथार्थ आयोजन से होना चाहिये। गाव के किसी व्यक्ति को लाभप्रद रोजगार उपलब्ध है अथवा नही, यह बात इस समय अधिकाशत उत्तराधिकार, जाति या भाग्य पर निर्भर करती है। सहकारी ग्राम प्रबन्ध की व्यवस्था के अन्तर्गत, समाज ही उन सभी श्रमिको को लाभप्रद रोजगार के अवसर प्रदान करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता है जो गाव में ही रहते हो, काम की तलाश में हो, और जो भी काम मिल सके उसे करने के लिए तत्पर हो। समाज की इस तरह की जिम्मेदारी के साथ-साथ ही, व्यक्तिगत सदस्यो पर भी कुछ कर्त्तव्यो का भार आ पडता है, जिसके लिए समाज उन पर दवाव डाल सकता है। इनमें से प्रमुख है कठिन और सच्चाई के साथ श्रम करना।

पेशे की विविधता

पेशो की विविधता उत्पादन करने में समर्थ होने के लिए यह बात वडे महत्त्व की है कि ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था नयी प्रविधियो को स्वीकार करे और उन्हे विकसित करे। तेज प्राविधिक परिवर्त्तन जिसमें शक्ति और औजारो का उपयोग भी शामिल है, और आर्थिक विकास का आधार है, किन्तु प्राविधिक परिवर्त्तनो को सामाजिक और आर्थिक परिवर्त्तनो का वास्तविक और समन्वित पहलू माना जाना चाहिये। सिद्धान्तत, यह बात व्यक्तिगत जमीन्दारो या पूजीपतियो द्वारा श्रम-बचाऊ तरीके अपनाये जाने से सर्वथा भिन्न है जो ऐसा केवल अपने निजी स्वार्थ की सिद्धि के लिए ही करते है और इस बात की चिन्ता नही करते कि उससे दूसरे गरीव लोगो पर कैसा बुरा प्रभाव पड रहा है। अन्य शब्दो में, प्रविधियो का विस्तार और उनका लागू करना स्वय ही आयोजन का एक विषय है और गाव की जनशक्ति को उत्पादक रोजगार देने तथा स्थानीय साधनो के विकास के साथ उसका अत्यन्त अविच्छिन्न सबध है।

इस प्रकार व्यापक अर्थ में, सामाजिक परिवर्त्तन के अन्तर्गत सघटन और प्रविधियो के वास्तविक परिवर्त्तन और नये रोजगारो के अवसरो का तेज विकास शामिल हैं। एक अर्द्ध-विकसित देश में जहा छिपी वेरोजगारी काफी मात्रा मे पायी जाती है और जहा भूतकाल की सस्थाए आर्थिक विकास के मार्ग में वाधक हो, राष्ट्रीय आयोजन द्वारा साम्पत्तिक सवधो को व्यवस्थित करके सामाजिक परिवर्त्तन को बहुत तीव्र किया जा सकता है। इस विचार की सभावनाओ की जाच बहुत सावधानी से होनी चाहिए। किन्तु, इसमें जो सुझाव निहित हैं, वे आर्थिक जीवन के अनेक क्षेत्रो पर लागू होते हैं। उदाहरण के लिए, जमीन के स्वामित्व और प्रवन्ध के सम्वन्ध में निम्नलिखित वातो का समावेश हो सकता है

(१) किसी भी व्यक्ति के कब्जे की सपत्ति सीमित होनी चाहिये। यह सीमा जिस स्तर पर निश्चित होगी उसका निर्धारण अनेक प्रकार के दृष्टिकोणो, जैसे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, द्वारा होता है।

(२) समाज द्वारा निर्धारित शर्त्तों पर सपत्ति पर व्यक्तियो का कब्जा होता है। अत, जमीन पर तभी तक कब्जा कायम रह सकता है जब तक कि किसान और उसका परिवार उसे जोतता और बोता हो, वह लगान पर न उठायी जाती हो और उसका प्रवन्ध निर्धारित पैमाने के अनुसार ही होता हो।

(३) सामान्यतया, ऐसी जमीन जिस पर उसका मालिक और उसका परिवार खेती न करता हो, ग्राम समाज के सहकारी प्रवन्ध के अन्तर्गत चली जायगी।

(४) प्रत्येक ग्राम की अर्थ-व्यवस्था के भीतर स्थित व्यक्तिगत फार्मों और स्वैच्छिक सहकारी सस्थाओ के अलावा, सामाजिक स्वामित्व और सामाजिक क्रियाशीलता का भी एक क्षेत्र हो सकता है। समाज के हिस्सो की मात्रा और उसे व्यक्त करने के ढग, हाथ में लिये गये कार्यों स्वभाव के अनुसार भिन्न-भिन्न होगे।

सामाजिक स्वामित्व

सामाजिक स्वामित्व और सामाजिक क्रियाशीलता के क्षेत्र में (१) गाव की जमीन का एक अश और (२) गाव के सार्वजनिक कार्य, जैसे दुग्धशाला, आटे और चावल की चक्की, नलकूप आदि शामिल होगे। लोकतत्रीय सिद्धान्तो पर आधारित विकासशील अर्थ-व्यवस्था में सहकारी फार्मों के साथ-साथ ही, ऐसे व्यक्तिगत कृषक-फार्मों के लिए भी स्थान है, जिन पर उनके मालिक खेती करते हो। किन्तु, किसी उल्लेखनीय पैमाने पर पूजी निर्माण के साधन के रूप में अपर्याप्त सिद्ध होते है। हर दिशा में, उनमें से अधिकाश को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए ही प्रयत्नशील रहना होता है। धीरे-धीरे ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के भीतर से ही साधनो को कुछ बढाये बगैर, सरकार से कुछ सहायता मिलने पर भी, गाव की श्रमशक्ति को रोजगार पर लगाने के लिए आवश्यक सेवाओ और कार्यों के नये स्वरूपो का विकसित करना कठिन होगा। तेज औद्योगीकरण की हालत में भी उनकी बेरोजगारी की यह समस्या गम्भीर ही बनी रहेगी। समाज के पास जो जमीन का सग्रह होगा उसमें, उदाहरण के लिए सार्वजनिक जमीनें, निर्धारित अधिकतम सीमा से अधिक पडनेवाली जमीनें, ऐसी जमीनें जिन पर उनके मालिक खेती न करते हो और इस कारण उन पर समाज का अधिकार हो गया हो, और भूमिहीनो में बाटने के लिए दान में मिली जमीनें शामिल हो सकती हैं। अगर ऐसी अराजियो की चकबन्दी कर दी जाय जो एकदम अलाभकर हो, तो उन्हें भी समाज की जमीनो के सग्रह के साथ या उसके अग के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

इससे स्पष्ट है कि ग्राम पचायतो की स्थापना से पर्याप्त परिणाम प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इस सस्था पर एक वृहत्तर प्रक्रिया अर्थात् ग्रामीण समाज के भीतर तथा शहरी और ग्रामीण समाजो के बीच, बुनियादी तौर पर सामाजिक और आर्थिक सबधो के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया के अविच्छिन्न अग के रूप में विचार किया जाय।

इस आधुनिक विज्ञान के युग में, ससार का वृहद औद्योगीकरण हो जाने के बाद भी, इसकी अधिकाश जनता अब भी कृषि पर ही आश्रित है। अनुमान लगाया गया है कि लगभग १३०करोड व्यक्ति, अर्थात् ससार की जनसख्या के लगभग ७० प्रतिशत, आज भी किसान है। अत सदैव की भाति आज भी ससार की अर्थ-व्यवस्था में कृषि का ही मूल स्थान है।

अतीतकाल से, जबसे मानव का उद्भव हुआ तबसे ही, भूमि का जोतनेवाला अपने स्वत्वो एव अधिकारो को प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहा है और बहुधा उसके प्रयत्नो ने हिंसात्मक सघर्ष का रूप भी धारण किया है।

अतीतकाल को छोडकर भूमि पर सामन्ती स्थिर स्वार्थो के खात्मे का इतिहास, अथवा यो कहिए ससार में भूमि-सुधार का इतिहास, मूलत निम्न तीन युगो में विभाजित किया जा सकता है

(१) मध्ययुग से लेकर औद्योगिक युग के प्रारम्भ तक ।
(२) औद्योगिक क्रान्ति एव उसके बाद का काल ।
(३) आधुनिक युग, अर्थात् प्रथम विश्व महायुद्ध के बाद के भूमि-सुधार ।

निम्न पक्तियो में हम इस बात का प्रयास करेंगे कि पाठकोंके सम्मुख यूरप महाद्वीप में उपर्युक्त प्रथम एव द्वितीय कालो में भूमि-सुधारो एव किसान आदोलनो की जो प्रगति रही, उसकी सक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत करें।

मध्ययुगीन ग्राम

मध्ययुगीन यूरप के ग्रामो में ग्राम की आबादी एकत्र होकर एक एक स्थान पर रहा करती थी, परन्तु किसानो की आराजिया चारो तरफ छितरी होती थी। अतीतकाल के अर्थात् उस कालके जिसको आदिम साम्य वाद का युग कहा गया है, ग्रामो की पचायती प्रणाली और पारस्परिक सहकारिता के अवशेष खेती-बारी के कामो में दिखाई पडते थे। पर जैसे-जैसे सामन्ती शासन दृढ हुआ और बलशाली एव विस्तृत होता गया, वैसे-वैसे उसने ग्रामो की इस पुरातन पंचायती सहकारी व्यवस्था को दबाया। ग्राम्य की सामान्य भूमि पर से किसानो के अधिकारो का तथा ग्रामो की एकता का खात्मा कर वहा फूट डाली तथा कृषि के अधिकांश मुनाफो को हड पने लगा। यहा पर कह दिया जाए कि भारत के ग्रामो की पंचायती व्यवस्था यूरोपीय ग्रामो की पचायती व्यवस्था से कहीं अधिक प्रबल और शक्तिशाली सिद्ध हुई और अतीतकाल के अलावा सामन्ती युग में भी हमारे किसानो की पारस्परिक सहकारिता और पंच-परमेश्वर की भावना पूर्ववत् स्थापित रही। गावो के चारागाहो पर और गावो की सामान्य भूमि पर उनके अधिकार स्थापित रहे। वह जगल से लकडिया काटकर घर लाते रहे और गावो की सिंचन-सुविधाओ पर भी उनका अधिकार रहा। उसका तो खात्मा वास्तव में ब्रिटिश विदेशी शासको ने किया। वास्तव में, जैसा कि कार्ल मार्क्स ने और जवाहर लाल नेहरु ने अपनी पुस्तको में कहा है, अग्रेजो ने भारत में सबसे बडी, जो खराबी कहिए अथवा क्रान्ति कहिए, की वह यही थी कि उन्होने अति प्राचीन, अति सुदृढ, अति व्यवस्थित हमारी ग्राम-पचायती-व्यवस्था को विनष्ट किया। पर वह तो दूसरी ही गाथा है।

पश्चिमी देशो में कबीलो और जातियो का जो प्राचीन संगठन था, वही बाद में ग्रामो की पंचायती-व्यवस्था में परिवर्तित हो गया। यूनानी, केल्शीय, स्लाव और ट्यूटानिक ग्रामीण प्रथाओ एव पद्धतियो पर विनोग्रादोव द्वारा जो महान अध्ययन किया गया, उसने निम्न बातें स्पष्ट की

१ कबीलों में एक ही पूर्वज की संतान हुआ करती थी और उनका पारस्परिक रक्त सम्बन्ध ही उनकी अटूट एका का मूल कारण था। और वास्तव में यह कबीले पुरानी जाति प्रथा के ही एक रूप थे। एक ही पूर्वज की सन्तान अपनी सुरक्षा और पारस्परिक सहायता के लिए एक साथ मिलजुल कर दोस्ती करके रहती थी और आपस में उनके विवाह सम्बन्ध भी हो जाया करते थे।

२. इसी रिश्तेदारी के ही आधार पर और सब पडोसी किसानो के मैत्री-सम्बन्धो के फलस्वरूप ही उस समय खेतो का विभाजन होता था और कृषि की जाती थी ।

३ कबीले जब अपनी खानाबदोशी छोडकर व्यवस्थित ग्राम-समाजो के रूप में रहने लगे तो उसका कारण यही था कि कुछ दिनो के बाद, जैसे-जैसे कृषि विस्तृत हुई और जनसख्या बढी और कबीलो में ही घर-गृहस्थिया और परिवार बनने लगे तो यह आवश्यक हो गया कि विभिन्न व्यक्तियो द्वारा जोती जानेवाली आराजियो का समानीकरण हो, जिसका मूल तात्पर्य यही था कि किसानो के अधिकारो और कर्त्तव्यो में एक सतुलन स्थापित किया जाय ।

ससार की भूमि व्यवस्थाओ के रूप का घनिष्ठ सम्बन्ध कृषि में लगे श्रम के रूप से रहा है। यथा, सामन्ती युग की खेती और खेती के तरीको के पूर्व यदि हम, यूरप से हटकर, और देशो की ओर भी दृष्टिपात करें तो प्रतीत होगा कि तब गुलामी प्रथा ही, और गुलामो का श्रम ही, कृषिका आधार था। वास्तव में गुलाम अथवा दास-युग में दास केवल एक उत्पादक यन्त्र के समान ही समझे जाते थे, जिनका अस्तित्व केवल मालिक की सुविधाओ और कार्यो के लिए ही समझा जाता था, और ऐसे दासो को जो खाना दिया जाता था एव उनके निवास के लिए जो कुछ भी तथाकथित प्रवन्ध किया जाता था, वह केवल इसीलिए कि वे जीवित रह सकें और मालिक के लिए परिश्रम कर सकें, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उस समय भी और आज भी मालिक अपने घोडो और अपने बैलो को चारा देते हैं और खूटे में बाधते है ताकि वे जीवित रहें और हमारे काम आवें। प्रारम्भ में तो यह दास अधिकाशत वे लोग थे जो विजेता द्वारा दूसरे इलाको से और पराजित देशो से पकडकर लाये जानेवाले युद्धवन्दी थे, पर धीरे-धीरे जब मालिक की रियासत में रहते-रहते उन गुलामो की सतान बडी हुई तो उनके साथ मालिक का व्यवहार कुछ-कुछ नरम-सा होने लगा और पूर्णरूप से उनको पहले जैसे यन्त्र समझा जाता था, उसमें कुछ अन्तर हुआ ।

दास प्रथा से अर्द्धदास प्रथा की ओर

शोषित, दलित और पीडित दासो ने भी भयकर शोषण से ऊब कर बडे ही हिंसात्मक और भयकर विद्रोह किए, परन्तु उनके स्वामियो ने सदैव उनके विद्रोहो को खून की नदियो में वहा दिया। वास्तविकता तो यह है कि ससार के दास-काल में विश्व के रजतपट पर जो शौर्य एव त्याग का महान युद्ध लडा गया, उसकी गाथाए ही लुप्त है। सम्भव है, गाथाए कभी लिखी ही न गई हो, और इस प्रकार आज ससार उस जमाने के कुछ महानतम स्वातन्त्र्य-सग्रामो के सम्बन्ध में सर्वथा अनभिज्ञ है। जो भी हो, उस विवरण में जाने का हमारा यहा तात्पर्य नही है। एक वाक्य में हम केवल यही कहेंगे कि शोषित और पीडित दासो के विद्रोहो के फलस्वरूप दास प्रथा बदलकर अर्द्धदास प्रथा में परिणत हुई और दास युग के स्थान पर ससार में सामन्ती युग का प्रादुर्भाव हुआ।।

इस अर्द्धदास को, जिसे अग्रेजी में 'सर्फ' कहा गया है, अपने स्वामी की रियासत में काम करना पडता था और बिना स्वामी की आज्ञा के वह रियासत से बाहर नही जा सकता था। अब अर्द्धदास के पास निजी खेती के वास्ते नाम मात्र की भूमि भी रहने लगी, पर उसको इस प्रकार भूमि दिये जाने की शर्त यह थी कि वह अपने स्वामी की भूमि पर भी बराबर जाकर परिश्रम करेगा। प्राय सप्ताह में ३ दिन वह अपनी भूमि पर काम करता था और ३ दिन स्वामी की भूमि पर जाकर काम करता था। इसके बाद एक ऐसी स्थिति आई जिसमें स्वामी अर्द्धदास को भूमि के अलावा कुछ खेती-बारी के साधन भी देने लगा, अर्थात् हल, बैल, लकडी, इत्यादि। ऐसे नए काश्तकार निर्धन तो होते ही थे, बहुधा वे अर्द्धदास ही थे, और स्वामी की इस देन के बदले वे केवल अपना श्रम ही दे सकते थे, कारण उनके पास सिवाय निजी श्रम के कोई और दूसरी पूजी न थी। बहुधा स्वामी की पूरी रियासत ही उसकी निजी भूमि और ऐसी अर्द्धदासो की भूमि में वितरित रहा करती थी और यह अर्द्धदास स्वामी की जमीन पर मेहनत करने के अलावा अपनी खेती की पैदावार का भी आधा हिस्सा मालिक को दिया करता था। धीरे-धीरे, जैसे-जैसे अर्द्धदास की स्थिति कुछ सुधरी और वह ऐसी दशा में आया कि अपने हल और बैल रख सके तो स्वामी और कृषक के उपर्युक्त समझौते में कुछ अन्तर हुआ। अब कृषक स्वामी से भूमि निश्चित समझौतो के आधार पर प्राप्त करने लगा, जिसके अनुरूप उसे स्वामी को अपनी खेतीकी पैदावार का आधा अथवा तिहाई हिस्सा भी देना पडता था। इस प्रथा को फ्रास में 'मेतिए' प्रथा कहा जाता है और आज भी वह फ्रास और इटली के दक्षिण भागो में पाई जाती है। यदि पुरानी चली आनेवाली प्रणालियो व रीति-रिवाजो का आदर किया जाता है तो, अन्यथा कानूनी सुविधाओ की रू से ऐसे काश्तकार को मालिक द्वारा मनमाने तरीके से बेदखल नही किया जाता। ऐसा काश्तकार प्राय दुखी नही रहता।

परिवार के खेत

इस प्रकार शनै शनै सम्पूर्ण यूरप में परिवारों द्वारा खेती वहा के कृषि सगठन का सबसे सामान्य रूप हो गया, यद्यपि उसका कुछ परिवर्तित रूप भी, स्थानीय स्थितियों के अनुसार, यदा-कदा पाया जाता था। यहा यह कह दिया जाय कि मध्ययुग के सामन्ती सगठन की शक्ति का एक कारण यह भी था कि वह जमाना बडा उथल-पुथलवाला था और सामत की रियासत में जो गरीब काश्तकार रहता था वह यह सोचता था कि यही सामन्त बना रहे, दूसरा न आवे, वही हमारे हितो के लिए अच्छा होगा। अर्थात्, उसका दृष्टिकोण उस अग्रेजी कहावत के अनुरूप था, जिसमें कहा गया है कि 'जिस दैत्य को तुम जानते हो वह दैत्य उस दैत्य से भला है, जिसे तुम नही जानते।' धीरे-धीरे यह अर्द्धदास प्रथा भी

धूमिल अथवा लुप्त होने लगी पर तो भी भूमि का स्वामित्व बड़े-बड़े सामन्ती अमीर-उमराओं के हाथों में ही रहा। कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि जब अमीर-उमरा अपनी फिजूलखर्ची अथवा दूसरे कारणों से बरबाद हुए तो उन्होंने अपनी सम्पत्ति को बड़े-बड़े व्यापारियों और महाजनों के यहा गिरवी रखकर उनसे उधार लिया। कुछ दिनों के बाद उनकी भूमि की मिल्कियत, उधार न दे पाने पर, उन व्यापारियों के हाथों में पहुंच गई। इस प्रकार भले ही भूमि का स्वामित्व एक के हाथ से हटकर दूसरे के हाथ में पहुचा हो, पर वास्तविक खेती करनेवाले वे लोग ही रहे, जिनका जमीन पर कोई भी अधिकार न था। ऐसी स्थिति पहली मर्तबा फ्रास की सन् १७८९ की ऐतिहासिक महान राज्य क्रान्ति में ही बदली और यूरप के अन्य देशों में उसके कुछ बाद।

लगान के रूप

औद्योगिक युग के पूर्व के युग में लगान के निम्न तीन रूप स्पष्टत दृष्टिगोचर होते हैं :

१. श्रम द्वारा लगान की अदायगी।
२. जिन्सों में लगान की अदायगी।
३ सिक्कों में लगान की अदायगी।

श्रम द्वारा लगान इस प्रकार अदा किया जाता था कि किसान कुछ समय अपनी निजी भूमि पर कार्य करता था और उसके द्वारा अपनी और अपने परिवार की आवश्यकता पूर्त्ति करता था और बाकी समय वह स्वामी की भूमि पर काम करता था और उसके द्वारा स्वामी को फायदा होता था।

जिन्सों में लगान की अदायगी सच में श्रम द्वारा अदा किये जानेवाले लगान का ही एक रूप है। इसके अन्तर्गत किसान भूस्वामी को लगान की अदायगी, उसके खेतो पर सीधे-सीधे श्रम करने के बजाय अपने ही खेत पर किये गये श्रम से तैयार होनेवाले सामानो द्वारा करने लगा। कहा जा सकता है कि जिन्सो में अदायगी उत्पादन के साधनो और उच्च विकास-स्तर को व्यक्त करता है, कारण यह इस बात को इंगित करता है कि अब अर्द्धदास अपनी अर्द्धदासता से मुक्ति की दिशा की ओर पहुच गया है और अब स्वामी के लिए यह आवश्यक नही रहा कि वह अर्द्धदास पर, खेतो पर काम करते समय निगरानी रखे। अब किसान अपने खेत पर बिना स्वामी की तेज-तर्रार निगाहो के नीचे रहता हुआ स्वच्छन्द रूप से काम कर सकता था।

सिक्कों में लगान की अदायगी जिन्सो में लगान की अदायगी का ही एक बदला हुआ रूप है। यहा मालिक को लगान खेत की पैदावार के रूप में नही, वरन् एक निश्चित रकम में अदा किया जाता है। स्पष्ट है कि सिक्को में लगान की अदायगी इस बात को सिद्ध करती है कि काश्तकार के पास कुछ अतिरिक्त अनाज भी बचता है और वह उस अनाज को बाजार में बेचकर कुछ पैसा भी पा जाता है। यह तभी सम्भव हुआ होगा जब समाज में व्यापार बढा होगा और बाजारो में विनिमय सम्बन्ध विकसित हुआ होगा। इस प्रकार सिक्को में लगान की अदायगी इस बात को स्पष्ट करती है कि सामन्ती प्रथा या, दूसरे शब्दो में, पूजीवादी युग के ठीक पहले की लगान प्रथा, नष्ट-भ्रष्ट होने लगी थी। इसी सिक्को में अदायगी के और अधिक विकसित होने पर किसान सामन्ती दबावों से मुक्त होकर भूमि पर अपना व्यक्तिगत स्वामित्व प्राप्त करता है।

भूमि का व्यक्तिगत स्वामित्व

सच बात तो यह है कि किसान के व्यक्तित्व का विकास और उसकी परिश्रम-शक्ति और उसकी कृषि-बुद्धि का प्रकाश तब ही सम्भव हुआ जब उसे जमीन पर मिल्कियत प्राप्त हुई और वह स्वच्छन्द रूप से अपने खेत पर खेती करने लगा। जैसा सर्वविदित है, प्रारम्भिक काल में भूमि का उपयोग सामाजिक रूप से ही हुआ करता था। भले ही उस प्रारभिक अथवा आदिम साम्यवाद के युग में भूमि का मालिक कबीले का सरगना समझा जाता रहा हो, पर वास्तव में मिल्कियत पूरे समाज की हुआ करती है और खेतों में काम तथा खेतो की पैदावार का हिस्सा बनी-बनाई प्रणालियो और रिवाजो के आधार पर किया जाता था। समाज के किसी भी व्यक्ति को उन रीति-रिवाजो से परे भूमि पर कोई अधिकार नही हुआ करता था। उस समय हर नए वर्ष या तो कबीलेवाले एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते थे या उसी भूमि पर नये सिरे से काश्त हुआ करती, जिसके फलस्वरूप यह स्वाभाविक ही था कि किसी भी जमीन के किसी टुकडे पर कोई स्थायी हित न पैदा होता था। वास्तव में उस समय एक ही कृषक को दूर-दूर हटी हुई भूमि की कई पट्टिया काश्त के लिए दी जाती थीं, जिसके कारण उसका काफी समय एक टुकडे से दूसरे टुकड़े तक पहुचने में ही खर्च हो जाता था। मध्ययुग में पश्चिमी यूरप में यही स्थिति रही। अत जब किसी एक व्यक्ति को भूमि की एक ऐसी टुकडी मिली जिसपर वह बराबर काबिज रहे तो वही काश्तकार की प्रगति की ओर पहला कदम कहा जा सकता है, और वहा से ही अच्छी कृषि की शुरूआत कही जा सकती है।

फसलों को बदल-बदल कर बोआई

कृषि के विकास में दूसरा बडा महत्त्वपूर्ण कदम तब उठाया गया जब कृषको को अच्छी खेती के लिए फसलो को बदल-बदल कर बोने का ज्ञान प्राप्त हुआ। अतीत काल में जब भूमि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी, खेती का तरीका यही रहा करता था कि एक वर्ष यदि एक टुकडे पर खेती की जाती है तो दूसरे वर्ष किसी दूसरे टुकडे पर खेती की जाती थी। जब खानाबदोशी कम हुई और लोग एक स्थान पर रहने लगे तब यह तरीका प्रारम्भ हुआ कि एक वर्ष एक खेत पर फसल बो कर और काट कर दूसरे वर्ष उस खेत को खाली रहने दिया जाता और फिर तीसरे वर्ष उस पर पुन खेती की जाती। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि तीन वर्ष में एक खेत पर एक ही बार फसल उगाई जाती। कहा जाता है कि फसलो की अदला-बदली कर कृषि के उत्पादन को बढ़ानेका तरीका पहली बार कुछ अंग्रेज कृषको ने १७वी और १८वी शताब्दीमें ढूढा था और यह बताया था कि क्रमानुसार अलग-अलग फसलो को बो कर भूमिको स्वस्थ रखा जा सकता है और उर्वरा शक्ति स्थापित रखी जा सकती है। निश्चय ही इस खोज के फलस्वरूप एक ही भूमि से पहले के अनुपात में कहीं अधिक अनाज, उगाया जाने लगा।

मध्ययुग के कृषक-विद्रोह

ऊपर हमने भूमि पर किसानो को जो कुछ स्वत्व प्राप्त हुए और कृषि में जो विकास हुआ उसका सक्षेप में वर्णन किया है, पर इससे पाठको को यह भ्रान्त धारणा नही होनी चाहिये कि उस काल में किसानो को सब अधिकार प्राप्त हो गए थे और उनके घरो में सुख और चैन की बसी वजने लगी थी। किसी भी ऐतिहासिक समीक्षा में इन बातो की चर्चा आवश्यक है, पर स्मरण रहे कि उस जमाने में भी सामन्तियो के महलों में, धनिको की गगनचुम्बी अट्टालिकाओ में रास और रग का वैभव था, मदिरा और कामिनी की अठखेलिया होती थी, ऐशो-इशरत के ठाट थे, दौलत के दस्तरखान बिछे रहा करते थे। और उस जमाने के बडे-बडे राजाओ, महाराजाओ, अमीर-उमराओ, बडे-बडे महन्तो, पादरियो और पोपो तथा शहरो के धनिको इत्यादि के ठाठ-बाट और रास-रग किसानो के ही कन्धो पर सम्भले हुए थे, किसानो के ही खून से वे सीचे जाते थे। सक्षेप में केवल यह समझना चाहिये कि सामन्ती युग में कृषक एक बोझा ढोनेवाले जानवर के तुल्य ही था। उसकी श्रमशक्ति धनवानो की ही एक वस्तु थी, जिसे वे क्रय-विक्रय करते थे। कृषक को मानव नही समझा जाता था। उसके साथ हृदयहीन, निरंकुश व्यवहार किया जाता था। अत आश्चर्य ही क्या कि उनके अन्दर घोर असन्तोष व्याप्त था। प्रतिहिंसा की ज्वाला से वे जला करते थे और तब यदि यदा-कदा कभी इस देश में, कभी उस देश में, कभी एक देश के इस क्षेत्र में और कभी उस क्षेत्र में, उनकी विद्रोहाग्नि ज्वाला के समान धधकी और खून की नदिया बही तो आश्चर्य ही क्या ?

सच तो यह है कि ससार के प्रत्येक देश के किसानो की विशेषता रही है कि वे बडे ही धैर्यवान होते है और लम्बे अर्से तक चुपचाप बिना मीन-मेष किए सभी मुसीबतो को बर्दाश्त करते जाते है। रहन-सहन की अति कठिन और अवर्णनीय स्थितियो में भी, पुरखों के जमाने से अपमान, अन्याय व अत्याचार को सहते हुए समाज की सभी श्रेणियो के बोझ को अपनी कमजोर पीठ पर ढोते हुए भी वे शताब्दियो तक शान्त रहे, आज्ञाकारी बने रहे। पर ऐसे धैर्यवान कृषक समूहो का भी धैर्य-बान्ध कभी-न-कभी टूट ही पडा। जब स्थितिया उनके बर्दाश्त के बाहर हो गई तब एक-ब-एक, बिना किसी तैयारी के, उनका क्रोध भभका, भयकर रूप से भभका और तब उनके विद्रोहो में प्रलय-काल की विध्वसात्मक शक्ति दिखाई पडती थी। इतिहासकारो और राजनीतिज्ञो ने एक-ब-एक प्रस्फुटित होनेवाले विद्रोहो की प्राय ऐसी परिभाषा दी है कि वे ऐसे विद्रोह होते है, जिनके अन्तर्गत स्थापित शासन-व्यवस्था एव शासको के विरुद्ध जनता में व्याप्त क्रोधाग्नि और घृणा भभक उठती है, परन्तु उनका कोई निश्चित उद्देश्य नही होता, उनकी लडाई के तौर-तरीके भी निश्चित क्रमानुसार नही रहते और न उनका नेतृत्व ही ऐसा होता है जो उनको सजग रूप से विजय की ओर ले जाय। और बहुधा इतिहासकारो ने ऐसे एक-ब-एक होनेवाले विद्रोहो को एक अनिवार्य बुराई के रूप में स्वीकार किया है, जिसका दायित्व अन्ततोगत्वा स्थापित शासक वर्गो की अमानुषिकता एव हृदयहीनता के सर पर ही मढा जा सकता है। यूरोपीय देशो में ऐसे किसान विद्रोह, सबसे अधिक सख्या में और अति व्यापक रूप से, सामन्ती शासनो के अन्तर्गत मध्ययुग में बडे ही हिंसात्मक और खूखार होते थे। रोम साम्राज्य के पतन के बाद यूरोपीय देशों में जो शासन और व्यवस्था जमी हुई थी, उसका खात्मा हो गया। सर्वत्र अव्यवस्था, अराजकता, हिंसा और पाशविक शक्ति का ही दौर-दौरा हो गया। जो शक्तिवान थे, उन्होने जो कुछ पाया उसे हस्तगत किया और तब तक उसके स्वामी बने रहे, जब तक कि कोई उनसे भी अधिक शक्तिशाली व्यक्ति ने आकर उनको दबा कर उनकी सम्पत्ति अपने हाथो में ले ली। इस समय सारे यूरप में बडे-बडे मजबूत किले बनाए गए और उन किलो के लाटो ने अपनी छोटी-मोटी सैन्य टुकडियों का सगठन किया और उनकी सहायता से चारो तरफ देहातो में अपना आतक जमाया, मनमानी वसूलयाबिया की और पास-पडोस के अपने ही समान दूसरे किलो के सामन्तो से युद्ध किया। इस अराजकता और हिंसा के दौर में गरीब किसान और निर्धन कृषि मजदूर ही सबसे अधिक पिसे। इसी व्यापक अव्यवस्था, हिंसा और अराजकता से मध्ययुगीन सामन्ती युग पैदा हुआ।

मध्ययुगीन सामन्ती ढांचा

कृषक उस समय असगठित थे और उन डाकू लाटो के खिलाफ वे अपनी रक्षा नही कर सकते थे। फिर उस समय कोई ऐसी शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार न थी जो कृषकों की सुरक्षा कर सके। अत मजबूर होकर कृषको को किले के लाट से समझौते करने पडे, जिनके फलस्वरूप उनको उसे अपनी पैदावार का कुछ निश्चित अनाज देने के लिए बाध्य होना पडा, और दूसरे प्रकार से भी उनकी सेवा करने के लिए वे मजबूर हुए। इसके बदले में किले के लाट ने आश्वासन दिया कि वह उनकी लूट बन्द करा देगा और पास-पडोस के किले के सामन्ती लाट की लूट से उनकी रक्षा करेगा। इसी प्रकार छोटी गढियो के मालिक पास-पडोस के बडे किलो के लाटों से समझौता करने लगे और उनको यह विश्वास दिलाया कि वक्त पडने पर वे बडे लाट को सैन्य सहायता प्रदान करेंगे और जब कभी जरूरत पडेगी उसके पक्ष में युद्ध करेंगे। इस आश्वासन के बदले में बडे लाट ने छोटी गढी के मालिक की रक्षा का वचन दिया। इस प्रकार छोटे लाटो के ऊपर बडे लाट, उन बडे लाटो के ऊपर और भी बडे लाट और नोबलमैनों का एक सामन्ती ढड्ढा खडा हो गया, और इस ढढ्ढे के सर्वोच्च शिखर पर सम्राट या शाहशाह था, जिसने यह दावा किया कि उसको राज्य करने की दैवी शक्ति सीधे भगवान से प्रदत्त हुई है।

सामन्तो के ऊपर बडे सामन्त और उन बडे सामन्तो पर भी और बडे सामन्तो का जो ढढ्ढा इस प्रकार बना उसका सुन्दर चित्र सन् १२७६ के एक अग्रेजी न्यायालय के निम्न वर्णन से पता लगता है "सेंट जर्मेन के रोजर्स को भूमि का एक टुकडा ब्रैडफोर्ड के राबर्ट से इस शर्त पर मिला कि वह उपर्युक्त राबर्ट को तीन पेन्स अदा करेगा और छ पेन्स रिचर्ड मिलचैस्टर को देगा, जिससे राबर्ट को जमीन मिली हुई है। और इस रिचर्ड को भूमि अलन डी चार्ट्री से मिली है और उसके लिए रिचर्ड को २ पेंस एक वर्ष में देने पडते है। फिर इस अलन को जमीन विलियम से मिली है, और इस विलियम को जमीन लार्ड गिलबर्ड डी

नेवेल से मिली है और इस गिलवर्ड को जमीन लेडी डिवोरगिला दी वैलोई से मिली है, और इस डिवोरगिला को भूमि स्काटलैण्ड के बादशाह से मिली है और स्काटलैण्ड के बादशाह को यह भूमि इग्लैड के बादशाह से प्राप्त हुई है।"

गिरजे घर और पादरी इस सामन्ती प्रथा के आवश्यक अग थे। उस जमाने में जो बडे-बडे ईसाई महन्त और पादरी होते थे, वे स्वय बडे-बडे सामन्त थे। उदाहरणार्थ, जर्मनी में लगभग आधी भूमि और देश की लगभग आधी सम्पदा बडे-बडे बिशपो और एबटो के हाथो में थी। पोप स्वय बहुत बडा सामन्त हुआ करता था। इस प्रकार यह पूरी व्यवस्था श्रेणियो और ऊचे दर्जों और ऊपर के दर्जों में विभक्त थी। इस ढड्ढे की सबसे निचली सीढी पर अर्द्धदास थे, और इन दुखितो की पीठ पर ही सारे सामाजिक ढाचे का, छोटे और बडे लाटो का, राजाओ और सम्राटो का और गिरजेघरो के पूरे ढढ्ढे का बोझ था। ये बडे-बडे लाट और नवाब कोई भी लाभप्रद उत्पादक कार्य नही करते थे। उनका काम केवल एक दूसरे से युद्ध करना और बडे-बडे शिकार खेलना और खूब रास-रग में मस्त रहना होता था। ये बेचारे कृषक और दस्तकार ही थे जो अनाज उत्पादन करते थे और जीवन की अन्य आवश्यकताओं को भी पैदा करते थे।

"सर्वं भूमि सामन्ती लाट की"

इस काल में लगभग १० शताब्दी पूर्व, यूरप की जनसख्या कम थी और बडे-बडे भूस्वामी भूमि-मजदूरो को जबरदस्ती अपनी जमीन पर बाध कर रखते थे। उस समय भूमि का मूल्य नही था, मूल्य था मनुष्य का जो भूमि को जोतता था। उस जमाने के भूमि-बन्दोबस्त के जो कुछ कागजात मिलते हैं, उनमें भूमि का क्षेत्रफल बडे ही मोटे ढग से इगित किया गया दिखाई पडता है। उदाहरणार्थ, किसी की भूमि का क्षेत्र इस प्रकार बताया गया है—अमुक नदी से अमुक पहाडी तक। पर इसके विपरीत, प्रत्येक भूमि-सम्पत्ति के अन्तर्गत प्रत्येक कृषक और दस्तकार का और उनकी दक्षता का विस्तृत वर्णन मिलता है। यह भी उन वर्णनों में सूक्ष्म रूप से दिखाया गया है कि अमुक व्यक्ति किस काम को करने योग्य है और यह भी विशेष रूप से बताया गया है कि वह अपने मालिक के लिए साल में क्या-क्या काम करेगा। ऐसे अनोखे भूमि-बन्दोबस्त के कारण स्पष्ट है। उस समय भूमि पर्याप्त और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। खतरा रहता था कि अर्द्ध दास अपने स्वामी की भूमि से विलग होकर कही अन्यत्र जाकर भूमि को जोतने-बोने लगे और भूस्वामी की सम्पत्ति में एक मनुष्य कम हो जाये। इस खतरे से बचने के लिए उस समय यह घोषित कर दिया गया था कि सम्पूर्ण भूमि सम्पत्तिवान लाटो की है। वास्तवमें उस समय सामन्ती का एक निहित मन्त्र था, वह लैटिन भाषा का था जिसका अनुवाद हो सकता है—"सर्वं भूमि सामन्ती लाट की।"

कायदे से, सरकारी नियमो के अनुसार, लाटो का यह कर्त्तव्य था कि वे अपने अर्द्धदासों और चाकरो की रक्षा करें। पर वास्तविक जीवन में यह नियम ताक पर ही रखे रहते थे और सदा लाटों की मनमानी ही चला करती थी। सम्राट लोग कभी भी अपने अन्तर्गत सामन्तो की कार्यवाहियोको नही देखा करते थे, और किसान स्वयं इतने दुर्बल और सकटग्रस्त थे कि उनके पास सामन्तो की मनमानी के समक्ष झुकने के अलावा दूसरा कोई चारा न था। बेचारे अर्द्धदासो को अपने दकियानूसी कृषि यन्त्रो द्वारा सामन्तो की निजी भूमि पर जाकर काश्त ही नही करनी पडती थी, अपितु उन्हें सामन्तो और गिरजेघरो को अपनी निजी खेती की पैदावार का काफी बडा हिस्सा देना पडता था। वास्तव में सारी सामन्ती-समाज व्यवस्था ही व्यक्तिगत चाकरी तथा भूमि से कृषक के व्यक्तिगत लगाव पर ही आधारित थी। किसान तो सच पूछिये, भूमि से ही बधा हुआ एक जीवात्मा था, उसीका एक अविभाज्य अग था। गिरजेघर और सामन्ती लाट उस समय बडे ही शक्तिशाली थे और वे जो चाहते मनमाना किसानो से वसूल करते थे, और उसके पास केवल इतना ही छोडते थे, जिससे वह बमुश्किल तमाम अपने अति दुखित अस्तित्व को स्थापित रख पाता था। सच पूछा जाय तो भूमि स्वामियो का यह क्रम सदैव, सभी देशो में रहा है।

इस प्रकार प्रत्यक्ष हो जाता है कि उस समय की सामन्ती व्यवस्था में समानता अथवा स्वतन्त्रता के विचारो तक का प्रादुर्भाव नही हुआ था। शासक सामन्तवर्ग केवल अपने अधिकारो और शोषित किसानो के दायित्वो को ही जानता था। सामन्ती लाट किसानो से मुफ्त सेवा तथा किसान के उत्पादन का कुछ भाग पाना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता था तथा इसके बदले में उन किसानो की रक्षा करना उनका दायित्व माना गया था। पर वास्तविक जीवन में सामन्त अपना यह उत्तरदायित्व भुला ही देते थे, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हमारे देश में भी जमीन्दार अपनी रकम वसूल करने में तो बहुत कठोर रहे हैं, पर किसानो के प्रति अपने दायित्वो को बडी सरलता से भुला देना उनके लिए मामूली सी बात रही है। अत जनता परेशान थी और उसे अपनी आपत्तियो से छुटकारा पाने का कोई रास्ता ही नही दिखाई पडता था। इनके जीवन का आधार ही था आशाशून्य श्रम—जीवन भर आशाशून्य श्रम। रोमन कैथलिक पादरी वर्ग भी सामन्ती लाटो के ही चट्टे-बट्टे थे और धर्मभीरु कृषको के मस्तिष्क में बराबर यह विचार भरते रहते थे कि सामन्तो की सेवा करना और उनकी आज्ञा मानना ही उनका चरम कर्त्तव्य है। लाटो के विशाल और भव्य दुर्गों की चारो ओर अर्द्धदासो की मिट्टी तथा लकडी की झोपडिया होती थीं, और यह निरीह मानव इन लाटों की दृष्टि में पशुओ से केवल कुछ मात्रा में ही ऊपर थे।

विनिमय तथा व्यापार के विकास का क्रान्तिकारी प्रभाव

परन्तु तेरहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक परिवर्त्तन आया। विनिमय तथा व्यापार के जन्म तथा विकास के फलस्वरूप सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत स्थापित सम्बन्धो तथा समाज के नव विकसित आर्थिक आधारो के बीच विरोध होना स्वाभाविक था। उस समय लाटो तथा उनके अर्द्धदासो के अलावा शिल्पकारो तथा व्यापारियो का एक नया वर्ग समाज में बलशाली होने लगा। यह नया वर्ग सामन्ती व्यवस्था का निहित अग न था, वरन् उसके विरोध में, उसके बावजूद पैदा हुआ और बढा या। अराजकता एव अशान्ति के समय तो व्यापार को बहुत ही कम, तथा

दस्तकारी को तो प्रगति करने का बिल्कुल ही अवसर नही रहता था। परन्तु ज्यो ही गुलामो के विद्रोहो के खत्म होने के बाद कानून तथा व्यवस्था की स्थापना हुई और सामन्ती प्रथा जमी, वैसे ही व्यापार ने उन्नति की, जिसके परिणामस्वरूप व्यापारियो तथा दस्तकारो का भी महत्त्व बढा। अब वे धनवान् हो गए तथा सामन्ती लाट व अमीर-उमरा तक रुपया उधार लेने के लिए उनके पास जाने लगे। वे धन तो उधार देते ही थे, साथ ही बदले में कुछ विशेषाधिकार भी प्राप्त कर लेते, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे शनै शनै और अधिक शक्तिशाली होने लगे। व्यापारियो तथा शिल्पियो ने मिल कर श्रणो अथवा समुदायो का सगठन प्रारम्भ किया तथा जहा इनके मुख्य कार्यालय होते थे वहा श्रण-भवनो अथवा नगर-भवनो का भी विकास होता गया। यह भवन धीरे-धीरे निकटस्थ सामन्ती लाट की गढी या किले द्वारा प्रतिबिम्बित एकक्षत्र निरकुश सत्ता को चुनौती देने लगे।

व्यापार की इस उन्नति तथा विनिमय-प्रणाली के इस विकास के कारण, सामन्ती लाटो तथा उनके अर्द्धदासो के पारस्परिक सम्बन्धो में भी परिवर्तन आया। जब तक कृषक के उत्पादन का उपभोग भूस्वामियो तथा उनके आश्रितो एव गुर्गों तक ही सीमित रहा, उस समय तक सामन्ती शोषण की सीमा भी, तुलनात्मक रूप से, सकुचित आर्थिक दायरो तक ही सीमित थी। यह तो स्पष्टत अर्थहीन होता कि सामन्ती लाट अपने कृषको से अपने उपभोग के लिए आवश्यक वस्तुओ से अधिक ले लेते। परन्तु विनिमय-प्रणाली के जन्म के साथ-ही-साथ यह सीमा समाप्त हो गई, कारण अब कृषि उत्पादन के बदले सामन्ती लाट किसी भी वस्तु को प्राप्त कर सकता था। अत अब लाट ने किसान से उसके श्रम के उत्पादन का अधिक-से-अधिक भाग नोचना प्रारम्भ कर दिया। अर्द्धदासो की अवस्था और भी बदतर होने लगी। कृषको के लिए सचमुच सामन्ती जुए का भार असह्य हो चला।

जब कष्ट एवं शोषण का धधकता लावा ज्वालामुखी बन फटा

और १३४८ में यूरप में प्लेग की जो भयकर महामारी फैली, उसने स्थिति को चरम सीमा पर पहुचा दिया। महामारी ने अपनी भयावनी भुजाओ में लघु एशिया (एशिया माइनर) से लेकर इग्लैन्ड तक सम्पूर्ण यूरप को दबोच लिया। लाखो लाख मानव काल के कराल गाल में चले गए और सही ही इसे इतिहास में 'काली मृत्यु' के नाम से पुकारा गया है। इस भयकर दुर्घटना के कारण जनसख्या बहुत घट गई और हालत यहा तक पहुची कि भूमि जोतने के लिए पर्याप्त आदमियो का मिलना भी कठिन हो गया। मनुष्यो की कमी के कारण श्रमिको की मजदूरी अपनी बहुत नीची सतह से अब ऊपर उठनी प्रारम्भ हो गई। पर शासनयन्त्र तो भूपतियो तथा धनिको के हाथो में था, और उन्होने ऐसे नियम बनाये, जिनने कृषको को अपने उनी पुराने कष्टपूर्ण स्तर पर कार्य करने के लिए बाध्य होना पडा। अन्ततोगत्वा कष्ट एव शोषण का धधकता लावा ज्वालामुखी के रूप में फट ही तो पडा। किसान अपनी युगो-युगो पुरानी जजीरो को तोडने के लिए उठ खडे हुए। कभी यहा और कभी वहा उनके विद्रोहो की ज्वाला सहसा, बिना किसी पूर्व तैयारी के, पर घोर हिंसक रूप में जल उठने लगी। तेरहवी शताब्दी से लेकर १९ वी शताब्दी तक इस प्रकार सहसा फूट पडनेवाले हिंसात्मक किसान विद्रोहो की एक श्रृखला-सी यूरप में, विशेषतया पश्चिमी यूरप में, दिखाई पडती है। बराबर इन विद्रोहो को प्रबल पाशविक शक्ति द्वारा कुचला गया, उन्हें खून की नदियो में डुबो दिया गया, फिर भी, बार-बार वे और अधिक शक्ति से, और भी हिंसात्मक रूप में उभरे।

इन विद्रोहो का अधिकतर स्थानीय रूप हुआ करता था। केवल जर्मनी में १६वी शताब्दी में तथा महान फ्रासीसी क्रान्ति के अवसर पर फ्रास में, इन क्रान्तियोने अति व्यापक राष्ट्रीय क्रान्ति का रूप धारण किया। फ्रास को छोड कर और कही भी इन क्रान्तियो को कोई उल्लेखनीय सफलता नही प्राप्त हुई, और अधिकाशत वे असफल ही रही। अधिक-से-अधिक यह हुआ कि विद्रोहो को कुचलने के बाद सामन्ती शासको ने कुछ ऐसे न्यूनतम सुधार किये या ऐसी न्यूनतम सुविधाए प्रदान की, जो देश के कानूनो पर और सरकार पर किसानो का पुन विश्वास करने के लिए नितान्त रूप से आवश्यक समझी गई। पर मूलत ऐसी प्रत्येक क्रान्ति के पश्चात किसानो के भयकर कष्टो और दु खो में वृद्धि ही होती थी, कारण विद्रोहो के फलस्वरूप सामन्ती लाटो तथा उनके किलो को होनेवाली गहरी क्षति की पूर्ति के लिए मुआवजा कृषको से ही, उनके करो को बहुत ही अधिक बढा कर वसूल किया जाता था। विद्रोहो के पश्चात् और इन निर्दयी प्रहारो के बाद भी जो किसी भाति जीवित रह सके, उनमें कटुता, क्रोध व प्रतिहिंसा की ज्वाला धधकती रही, वह अमिट बन गई। सच तो यह है कि जिस प्रकार गुलामो के भयकर विद्रोहो ने यूरप की दास प्रथा को खोखला बना कर अन्ततोगत्वा उसे समाप्त किया, उसी प्रकार इन व्यापक कृषक-विद्रोहो ने सामन्ती प्रथा की नीव को खोखला कर दिया। वास्तव में बहुत से यूरोपीय देशो से सामन्ती व्यवस्था के अन्त होने का श्रेय बडी सीमा तक इन्ही विद्रोहो को दिया जायगा।

जैसा ऊपर कहा गया है, तमाम पश्चिमी यूरप में एक के बाद दूसरी ऐसी किसान-क्रान्तिया हुई। १३५६ में इटली में 'डलसिनो विद्रोह' और १३५८ में फ्रास में 'जैक्वेरी विद्रोह' हुआ। इग्लेड में १३८१ में 'वैट टायलर विद्रोह' हुआ जिसके दमन के बाद इग्लैंड के तत्कालीन बादशाह के सम्मुख टायलर को मृत्यु के घाट उतारा गया। इसी प्रकार १४३७ में हगरी में 'जान बाडीशी विद्रोह' और १५५४ में 'सियोगी डोयरा' विद्रोह हुआ।

सोलहवीं शताब्दी का जर्मन कृषक युद्ध

यह तमाम जो कृषक विद्रोह थे सो तो थे ही, उनका सबसे अधिक भयानक, हिंसात्मक व रक्तिम रूप सन् १५२५ के लगभग जर्मनी में देखा गया। वास्तव में जर्मन कृषको के इस विद्रोह ने एक विराट किसान युद्ध का रूप धारण कर लिया और इतिहास में वह जर्मन कृषक युद्ध के नाम से ही प्रसिद्ध है। चौदहवी व पद्रहवी शताब्दी में जर्मनी में मशीन उद्योगो का जो विकास हुआ, तथा व्यापार की जो उन्नति हुई और नए व्यापारी वर्ग का व नगरो का जो उदय हुआ तथा अन्य अनेक कारणो से भी मध्ययुगीन समय से चले आनेवाले वर्गों की स्थिति में बहुत परिवर्त्तन हो गया। अत १६वी शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मनी की स्थिति कुछ बदली

हुई सी ही थी। पुराने वर्गों के अलावा नए वर्गों का भी जन्म हो चुका था। जर्मनी में कृषक-युद्ध की प्रचण्डता को समझने के लिए इन नयी श्रेणियों की स्थिति का सक्षिप्त वर्णन आवश्यक है। पुराने सामन्ती लाटो नोवलमैनो में से ही जर्मन प्रिन्सो का (जिन्हें नोवलमैनो से कही अधिक शक्तिशाली सामन्त कह सकते है—प्रिन्स का हिन्दी अनुवाद राजकुमार है पर उन्हें नए जर्मन राजकुमार कहना शुद्ध न होगा) उदय हो चुका था। यह जर्मन प्रिन्स जर्मन सम्राट के अन्तर्गत नही थे, वरन् स्वतत्र थे, अपने छोटे-छोटे राज्यो में सम्पूर्ण सत्ता उन्ही के हाथो में थी। वे सेना रखते थे, कर लगाते थे तथा युद्धो एव सधियो की घोषणा करते थे। अपने-अपने शासन-क्षेत्रो में उनका शासन पूर्णत निरकुश होता था। जैसे-जैसे इन जर्मन प्रिन्सो की विलासप्रियता बढी, और उनके राज दरबारो, उनकी सेनाओ और उनके शासन का आकार विस्तृत हुआ, वैसे-ही-वैसे उनको धन, और अधिक धन की जरूरत होने लगी। अत अन्धाधुन्ध नए कर किसानो पर लगाए जाने लगे और निर्दयता से उनकी वसूलयावी की जाने लगी। इन नए करो से नए पैदा होनेवाले नगरो और उनमें रहनेवाले व्यापारी लोग बच गए, कारण उनके पास धन की शक्ति थी, वे वैसे भी शक्तिवान हो गए थे और कुछ विशेषाधिकार प्राप्त कर चुके थे, और उन्होने सामन्ती लाटो व अमीर-उमराओ को रूपया भी उधार दिया था।

अत करो का पूरा भार उन किसानो पर पडा जो सीधे इन जर्मन प्रिन्सो के आधीन थे। इस समय तक, मध्ययुग के प्रारम्भिक काल में जो अमीर-उमरा और लाट थे वे पूर्णत अपनी पुरानी स्वतन्त्रता खो चुके थे और इन प्रिन्सो को अपना स्वामी मान चुके थे। इनके करका बोझ भी अर्द्धदासो पर ही पडा। कह दिया जाय कि मध्ययुग के प्रारम्भिक काल में जो सामन्ती लाट और अमीर-उमरा थे, उनमें सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ तक, जर्मन प्रिंसो के शक्तिशाली होने के दौरान में ही, गहरी तब्दीलिया हो चुकी थी। वे या तो बढ़-चढ़ कर स्वतत्र प्रिन्स हो गए थे अथवा नीचे गिर कर निम्न स्तर के नोवलमैन मात्र रह गए थे। उनका दिवाला खिसक चुका था, उनके पास धन नही रह गया था, वे प्रिन्सो की सेवा और खुशामद पर ही आश्रित रहने लगे तथा धीरे-धीरे मृतप्राय होते जा रहे थे। जब प्रत्यक्ष करो से जर्मन प्रिन्सो की धन की क्षुधा तृप्त न हुई तब उन्होने अप्रत्यक्ष कर लगाना प्रारम्भ कर दिया। कर उगाहने के लिए सब तिकडमो का सहारा लिया गया और वित्तीय क्रमो की किसी भी चालवाजी को न छोडी गयी। प्रचलित मुद्राओ की भयकर फेराफेरी की गई। जितना चाहा, जैसा चाहा, वैसा मुद्राओ का अवमूल्यन किया गया तथा स्वेच्छापूर्वक, प्रिन्सो के हितानुसार, मुद्रा-चलन की सीमा का ऊचा व नीचा स्तर निर्धारित किया गया। धन, और अधिक धन की लालसा में जो कुछ भी तत्कालीन न्याय-व्यवस्था थी, वह भी भ्रष्ट वना दी गई, उसे भी न्याय का एक मुख्य तथा स्थायी साधन वना दिया गया। न्याय वस्तुत विकने लगा और न्यायाधीशो व अन्य अदालती व्यक्तियो ने भी अपनी जेबे खूब गर्म किए।

फिर, केवल जर्मन प्रिन्सो की लूट से ही जर्मनी का किसान नही कुचला जा रहा था। हमने ऊपर कहा है कि पुराने सामन्ती लाट व अमीर-उमरा बुरी अवस्था को प्राप्त हो गए थे, परन्तु इसका अर्थ तुलनात्मक रूप में ही लिया जाना चाहिये। वे निम्न स्तर के नोवलमैन के दर्जे को अवश्य पहुच गए थे, पर हाथी दुवलाएगा तो ऊट ही तो होगा वाली लोकोक्ति के अनुसार अपनी-अपनी गढियो और किलो में अब भी वे जबरजग धन्ना-सेठ वने थे, और वहा उनका विलासपूर्ण जीवन पहले जैसा ही चलता था। उनके किलो में होनेवाली बडी ही खर्चीली खिलाडियोकी प्रतियोगिता, उनके अधिक रूपये खानेवाले वृहद आखेट अभी भी केवल पूर्ववत् स्थापित ही न थे, वरन् पहले से भी अधिक बडे और खर्चीले हो गए थे। पर उनकी आय घट गई थी, आय प्राप्त करने के उनके साधन, उनका क्षेत्र और उनकी शक्ति सकुचित हो गई थी। अत इन्ही सकुचित साधनो और क्षेत्रो से ही वे अपना पूरा खर्च पूरा करने का प्रयास करते थे। अत किसानो एव अर्द्धदासो की रक्त का आखिरी बून्द तक चूसने में कोई कमी न उठा रखी गई।

किसानो की लूट-खसोट वर्ष-प्रति-वर्ष तीव्रतम होती गई। अर्द्धदासो का रक्त शोषण होते-होते वह सूखने लगे। हर मुमकिन मौके पर सामन्त अनेकानेक प्रकार का वोझ किसानो पर लादते रहे और उनसे तरह-तरह की नई रकम उगाहते थे। पुराने सब समझौतो को भग कर अर्द्धदासो से मुफ्त श्रम तो करवाया ही जाता रहा, उसके साथ तरह-तरह के और कर जैसे मृत्यु कर, भूमि कर, भूमि उत्पादन कर, सुरक्षा प्रदान करने का कर इत्यादि, वसूल किये जाते रहे।

जर्मनी के पादरियो और गिरजाघरों का सामंती ढांचा

फिर पादरियो और गिरजाघरो के मठाधीशो का भी एक शक्तिशाली शोषक वर्ग था। गिरजे के वडे-वडे पदाधिकारी जैसे विशप, आर्क विशप, एवट, फ्रायर और दूसरे प्रेलेट, ये सब अपने किसानों तथा अर्द्धदासो और अन्य व्यक्तियो का न केवल उतना ही भयकर शोषण करते थे जितना कि वडे-वडे सामन्ती अमीर-उमरा और सरदार लोग करते थे वरन् उनका शोषण और भी वीभत्स और शर्मनाक हुआ करता था। पाशविक शक्ति का प्रयोग तो वे करते ही थे, पर उसके साथ ही तमाम धार्मिक पाखन्डो का भी वे प्रचुर मात्रा में प्रयोग कर अपने आसामियो से धन खसोटते थे—उदाहरणार्थ, किसानो को धमकी दी जाती थी कि अगर वे पैसा नही अदा करेंगे तो उन्हें पदच्युत कर दिया जायगा व मरते समय ईसाई धर्म के अनुसार आखिरी प्रार्थना करने के लिए उनके पास पादरी नही जाएगे। वास्तव में पादरियो ने उस समय धर्म को धन उगाहने के लिए एक व्यवसाय-सा वना लिया था जनता से अधिकाधिक रकम निचोडने के लिए गिरजाघरो के पादरियो ने दस्तावेजो की जालसाजी शुरू की, सतो की ऐसी मूर्तिया वना कर वेचनी शुरू की, जिनके वारे में यह धारणा चलाई गई कि वे जादू-मन्तर कर सकती है, तावीज वना कर वेचनी शुरू की, पापो से मुक्ति पाने के लिये वने-वनाये क्षमापत्र अच्छी रकम लेकर देने लगे और इस प्रकार अन्य अनेक हथकडे चलाने लगे।

गिरजाघरो और पादरियो के इस ढढ्ढे के शिखर पर पोप प्रतिष्ठित था। वडे-वडे सामन्ती अमीर-उमराओ के शिखर पर जो स्थिति और

प्रभुता तत्कालीन सम्राटो की हुआ करती थी, गिरजेघरो और पादरियों के ढढ्ढे के शिखर पर वही स्थान पोपका होता था। सम्राट को सामन्तो से साम्राज्यी कर मिला करता था, उसी प्रकार पोप को भी तमाम गिरजेघरो से कर पहुचाया जाता था। इस प्रकार पोप के पास जो अतुलित धन पहुचता था, उसके आधार पर वह अपने रोमन दरबार की बडी जबरदस्त शान-शौकत और ऐशो-इशरत कायम रखता था। जर्मनी में गिरजाघरो की शक्ति बहुत प्रबल थी और वहा पादरियो की सख्या भी बहुत अधिक थी। इसी कारण वहा पोप को दिये जानेवाले करो की वसूलयाबी किसी और देश से अधिक कडाई से की जाती थी। जैसे-जैसे पोप के दरबार से धन की माग बढती गई वैसे-ही-वैसे जर्मनी से वहा के किसानो से अधिकाधिक रकम वसूल कर रोम पहुचायी जाने लगी। इन सब बातो के कारण किसानो में पादरियो के खिलाफ भयकर घृणा और क्रोध व्याप्त हो गया।

जर्मन कृषको के भयंकर शोषण का एक चित्र

कई और कारणो से भी किसानो की दशा खराब होती रही, जैसे सामन्ती अमीर-उमराओ में वक्तन-फवक्तन चलनेवाले छोटे-मोटे युद्ध, फिर कभी यदा-कदा किसी सामन्ती उमरा और सम्राट के बीच छोटे-मोटे युद्ध, इत्यादि। इसीके साथ देश की अर्थ-अवस्था पर शहरो में पैदा होनेवाले नए पूजीपति वर्ग का, व्यापारियो और व्यवसायियो का प्रभाव भी बढने लगा और वे भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसानो के शोषण के भागीदार बनने लगे।

इस प्रकार राष्ट्र के बहुसख्यक शोषित कृषक, समाज के अन्य सब वर्गो का बोझ अपनी पीठ पर ढोने लगे। उनकी पीठ पर सामन्ती अमीर-उमराओ का, सरकारी अफसरो का, नौबलमैनो का, पादरियो का और रईसो का बोझ आ पडा, बहुत कुछ उसी प्रकार जिस प्रकार भारतीय कृषक सदियों तक समाज के सब ही शोषक वर्गो का बोझ अपनी पीठ पर ढोता रहा। कार्लमार्क्स के सुप्रसिद्ध सहयोगी फ्रैडरिक एन्जिल्स ने अपनी पुस्तक 'दी पीजेन्ट वार इन जर्मनी' (जर्मन कृषक युद्ध) में जर्मनीके महान् किसान विद्रोह के पूर्व वहा की स्थिति का वर्णन निम्न शब्दो में किया है

"किसान चाहे किसी सामन्ती अमीर-उमरा का आसामी रहा हो या चाहे सम्राट के किसी निकट सम्बन्धी बडे भूपति का आसामी रहा हो, चाहे वह किसी मठ के अन्तर्गत रहा हो और चाहे किसी शहरी रईस के यहा, सर्वत्र उससे बोझा ढोनेवाले जानवर से भी बदतर व्यवहार किया जाता था। यदि वह अर्द्ध दास था तो वह पूर्णरूप से अपने स्वामी की दया पर आश्रित था। यदि वह इस शर्त्त पर भूमि को पाए हुए थे कि उसे कुछ निश्चित कर, जिन्सो में या नकद, अदा करना होगा तो यह निश्चित था कि वह समझौता ऐसा होता था जो उसको कुचल देने के लिए काफी था, और तिसपर उनमें उत्तरोत्तर इजाफा होता रहता था। अधिकाश समय तो किसान को अपने स्वामी के खेतो पर ही काम करना पडता था। स्वामी के खेतो पर काम करने के बाद जो कुछ घटो की फुरसत उसे मिलती थी और जिनमें वह अपने निजी खेतो पर काम करता था, उससे उसकी जो आय होती थी, उनोमें से उसे सम्राट का कर, पोप का कर, युद्ध कर, भूमि कर तथा अनेको और कर अदा करने पडते थे; अपने मालिक को कर दिए बिना न तो वह विवाह ही कर सकता था और न वह मर ही सकता था। अपने मालिक के खेतो पर और अपने खेतो पर काम करने के अलावा उसे मालिक के लिए बागानो से फलो को तोडना पडता था, शख बिनना पडता था, मालिक के शिकार के समय उसे शिकारी जानवरो को हाकना पडता था, जगलो से मालिक के लिए लकडी काटनी पडती थी, इत्यादि। इस जमाने में मछली मारने का अधिकार और शिकार खेलने का अधिकार सामन्तो को ही हुआ करता था। बहुधा शिकार खेलने में मस्त स्वामी किसान की खडी फसलो को ही अपने घोडे दौडा कर विनष्ट कर दिया करते थे। प्राय सभी ग्रामो में जो सामान्य उपयोग के बागीचे व वन थे वे सब ही स्वामियो ने जबरदस्ती अपने अधिकार में ले लिए थे। जिस प्रकार सामन्ती स्वामी का पूर्ण प्रभाव कृषक की सम्पदा पर हुआ करता था, उसी प्रकार स्वामी कृषक के व्यक्तित्व पर, और उसकी स्त्री और बच्चो के व्यक्तित्व पर भी अपना अधिकार चलाता था। उसे प्रथम रात्रि का अधिकार प्राप्त था। जब कभी उसे मौज हो जाती, वह किसान को गढी के भयकर कारगार में डलवा देता, जहा बेचारे किसान की शामत आती और उसकी वहा मौत भी हो जाया करती थी। जब कभी स्वामी की इच्छा होती तब वह किसान को मरवा डालता अथवा उसका सिर उसके धड से अलग करवा देता।"

इसी पुस्तक में एन्जिल्स ने आगे मध्ययुग में प्रचलित 'कैरोलीना' नामक एक कानूनी नियमो की पुस्तक की चर्चा की है। कहा जाता है कि यह १६वी शताब्दी में सन् १५३२ में, सम्राट चार्ल्स प्रथम द्वारा प्रकाशित करवाई गई थी और बाद में वह सम्राट चार्ल्स प्रथम और पवित्र रोमन साम्राज्य के जाब्ता फौजदारी कानून के नाम से भी प्रसिद्ध हुई। वह किसी-न-किसी रूप में १५वी शताब्दी में थी, और उसके पहले भी, विद्यमान् थी, परन्तु सन् १५३२ में उसका और नियमित संस्करण छापा गया। उसमें अभियुक्तो को यातना देकर उनकी परीक्षा करना जायज कहा गया था। इस कानून की बडी अहमियत १८वी शताब्दी तक बनी रही।

एन्जिल्स ने कहा है "'कैरोलीना' के प्राय सभी शिक्षाप्रद अध्यायो पर, जैसे कान का काटना, नाक का काटना, अन्धा कर देना, अगुलियो का काट देना, सिर से धड अलग कर देना, पहियो के नीचे कुचल देना, जला देना, जलते लोहे से दाग देना, इत्यादि सभी पर सामन्ती-उमरा महोदय अपनी खुशी और रुझान के मुताबिक अमल किया करते थे। विरला ही कोई अध्याय बेअमल रह जाता होगा, और बेचारे किसान की कौन रक्षा करता? अदालतो का प्रबन्ध बडे रईसो, पादरियो, शहर के धनिको और न्यायशास्त्रियो के हाथो में था, और वे बखूबी जानते थे कि उनको किस बात के लिए तनख्वाह मिलती थी।"

मार्टिन लूथर और मुएनशर

इस प्रकार किसानो में असतोष की ज्वाला विस्फोट की स्थिति पर पहुच गई। इस अवसर पर महान प्रोटेस्टेन्ट ईसाई नेता मार्टिन लूथर ने अपने साथियो के साथ रोम की पोपशाही का विरोध किया। पोप की निरकुशता के इस विरोध में उसे रोमन कैथोलिक गिरजाघरो से वैसे

ही भीषण रूप से त्रसित किसानो के विशाल समूहो से बडा समर्थन प्राप्त हुआ । बाद में जब किसान हिंसा पर उतर आए और बडे-बडे सामन्ती लाटो के महलो को जलाने लगे और हत्या करने लगे, तब मार्टिन लूथर किसानो का विरोधी हो गया। पर टामस मुएनशर नामक एक दूसरे पादरी ने किसानो के विद्रोह का नेतृत्व किया । आश्चर्यजनक उत्साह और क्षमता के साथ उस व्यक्ति ने किसानो का सगठन किया और किसानो के विद्रोह को व्यापक बनाया । उस समय उसने जो पत्र इधर-उधर भेजे और उसने जो धार्मिक व्याख्यान दिए, उनमें अनोखी प्रकार की क्रान्तिकारी आग धधकती दिखाई पडती थी। अनवरत रूप से उसने शासक वर्गों के विरुद्ध घृणा की अग्नि प्रज्वलित की । बाद में वह गिरफ्तार किया गया और उसका सर धड से अलग कर दिया गया। जिस समय उसे फासी हुई, उसकी अवस्था केवल २८ वर्ष की ही थी और अपनी मृत्यु का सामना भी उसने उस वीरता से किया जिस वीरता से वह किसानो के क्रान्तिकारी आन्दोलन का नेतृत्व करता था ।

जिस वक्त से मार्टिन लूथर ने रोमन कैथलिक पादरी ढढ्ढे के विरुद्ध अपनी घोषणा की, तब से ही जर्मनी में सभी विरोधी शक्तियो ने बल प्राप्त किया और तब से कोई ऐसा वर्ष नही बीता, जब जर्मनी का कृषक अपनी मागो को बुलन्द करता हुआ आगे न आया हो । उन्होने अपनी १६ मागें रखी और उनकी पूर्ति चाहने लगे । यह मागें, यदि सच पूछा जाय तो कोई भी ऊँची मागें नही थीं, वरन् छोटी मागें ही थी । उदाहरणार्थ, वे चाहते थे कि सामन्तो को कही भी शिकार खेलने का अधिकार समाप्त हो जाए, अर्द्धदास प्रथा समाप्त हो जाए, अत्यधिक करो को खतम किया जाए, मालिको के निरकुश अधिकारो में कमी की जाए, जबरियन नाजायज गिरफ्तारियो से उनकी सुरक्षा की जाय और सामन्तो का पक्षपात करनेवाली अदालतो से भी उनको बचाया जाए । बस ये उनकी मागें थी। सन् १५१८ से १५२३ के बीच जर्मनी के विभिन्न क्षेत्रो में किसानो का विद्रोह होता रहा, कभी वहा के ब्लैक फारेस्ट में, तो कभी अपर साइलेशिया में । १५२४ में इधर-उधर छितरे हुए विद्रोहो ने एक नियमित रूप अख्तियार कर लिया । वास्तव में इसी वर्ष को महान जर्मन कृषक युद्ध की शुरूआत का वर्ष कहा जा सकता है ।

जर्मन कृषक-विद्रोह का दमन

पर अति शक्तिवान नौबलमैनो और पादरियो और बडे-बडे सामन्तो के लिए उन किसानो के विद्रोहो को कुचल देना कठिन न हुआ । बडी ही निर्दयता के साथ जर्मनी के किसानों का यह विद्रोह कुचल दिया गया । सभी जगह किसान पुन पादरियो, नौबलमैनो और अन्य सामन्तो के दबाव में आ गए । यदा-कदा विद्रोही किसानों के साथ सामन्तो ने जो कुछ तथाकथित समझौते किये भी थे, उनको भग किया गया । असख्य किसानो को पुन अर्द्धदास बनाया गया और ग्रामीण समाज के कब्जे के विशाल भूमिक्षेत्र जब्त कर लिए गए । इस प्रकार जो अव्यवस्था चली और असख्य किसान जब इस प्रकार नष्ट हुए तो बहुत बडी सख्या में जर्मनी के किसान खानाबदोशो की तरह इधर-से-ऊधर घूमने लगे । किसानो पर जो बोझ था वह और भी गहरा इस कारण हो गया कि विजेता सामन्तो ने उनसे बडी निर्दयता के साथ हर्जाना वसूल करना शुरू किया ।

स्मरण रहे कि पादरी वर्ग ही जर्मनी का सबसे बडा भू-स्वामी था, और 'जर्मन कृषक-युद्ध' से सबसे अधिक नुकसान उनको ही हुआ । उनके बडे-बडे सुन्दर मठ और उनकी जायदादें जला दी गई, धूल-धूसरित हो गई । इन मठो के बडे-बडे मूल्यवान सामानों की चोरी हो गई । उन्हें विदेशो में बेच दिया गया अथवा उन्हें गला कर छिपा लिया गया । उनके गोदामो के सामानो को लूट कर बांट दिया गया । पादरियो के पास अपनी सुरक्षा के लिए ऐसी कोई विशाल और वृहद् पलटनें तो थी नही, और उनके पास किसानो के विद्रोहो को तत्काल दबा देने के लिए आवश्यक अस्त्र-शस्त्र तो थे नही, अत किसानो के सचित क्रोध एव घृणा का सबसे गहरा और भीषण प्रहार गिरजेघरो पर ही पडा । नौबलमैनो की भी गहरी क्षति हुई । उनकी अधिकाश गढिया, किले और महल नष्ट कर दिये गए । कुछ बडे ही प्रतिष्ठित सामन्तो के खानदान बिल्कुल बरबाद और तहस-नहस हो गए और उनको अपने जीवन-यापन के लिए अन्य सामन्तो के यहा नोकरी करनी पडी । वास्तव में कुछ बडे सामन्तो और बडे प्रिंसो की पलटनो ने ही किसानो को कुचला और दबाया । इस प्रकार ससार के एक सबसे खूखार और खूनी किसान विद्रोह का खात्मा हुआ ।

मार्टिन लूथर द्वारा कृषक विद्रोह का विरोध

हमने ऊपर कहा है कि पोपशाही और रोमन कैथलिक गिरजेघरो के विरुद्ध मार्टिन लूथर ने जो आन्दोलन उठाया वही जर्मनी में किसानो के विद्रोह के लिए हरी झडी का काम कर गया । उन विद्रोहो ने मार्टिन लूथर और प्रोटेस्टेन्टो को भी बडी सहायता दी । मार्टिन लूथर के पहले भी कुछ धर्म-सुधारको ने, उदाहरणार्थ, इग्लैन्ड के वाइक्लिफ ने, तथा कुछ अन्य व्यक्तियो ने रोम की पोपशाही के विरुद्ध आवाज ही नही उठाई, वरन् नौबलमैनो के खिलाफ किसानो के आन्दोलनो को बढावा दिया । मार्के की बात यह है कि प्रारम्भ में विद्रोही सिद्धान्तो का प्रचार करने के बाद भी मार्टिन लूथर को शासन वर्गों का समर्थन प्राप्त होता रहा । उसका कारण यह था कि मार्टिन लूथर ने बडी होशियारी के साथ जर्मनी के सामन्तो को यह सुझाया कि यदि विदेशो (अर्थात् पोप और रोम के गिरजा) का प्रभाव समाप्त हो गया तो उसके बाद जर्मनी के नौबलमैन जर्मनी-स्थित गिरजो की भूमि और खजानो को हस्तगत कर लेंगे । जहा तक किसानो की यह माग थी कि अर्द्धदास-प्रथा समाप्त हो, उसके सबध में मार्टिन लूथर ने कहा, "इस माग के स्वीकृत हो जाने से सभी मनुष्य समान हो जाएगें और उसके फलस्वरूप प्रभु ईशु की कल्पना का आध्यात्मिक राज्य, बाहरी, दुनियावी, भौतिक राज्य हो जायगा, यह असम्भव है । सासारिक राज्य तो बिना असमानता के रह ही नही सकते । वहा तो कुछ को स्वतत्र होना पडेगा, कुछ को अर्द्धदास होना पडेगा, कुछ को शासक होना होगा और कुछ को शासित होना होगा ।" वास्तव म लूथर तो इससे भी आगे गया । उसने किसानो को शाप तक दिया और उनको विध्वन्स करने की माग तक की । उसने कहा, "अत यह जरूरी है कि जो लोग शक्तिवान है वे किसानो को काटें, उनको मारें और उनको छुरी भोंकें,

चाहे खुले में चाहे छिपे रूप से, और सब इसको याद रखें कि विद्रोह से बढकर जहरीली, घृणित और भयकर वस्तु कोई दूसरी नही होती। आप उसको उस रूप से मारिए जैसे आप एक पागल कुत्ते को मारते है। यदि आप उसको नही मारते तो निश्चय ही वह आपको मारेगा और सारे देश को मारेगा।" और अन्त में लूथर ने नोबलमैनो और सामन्तो को यह आश्वासन दिया कि "यदि इस युद्ध में तुम मारे गए तो निश्चय ही तुम्हें बधाई मिलेगी, कारण इससे और सुन्दर मृत्यु दूसरी नही हो सकती।"

सामंतवाद से पूंजीवाद की ओर

इस प्रकार यद्यपि किसानो का विद्रोह कुचल दिया गया तब भी असंतोष और विद्रोहाग्नि धीरे-धीरे सुलगती रही। यह अग्नि १६वी और १७वी शताब्दी में तो सुलगी ही, उनका चरम परिपाक सन् १७७९ की महान फ्रासीसी क्रान्ति में हुआ। इस प्रकार सामन्तशाही का जो ढाचा अपने अन्दर यूरप को बन्द किए हुए था, टूटने लगा। इसी मध्ययुग में कोलम्बस और वासकोडिगामा ने अमरीका और भारत के समुद्री रास्तो को ढूढ कर, अपनी ऐतिहासिक खोजो के द्वारा जो महान कार्य किया, उसने भी इस सामन्तशाही के विघटन के क्रम में अपना बडा योग प्रदान किया। स्पेन और पुर्तगाल को जो अतुलित सम्पदा अमरीका से और पूर्व से प्राप्त हुई, उससे सारा यूरप चकाचौध हो गया और उसके कारण यूरपमें परिवर्तन-क्रम तेज हो उठा। ससार में व्यापार बढाने की और दूसरे देशो को गुलाम बनाने की बडी सम्भावनाए यूरोपीयो पर प्रकट हुई। शहरो में उस समय जो मध्यम वर्ग था, वह धनवान् होता जा रहा था। व्यापारियो और पूजीपतियो की जो नई श्रेणी उस समय खडी हो रही थी, वह और भी शक्तिशाली हुई। धीरे-धीरे इस नए उभडते हुए वर्ग ने यह महसूस किया कि यूरप में स्थापित सामन्ती ढाचा व्यापार एव समृद्धि के विकास में एक गहरा रोडा है। सामन्तवाद स्पष्टत प्रगति विरोधी और समय से पिछडा हुआ प्रतीत होने लगा। वास्तव में सामन्तवादी ढाचा किसानो के हृदयहीन, शर्मनाक शोषण पर, जबरियन बेगार पर और अनेकानेक प्रकार के नाजायज करो और वसूलयाबियो पर निर्भर था, और तिसपर से मजा यह कि इन सब कार्यवाहियो के अन्तिम भाग्य-विधाता वे ही सामन्ती लाट थे जो स्वय इन अमानुषिक कृत्यो द्वारा गुलछर्रे उडाया करते थे। अत किसानोके विद्रोह हुए, और उनके युद्ध फैले तथा व्यापक हुए, अधिकाधिक होने लगे और उसीके साथ यूरप के विभिन्न भागोमें जो आर्थिक तब्दीलिया हुई, उनके फलस्वरूप सामन्ती ढाचा तहस-नहस हो गया और यूरप पर नए मध्यम वर्ग का, या यो कहिए कि नए पूजीपति वर्ग का आधिपत्य स्थापित हुआ। निश्चय ही इस आधिपत्य की स्थापना में उन महान कृषि-क्रान्तियो का बडा हाथ था।

एक बार जब समाज में पूजीवादी पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हुआ, बढा और विकसित हुआ तब यह देखा गया कि यदि कृषक का भूमि से पूर्णरूपेण लगाव बना रह गया और कृषक यदि भूमि से अलग न किया गया तो यह नव-विकसित उत्पादक साधनोके विकास में रोडा हो जाएगा। फलस्वरूप धीरे-धीरे एक के बाद दूसरे देश में किसानो का भूस्वामियो पर आश्रित रहना और भूमि से किसानो के बधे रहने के क्रम का खातमा होना स्वाभाविक है। पर इस नए क्रमानुसार किसान आर्थिक एव राजनैतिक रूप से वहा ही स्वतन्त्र हुए, जहा पर सामन्ती अधिनायकवाद के खातमे के साथ-ही-साथ बडी-बडी सामन्ती रियासतो को भी जब्त कर लिया गया अथवा उनको तोडकर उनके अन्तर्गत भूमि का वितरण किया गया। सन् १७७९ की महान् फ्रासीसी क्रान्ति में ऐसा ही हुआ, जिसके फलस्वरूप फ्रास का किसान स्वतत्र हुआ।

महान फ्रान्सीसी क्रान्ति

महान फ्रासीसी क्रान्ति के समय किसानो की आर्थिक दशा का और देश के कानूनो में उनकी स्थिति का सक्षेप में हम इस प्रकार वर्णन कर सकते है। कुछ जिलो में अमीर-उमरा और पादरी कुल जोती हुई भूमि के ५१ प्रतिशत तक के मालिक थे। कुछ अन्य स्थानो पर उनकी मिल्कियत केवल १३ प्रतिशत ही थी। किसान जोती हुई भूमि के केवल २० से ६० प्रतिशत तक के मालिक थे। अत किसानो में भूमि के लिए स्वभावत भूख थी। ग्रामीण जनसख्या का एक काफी बडा भाग भूमि-रहित था। कुछ स्थानो पर ऐसे लोगो की सख्या कुल आबादी की लगभग ८६ प्रतिशत थी। लिमुन्स में लगभग ४५ प्रतिशत किसानो के पास आधा एकड या इससे भी कम भूमि थी। ब्रिटानी में लगभग ४६ प्रतिशत किसान घरानो में प्रत्येक घराने के पास केवल २ हेक्टेयर (१ हेक्टेयर लगभग २.६ एकड) भूमि थी।

अत जब किसानो के पास पर्याप्त भूमि नही थी तो उन्हें अत्यधिक दरो पर जमीन्दारों से लगान पर भूमि लेना पडता था। इस प्रकार उनको जो भूमि मिली, यदि उसके मालिक में उसका बँटवारा हुआ अथवा खान्दान के बडे की मृत्यु के बाद वह भूमि सन्तानो को मिली तो उसके लिए भी एक कर देना पडता था। मडी में बेचने के लिये अनाज ले जाने के वास्ते भी उसे चुगी देनी पडती थी। किसानो के लिए स्वामियो की चक्की में आटा पिसवाना आवश्यक था। अदालतें पूर्णतया सामन्ती लाटो के हाथो में थी। शिकार खेलने का एक मात्र उन्ही को अधिकार था। फसल इकट्ठी होने से पूर्व भी गिरजे के अबवाब के रूप में उन्हें एक विशेष कर देना पडता था। इनके अलावा राज्य द्वारा किसानों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से एकत्र किये जानेवाले करो का भी बडा गहरा बोझा था। प्रत्येक कर ही किसान की कुल आय का ५० प्रतिशत खा जाते थे। प्रत्येक किसान को सडक बनाने या मरम्मत करने के लिए अनिवार्य रूप से साल में १२ दिन देने पडते थे।

ऐसी दशा में आश्चर्य ही क्या कि फ्रास में भिखारियो की सख्या १२ लाख थी और दुर्दिनो में लगभग एक चौथाई जनसख्या भीख माग कर निबाह करती थी।

ऐसी दुर्दशा में किसान अपना असन्तोष प्रकट करने लगे। उन्होने माग की कि —

(१) बेगार बन्द हो।

(२) करो में कमी हो तथा उन्हें समान रूप से लगाया जाय।

(३) अबवाब खत्म हो।

(४) ग्रामो के सामान्य उपयोग की जितनी भूमि पर जमीन्दारो ने कब्जा कर लिया था, वह जमीन वे छोड दें, इत्यादि।

एलिजाबेथ प्रथम (१६०२ ईसवी) के राज्यकाल तक इग्लैंड का कोई महत्त्व नही था। वहा की जनसख्या ६ लाख से अधिक नही थी जो आजकल लन्दन की आबादी से भी बहुत कम थी। आरम्भ से ही इग्लैंड के सामन्तो ने बादशाह की शक्ति को सीमित रखने की कोशिशें कीं। १२१५में ही वहा मेंग्नाकार्टा नामका सुप्रसिद्ध अधिकार-पत्र स्वीकार किया गया, जिसके कारण अठारहवी शताब्दी तक जर्मनी में कैरोलिना विधान के अन्तर्गत जो पाशविक दमन होता रहा वह न हो पाया। कुछ काल बाद हमें इग्लैंड में ससद की उत्पत्ति होती हुई दिखाई पडती है। बडे-बडे दिग्गज अमीर-उमराओं और पादरियो का हाउस आफलार्डस् बन गया, और उनके छोटे दर्जे के सामन्तो की चुनी हुई परिषद हाऊस आफ कामन्स में परिणत हो गई। दोनो सदनो के सदस्य मूलत धनाढ्य भूपति और अमीर व्यापारी थे। परन्तु उस समय ससद बहुत दुर्बल थी। बादशाह ही, विशेषरूप से ट्यूडर वश के बादशाह, निरकुश शासक हुआ करते थे। ससद को केवल इतनी ही शक्ति प्राप्त थी कि वह जनता पर लगाये जानेवाले करो में कुछ दखलन्दाजी कर सकती थी। बिना ससद की आज्ञा के न तो नये कर लगाये जा सकते थे और न इकट्ठे किये जा सकते थे और इसलिए ही बादशाह को नए कर सम्बन्धी प्रस्तावो की स्वीकृति प्राप्त करने के लिये ससद को बुलाना पडता था।

साम्राज्ञी एलिजाबेथ के शासन काल में अमरीका और पूर्वीय देशो में जाने के समुद्री मार्ग ढूढे गए और व्यापार के नए अवसर प्राप्त हुए, जिनसे आकर्षित होकर देश के लोग उन दिशाओ में जाने लगे। फलस्वरूप व्यापारियो का एक नया, उन्नति करता हुआ वर्ग पैदा हो गया। एलिजाबेथ के बाद स्काटलैन्ड का बादशाह जेम्स प्रथम राजगद्दी पर आरूढ हुआ, और उसके बाद उसका लडका चार्ल्स प्रथम १६२५ में गद्दी पर बैठा। जेम्स प्रथम का विश्वास था कि बादशाहो को शासन करने का ईश्वर प्रदत्त अधिकार प्राप्त है और उसने ससद की जरा भी परवाह नही की। उसके लडके ने भी वही क्रम अपनाया। अत बादशाह और ससद में झगडे बढने लगे, और यह झगडे सन् १६२८ में बहुत गम्भीर हो गए जब ससद ने अपना सुप्रसिद्ध 'अधिकार-प्रार्थनापत्र' पेश किया। इस प्रार्थनापत्र में बादशाह को कहा गया कि वह निरकुश शासक कदापि नही है और उसे मनमाने तरीके से कर लगाने का अथवा लोगो को जेल भेजने का अधिकार नही है। इस प्रार्थनापत्र से क्रुद्ध होकर चार्ल्स प्रथम ने संसद को भग कर दिया और कई वर्षों तक बिना ससद के शासन चलाता रहा। पर कुछ वर्षो के बाद जब उसे पैसे की तगी हुई तो उसने पुन दूसरी ससद बुलायी। उस समय चार्ल्स प्रथम की हरकतो से देश में बडा भयकर असतोष व्याप्त हो गया था और जो नए सदस्य एकत्र हुए, वे बडे क्षोभ में थे और लडने के लिए उतावले हो रहे थे। अत सन् १६४२ में इग्लैंड में बादशाह और ससद के बीच सुप्रसिद्ध गृहयुद्ध प्रारम्भ हुआ। बादशाह के पीछे अमीर-उमरा और नोबलमैन थे और फौज का भी बडा हिस्सा उसके साथ था। ससद के पीछे नए धनी व्यापारियो की शक्ति थी और लदन शहर भी ससद के ही पीछे था। अन्ततोगत्वा आलिवर क्रामवेल के नेतृत्व में सन् १६४६ में ससद की विजय हुई। यद्यपि ब्रिटिश ससद के उच्च सदन, हाउस आफ लार्ड्स ने एतराज किया तो भी हाऊस आफ कामस के सदस्यो ने आलिवर क्रामवेल के नेतृत्व में चार्ल्स प्रथम पर "आततायी, गद्दार, हत्यारा और देश का दुश्मन" होने के आरोप में मुकदमा चलाया। उसे फासी की सजा दी गई और उसे मौत के घाट उतार दिया गया। अब इग्लैन्ड बिना किसी बादशाह के हो गया, और 'लार्ड प्रोटेक्टर' की पदवी अख्तियार कर क्रामवेल ने देश का शासन चलाया। १६५८ में क्रामवेल की मृत्यु हो गई और तब चार्ल्स प्रथम के लडके चार्ल्स द्वितीय को गद्दी पर बैठाया गया और इस प्रकार इग्लैन्ड में पुन. अमीर-उमराओ की प्रथा जीवित हो गई। पर यह अमीर-उमरा उपर्युक्त क्रान्ति के बाद कभी भी अपनी पुरानी शक्ति नही प्राप्त कर सके, ब्रिटिश ससद की शक्ति दिनोंदिन बढती ही गई, ब्रिटेन के शासन पर उसका अधिकार उत्तरोत्तर प्रबल होता गया, और अन्ततोगत्वा ब्रिटेन का बादशाह महज एक सविधानीय चिन्हस्वरूप ही रह गया।

अंग्रेजी और फ्रान्सीसी क्रान्ति का एक मौलिक अन्तर

ब्रिटेन की यह स्थिति यूरप महाद्वीप के अन्य देशो की स्थिति से सर्वथा विभिन्न थी। यूरप महाद्वीप के देशो में बादशाह इसके लिए भी निरकुश शासक और आततायी बने रहे और बाद की शताब्दियो में भी किसानो का भयकर शोषण होता रहा। इगलिस्तान में बादशाहों की निरकुशता समाप्त हो जाने का एक सीधा फल तो यह हुआ कि वहां के किसानोका शोषण उस स्तर पर या उसके निकटभी नही पहुचा, जिस स्तर पर यूरोपीय किसानोका शोषण होता रहा। निश्चयही किसानो के भयकर शोषण के फलस्वरूप विद्रोहाग्नि यूरोपीय देशो में सुलगती रही और उसकी चरम सीमा ब्रिटेन की क्रान्ति के एक शताब्दी के बाद फ्रास में देखी गयी, जहा पर फ्रास के सम्राट को भी गिलोटिन द्वारा मौत के घाट उतारा गया। पर यहा एक अत्यावश्यक बात हमें नही भूलनी चाहिये। इग्लैंड और फ्रास की इन क्रान्तियो में एक मौलिक अन्तर देखा गया। फ्रास में नए उभरनेवाले पूजीपति वर्ग का सामन्ती प्रथा पर और अमीर-उमराओ पर एक भयकर सहारकारी प्रहार कर उनका खात्मा करना पडा, कारण उस देश के सामन्त और अमीर-उमरा फ्रास के उत्पादन-साधनो के विकास के रास्ते में गहरे रोडे बन गए और उन्होने नए उभरे पूजीपतियो से किसी भी प्रकार का समझौता करने से इन्कार कर दिया। इसके विपरीत इग्लैन्ड में चार्ल्स प्रथम के कत्ल के बाद वहा अमीर-उमराओ ने अपने में समयानुसार परिवर्तन किया। नयी स्थिति के अनुरूप उन्होने अपने को बदला और उसके फलस्वरूप इग्लैंड में पुराने सामन्तो और नए पूंजीपतियो में पारस्परिक सम्बन्ध मृदुल हुए और दोनो एक दूसरे की दिक्कतो को समझते हुए आगे बढे। यद्यपि यह निर्विवाद है कि इग्लैंड की नयी व्यवस्था में नए पूजीपतियो का ही हाथ ऊपर था। इस नयी व्यवस्था में लदन नगर के व्यापारी बडे-बडे भूपति बन सकते थे और बने और बडे-बडे सामन्त और भूपति व्यापार में हिस्सा लेने लगे।

इग्लैंड की क्रान्ति ने अमीर-उमराओ और किसानो के बीच का तनाव बहुत हद तक खतम किया, फिर भी सामन्तो को काफी

विशेषाधिकार प्राप्त रहे। निश्चय ही ससद अब ब्रिटेन मे सार्वभौम हो गई थी, परन्तु हाऊस आफ कामस के सदस्य ऊचे वर्गवाले ही होते थे, जो या तो बडे-बडे व्यापारी थे या बडे भूस्वामी थे। ब्रिटेन की बहुत थोडी जनता को मताधिकार प्राप्त था और बहुत से तो ऐसे चुनाव क्षेत्र थे, जिन्हे 'जेबी चुनाव क्षेत्र' कहा जाता था। प्रसिद्ध है कि सन् १७९३ मे हाऊस आफ कामस के ३०६ सदस्यो को कुल १६० व्यक्तियो ने चुना था। पर इसी समय एक तरफ तो इगलिस्तान मे उद्योगो का वृहद विकास प्रारम्भ हुआ और दूसरी तरफ अमरीका मे और भारत मे अपने साम्राज्य-विस्तार के सिलसिले मे ब्रिटेन नई झझटो मे फसा, और इन सब बातो मे अग्रेज मस्तिष्क व्यस्त रहा तथा उपर्युक्त अनीतिसगत बातो की ओर उसका ध्यान नही गया। वैसे जब कभी समाज मे तनातनी कुछ प्रबल होती थी तो तुरन्त शासक वर्ग कोई-न-कोई समझौता कर लिया करते, जिससे तनातनी खत्म हो जाती थी और अव्यवस्था एव हिंसा का खतरा खत्म हो जाता था। वास्तव मे ब्रिटेन के शासक वर्गको, और शासक वर्ग ही क्या, समस्त ब्रिटिश जनता के चरित्र की यह बडी विशेषता रही है कि वे अन्ततोगत्वा जो होनी होने को होती है, और जो पराजित न हो सकनेवाली शक्तिया उनके विरोध मे प्रबल हो जाती है, उनके आगे वह तुरन्त सिर झुका देते है और समझौता कर लेते है। इतिहास सदैव अग्रेजो की इस विशेषता को देखता आया है। यह विशेषता ही इस विचित्र बात का कारण है कि जहा एक तरफ ब्रिटेन आज ससार के सामने परम्परागत रूप से जनतन्त्रवादी देश के रूप मे सामने आता है, वही दूसरी तरफ वहा आज भी जमीदारी प्रथा स्थापित है, बडे-बडे भूस्वामी और लाट और नोबलमैन आज भी वहा पाये जाते है, बडे-बडे पूजीपतियो के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है, और उनका आज भी काफी राजनीतिक प्रभाव है लगभग १०० वर्ष पूर्व सुप्रसिद्ध ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ग्लैडस्टन ने कहा था "हाऊस आफ कामस तो वास्तव मे हाऊस आफ लार्ड्स है।" सन् १९३९ मे ब्रिटेन मे एक बडी प्रसिद्ध पुस्तिका प्रकाशित हुई, जिसका नाम था "टोरी एम० पी०"। इस पुस्तिका मे ब्रिटेन के अनुदार दल के सदस्यो की सामाजिक स्थिति और उनकी राजनीतिक विशेषता का विवेचन है। इसमे लेखक ने बडे ही सुन्दर ढग से यह साबित किया है कि अनुदार दल पर कुछ थोडे से ब्रिटिश खानदानो का प्रभाव है, जिनमे से अधिकाश बडे-बडे भूपति और अमीर-उमरा है। सुप्रसिद्ध स्वर्गीय प्रो० हैरल्ड लास्की ने अपनी पुस्तिका १८०१ से १९२४ के बीच ब्रिटिश मन्त्रिमडलो के व्यक्तित्व मे दिखलाया है कि १९०६ से लेकर १९१५ के दस वर्षों मे ब्रिटिश मन्त्रिमडलो के कुल ५१ मन्त्रियो मे २५ बडे अमीर-उमरा और सामन्त थे।

वास्तव मे इस शताब्दी के प्रथम २५ वर्षों के बाद ब्रिटेन मे जो मजदूर दल का प्रभाव बढा तथा चुनावो मे विजयी होकर मजदूरदलीय सरकारें बनने लगी तो उसका कारण यही बताया गया कि अब ब्रिटिश जनता काफी जाग्रत हो गई है कि वह नही चाहती कि देश की राजनीतिक सत्ता कुछ ऐसे बडे खानदानो और अमीर-उमराओ के हाथो मे रहे, जो वास्तव मे ब्रिटेन मे बहुत थोडे है और जिनके रहन-सहन का तरीका और क्रम ब्रिटेन की विशाल जनता के सर्वथा विभिन्न है।

सामन्त विरोधी संघर्ष के तीन मुख्य अध्याय

जैसा कि सभी जानते है, कि इग्लैड एक ऐसा देश है, जहा सबसे पहले औद्योगिक विकास प्रारम्भ हुआ और जहा धीरे-धीरे कृषि का स्थान गौण होता गया। वहा के सामाजिक सम्बन्धो के विकास की जो विशेषता रही और जिस प्रकार वहा के शासक वर्ग ने अपने को समयानुसार परिवर्तित किया, उसी कारण से ही वहा सन् १६४२ की क्रान्ति के बाद कभी भी अशान्ति-अव्यवस्था, खून-खराबी और हिंसा नही हुई, यद्यपि यह बातें प्राय अन्य सब ही यूरोपीय देशो मे दृष्टिगोचर होती है। तथापि इतिहास की अनवरत प्रगति ने इग्लैन्ड को, जैसे अन्य देशो को भी, अछूता नही छोडा। सामन्ती ढाचे के अन्तर्गत एक मध्यम वर्ग सब जगह उभरा और जैसे-जैसे व्यापार का विकास हुआ, वैसे-वैसे यह नया उभरा मध्यम वर्ग शक्तिशाली होता गया। धीरे-धीरे यह मध्यम वर्ग सामन्ती शासको से, अमीर-उमराओ से और बादशाहो से सघर्ष मे आया और उसने अशान्ति की अग्नि मे जलनेवाले असख्य किसानो का नेतृत्व किया। इस नए वर्ग ने सामन्ती ढढ्ढे के विरुद्ध जो लम्बी लडाई लडी उसके इतिहास मे तीन निर्णायक अध्याय कहे जा सकते है। प्रथम, प्रोटेस्टेन्टो के नेतृत्व मे रोमन कैथलिक गिरजेघरो और पोपशाही के विरुद्ध विद्रोह हुआ। दूसरे, इगलिस्तान की शानदार क्रान्ति, और तीसरे, फ्रास की महान क्रान्ति। महान फ्रासीसी क्रान्ति के बाद यूरप मे और सारे ससार मे सामन्तवाद का प्रभुत्व समाप्त-सा हो गया और सामन्ती प्रभाव ससार मे घटने लगा। उसके स्थान पर नयी पूजीवादी सभ्यता आई, जो वस्तुओ के स्वतन्त्र व्यापार पर आधारित थी, जिसमे उत्पादन के तरीके बहुत विकसित थे और जिसका मूल उद्देश्य मुनाफा कमाना था। यह पूजीवादी प्रथा के नाम से ससार मे प्रसिद्ध हुई। इस प्रथा ने किसी समय ससार मे बडा प्रगतिशील कार्य किया, परन्तु कालान्तर मे यह प्रथा भी शोषक और गलित सिद्ध हुई और आज इसके भी खात्मे के दिन आ गए है। अस्तु।

यद्यपि यह सत्य है कि महान फ्रासीसी क्रान्ति के बाद ससार के सामाजिक सगठन मे सामन्ती प्रथा का महत्त्व बहुत कम हो गया, और धीरे-धीरे पुराने जमाने के अमीर-उमरा और नवाब और लाट और उनकी बडी-बडी सुरक्षित गढिया और महल लुप्तप्राय हो गए, तथापि यह भी निर्विवाद है कि जहा कही सामन्तशाही के खात्मे के साथ जमीन्दारी प्रथा का भी खात्मा नही किया गया, वहा पर राजनीतिक सत्ता बहुत कुछ भूस्वामियो और जमीन्दारो के हाथो मे ही रही। यह बात आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से पिछडे देशो के लिए विशेष रूप से सत्य है। उन देशो मे कृषि ही आबादी की अपार सख्या के जीवन-यापन का साधन थी। अत आश्चर्य ही क्या कि सामाजिक और आर्थिक जीवन पर बडे-बडे भूस्वामियो का ही प्रभुत्व निर्णायक बना रहा, और ऐसे देश अन्ततोगत्वा प्रतिक्रियावादी गढ सिद्ध हुए। जहा सामन्तो की शक्ति का खात्मा होने के साथ ही जमीन्दारी प्रथा का खात्मा नही हुआ, वहा एक अदृश्य रूप

से बडे-बडे सामन्ती लाटो और अमीर-उमराओ तथा नए उभरे पूजीवादी धनपतियो में घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया, और इस वर्ग से ही राज-दरबारों के बडे-बडे अधिकारी, राज्य मन्त्री, बडे-बडे फौजी जेनरल और सरकारी नौकरियों में ये बडे-बडे अफसर होने लगे। देहातो में स्थानीय अधिकारी और पुलिस और स्कूलो के अध्यापक इत्यादि भी भूस्वामियों की ही सहायता करते रहे। साराश यह कि समाज के अन्दर जो भी व्यक्ति किसी जिम्मेदार शासकीय पद पर रहे, वे सब-के-सब या तो भूस्वामियो के वर्ग से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थे अथवा उन पर आश्रित थे। ऐसी स्थितियो में जो जनतान्त्रिक अधिकार नए सविधानो के अन्तर्गत जनता को प्रदत्त किए गए, वे बहुत हद तक कागजी ही बने रहे। कई देशो में बालिग मताधिकार सविधान द्वारा तो स्वीकार हो गया, परन्तु एक तो ग्रामीण जनता अशिक्षित और पिछडी थी और दूसरे प्रशासनिक ढाचे में पुराने शासक वर्गो का प्रभाव बदस्तूर कायम था। अत उन नए अधिकारों का लाभ गरीब जनता न उठा सकी। ऐसे स्थानो पर कृषको और कृषि-मजदूरो को उसी प्रकार अपना मत प्रदान करने पर बाध्य होना पडता था, जैसा उनके भूस्वामी चाहते थे। यह बातें उदाहरणार्थ इटली, एशिया, पोलैन्ड, हगरी, रूमानिया और सब से ऊपर जारशाही जमाने के रूस के लिए सत्य रहीं।

यूरोपीय भूमि-प्रश्न के विकास के दो निश्चित सुझाव

इस कारण से ही हम यह देखते हैं कि यूरप के भूमि सम्बन्धी प्रश्नो में दो निश्चित रूझान दिखाई पडते हैं। पश्चिमी यूरप की औद्योगिक क्रान्ति द्वारा पैदा हुई स्थितियों के प्रभाव से और एक नये शक्तिशाली पूजीपति वर्ग के उद्भव के फलस्वरूप कृषि उत्तरोत्तर व्यापारिक दायरे के अन्तर्गत आने लगी और उसका आधुनिकीकरण होने लगा। भूमि पर सामन्ती तथा अन्य स्थिर स्वार्थो के खत्म किये जाने का यह एक अवश्यम्भावी नतीजा था। पर स्मरण रहे कि इस क्रम से इग्लैंड और जर्मनी की दशा कुछ विभिन्न-सी रही। इगलिस्तान में वशानुगत रूप से जायदाद की प्राप्ति के सिलसिले के कानून से कोई भी दखलअन्दाजी न की गई। वहा पर कोई सामाजिक क्रान्ति भी न हुई और वहा की अधिकाश भूमि बडी-बडी रियासतों के कब्जे में ही बनी रही, जिन पर बडे-बडे लाटो और नोबलमैनो का अधिकार स्थापित रहा। ऐसी रियासती भूमि विभिन्न-विभिन्न आकार के खेतो में विभाजित कर दी गयी और उन्हें नकद लगान पर किसानो को उठा दिया गया। पर यहा यह कह देना चाहिये कि ब्रिटेन में जिस प्रकार की खेती अब प्रमुख हुई वह किसान परिवारो को लगान कर उठाये जानेवाले वह छोटे-छोटे खेत न थे जिनसे सम्भवत परिवारो की गुजर-बसर न हो पाती हो। वास्तव में ब्रिटेन में एक नये तरीके की खेती की प्रणाली शुरू हुई जिसमें कुछ लोगों ने एकत्र होकर कुछ पूजी इकट्ठी की और कृषि मजदूरो को निश्चित वेतन पर नौकर रखा और एक दर्जन या उससे अधिक आदमियो को प्रबन्धकर्ताओ के रूप में मुलाजिम रखा। इस प्रकार लगभग ५०० एकड या इससे बडे चकों पर बाकायदा व्यापारिक ढग से सुधरे तौर पर खेती शुरू करवाई गई।

जर्मनी के पूर्वी हिस्सो पर बडी-बडी रियासतें बडे-बडे नोबलमैनों, काउटो और अमीर उमराओं के पास बनी रहीं। सन् १८४८ में जर्मनी में अवश्य एक क्रान्ति हुई थी पर वह बहुत ही अल्पकालीन थी और उसमें जर्मनी के कृषको को इतना अवसर न प्राप्त हुआ कि वह फ्रासीसी किसानो के समान अपना दबाव डाल कर और शक्ति लगा कर सामन्ती प्रथा का खातमा करवा दें। तथापि सन् १८४६ की क्रान्ति के फलस्वरूप जर्मनी के किसानो ने, कम-से-कम जर्मनी के पश्चिमी हिस्सो में बहुत हद तक अनेकानेक सामन्ती शोषणो और नाजायज वसूलयाबियो को समाप्त करवा दिया। फिर फ्रास के सामतो, अमीर-उमराओ और नोबलमैनो के समान जर्मनी के सामन्तो ने हठधर्मी न अपनायी और उन्होने सन् १८४८ की क्रान्ति के नेताओं के साथ समझौता किया और झुकने को तैयार हो गये। फिर एक बात यह भी स्मरण रखने योग्य है कि जर्मन अमीर-उमराओ और काउटो के पास जो बडी-बडी रियासतें थी उनमें खेती बडे ही आयोजित रूप से, बडे ही सुघर ढग से की जाती थी। वहा के सामन्त इगलैंड के सामन्तो की तरह अपनी रियासती जमीनो को लगान पर नही उठाते थे, वरन् स्वय उनकी जुताई-बुआई अपनी देखरेख में करवाते थे और अपनी खेती-बारी के काम में विश्वविद्यालयों में शिक्षित कृषि-विशेषज्ञों की सहायता लेते थे। बहुत कुछ उनके बडे-बडे खेतो का सगठन क्रम वही हुआ करता था जो कि उस समय जर्मनी में विकसित होनेवाले औद्योगिक कारखानो में पाया जाता था। वास्तव में पूर्वी जर्मनी की यह सुप्रसिद्ध प्रशियन युकर रियासतें विश्व के इतिहास में निराली ही चीजें रही हैं, और उनमें से एक-से-एक दिग्गज विद्वान और एक-से-एक महान सैन्य विशेषज्ञ और फौजी जेनरल पैदा हुए। वास्तव में इनका प्रभाव शताब्दियो तक पूरे जर्मनी के शासन पर अकाट्य-सा रहा और इनके लोग ही जर्मनी की अति सुघर और विशाल सेना के निर्देशक रहे। जर्मनी में चाहे समाजवादी ब्रूनिंग अथवा फासिस्ट हिटलर का शासन रहा हो, अन्तिम रूप से जर्मन नीति के निर्देशन इन्ही प्रशियन युकरो द्वारा ही होता रहा। वास्तव में यह प्रशियन युकर सारे यूरप के देशो द्वारा बडे भय से और सदिग्ध दृष्टि से देखे जाते रहे। उनका खातमा अन्तिम रूप से सन् १६४५ में रूस की लाल सेना द्वारा तब हुआ जब पराजित हिटलरी सेनाओ का पीछा करती हुई रूसी सेना जर्मनी पहुची। उसने इन प्रशियन युकरो की बडी-बडी रियासतो को जब्त करके वहा के किसानो में बाट दिया।

पूर्वीय यूरप में

अब रहा यूरप के पूर्वी देशो का सवाल। यूरप के पूर्वी देशो में कृषको के लिये खेती लाभकर नही रही है। छोटे-छोटे अलाभकर खेतो की सख्या अधिक रही और बडे-बडे मुफ्तखोर जमीन्दार निरकुशता से शोषण करते रहे। यह सही है कि बडे-बडे लम्बे अरसे तक बालकन प्रायद्वीप पर तुर्की के सुलतानो के साम्राज्य स्थापित रहने से अथवा बडे लम्बे अरसे तक पोलैंड का रूसी जारशाही के पदो के नीचे पददलित होने से बालकन देशो की और पोलैंड की प्रगति अवरुद्ध रही। इसके कारण ही पश्चिमी यूरप का विकास जिस क्रमनुसार हुआ और

जिस प्रकार औद्योगीकरण के पश्चात वे बड़े शक्तिशाली राष्ट्रवादी देश बन गये वह क्रम पूर्वी यूरप के देशों में अनुपस्थित रहा। वास्तव में इन पूर्वी देशो में देश के अन्दर की ही विभिन्न श्रेणियों में पारस्परिक सघर्ष तबतक न प्रारम्भ हुआ जबतक वहा तुर्की का शासन रहा। जिस समय यूरप के पूर्वी देशो पर तुर्की का आधिपत्य क्षीण होने लगा उसी समय ससार में व्यापार का विकास बृहद रूप में प्रारम्भ हुआ और तब इस बात की सम्भावना दृष्टिगोचर हुई कि बालकन प्रायद्वीप के देशो में उत्पन्न अनाज का निर्यात कर के काफी मुनाफा कमाया जा सकता है। अत जो लोग उस समय वहा भूमि के स्वामी थे उन्होंने किसानो द्वारा उत्पादित अनाज को हस्तगत करने के लिए किसानो का शोषण और गहरा किया। इसके फलस्वरूप किसानो में असतोष व्यापक रूप से फैला। कभी-कदा किसानो की विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हुई पर उसे बडी ही निर्दयता के साथ कुचल दिया गया। साराश में पूर्वीय यूरप के देशो में सदैव ही किसानो की समस्याएँ गम्भीर रूप में विद्यमान रही।

उपसंहार

शासक वर्गों के दूरन्देश राजनीतिज्ञो ने सदैव ही किसानो के व्यापक असन्तोष के रूप में विद्यमान ज्वालामुखी को पहचान कर समय-समय पर कुछ ऐसे कानून बनाने का प्रयास किया, कुछ ऐसा भूमि सुधार करना चाहा जिनसे किसानो का प्रश्न कुछ कम गम्भीर हो सके और किसानो की विद्रोहाग्नि ज्वालामुखी के रूप में प्रलयकारी ढग से फटने न पावे। इस कारण ही कभी-कदा विशेष रूप से १८वी और १९वी शताब्दियों में, हम कुछ भूमि सुधारो की चर्चा पाते है। ऐसे भूमि-सुधारो पर तब विशेष ध्यान दिया गया जबकि देश किसी युद्ध अथवा किसी राष्ट्रीय सकट में फसा। इन छिटपुट भूमि-सुधारो का विवरण इस सक्षिप्त लेख के अन्दर सम्भव नही है, पर एक बात तो कही ही जा सकती है। यह छिटपुट भूमि-सुधार हुए वह यह तो दर्शाते है ही कि उस समय किसानो को किन-किन बातो की सबसे अधिक तकलीफ थी तथा कृषको और कृषि मजदूरो को किस प्रकार से शोषित किया जाता था। यह कानून इस बात को निश्चित करने का प्रयत्न करते थे कि बडे-बडे रियासती खेतोंपर काम करनेवाले कृषि-मजदूरो को वेतन निश्चित कर दिया जाय। वे यह भी प्रयास करते थे कि काम करने के लिए मजदूरों के साथ जो ठेके किये जाय वह किस प्रकार के हो। यह कानून इस बात का भी प्रयास करता था कि साल के कुछ दिन निश्चित रूपसे इस बात की छूट रहे कि वे मालिकों के खेतो से हट कर अपने छोटे-मोटे अलाभकारी निजी खेतों पर जाकर उसकी फसल काट सकें। इसी प्रकार से कुछ अन्य छोटी-मोटी सुरक्षा कृषको को प्रदान करने की कोशिश इन कानूनो द्वारा की जाती थी।

यह सब जो था सो था ही, पर यूरोपीय किसानो के अन्दर भूमि की भूख ही उनकी मूल समस्या बनी रही। हम भारतवासी किसानो की भूमि के लिए गहरी भूख से सुपरिचित है और इसलिए हमको यूरोपीय किसानों की इस भूख को समझने में दिक्कत नही होती। मध्ययुगीन इतिहास की लम्बी-लम्बी शताब्दियो में यूरोपीय किसान परम्परागत रूप से भूमि के याचक बने रहे। किसान चाहता था कि उसे निजी भूमि मिले जिस पर वह काबिज रहे, जिसको वह सुधरे तरीके से जोते-बोये और जिस पर उसके अधिकारो को छीननेवाला कोई न हो और जिसके द्वारा कठिन परिश्रम कर वह अपने परिवार को पाल सके। पर सामन्ती शोषणो से पीडित ससार के सभी देशो के किसानो के समान ही यूरोपीय किसानो को यह तृष्णा कभी भी मध्ययुगीन इतिहास की लम्बी शताब्दियो में तृप्त नही हुई।

और जब २०वी शताब्दी प्रारम्भ हुई, पूजीवाद विकसित होते-होते अपनी अन्तिम मजिल साम्राज्यवाद के युग में दाखिल हुआ, जब साम्राज्यवादी शक्तिया विश्व के पुनर्विभाजन के वास्ते विश्व महायुद्ध में जुट गयी और इस प्रकार जब आधुनिक पूजीवाद साम्राज्यवाद का गलित, कुठित ढाचा नग्नरूप में विश्व में ताण्डव करने लगा तब किसानो की युगो-युगो की सचित वह भूमि की भूख पुन एक नये ज्वालामुखी के रूप में धधक उठी। तब पुन क्रान्तियो का दौर आया, रूस में क्रान्ति हुई, पूर्वी यूरप में क्रान्तिया हुई और इस क्रान्ति की ज्वाला में सारा ससार धू-धूकर के जल उठा। पर वह तो दूसरा अध्याय है। हमें अपने इस आख्यान को यही समाप्त करते हैं।

वेदों में कृषि का उल्लेख

श्री वीरेन्द्र श्रीवास्तव, विद्यावाचस्पति

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है यह कथन हम अपने देश के परिचय में बराबर सुनते चले आये हैं। वैदिक युग में कृषि का क्या रूप था और साक्षात्कृतवर्मा ऋषि अपने मत्रो में उसके विषय में क्या प्रतिपादन करते हैं इसका विवेचन अपने अतीत गौरवमय इतिहास और सस्कृति के ज्ञान के लिए आवश्यक है।

अन्न और उनके नाम

जीवन धारण के लिए अन्न अपरिहार्य है और उस अन्न का उपजाना मानव जाति का कर्त्तव्य है। इसे वैदिक ऋषि खूब अच्छी तरह समझते थे। "अन्न वै प्राणा" यह उपनिषद् वाक्य उसीका समाहार है। अन्न की प्राप्ति और उसकी समृद्धि के लिये प्रार्थना अनेक सूक्तो में की गई है। यजुर्वेद का १२वा अध्याय और १८ अध्याय विशेष द्रष्टव्य है। वैदिक संस्कृत में अन्न और अनरस के लिए वाज और अर्क शब्द प्रयुक्त है। यजमान यज्ञ करके प्रार्थना करता है

वाजो न अद्य प्रसुवाति दान वाजो देवान् ऋतुभि कल्पयाति।
वाजो हि मा सर्ववीर जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्॥
यजु १८।३३

"अन्न ही आज दान को प्रेरित कर रहा है, अन्न ही ऋतुओ से देवो को सामर्थ्ययुक्त करता है। अन्न ने ही मुझे सबसे वीर बनाया, मै "वाजपति" सब दिशाओ और आशाओ को जीतू। गृहपति बिना वाजपति (अन्नपति) बने कैसे निरन्तर दान कर सकता है, भिन्न-भिन्न ऋतुओ में इष्टि और याग से देवो को तृप्त कर सकता है, और वीर तथा अर्जस्वी बन सकता है ?

वैदिक ऋषि विभिन्न अन्नो की प्राप्ति निम्नरूप में चाहता है।

"व्रीहयश्च में यवश्च में माषाश्च मे तिलाश्च में मुद्गाश्चमें खल्वाश्च मे प्रिंगवश्च मे ठावश्च मे श्यामकाश्च मे नीवाराश्च मे गोमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पताम्।" यजु १८।१२

यज्ञ से मुझे धान, जौ, माष, उडद, तिल, मूंग, खाल्व, प्रियगु, अणु, सावा, नीवार, गेहू और मसूर सम्पन्न हो। छ प्रकार के चावल, जौ, गेहूं, उडद, मूग और मसूर जैसी दालो और तेल के लिए तिल की याचना है। ये सब धान्य वैदिक युग में उत्पन्न होते थे।

अन्न यज्ञ अर्थात् गोमेघ

इन अन्नो की उत्पत्ति के लिए जो अन्न यज्ञ किया जाता था उसका *ही दूसरा नाम गोमेध था। "अन्न हि गो" शतपथ ४।३ अर्थात् अन्न ही* गो है और उससे सम्बद्ध 'मेध' अर्थात् यज्ञ गोमेध है। वैदिक शब्द कोष में सबसे प्रधान निघटु और उसीकी व्याख्या निरुक्त है। निघटु में सर्व प्रथम भूमिवाची शब्दो की गणना की गई है। भूमि में अन्न प्राप्ति के लिए जो यज्ञ किया जाय वह 'गोमेध' है। वैदिक छन्दो का अनुकरणवाले पारसी धर्मग्रन्थ जिन्दावेस्ता' में इसी को 'गोमेज' कहा गया है। 'ध' का वर्ण विकार के नियमो से 'ज' उच्चारण हो गया है। 'गोमेज' में हल से जमीन जोतने का विधान किया गया है। प्राचीन काल में विदेह जनको की प्रथा थी कि राज्य में सर्व प्रथम सुवर्णमय हल का सचालन करके कृषि पर्व का प्रारम्भ किया करते थे। जनता उनका अनुसरण करती थी। यही गोमेध यज्ञ है। सीधे शब्दो में कृषक अपने श्रम सीकरो को गिराकर हल और बैल के साथ भूमि पर जो तपस्या अन्न प्राप्ति के लिए करता है वह गोमेध यज्ञ है। यजुर्वेद के विभिन्न मत्रो का विनियोग 'गोमेध' में गाय के अगो को काटकर डालने के लिए जिन भाष्यकारो की कल्पना है वह सर्वथा अनर्थ प्रसूत है। गोमेध, नरमेध, अश्वमेध में वे सब जगह 'मेध का अर्थ मेधृ *हिंसायाम' से काटना* करके सब का काटना ही यज्ञ समझ बैठते है। वेद में 'गौ प्राणी अघ्न्या' अहन्तव्य कही गई है इसका उन्हें ध्यान ही नही। वे व्याख्याकार शायद रघुवश के 'प्रजायै गृहमेधिनाम्' का अर्थ घर की हिंसा करनेवाले रघुवशी कर देंगे। वे यज्ञवाची मेध शब्द को भूल जाते है।

कृषि और उसके उपकरण

गोमेव यज्ञ का सीधे शब्दो में वर्णन यजुर्वेद के १६ वें अध्याय में ६७।१७ मत्रो में है। उसी का अथर्व वेद में पृथक सूक्त के रूप में ३।७८ में कथन है कि इन मत्रो का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "कृषि वला" है। खेती को ही अपना वल समझने वाले किसान "कृषीवल" है। उनके लिए मत्र में "कीनाश" शब्द जो भाषा विज्ञान के वर्ण व्युत्पति नियम और ध्वनि विकार का अनुसरण कर हिन्दी 'किसान' बन गया है। इन किसानो के विषय में कहा गया है कि 'वे धीर क्रान्तिदर्शी हलो को जोतते है। उनमें जुओ को पृथक बैलो के लिए नियोजित करते हैं। भूमि योनि में बीज वपन करते है और जब शस्य समृद्ध हो जाता है तो पके अनाज को दराती से काट लेते है। अच्छे फलो से किसान जमीन को जोतते है, वे बैलो का अनुगमन करते है और उत्तम फलयुक्त परिपक्व ओषधि को अर्थात् धान, जौ आदि को प्राप्त करते है। सुन्दर "सीता" अर्थात् क्यारी को तैयार करके उसे देवो की अनुमति से 'पयस्' (जल) से तृप्त कर पुष्ट करते हैं। काम दुधा गाय से 'पयस्' की तरह उससे अन्न का दोहन करते हैं।" कृषि के साधनो में हल सबसे प्रधान है उसके लिए सीर और लागल शब्द प्रयुक्त है। हल में सुन्दर फाल की योजना की गई है और युग जुआठ वाहो (बैलो) के लिए लगाया गया है। जमीन में 'सीता' क्यारी वनाई गई है, उस 'भूमियुनि' में 'बीज वपन' किया गया है और सब उस सब साधन को करके किसान अन्न प्राप्त करता है। मत्र इस प्रकार है

"सीरा युज्जन्ति कवयो युगा वितन्वेत पृथक । धीरा पेवेषु सुम्नया ॥ युनक्त सीरा वि युगा तनुवयम कृते योनी वपतेह बीजम् ॥"
गिराच श्रुष्टि सभरा असन्नोदीय इत्सृन्य पक्वमेयात् ॥
शुन सुफाला विकृषन्तु भूमिं, शुन कीनाशा अभियन्तु वाहे।
शुनासीरा हविषा तोषमाना सुपिप्पलम ओषधी पकर्तनास्मे ॥
घृते न सीता मधुना समज्यात् विश्वैर्देव रनुमतामरुदिभ ।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना स्तस्मात् सीते पयसा म्दावृत्स्व ॥
लागल पवीरवत्सुशेवम् ६७।७१

ये शब्द कृषि शास्त्र में अति प्रचलित है, मत्रो में प्रयुक्त क्रियाएँ भी साभिप्राय है। अथर्व में 'सीता' की विशेष वन्दना की गई है ।

"सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव। यथा न सुमना असो यथा न सुफना भुव"

ऐसे, सुभग सीता तुम्हारी वन्दना करते है, तुम नीचे की तरफ अच्छी तरह जाओ जिससे प्रसन्न होकर उत्तम फल देनेवाली हो।" इसमें सीता के खूब गहरा बनाने से फल की प्राप्ति कही गई है। गोमेघ के जनक और इस सीता का सम्बन्ध करके विदेह नन्दिनी सीता की प्राप्ति हल चलाते जनक को हुई थी यह प्रतीकात्मक गाथा चल पडी है। अन्न यज्ञ का जनक तो किसान या पर्जन्य है और सीता खेत की क्यारी या फाली है । अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त १२ में पृथ्वी में कर्षक अन्न उत्पन्न करते हे। १२।३ में यह कहा गया है। उसी सूक्त में पृथ्वी को माता अपने को पुत्र और पर्जन्य मेघ को पिता कहा गया है।

माता भूमि पुत्रो अह पृथ्व्या, पर्जन्य पिता स उन विपर्तु
१२।१२

खेती में भूमि माता का काम करती है जिसकी योनि से अन्न उत्पन्न होता है और मेघ सेचन का काम करके पिता बनता है।

समृद्ध राष्ट्र में समय-समय पर मेघ की वृष्टि और सकल ओषधि के पकने की प्रार्थना है "निकामे निकामे न पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधय पच्चन्ताम्।"

परन्तु वैदिक कवि क्रान्तदर्शी किसान केवल मेघ की ही आशा लगाये नही बैठा करता था। वह अपनी भूमि को 'अतेव मातृक "अर्थात 'नदी मातृक" भी बनाना जानता था। नदियो तक अन्य जलाशयो से वह पानी लेकर खेत सीचता था। वह नदियो की "सुखरथ योजना" भी जानता था और उन्हें "वाजिनी वती" (अन्न प्रदायिनी —) कर डालता था। ऋग्वेद १०।७५ में गगा, यमुना, सरस्वती और सप्त सिन्धु देश की नदियो की प्रशसा करके उन्हें 'वाजिनीवती" भी कहा गया है।

कृषि प्रशंसा

ऋग्वेद में दशम मडल के ३४वें सूक्त में जुआ खेलने का क्या दुष्परिणाम है और जुआरी की क्या मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है इसका बडा सुन्दर चित्रण किया गया है। जुआरी को सम्बोधन करके ऋषि कहता है:

अक्षे मा दीव्य कृषिमित्कृषस्व विचे रमस्व बहुमन्यमान ।
तत्र गाव कितब तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्य ॥

"पासो से जुआ मत खेलो, खेती करो और उससे प्राप्त धन को बहुत मानते हुए उसमें आनन्द लो। ऐ कितब (जुआरी) उसीमें गौवे है, उसी में पत्नी है यह मुझे श्रेष्ठ सविता ने कहा है"। वेद की दृष्टि में खेती ही सब समृद्धि का साधन है। दुर्व्यसनो को छोडकर मन से खेती करने से घर का सब आराम सुलभ होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि जीवन के साधन तरह-तरह के अनाजों की प्राप्ति के लिए वेद अन्न यज्ञ (गोमेध) का विधान करता है। किसान तरह-तरह के कृषि के विभिन्न साधनो का मनोयोगपूर्वक उपयोग करके धन-धान्य से समृद्ध हो सकता है इसका वेद ने भली-भाति प्रतिपादन किया है । कृषि वैदिक युग से भारतीय जीवन का प्रधान अग बनी रही है और उसी के साथ गोपालन आदि अन्य व्यवसाय भी जुडे हुए हैं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में किसान

श्री मन्मथ नाथ गुप्त

आधुनिक हिन्दी साहित्य की परिभाषा बराबर बदलती चली जा रही है। ज्यो-ज्यो समय बीतता जा रहा है, त्यो-त्यो आधुनिक हिन्दी साहित्य की परिधि इधर की ओर आ रही है। प्रेमचन्द के प्रारम्भिक युग में राजा शिव प्रसाद (१८२३-१८९३), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-१८८४) बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४), लाला श्रीनिवास दास (१८५१-१८८७), राधाचरण गोस्वामी (१८५८-१९२५) आदि लेखक आधुनिक समझे जाते थे, पर अब शायद प्रेमचन्द और प्रसाद के पीछे आधुनिक हिन्दी साहित्य को ले जाना सम्भव न होगा। बात यह है कि इस प्रकार सीमित कर देने पर भी आधुनिक हिंदी साहित्य का क्षेत्र काफी बडा हो जाता है।

हम प्रेमचन्द से ही अपना विवेचन शुरू करें, तो हमारे पास इतना मसाला हो जायगा कि उस पर एक लेख में विचार करना असम्भव है। प्रेमचन्द का जन्म गाव में हुआ था, और वे काफी उम्र तक गाव में ही रहे। उनके पिता अजायबराय एक बहुत साधारण व्यक्ति थे, और गरीबी इतनी थी कि मुश्किल से गुजर होती थी। उनकी गरीबी का वर्णन उनके मुह से ही सुन लिया जाय।

"अधरा के पुल का चमरौवा जूता मैंने बहुत दिन तक पहिना है। जबतक मेरे पिताजी जीवित रहे, तब तक उन्होंने मेरे लिये बारह आने से ज्यादा का जूता कभी नही खरीदा और न चार आने गज से ज्यादा का कपडा मेरे लिये खरीदा गया।"

उन्होंने अपनी गरीबी के बहुत से उदाहरण लिखे है, जिनमें एक घटना यह है कि खाने-पीने की आफत के कारण उन्होंने अपने गरमकोट को दो रुपये में बेच दिया था। दूसरी घटना यह है कि एक बार उनके पिता के एक मित्र उनसे मिलने आये। उन्होंने देखा कि वे बहुत दुबले है, इस पर उन्होंने यो ही कह दिया—तू दुबला क्यो है? क्या तुझे दूध-घी नही मिलता?

सचमुच उन्हें दूध-घी नही मिलता था।

एक घटना और ली जाय। उनकी शादी के लिए क्या तैयारी हुई थी, यह उनकी गरीबी को प्रकट कर देती है। शादी के लिए पाच रुपये का गुड खरीदा गया था। इसके अतिरिक्त शादी के लिए जो मडप बनना था, उसके लिए उन्होने स्वय बास काटे। मंडप को छाने के लिए बासो की आवश्यकता थी।

इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि प्रेमचन्द का हृदय गरीबो और किसानो के लिये हमेशा रोया करता था। उनके उपन्यासो में हम यह देखते है कि जहा वे ग्राम-जीवन या किसान-जीवन का वर्णन करते है, वही पर वे सबसे अधिक शक्ति का परिचय देते है। इसका कारण यह है कि जिस जीवन को उन्होंने स्वय जिया था, जिस जीवन की समस्याओ से वे अच्छी तरह परिचित थे, उसीको वे अच्छी तरह चित्रित कर सकते थे। यदि उनके उपन्यासो की सूची को ध्यान से देखा जाय, तो यह ज्ञात होगा कि एक आध पुस्तक के अतिरिक्त बाकी सभी पुस्तको में उन्होंने ग्राम्य-जीवन का चित्र ही चित्रित किया है। प्रेमाश्रम, रगभूमि, कायाकल्प, कर्म-भूमि, गोदान, ग्राम-जीवन सम्बन्धी पुस्तकें है और इन्ही में से दो यानी गोदान और रगभूमि उनकी सर्वश्रेष्ठ कृतिया है।

प्रेमचन्द केवल गाव में पैदा हुये और पले ऐसी बात नही, बल्कि जब वे अच्छे उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हो गये, तब भी वे बराबर अपने गाव में जाते थे, और जैसे हुक्का ताजा किया जाता है, वैसे वे गाव में रहकर अपने तजर्बे को ताजा कर लेते थे। उनकी पत्नी श्रीमती शिवरानी देवी ने उनकी ग्रामयात्रा के सम्बन्ध में लम्बे सस्मरण लिखे है, उसमें से कुछ पक्तिया यो है।

"जब गाव के काश्तकार इकट्ठा होते तो वे उनसे बातें करते, झगडा निवटाते, और बच्चो से खेलते भी जाते थे। कोई नए कायदे-कानून बनते तो काश्तकारो को समझाते। उन सबो के साथ तो वे बिल्कुल काश्तकार हो जाते थे।"

इसी प्रकार घुलमिल जाने के कारण ही वे ग्रामजीवन के इतने सफल चित्रकार बन सके। हमने अपनी 'कथाकार प्रेमचन्द' नामक सुवृहत पुस्तक में प्रेमचन्द के सब उपन्यासो का ब्योरेवार विवेचन किया है। हम केवल 'गोदान' उपन्यास के सम्बन्ध में ही इस अवसर पर कुछ कह कर आगे बढ जायेंगे।

"गोदान' का नायक होरी एक मामूली किसान है। चार-पाच बीघे जमीन जोतता है। पुस्तक के द्वितीय पृष्ठ में ही प्रेमचन्द किसान जीवन की सबसे बडी परेशानी को स्पष्ट कर देते है। "चाहे जितनी ही कतर-ब्योत करो, कितना पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौडी को दात से पकडो, मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है।"

होरी में मामूली किसान के सब दोष-गुण दिखाये गये है। वह समय-समय पर एक व्यर्थ आशा के वशवर्ती होकर अपने जमीदार राय साहब के यहा सलाम बजाने चला जाता है। होरी के मन में एक ही उच्चाकाक्षा थी कि दरवाजे पर एक गाय बध जाय। इसमें भी वह एक साधारण भारतीय किसान, वल्कि सभी देशो के किसानों की मनोवृत्ति को अभिव्यक्त करता है। "गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे-सबेरे गऊ के दर्शन हो जाय तो क्या कहना। न जाने कब यह साध पूरी होगी।"

होरी कोई दूध का धुला नही है। वह चन्द रूपयो के लिए अपने भाई को धोखा देने के लिए तैयार हो जाता है, पर वह अपने शोषको से कही अच्छा है। जिसको उसने धोखा दिया था, उसी भाई पर जब एक विपत्ति आती है, तो वह जान देकर उसकी रक्षा के लिए तैयार हो जाता है। होरी अपने छोटे-मोटे झूठ, ठकुरसुहाती, खुशामदीपन के बावजूद हमारे सामने एक ऐसे व्यक्ति के रूप में आता है, जो 'गोदान' के रायसाहब, मिस्टर मेहता आदि से कही अच्छा है।

होरी भारतीय किसान वर्ग का प्रतीक है, एक तो यो ही तरगो से उसे लडना पडता है, तिस पर सर्वत्र न मालूम कितने बडे-बडे जहाज, मगरमच्छ और न मालूम क्या-क्या विपदायें इस सागर में है। इन विपत्तियो के बीच से होकर वह अपनी छोटी-सी डोगी खेता हुआ चलता है। हर समय उसके डूबने का भय रहता है। न मालूम कब किससे टक्कर लग जाय, और डोगी की भवलीला समाप्त हो जाय। इसलिए 'गोदान' एक व्यक्ति के, और चूकि यह व्यक्ति भारत के वृहत्तवर्ग का है, इसलिए सारे किसान वर्ग के जीवन-सग्राम का इतिहास है। किस प्रकार होरी इतनी विपत्तियो और इतने शत्रुओ के बीच से होता हुआ चलता है, इसीकी महाकाव्यमय कहानी 'गोदान' में कही गई है। होरी को हमने भारतीय किसानवर्ग का प्रतिनिधि पात्र या प्रतीक कहा है, किन्तु यह स्मरण रहे कि होरी के पास चार-पाच बीघे जमीन है, इसलिए वह उन लाखो खेतिहर मजदूरो से खुशहाल है, जिनके पास कोई जमीन नही है और जिनको दूसरो की जमीन पर मजदूरी करते हुए जीवन के दिन काट देने पडते है। चार-पाच बीघे जमीन के तथा हल-बैल के मालिक होते हुए भी होरी पर जैसी-जैसी मुसीबतें आती है, इससे हम अनुमान कर सकते है कि उन किसानो की क्या हालत होगी जिनके पास जमीन नही है। अवश्य होरी स्वय खेतिहर मजदूर होने पर मजबूर हो गया है, यह इस उपन्यास में दिखा दिया गया है। इस प्रकार हम यह भी देखते है कि किस प्रकार बराबर मामूली किसान सर्वहारा वर्ग में गिरते चले जा रहे है।

दुख है कि प्रेमचन्द भारत की स्वतत्रता देख नही जा सके और यह नही देख पाये कि जमीन्दारी प्रथा के उच्छेद आदि उपायों से किसानो की समस्या के आशिक समाधान करने की चेष्टा की जा रही है। 'गोदान' अब भी किसान सम्बन्धी साहित्य के रूप में अद्वितीय है।

'गोदान' में प्रेमचन्द सम्पूर्ण रूप से अपने पहले के सस्कारो से मुक्त होकर एक शुद्ध वस्तुवादी कलाकार के रूप में दृष्टिगोचर होते है। गोदान में ग्राम समाज का जो चित्र है, वह कवित्वपूर्ण नही है, बल्कि अत्यन्त वस्तुवादी है। दातादीन, पटेश्वरी, झिंगुरी सिंह, अनोखेराम ये ग्राम्य-समाज के स्तम्भ है, किन्तु कितने सडे-गले स्तम्भ है। इब्सन ने समाज के स्तम्भ नामक नाटक लिखा है, उसे वस्तुवादी होने के नाते बहुत सराहा गया है, किन्तु ग्राम-समाज का जो चित्र प्रेमचन्द गोदान में हमें देते है, वह उससे कुछ कम प्रशसनीय नही है। शरत बाबू ने अपने 'पल्लि समाज' में ग्राम्य जीवनके इस पहलू को सरलता के साथ चित्रित किया है। गोदान में यह स्पष्ट हो जाता है कि गाववालो की मुसीबत यदि जमीन्दार और उनके कारिन्दो के कारण है, तो साथ ही उनके जीवन को नरक बनाने में पुलीस का भी बडा भारी हाथ है।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास बहुत आगे बढ गया है, पर जहा तक ग्राम और ग्रामीणो की समस्याओ का सम्बन्ध है, बाद के किसी भी उपन्यासकार ने इन बातो पर न तो उसे विस्तार से लिखा, और न वह दृष्टिकोण ही लिया। जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, वृन्दावनलाल वर्मा आदि कई उपन्यासकार हिन्दी में ख्याति प्राप्त कर चुके है, पर इनमें से केवल वृन्दावनलाल वर्मा ने ग्राम्य जीवन को उसी प्यार से देखा है, जिस प्यार से प्रेमचन्द ने अपनाया था, पर उनके प्यार में यद्यपि कमी नहीं है, फिर भी वे उस आख से ग्रामीणो के जीवन को नही देखते, जिस आख से प्रेमचन्द देखते थे। शोषक और शोषित सम्बन्ध के कारण ग्राम जीवन हेय और गन्दा बना हुआ है, वहा के लोगो को न तो पेट भर रोटी मिलती है, और न सस्कृति के कोई साधन प्राप्त है। हमारे कुछ लेखक ग्राम-जीवन की ओर झुके है, जबसे यशपाल ने कागडा के जीवन का जहा-तहा वर्णन किया है, पर देहात की ओर यह यात्रा केवल नये वातावरण में रोमान्स की खोज के कारण है, न कि ग्रामवासियो की समस्याओं के समाधान के

लिये है। हां यो चित्रण करते समय वृन्दावनलाल तथा यशपाल की कृति में कुछ समस्यायें आ गई है, यह और बात है। बिहार में राजा राधिकारमण ने ग्राम-जीवन पर बहुत कुछ लिखा है, पर पाच रूपये के गुड से शादी करनेवाले तथा फीस जमा न कर सकने के कारण वर्षों तक बी० ए की डिग्री प्राप्त करने में असमर्थ प्रेमचन्द के दृष्टिकोण और राजा साहब के दृष्टिकोण में बडा फर्क है।

ग्राम-जीवन पर उपन्यास लिखने की परम्परा को बिहार के ही एक लेखक श्री नागार्जुन ने 'बलचनमा' नामक उपन्यास लिखकर आगे बढाया है। ग्रामीणो के साथ सहानुभूति में उनकी समस्याओ के सम्बन्ध में अपनी दृष्टि में साथ ही कलामय चित्रण में वे प्रेमचन्द से सचमुच आगे बढ गये हैं, ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। इस उपन्यास में दरभगा जिले का चित्र है, और वह १९३७ तक समाप्त हो जाता है। लेखक ने खडी बोली में वही के शब्दो को यत्रतत्र लाकर एक ऐसा स्थानीय रग पैदा कर दिया है, जो न केवल गुदगुदी उत्पन्न करता है, बल्कि गाव के जीवन का एक सजीव चित्र उपस्थित कर देता है। सामन्तवाद का इनसेक्शन दिखाने के साथ-ही-साथ काग्रेस ने किस प्रकार इसको तोडने में तथा उसे बचाने में किस प्रकार का काम किया है, इस द्वन्द्ववादी चित्र को लेखक ने व्याख्यानोसे नही, बल्कि अपनी कहानीसे स्पष्ट किया है। पुस्तक को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि इसके कई भाग निकलेंगे। यह दु ख की बात है कि आर्थिक कठिनाइयों के कारण बिहार के इस परम प्रतिभावान लेखक को अपनी कलाकृतिया तैयार करने के लिए समय नही मिल रहा है, और ऐसे कामो में समय व्यतीत करना पड रहा है, जो शायद उनकी प्रकृति के अनुकूल नही है, और साहित्य की दृष्टि से कोई महत्त्व नही रखता। स्मरण रहे कि यहा हम नागार्जुन के विचारो के लिये नही, बल्कि उनकी कला के लिए उनकी सराहना कर रहे हैं। साहित्य में विचार बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, पर यदि विचार कला के जरिये से आ पाते हैं, तो वह साहित्य सार्थक होता है, नही तो वह दो कौडी का होता है। हम यह आशा करते हैं कि नागार्जुन मिथिला के ग्राम जीवन पर हमें और सुन्दर कृतिया प्रदान करेगा।

अब हम कविता के क्षेत्र में पदार्पण करते हैं, तो वहा हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि यद्यपि आधुनिक कवियो में से बहुतेरे गाव में पैदा हुए फिर भी उनमें से बहुत कम लोगो ने किसानों पर कविताए लिखी। श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बलीवर्द नाम से एक कविता में हमारी कृषि पद्धति के केन्द्र-स्थल बैल पर यह कविता लिखी है —

तुम्ही अन्नदाता भारत के सचमुच बैल महाराज,
बिना तुम्हारे हो जाते हम दाना-दाना को मुहताज।

उसी युग के केशव प्रसाद मिश्र ने किसान की पीडा के सम्बन्ध में लिखा —

जो करता था पेट काटकर सरकारी कर दान,
रहता था प्रस्तुत करने को अभ्यागत का मान।
नही हुआ था जिसे धैर्यवश कभी दुख का भान,
आज वही भूखो मरता है मातादीन किसान।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने "भारत भारती" में कृषि और कृषक पर कुछ छन्द लिखे। कृषको में फैले हुए आलस्य का दोष वे उनके शोषण पर मढते हैं।

करते नही कृषक परिश्रम और वे कैसे करें,
कर वृद्धि जब है साथ तब वे क्यो वृथा श्रम कर मरें।

वे आगे लिखते हैं —

बरसा रहा है रवि अनल भूतल तवा सा जल रहा,
है चल रहा सन-सन पवन तन से पसीना ढल रहा।
देखो कृषक शोणित सुखा कर हल तथापि चला रहे,
किस लोभ से इस आच में वे निज शरीर जला रहे।
मध्याह्न है, उनकी स्त्रिया ले रोटिया पहुची वहीं,
है रोटिया रूखी खबर है, शाक की हमको नही।
सतोष से खाकर उन्हें वे काम में फिर लग गये,
भर पेट भोजन पा गये तो भाग्य मानो जग गये।

मैथिलीशरण जी ने 'किसान' नाम से एक लघु काव्य भी लिखा है। श्री केशव प्रसाद मिश्र ने फरवरी १९१५ की सरस्वती में लिखा था—

एक दरिद्र कृषक है जिसने किया खेत में दिन भर काम,
किन्तु पेट भर रोटी मिलना, उसको है जय सीताराम।

गिरिवर शर्मा किसान को कर्मयोगी रूप में देखते हुए कृषक 'कीर्तिगान' कविता में लिखते हैं —

है गीता का गूढ ज्ञान,
इस पर तू चलता सुजान।
गिरिवर जो जन हैं महान,
करते तेरा कीर्तिगान।

सनेही जी ने रवीन्द्र के एक प्रसिद्ध गीत का अनुवाद किया, जिसकी प्रथम दो पक्तिया यो हैं —

आखें खोल देख तू सम्मुख तेरा पूज्य वहां न,
वह है वहा जोतता धरणी जहा गरीब किसान। इत्यादि

पर किसानो के सम्बन्ध में उन दिनो सबसे अच्छा मैथिलीशरण जी ने ही लिखा —

पहला ही ऋण नहीं चुका है, रहटी बीज खवाई का,
कैसे चुके लगा है झगडा सबके साथ सवाई का।
खेती में क्या सार रहा अब कर देकर जो बचता है,
कडे ब्याज के बडे पेट में सभी फलो में पचता है।
जमीन्दार ने कहा कि सुनलो कहते हैं हम साफ—
अबकी बार फसल फिर बिगडे या लगान हो माफ,
पर हम जिम्मेदार नही है छोडेंगे न छदाम।

हम आगे कृषक सम्बन्धी कुछ कविताए उद्धृत करते हैं। श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने १९३९ के लगभग लिखा —

युग-युग का वह भारवाह, आकटि नत मस्तक,
निखिल सभ्य ससार पीठ का उसके स्फोटक।
वज्र मूढ, जड भूत, हठी, वृष बाधव कर्षक,

ध्रुव, ममत्व की मूर्त्ति, रूढियों का चिर रक्षक ।
कर-जर्जर, ऋण-ग्रस्त, स्वल्प पैत्रिक स्मृति भूधन,
निखिल दैन्य, दुर्भाग्य, दुरित, दुख का जो कारण,
वह कुबेर निधि उसे, स्वेद सिंचित उसके कण,
हर्ष-शोक की स्मृति के बीते जहा वर्ष क्षण !
विश्व विवर्तनशील, अपरिवर्तित वह निश्चल,
वही खेत, गृहद्वार, वही वृष, हसिया औ हल ।
स्थावर स्थितियो का शिशु स्थावर स्थाणु कृषीवल,
दीर्घसूत्र, अति दुराग्रही, सशक औ वृषल !
है पुनीत सपत्ति उसे दैवी निधि निश्चित,
सततिवत् गो वृषभ, गुल्म, तृण, तरु चिर परिचित ।
वह सकीर्ण, समूह-कृपण, स्वाश्रित, पर-पीडित,
अति निजस्व-प्रिय, शोषित, लुठित, दलित, क्षुधार्दित !
युग-युग से निसग स्वीय श्रमबल से जीवित,
विश्व-प्रगति-अनभिज्ञ, कूप तम में निज सीमित,
कृषक का उद्धार पुण्य इच्छा है कल्पित,
सामूहिक कृषि काय-कल्प, अन्यथा कृषक मृत ।

यदि देखा जाय तो पत जी की यह कविता किसी भी अर्थ में न तो मैथिली शरण जी की कविता से सुन्दर है, और न उनकी समस्याओ की गहराइयो में जाता है। शब्द जाल अधिक है, और किसानो की समस्याओ के सम्बन्ध में समझ बहुत थोडी। हा, अन्त में यह जो कहा है कि "कृषक का द्धार पुण्य इच्छा है कल्पित, सामूहिक कृषि कायकल्प, अन्यथा कृषक मृत", इन पक्तियों में यह बताया गया है कि किसानों का उद्धार सामूहिक खेती से ही होगा। मुझे तो इस कविता में कृषको के प्रति प्रेम का एक विन्दु भी दिखाई नही पडता, जैसा कि पहले उद्धृत कविताओ में दिखाई देता है। यह तो एक दिमागी कसरत-सी मालूम पडती है ।

प्रलयवीणा के कवि स्वर्गीय डाक्टर सुधीन्द्र की 'किसान' नामक कविता में वलिक अधिक ऐतिहासिक गहराई और किसानो के प्रति प्रेम दिखाई पडता है, पर इसमें किसान के शोषण को एक दिव्य रूप देकर उसके पिशाचत्व को उभरने नही दिया गया। कविता यो है।

तुम तपोपूत, तुम देवदूत ।
तुम अघातीत, तुम पुण्य प्राण ।
विभु वह तुममें अवतरित हुआ
लेकर अपना मानव महान ।

करते अपने श्रम-सीकर से
तुम ससृति-हित मधु का विधान
निज रक्ताहुति देकर जग को
तुम करा रहे पीयूष-पान

जग की वर्बरता को तुमने
पहनाया सस्कृति-सुपरिधान
तुम सस्य-सृष्टि-धाता किसान।
तुम आदि-अन्नदाता किसान।

पट से वितान निस्सीम तान
तुमने इस भव का किया त्राण
जग पर अपनी कर-छाया कर
तुम हुए स्वयम् छाया-समान

शिवि, दे-देकर अपना शरीर
तुम स्वयम् बने हो शीर्ण-क्षीण
जिससे न तुम्हें पहचान सकी
आत्मा जग की सकलुष-मलीन

लेकर आत्मा का अमृत-त्याग,
ले तप-मानवता का पराग,
शीशस्थ आग को वना फूल
खेला तुमने वलिदान-फाग

गोपाल ! तुम्हारे जीवन में
उतरा आकर विभु निर्विकार
जग पूत हुआ तुमसे पुनीत
ओ पुण्य सत्र के सूत्रधार !

हलधर ! तुमने शिर धरा अहो !
गुरुतम यह ससृति त्राण-भार
सस्कृति होती क्षुन्मग्न नग्न
तुम बिना आज धर्मावतार !

इस कविता में किसान को शस्य सृष्टि धाता आदि अन्नदाता, शिवि, गोपाल आदि कह कर किसान की मर्यादा बहुत अधिक बढा दी गई है, पर उसकी वर्त्तमान गिरी हुई अवस्था से उसका किसी प्रकार परित्राण हो सकता है या होना चाहिये, इसका कही जरा सा भी सकेत इस कविता में नही है। तपोपूत, देवदूत, अघातीत, पुण्यप्राण कहने से किसान की काल्पनिक मर्यादा में भले ही वृद्धि हो, पर इससे कुछ आता-जाता नही। इस दृष्टि से देखने पर सुमित्रानन्दन पत की 'कृषक' कविता अच्छी थी क्योकि उसमें अत्यन्त सूत्ररूप में ही सही सामूहिक कृषि कायाकल्प से किसान के उद्धार की वात कही गई है।

'ग्राम्या' (१९४०) में चलकर सुमित्रानन्दन पन्त ने कवि किसान नाम से एक कविता लिखी है, जिसमें कवि की तुलना किसान से करते हुए उससे नव मानवता का स्वर्णशस्य उगाने के लिए कहा गया है। यद्यपि सच पूछा जाय तो यह कविता कवि पर है न कि किसान पर, फिर भी इसमें किसान के प्रति जो सम्मान की भावना है, उसके कारण वह कविता इस प्रसग में उद्धृत करने योग्य है—

जोतो हे कवि, निज प्रतिभा के
फल से निष्ठुर मानव अन्तर,
चिर जीर्ण विगत की खाद डाल,
जन-भूमि वनाओ सम सुन्दर।
बोओ, फिर जन-मन में बोओ,
तुम ज्योति पख नव बीज अमर,
जग जीवन के अकुर हस-हस
भू को हरीतिमा से दें भर ।

पृथ्वी से खोद निराओ, कवि,
मिथ्या विश्वासों के तृण खर,
सीचो अमृतोपम वाणी की
धारा से मन, भव हो उर्वर !
नव मानवता का स्वर्ण-शस्य—
सौन्दर्य लवाओ जन-सुखकर,
तुम जग-गृहिणी, जीवन किसान,
जन हित भडार भरो निर्भर !

श्री गोपाल सिंह नेपाली ने 'जल रहा है गाव' शीर्षक से एक कविता लिखी है, जो बहुत ही सुन्दर है। यद्यपि इसमें किसान के उद्धार का न तो कोई सकेत है, और न इसमें भविष्य का कोई इगित है, फिर भी इसमें किसान की समस्या बडे ही कवित्वमय रूप से सामने आ जाती है। इस कविता में उदी, उदी, गैल, धरम-करम, दुन्द, उथला-उथला आदि शब्दो के कारण जो वातावरण बनता है,वह पत जी की 'कृषक' कविता में बिल्कुल बन नही पाता। पत की 'कृषक' कविता की भाषा बिल्कुल सस्कृत मूलक है, और उसमें गाव की सोधी-सोधी महक बिल्कुल आ नही पाती। पर 'जल रहा है गाव' कविता में यह बात नही है। वह कविता यो है—

झुरमुटो के पास में यह धुआ उठा है जो
जल रहा है गाव
जल रहा है गाव
उदी-उदी झोपडी सूनी-सूनी गैल
बाजरे के खेत में जुत रहे थे बैल
रोटियो के वास्ते पिल रहे किसान
खडी फसल की याद में खिल रहे किसान
पल कराल मेघ बन
लाल-लाल मेघ बन
चैत के आकाश में यह धुआ उठा है जो
जल रहा है गाव
जल रहा है गाव
यह किसी किसान की नही चिलम की आग
नही किसी फकीर के धरम-करम की आग
यह कही से आग की आई चिनगारिया
धधक रही है झोपडी, सुलग रही है क्यारिया
आज दुन्द बाधकर
बस्तिया बरबाद कर
पश्चिमी बतास में यह धुआ उठा है जो
जल रहा है गाव
जल रहा है गाव
उथला-उथला हो गया है गाव का कुआ
सारा पानी पी गया है आग का धुआ
ठोकरो के सामने लुढक रहे है ढोल
कोयला औ' राख में जिन्दगी का मोल
आखें लाल-लाल कर
आधियो की ताल पर
शान्ति के निवास में यह धुआ उठा है जो
जल रहा है गाव
जल रहा है गाव

न जाने इस कविता को पढकर रगभूमि का वह अन्तिम प्रसग क्यो याद आ जाता है, जिसमें पाडेपुर गाव के धू-धू करके जलने का वर्णन है।

नरेन्द्र ने पत के ही ढग पर 'कवि किसान' नाम से एक कविता लिखी है। कविता का नाम भी वही है पर मुख्य विचार एक होने पर भी कुछ अर्थो में यह कविता यथेष्ट मौलिकता लिये हुए है पर कविता को पढने से यह ज्ञात होता है कि यह बिना किसी अनुप्रेरणा के लिखी गई है। वह कविता यो है—

हम किसान है !
मनोभूमि में ज्योति बीज बोनेवाले हम
कवि किसान है ।
हम किसान हैं !
योद्धा को तलवार
श्रमिक को मिलती छेनी.
कृषकों को हल कवि को
मिली लेखनी पैनी !
कही शस्ययुत क्षेत्र
कही उद्ग्रीव दान है !
हम किसान है !
पगु न्याय बिन शक्ति
वस्तु बिन विश्व अविकसित !
पतित अहल्या-भूमि
गीत के बिना रिक्त चित !
जोतेंगे भव-तिमिर
ज्योति-जिह्वा समान है !
हम किसान है !

इस कविता में कही अधिक सहानुभूति उस कविता में पाई जाती है जो 'मिट्टी और फूल' शीर्षक से १९४२ में प्रकाशित हुई थी। "मिट्टी और फूल" नामक कविता किसान पर नही है, क्योकि सारी कविता मिट्टी की जबानी कहलाई गई है, फिर भी यह प्रासगिक है और मिट्टी के प्रेम से ओत-प्रोत है, जो कृषक जीवन की आत्मा है। वह कविता यो है—

वह कहती है, 'हे तृण-तरु-प्राणी
जितने, मेरे बेटा-बेटी' !
ऊपर नीला आकाश और
नीचे सोना-माटी लेटी ।
"मै सब कुछ सहती रहती हूं,
हो धूप-ताप वर्षा-पाला,
पर मेरे भीतर छिपी हुई

बिन बुझी एक भीषण ज्वाला ।
मैं मिट्टी हू, मैं सब कुछ
सहती रहती हू चुपचाप पडी,
हिम आतप में गल और सूख
पर नही आज तक गली-सडी ।
मैं मिट्टी हू, मेरे भीतर
सोना-रूपा, नौरतन भरे ।
मैं सूखी हू पर मुझसे ही
फल-फूल और वन-बाग हरे।
मैं पावो के नीचे, मैं ही हू
पर पर्वत पर की चोटी!
मेरी छाती पर शत पर्वत,
मैं मिट्टी हू सबसे छोटी ।
मैं मिट्टी हू, अधी मिट्टी,
पर मुकुल-फूल मेरी आखें ।
मैं मिट्टी हू—जड मिट्टी हूं,
पर पत्रो में मेरी पाखें ।
मैं मिट्टी हू—मैं वर्णहीन,
पर निकले मुझसे वर्ण सकल ।
मेरे रस से रजित-प्रसून
रजित नव अकुर, पल्लव-दल ।
मैं गन्धहीन, मुझसे करते
फल-फूल-मूल पर गध ग्रहण,
जलवायु व्योम जो गधरहित
करते वे किसकी गध वहन ?
मैं शव की शैया, मुझसे ही
उगते हैं नवजीवन-अंकुर,
नभ में कैसे खेती करता
सब जीवो में जो जीव चतुर ?
आती है मेरे पास खगी
दाने-दाने को चोंच खोल,
तिन दवा चटुल उड जाती वह
मेरे पेडो पर जो अबोल ।
मुझ से बनते हैं महल और
ये खडी मुझी पर मीनारें,
मैं करवट लेती—ढह जाते हैं
दुर्ग, चीन की दीवारें ।
हा, बुद्धिजीव, आदर्शमुग्ध
मानव भी मेरी ही कृति है,
पैगम्बर और सिकन्दर का
मुझसे श्रय है, मुझमें इति है ।
मेरे कन-कन पर उडगन भी
वारा करते हिमकन-मोती,
जिनकी सतरगी गोदी में
सिर धर सूरज किरणें सोती ।
मैं मर्त्यलोक की मिट्टी हू,
मैं सूर्यलोक का एक अश,
आती है जिस घर से किरणें
है मेरा भी तो वही वश ।

(२)

इतने में आया हस वसन्त,
मिट्टी को चूमा—खिला फूल ।
थल का बुलबुला फूल जैसे
हसता समीर में झूल-झूल ।
जिस मिट्टी से जीवन पाया,
वह उस मिट्टी को गया भूल,
थल का बुलबुला फूल जैसे
हसता समीर में झूल-झूल ।
देखा जो तारों को, सोचा—
मैं भी उड जाऊ बहुत दूर,
है जहा जल रहा नीलम के
मदिर में वह कर्पूर चूर ।'
तितली को देखा और कहा—
मुझको दे दो, दो चटुल पख,
मैना आई तो उससे भी
उडने को मागे चटुल पख ।
फिर आ निकली वन की चिडिया
तिनके चुगने, चुग्गा लेने
'ले चलो मुझे भी उडा कही'
यों भूल लगा उससे कहने ।
चिडिया की चोच वसन्ती थी,
था फूल गुलाबी रग भरा,
बस पल में दीखा चिडिया के
मुह में वह डठल हरा-भरा ।
ऊपर था नीला आसमान,
दीखी नीचे सोना धरती,
थल का बुलबुला फूल, टूटा !
पर मिट्टी इसमें क्या करती ?
आ गिरा धरा पर फूल, मिला
मिट्टी में, छिन में हुआ धूल !
जिस मिट्टी से जीवन पाया,
था उस मिट्टी को गया भूल ।
मिट्टी कहती—"मैं सब कुछ
सहती रहती हू चुपचाप पडी,
हिम आतप में गल और सूख
पर नही आज तक गली-सडी ।"

कवि मिलिन्द ने 'धरती की पुकार' नाम से एक बहुत अच्छी कविता लिखी है। कविता की दृष्टि से यह कविता उसी श्रेणी में आती है, जिसमें गोपाल सिंह नेपाली की कविता रखी गई, यानी इसमें वातावरण का सृजन बहुत सुन्दर रूप से हुआ है। साथ ही धरती के प्रति अपरिमित बल्कि अपरिमेय प्रेम दृष्टिगोचर होता है। कविता यो है—

केवल सहृदय सुन पाते हैं
धरती के अन्तर की पुकार।

जिसके प्राणो में पलता है
ज्वालागिरि का उत्ताप प्रखर,
पर, जग को देती रहती है
जो शीतल सरिता, सर, निर्झर,
उठती है जिसके कण-कण से
क्षण-क्षण जीवन-रस की फुहार
केवल सहृदय सुन पाते हैं
धरती के अन्तर की पुकार।

संस्कृति का प्रहरी तपोनिष्ठ
हिमगिरि विकास जिस रजकण का,
वह लघु कण है वात्सल्यपात्र
शिशु, मानो, जिसके आंगन का,
मातृत्व-प्रेरणा नारी की
जिसकी अनन्त है स्नेहधार।
केवल सहृदय सुन पाते हैं
धरती के अन्तर की पुकार।

उत्सर्ग सिखाया नारी को,
है प्रेम पुरुष को सिखलाया,
उनके जीवनपथ पर जिसने
संचित श्री-सौरभ बिखराया
दे दिया खुले हाथों अपना
नन्दन वन करने को विहार।
केवल सहृदय सुन पाते हैं
धरती के अन्तर की पुकार।

जिसकी पुकार है शान्ति, क्षमा,
करुणा, मानवता, ममता की
जिसकी पुकार है त्याग, न्याय,
शुचिता, उदारता, समता की,
उस पृथ्वी का स्वर सुनने को
अनुभूति चाहिये निर्विकार।
केवल सहृदय सुन पाते हैं
धरती के अन्तर की पुकार।

आकाश शून्य है, सूर्य आग,
विस्तार मात्र, खारा सागर
पर चित्र विचित्र और गतिमय
पृथ्वी सुन्दरता की आकर।
है मौन गीत इसका, इसके
कण-कण में है अक्षय दुलार।
केवल सहृदय सुन पाते हैं
धरती के अन्तर की पुकार।

वज्राहत, भूकम्पादोलित
होकर भी अविचल रहती है,
पहुंचाती क्षति न किसी को भी
सबके प्रहार यह सहती है।
तप करती है, रस देती है,
है सृजन-शक्ति इसकी अपार।
केवल सहृदय सुन पाते हैं
धरती के अन्तर की पुकार।

जिस दिन इसने आरम्भ किया
इस जग पर स्नेह लुटाना है,
उस दिन से केवल देना ही
इस तपस्विनी ने जाना है।
प्रतिदान प्रेम का इसने कब
किससे है मागा कर पसार?
केवल सहृदय सुन पाते हैं
धरती के अन्तर की पुकार।

जो केवल लेता रहता है
जो अस्थिर स्वार्थी और मुखर,
जो बिना साधना मिलता है
मानव को जीवन के पथ पर
आदर्श नहीं वह वसुधा का,
यह इसके उसका नहीं प्यार।
केवल सहृदय सुन पाते हैं
धरती के अन्तर की पुकार।

इस लेख में हमने किसान सम्बन्धी कुछ ही साहित्य का उल्लेख किया है। यह दावा नहीं किया जा सकता कि सबका उल्लेख कर ही दिया गया, ऐसी बात नहीं, पर सभी ढंग का कुछ प्रतिनिधित्व आ गया, इसमें सन्देह नहीं।
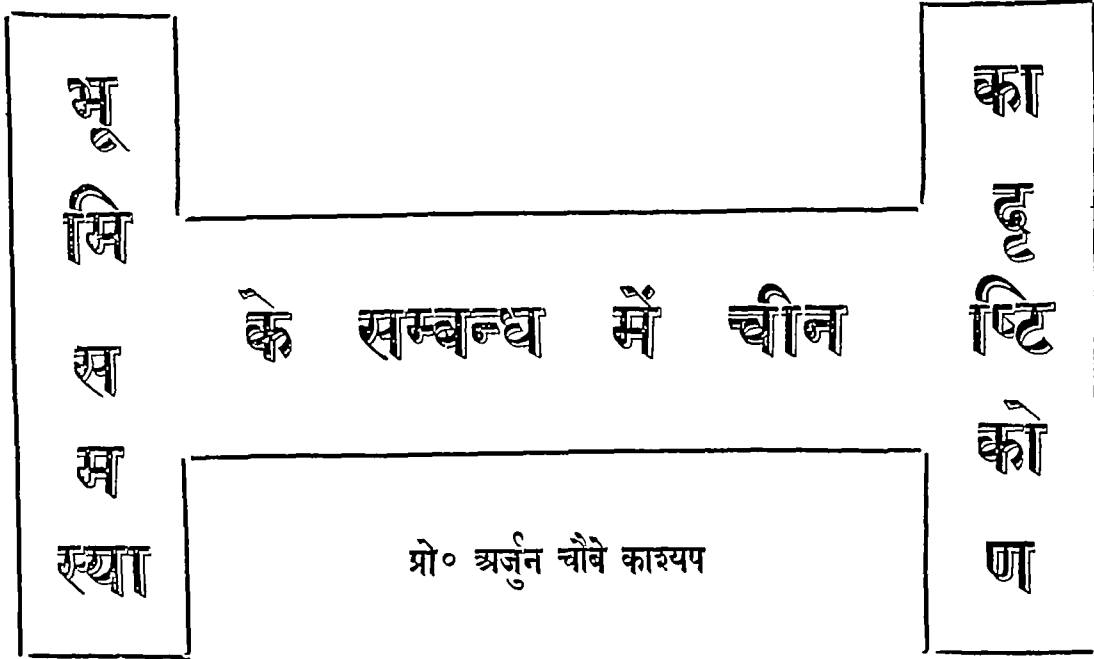
"नया चीन" अर्वाचीन साम्यवाद की सुखद प्रवृत्तियो से प्रचालित एव व्यवहार द्वारा स्थापित प्रक्रियाओ एव योजनाओ का एक ज्वलन्त उदाहरण है। अपने गत आठ वर्षों में उसने युगो से प्रताडित एव विषम रूढियो से कराहती सामान्य जनता को जिस आर्थिक स्तर पर उठा दिया है वह उसकी सफल योजनाओ तथा पुनर्निर्माण के सकेतो का उज्जवल प्रतीक है। माओ-त्सेतुग की अध्यक्षता एव उनके व्यावहारिक दृष्टिकोण से अनुप्राणित हो नये चीन के नियामको ने राष्ट्रीय योजनाओ को इतनी व्यापकता दी जिसे देख लोग दातो तले उगली दबा रहे हैं।

आज का चीन, जिसे "नया चीन" की उपाधि से विभूषित किया जाता है, युगोसे चली आती हुई गर्हित समाज-नीति, धर्म-नीति, अर्थ-नीति, राजनीति तथा अन्य विषमतापूर्ण एव घृणित जीवन यापन की नीतियो तथा रूढियो को दूर फेंक चुका है और इस प्रकार उसने परम्परा से चले आये हुए समाज-शोषण एव जन-जन के दोहन को कुप्रवृत्तियो से सचालित विषमताओ तथा विभेदो को उत्पाटित कर आश्चर्य में डालनेवाली यथार्थ-वादी परम्पराओ का निर्माण किया है। निस्सन्देह, "नया चीन" सुधारो एव योजनाओ के क्षेत्र में नए रूस को छोड विश्व के अन्य राष्ट्रो से आगे है। इस लेख में हम भूमि समस्या से सम्बन्ध रखनेवाले चीनी दृष्टिकोण का पर्यवेक्षण करेंगे और इसके सभी पहलुओ पर वैज्ञानिक एव अनुभूतिजन्य प्रयोगो का लेखाजोखा उपस्थित कर नवीन भारत के समक्ष ऐसे उदाहरण रखेंगे, जिनसे हम भी, यदि सम्भव हो सके तो, तदनुरूप लाभ उठा सकें।

२ "नया चीन" पुनर्निर्माण के पुनीत पथ पर शीघ्रतम गति से अग्रसर हो रहा है। वहा की सर्वतोमुखी उन्नति, सचमुच, हमें चकित करने वाली है। हम जिस क्षेत्र और जिस विषय का भी अध्ययन करने की ओर मुडते हैं तो ऐसा लगता है, मानो चीन की सारी शक्ति उसी क्षेत्र या विषय के सुधार और उन्नति की ओर लगी हुई है। परन्तु वास्तविकता इससे सर्वथा भिन्न है, और यह वह है कि आज चीन हर क्षेत्र में हर विषय की ओर तूफानी गति से सुधार, उन्नति और प्रगति के लिये जुटा हुआ है। चीनी सरकार, चीनी नेता, चीन के कार्यकर्त्ता और थोडी भी समझदारी तथा विवेक-बुद्धि रखनेवाला एक-एक चीनी आज अपना सबसे पहला और सबसे बडा कर्तव्य राष्ट्रनिर्माण के कार्य में पूरा योग देना और उसके लिए अपनी सारी शक्ति लगा देना मानता है। आज वहा के विवेकशील व्यक्ति अपने व्यक्तिगत लाभ एव हानि की अपेक्षा देशके लाभ एव हानि की बात अधिक सोचते हैं और इस सिद्धान्त को सामने रख कर ही सारा काम करते हैं। 'माओ के चीन में' के लेखक श्री देवव्रत के ये शब्द "नया चीन" के पुनर्निर्माण की मनोवैज्ञानिकता के द्योतक है। वास्तव में, चीनी, समष्टिवादी एव राष्ट्रवादी हो गए है। राष्ट्रहित के सामने व्यक्तिगत स्वार्थों को तिलाजलि देते जा रहे हैं।" समस्त चीन की मुक्ति और स्वराज्य स्थापना के बाद वे आज भी राष्ट्र निर्माण के लिये अधिक-से-अधिक त्याग और बलिदान करके अधिक-से-अधिक सेवा और परिश्रम करके आदर्शरूप में अपना आचरण और अपना कार्य देश और समाज के सामने रखते है। यह है साराश श्री देवव्रत के उन प्रत्यक्ष अनुभवो का जिन्हें

उन्होंने चीन में घूम-घूम कर प्राप्त किया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि नया चीन अपने पुनर्निर्माण की योजनाओं को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए प्राण-पण से लगा हुआ है और अपनी सम्पूर्ण शक्ति, बुद्धि एवं विवेक, गलित पुरातन रूढ़ियों को नष्ट करने तथा स्वस्थ समाजनीति, अर्थनीति के प्रतिष्ठापन में लगा रहा है। उसकी बलशाली योजनाओं में एक अन्यतम योजना थी भूमि-समस्या का समाधान। इस समाधान को हृदयगम करने के पूर्व हमें, बहुत ही सक्षेप में, साम्यवादी दृष्टिकोण पर ध्यान देना होगा, क्योंकि "नया चीन" के प्रमुख नियामक एवं विधायक मार्क्सोत्सेतुग साम्यवादी हैं। यद्यपि "नया चीन" बहुत सी बातों में नये मार्गों का निर्माता कहा जाता है किन्तु मौलिक रूप से उसकी योजनाओं की प्रतिष्ठा मार्क्सवादी एवं साम्यवादी आधारों पर आश्रित है।

(३) मार्क्सवाद मानवी रचनात्मक एवं उत्पादन क्रिया को सर्वोच्च मौलिक व्यावहारिक क्रिया मानता है और उसे सभी प्रकार की क्रियाओं का निर्धारक समझता है। मानव अपनी सचेतता या जानकारी में भौतिक उत्पादन की क्रिया पर आधारित होता है। क्रमश प्रकृति के तत्वों को, उसकी विशिष्टताओं को, उसके नियमों को तथा मानव एवं प्रकृति के सम्बन्ध को समझता है और उत्पादन एवं रचनात्मक क्रिया के द्वारा वह क्रमश पारस्परिक मानवी सम्बन्धों के विषय में तदनुकूल मात्रा में ज्ञान ग्रहण करता है। उत्पादन क्रिया से दूर हो इस प्रकार का ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता। वर्गहीन समाज में प्रत्येक व्यक्ति समाज की सदस्यता के साथ-साथ अन्य सदस्यों से सहयोग करता है, उनके साथ उत्पादन सम्बन्ध स्थापित करता है और भौतिक समस्या के समाधान के लिए उत्पादन क्रिया में सलग्न होता है। मार्क्सवाद की यह धारणा है कि मानव समाज में उत्पादन क्रिया निम्नतर स्तर से उच्चतर स्तर की ओर क्रमश उभरती है और परिणामत समाज एवं प्रकृति सम्बन्धी मानव-ज्ञान निम्नतर स्तर से उच्चतर स्तर की ओर क्रमश उन्मुख होता है, अर्थात् छिछले स्तर से गम्भीर स्तर की ओर तथा व्यष्टि से समष्टि की ओर। युगों तक मानव समाज इतिहास को विचित्र ढग से पढता आया है, उसने शोषक वर्गों की एकपक्षीय धारणाओं में ही विश्वास किया है और फलत समाज का इतिहास विकृत रूप में ही उपस्थित हो सका है। आज जब अर्वाचीन मजदूर-किसान या सर्वहारा अपने विशाल उत्पादन को लेकर उपस्थित हुआ तभी मानव ने सर्वांगीण रूप से मानव-समाज के विकास का ज्ञान प्राप्त किया।

बहुत ही सक्षेप में हमने मार्क्सवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया, किन्तु इस लेख की भूमिका के रूप में इतना ही पर्याप्त है। "नया चीन" की राष्ट्रीय योजनाएँ मार्क्सवादी दृष्टिकोणों पर ही आधारित है।

(४) प्राचीन चीन अर्द्ध-सामन्ती एवं अर्द्ध-औपनिवेशिक देश था। सामन्ती शासकों, देशीय शोषकों तथा विदेशी साम्राज्यवादी आक्रमकों की अनगिनत पीढ़ियों ने निर्मम व्यवहारों, शोषण एवं लोमहर्षक अत्याचारों से चीनी जनता को पीस डाला था। चीनी जनता अपने अधिकारों से पूर्णरूपेण वचित थी और उसे अधकार एवं अभाव के गर्त में रखा गया था। वह दारिद्रय एवं परतन्त्रता की बेड़ियों में युगों से त्राहि-त्राहि कर रही थी। किन्तु "चीनी जनता के स्वातन्त्र्य युद्ध" तथा "जनक्रान्ति" की विजयों ने सामन्त प्रथा, साम्राज्यवाद एवं नौकरशाही, पूंजीवाद के शासन को सदा के लिए मिटा दिया है। "नया चीन" ने जन्म लिया है। चीन के लम्बे इतिहास में प्रथम बार स्वस्थ, शान्तिप्रिय एवं समृद्धिशाली जीवन के वातायन खुले हैं। लगभग तीन दशकों तक चीनी जनता ने साम्यवादी दल की अध्यक्षता में बड़ा धैर्य एवं हठवादिता के साथ शत्रुओं से लोहा लिया। जनता की मुक्ति सेना ने जन-क्रान्ति की सफलता के साथ साम्राज्यवादी, सामन्तवादी एवं नौकरशाही पूजीवादी शासक का अन्त किया। इस प्रकार जनक्रान्ति सफल हुई और तत्पश्चात साम्यवादी दृष्टिकोणों के आधार पर जन-जन के कल्याण के लिए योजनायें बननी आरम्भ हो गयी। जन-क्रान्ति से ही भूमि-समस्या का समुचित समाधान हो सका।

(५) "नया चीन" जन-क्रान्ति के उपरान्त ही भूमि-समस्या के समाधान में सलग्न हो गया। सामन्ती शोषण के अन्त के लिए एक बड़े सैद्धान्तिक युद्ध की अनिवार्यता स्पष्ट हो गयी और साम्यवादी दृष्टिकोण से ही भूमि-समस्या का समाधान किया गया। "नव कृषक दल" ने एक सम्मिलित मोर्चा स्थापित किया। सामन्त प्रथा से युद्ध लेना नवयुवक कृषक दल का ही कार्य था। फलत इस दल ने इस विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त की। युगों से चली आती हुई भूपति शक्ति अपरिमित थी। भूपतियों ने कृषकों को अपने दृढ़ पैरों के नीचे बड़ी निर्दयतापूर्वक दबा रखा था। नवयुवकों को ही इस विषय में उभारा गया और उन्होंने "मिया का जूता मिया का सर" वाली कहावत चरितार्थ की। कृषकों के दल स्थापित किए गए। "जब तक कृषक स्वतन्त्र नहीं होंगे तबतक नया चीन का निर्माण नहीं हो सकता" का नारा बुलन्द किया गया और चीनी क्रान्ति की यही प्रमुख समस्या मानी गयी। आज चीनी क्रान्ति इस विषय में विजयोल्लास से मत्त है। यह समस्या एक लोकसत्तात्मक आन्दोलन के रूप में ली गयी और भूमि-सुधार के रूप में परिणत हो गयी। चीन के वर्तमान इतिहास में यह एक सर्वोच्च आन्दोलन माना जाता है। इसके द्वारा करोड़ो-करोड़ कृषकों को स्वतंत्रता मिली और मिला उन्हें नया जीवन और नया उन्नयन-उत्स।

(६) चीन की जनसख्या लगभग ५० करोड़ है। इसका क्षेत्रफल ९५ लाख ९७ वर्ग किलोमीटर है, जो यूरोप के पूरे क्षेत्रफल से भी अधिक है। जनक्रान्ति के पूर्व केवल १० प्रतिशत चीनियों के पास, जिनमें मुट्ठी भर भूपति एवं धनी कृषक थे, लगभग ८०—९० प्रतिशत भूमि थी। जन सकुल चीन में इसका तात्पर्य यह था कि करोड़ो कृषक निस्सहाय थे, वे या तो कट्ठे-दो कट्ठे भूमि खन्डों पर जीवित थे या उनके पास कुछ भी भूमि नहीं थी, वे या तो भूपतियों के ऋणी थे या 'महाजनों' के वश में थे। भूपतियों की शक्ति विशाल थी, वे बेगारी लेते थे और अपनी कोठी में ऋणी कृषकों को बदी बनाके रखते थे और ग्रामीणों के जीवन-मरण के नियामक थे कृषकों से भूमि छीनने के लिए जमीन्दार उन्हें मार डालते थे अथवा उनकी असहाय अवस्था से लाभ उठा उनकी जमीनें छीन लेते थे। इस कुत्सित एवं अमानुषिक भूमि-प्रणाली के विरुद्ध चीन के साम्यवादी दल ने सघर्ष लेना आरम्भ कर दिया। इस दल ने जनता की सामूहिक शक्ति को उकसाया और उसे भूपतियों की शक्ति को तोड़ने एवं सामन्ती भूमि-व्यवस्था को नष्ट करने के लिए भरपूर उभाड़ा। "खेतिहर को भूमि मिले" का तुमुलोद्घोष किया गया। कृषकों को

प्रथम वर्ष में निर्धारित उपज का ही उपर्युक्त प्रतिशत देना पडता है। मुक्ति मिलने के पूर्व किसानों को अपनी उपज का लगभग ७० प्रतिशत गल्ला जमीन्दारों को दे देना पडता था। क्या पूछना था, भारत के जमीन्दारों की भाति चीनी सामन्तो, जमीन्दारों और बडे किसानों के घरो और बाजारो में लाखों मन अन्न चला जाता था। आज स्थिति बिल्कुल पलट गयी है। सारा-का-सारा अनाज किसानों के घरो में रह जाता है। आज भूमि किसानों की अपनी है। अत भरपूर परिश्रम करके वे उपज बढाते जा रहे हैं।

आज चीन ससार का सबसे अधिक अनाज उत्पन्न करनेवाला देश है। गत वर्ष यहा कुल १६३,७५०,००० टन अनाज उत्पन्न किया गया। चावल की वार्षिक उपज यहा ५ करोड से ६ करोड टन तक है, अर्थात् विश्व का एक तिहाई से भी अधिक चावल वही उत्पन्न होता है। गेहू उत्पन्न करनेवाले देशो में इसका तीसरा स्यान है और विश्व की आधी घरी और ज्वार भी यही उत्पन्न होता है। किन्तु इतना होते हुए भी, १७२१ से १९४९ तक इसे अपनी आवश्यकताए प्रतिवर्ष बाहर से अन्न मगाकर पूरी करनी पडती थी।

केन्द्रीय लोक सरकार ने अपनी पूरी शक्ति को पुन सुव्यवस्थित एव विकसित करने में तया अनाज की उपज बढाने में लगायी है। भूमि सुधार, परस्पर सहायता और कृषि सहकारिता का विकास, विशाल जल सुरक्षा योजनाए, भारी-भारी ऋण तथा लोक सरकार से सीधी किसानो को दे दी गयीं। अन्य सहायताए आदि से अनाज की उपज बहुत बढ़ गयी है।

भूमि सुधार ने लगभग ४० करोड से भी अधिक किसानो का उद्धार किया और उन्हें कृषि में एक बहुत ही क्रियात्मक और प्रभावशाली भूमिका अदा करने का अवसर दिया। इससे वह ३ करोड टन अनाज भी उनके पास ही बचा रह गया जो पहले वार्षिक लगान के रूप में बन्द हो जाता था। पुराने समय में उसका अधिकतर भाग सट्टेबाजी के काम आता था। भूमि सुधार के पश्चात् आज किसानो के पास न केवल अपनी आवश्यकताओं के योग्य अनाज है, बल्कि उससे कही अधिक है। वे उसे नकद दामों पर बेच सकते है और उस रकम से अपने खेतो की काफी उन्नति कर सकते हैं।

चीन अपनी खाद्य समस्या को आखिरी तौर पर और निश्चित रूप से समाधान दे देगा। वह पूरे विश्वास के साथ उस दिशा की ओर बराबर आगे बढ रहा है। इसके लिए वह आज भूमि-सुधार, परस्पर सहायता और सहकारिता का विकास, खेती के नवीनतम तरीको का उपयोग, मशीनों द्वारा खेती और उसके लिए आवश्यक औद्योगीकरण तया नए सिरे से सोच-समझकर योजनानुसार बटवारा आदि तरीको को अपना रहा है। ये वे तरीके है जिनका विकास सोवियत सघ के सफल अनुभवों के आधार पर हुआ है।

(१०) "नय चीन" सैद्धान्तिक रूप से साम्यवादी दृष्टिकोण रखता है, किन्तु अपनी समस्याओ के समाधान में वह लकीर का फकीर नहीं है। समयानुसार व्यवस्था तया पुन उसका परिवर्तन जन-कल्याण की दृष्टि में रखकर किया जाता है। चीनी सरकार और साम्यवादी दल ने यह समझा कि व्यक्तिगत छोटी खेती से उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयों पर अधिकार पा लेने के लिए, जिससे कि उद्योगों के शीघ्रगामी विकास के लिये कच्चा माल मिल सके और किसानों की आमदनी या क्रय-शक्ति में बढती हो, जिससे औद्योगिक माल की खपत के लिए आन्तरिक बाजार का विकास और प्रसार हो, किसानो में "सगठित हो" का सिद्धान्त कार्यान्वित किया जाय। अत "सगठित हो" के सिद्धान्त को खूब बढावा दिया गया और किसानों को परस्पर लाभ के आधार पर सहकारिता या परस्पर सहायता के लिए प्रोत्साहित किया गया। वर्तमान स्थिति में इसका अर्थ है निजी सम्पत्ति के आधार पर सहकारिता और सहयोगी-श्रम जो कालान्तर में सामूहिक तया समाजवादी खेती का रूप पकड लेगा।

(११) ऊपर के प्रकरणो में हमने देखा कि चीन के साम्यवादी दल के अध्यक्ष तथा महान नेता माओ त्से-तुग के नेतृत्व में चीन के किसानों ने भूमि समस्या का समाधान कर लिया और सामन्त प्रथा का पूर्णत: विनाश कर दिया है। इस सफलता के आधार पर उन्होंने अपने नेताओं की पुकार पर कृषि उत्पादन के विकास के लिए तया भूमि समस्या के वास्तविक समाधान के लिए तीन प्रकार की सहकारिता के आन्दोलन का सहारा लिया है। (१) प्रथम प्रकार की सहकारिता का स्वरूप है एक सीधी-सादी अस्थायी मौसमी परस्पर सहायता दल की योजना, (२) द्वितीय प्रकार की सहकारिता वर्ष भर चलनेवाले सहायता दलों की योजना तया (३) तृतीय और सबसे अधिक विकसित सहकारिता का स्वरूप है कृषि उत्पादकों की सहकारी सस्थाओ की योजना।

परस्पर सहायता तया सहकारिता का आन्दोलन सर्वप्रथम सन् १९४६ ई० में उत्तरी चीन में आरम्भ हुआ। परस्पर लाभ के लिए निजी सिद्धान्त के आधार पर इस प्रकार की योजनाए बनायी गयी। भूमि के निजी स्वत्व के आधार पर मिलजुल कर पारस्परिक सहयोग से श्रमदान की क्रिया ही इस प्रकार के आन्दोलन के मूल में है। इस प्रकार की योजनाओ का स्वरूप, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, त्रिधा है। प्रथम कोटि में मौसिमी परस्पर सहायता दल आते है। जुताई-बुनाई या कटाई के समय आपस में दल बनाकर एक दूसरे के काम में सहायता का यह ढग सहकारिता की प्रथम मजिल है। एक पडोसी के सहायतार्थ अन्य पडोसी कुछ दिनों तक काम करते हैं और बाद को वह पडोसी अन्य पडोसियों की सहायता करता है। इस योजना से सबका काम चल जाता है और सहकारिता का मूल्याकन भी हो जाता है। इससे श्रमदान का मूल्य एक तिहाई और बढ जाता है।

द्वितीय कोटि में वर्ष भर चलनेवाले सहकारी दल आ जाते है। इन दलो की सदस्यता स्थायी होती है। सभी सदस्य वर्ष भर एक दूसरे की सहायता के लिए सन्नद्ध रहते है। श्रम विभाजन से श्रम की योग्यता बढ़ जाती है। कुछ सदस्य अन्य काम करके सदस्यो की कमायी बढ़ा देते है। कुछ सदस्य इस प्रकार बाहरी धन कमा कर कृषि-यन्त्र तथा अकाल के समय के लिए पशु आदि खरीद लेते है और इस प्रकार आर्थिक सहकारिता का रूप निर्धारित करते जाते है। व्यक्तिगत कृषि से परस्पर सहयोग दल की योजना कही बढकर उपादेय होती है। इससे उत्पादन बढ जाता है और कृषको की रहन-सहन का माप दंड बढ़ जाता है।

तृतीय कोटि है कृषि उत्पादको की सहकारी सस्थाओ की जो सहकारिता आन्दोलन का सबसे विकसित स्वरूप है। इसमें कृषक अपनी भूमि को हिस्सो के रूप में देकर सहकारी सस्थाओ में सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार इसका नाम है कृषि सहकारी समितिया। कृषि के साथ-ही-साथ अन्य धन्धो का विकास, एक सीमा तक योजना बना कर उत्पादन में उन्नति, श्रम-विभाजन और कुछ उन्नत कृषि यन्त्रो, पशुओ या अन्य सम्पत्ति की सम्मिलित मिल्कियत आदि कुछ कृषि सहकारी समितियों की विशिष्टताए हैं। इसके अतिरिक्त मजदूरी या वेतन काम किये गये दिनों के हिसाब से दिया जाता है और मेहनत के अनुसार बोनस दिया जाता है। चीन के समाज शास्त्री इन विशेषताओ और खासकर सम्पत्ति के सामूहिक स्वामित्व में समाजवादी तत्त्व देखते हैं। अब हम नीचे भूमि समस्या के समाधान के निमित्त उत्पन्न भूमि सुधार एव तज्जन्य योजनाओ के लाभो पर सक्षेप में दृष्टिपात करेंगे।

(१२) परस्पर सहायता तथा सहकारिता के आन्दोलन ने कृषि उत्पादन तथा देहाती जीवन पर बडे ही क्रान्तिकारी प्रभाव डाले हैं। इन प्रभावो को हम तीन विशिष्ट प्रभावो में बाट सकते हैं। प्रथम विशिष्ट प्रभाव है कृषि उत्पादन तथा कृषको की कमायी में बढती। सन् १९५२ में उत्तरी चीपू के सगठित कृषको ने कृषि उत्पादन की बढती, कृषि यत्रो के सग्रह, जोतने की प्रक्रिया में सुधार, कृषि सम्पत्ति के निर्माण तथा प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा के लिए विस्तार के साथ सक्रियता प्रदर्शित की। इसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन बडी तेजी से बढा, जैसा कि हमने प्रकरण ९ में देख लिया है। अनुभवो से यह व्यक्त हो गया है कि परस्पर सहयोग एव सहायता दलों तथा सहकारिता से उत्पादन की शक्ति कई गुनी बढ़ जाती है।

दूसरा शक्तिशाली विशिष्ट प्रभाव है गरीबी का दूर हो जाना तथा दिवालियापन का अभाव। जब से भूमि सुधार हुआ है शोषण का कहीं भी कोई चिह्न दृष्टिगोचर नही हुआ और न किसी प्रकार की बेगारी देखने में आयी। जिन भू भागो में अभी सहकारिता का आन्दोलन नही चल सका है, वहा की जनता सहकारिता से सुव्यवस्थित स्थानो की जनता से बहुत ही सुखी है। इससे स्पष्ट है कि केवल भूमि सुधार से भूमि समस्या का समाधान नही हो सकता, प्रत्युत, भूमि सुधार के पश्चात् सक्रिय सहकारी योजनाओ का प्रचलन अति आवश्यक है।

तीसरा विशिष्ट प्रभाव है कृषकों की विचारधारा में परिवर्त्तन। अब कृषको की जीवन-सम्बन्धी सुविधाओ से उनके जीवन-यापन के उपकरणो में परिवर्त्तन हो गया है। गावो में राजनीतिक, सास्कृतिक एव नैतिक जीवन का स्तर बहुत ऊचा हो गया है। पुस्तकालयों की स्थापना हुई है। पत्र-पत्रिकाओ का पठन-पाठन आरम्भ हो गया है। इस प्रकार सहकारिता आन्दोलन से देहाती जीवन से अज्ञानता का अन्धकार दूर होता जा रहा है।

सामाजिक चेतना बढती जा रही है। पहले आवश्यकता पड़ने पर एक कृषक अपने नातेदारो अथवा पडोसियो के सामने हाथ पसारता था किन्तु अब परस्पर सहायता के दलों एवं सहकारी सस्थाओं से सहायता लेना सरल हो गया है। नर-नारियो में श्रम सम्बन्धी किसी भी प्रकार का विभेद नही रह गया है। स्त्रियो का सामाजिक उन्नयन हो गया है। अब माओत्सेतुग के निम्न शब्द अक्षरश सत्य जचते हैं।

जब एक बार सगठन सम्पूर्ण कृषक मडल द्वारा आचरणजन्य मान्य लिया जायगा तो न केवल कृषि उत्पादन में बढती होगी, प्रत्युत कृषको के राजनीतिक जीवन का स्तर ऊचा उठ जायगा। तब वे अपने स्वास्थ्य की अधिक चिन्ता करेंगे। आवारागर्दी का नाश होगा और सदाचारो में नयी प्रवृत्तिया आएगी वास्तव में, भूमि-समस्या के समाधान का यही अन्तिम स्वरूप है।

(१३) भूमि समस्या के सम्बन्ध में चीनी दृष्टिकोण स्पष्ट हो गया। ऊपर के प्रकरणो में इस समस्या के समाधान के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश डाला गया है। अब हम कुछ सामान्य कठिनाइयो का उद्घाटन करते हैं। इस सिलसिले में हम यह भी देखेंगे कि "नया चीन" ने इन कठिनाइयो को किस प्रकार दूर किया।

भूमि सुधार के पश्चात परस्पर सहायता की योजना तथा सहकारिता के आन्दोलन के स्थापन में कई प्रकार की कठिनाइया थी और साथ-ही-साथ स्पष्ट है कि कृषको की वैयक्तिक सम्पत्ति की जो सामयिक स्वीकृति प्रदान की गयी वह कालान्तर में परिवर्त्तित होगी ही, किन्तु सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण के पूर्व व्यक्तिगत सम्पत्ति की स्वीकृति कई कारणो और कठिनाइयो को सामने रखकर हुई। चीन में जो भूमि समस्या का समाधान हुआ है तथा जिस प्रकार भूमि सुधार की योजनाए कार्यान्वित हुई हैं वे केवल सामन्ती प्रथा को दूर कर कृषक भूमि स्वामित्व के रूप में उपस्थित हैं। यह मान लिया गया है कि वर्त्तमान चीन की आर्थिक दशाओ में व्यक्तिगत छोटी-मोटी कृषक सम्पत्ति बहुत दिनो तक चलती रहेगी और यह भावात्मक रूप में ही उपस्थित रहेगी, किन्तु यह वास्तविक भूमि प्रबन्ध में एक प्रकार की कठिनाई के समान है। भूमि सुधार के पश्चात मध्य कोटि के कृषक अधिक सख्या में बढ गए अत उनके बीच एकता का स्थापन अनिवार्य हो गया। यदि सगठन में कृषक नही आते अथवा वे सहकारी समितियो के द्वारा कार्यशील नही होते तो यह सम्भव था कि अब भी कुछ बडे कृषक शोषण की प्रवृत्ति में सलग्न हो जाते। अत माओ-त्से-तुग के कथनानुसार सगठन में आना अत्यन्त आवश्यक हो गया। इसलिए सगठन की नीति को प्रसारित किया गया। इसके उपरान्त कृषिशैली को विकसित की गयी। किन्तु प्राचीन शैली से मोह रखनेवाले कृषको के समक्ष नयी शैली का विकास दुष्कर सा था, अत उन्हें कई प्रकार से शिक्षित किया गया। जब सर्व प्रथम कपास के बीज को गर्म पानी में डाल कर बोने, मक्के को अप्राकृतिक ढग से परागित करने तथा रासायनिक ढंग से बीज बढाने की शैली प्रसारित की गयी तो कृषको को यह सब अमान्य था। जब कुछ विशिष्ट कृषक सदस्यो ने नयी शैली से कृषि उत्पादन बढाया तो अन्य कृषक दल भी तैयार हो गए। इस प्रकार क्रमश भूमि समस्या को भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनी, परस्पर सहयोग, सहकारिता आन्दोलन तथा अन्य वैज्ञानिक, प्रक्रियाओं से हल किया गया।

आर्यों की ग्राम पंचायतें और उनकी चुनाव व्यवस्था

श्री प्रभाकर माचवे

प्राचीन भारतीय आर्य गणराज्यो में निम्न प्रकार से प्रातिनिधिक सस्थाए हुआ करती थी

क्रमांक	घटना	मिट्टी का हिस्सा	राज्य का नाम	राज प्रतिनिधि	प्रजा प्रतिनिधि
१	५ से १० इद्रिय	शरीर	स्वामी	आत्मा	बुद्धि
२	५ से १० शरीर	कुटुम्ब	गृह घर	गृहपति	गृहिणी
३	५ से १० कुटुव	कुल	वाटी वाडी	कुलपति	पुरएता
४	५ से १० कुल	पेठ जाति	खेट खेडा	ग्रामाधिप	ग्रामणी
५	५ से १० पेठ	गाव	ग्राम मडल	गोप	नेता
६	५ से १० गाव	शहर	नगर	नगराधिप	नगरप्रणिधि
७	५ से १० शहर	जिला	जनपद	समाहर्ता	माडलिक
८	५ से १० जिले	प्रान्त	राज्य	राजा	आमात्य
९	५ से १० प्रान्त	देश	महाराज्य	महाराजा	सभासद
१०	५ से १० देश	पृथ्वी	पारमेष्ठ्य	सावभौम	मत्री
११	५ से १० पृथ्वी गह	जगत्	स्वराज्य	प्रजापति	सावित्री
१२	५ से १० जगत्	सृष्टि या विश्व	वैराज्य	विष्णु पुरुष	प्रकृति

मानव देह से विराट् स्वरूपी परमेश्वर तक इस प्रकार का विभाजन था। सुविधानुसार राज प्रतिनिधि एक अकेला अधिकारी होता और प्रजा प्रतिनिधि एक या अनेक हो सकते थे। कार्य भेदानुसार प्रजाप्रतिनिधि अधिक हुआ करते थे। उनके सघो के नाम अलग-अलग हुआ करते थे।

			अगरेजी
१	कुल	एक आचार-विचार के लोगो का समूह	फैमिली
२	जाति	वश परपरा से एक पेशा करनेवालो का समूह	गिल्ड या कास्ट
३	वर्ग	एक व्यवसाय में लगे लोगो का समूह	क्लास
४	सघ	कार्य-विशेष के लिए की हुई एकता	यूनियन
५	समिति	खास काम करने के लिए चुनी हुई मडली	कमेटी
६	मडल	गाव-गाव घूमनेवाली समिति	बोर्ड या कमीशन
७	परिखद	साधारण विचार-विनिमय के लिए जुटी मडली	असेम्बली
८	सदस्य	एक विषय की चर्चा करनेवाली मडली	असोसियेशन
९	सभा	कार्याकार्य निश्चित करनेवाली मडली	काउन्सिल
१०	सत्र	सार्वदेशीय कानून बनानेवाली सस्था	काग्रेस

प्रतिनिधि के सामान्य लक्षण है, 'तदभ्भास्याद्। अप्रति सिद्धश्च'। इस सूत्र का स्पष्टीकरण प्रजापति स्मृति में इस प्रकार से किया गया है 'नियोजयस्य तुय कार्यं स्वात्मभावेन पश्यति।'' इसका अर्थ है जो व्यक्ति अपने को चुननेवाले आदमियो का काम अपना ही काम मानता है वह सच्चा प्रतिनिधि है। आजकल चुननेवाले और चुने गये एक ही सी योग्यता के होते है। यह बात तब नही मानी जाती थी। चुना गया व्यक्ति अधिक योग्यतावाला व्यक्ति अवश्य ही होता था। नियम-अधिनियम बनाने का काम श्रेष्ठ लोक प्रतिनिधियो के पास, उन्हें कार्य में उतारने का काम राज-प्रतिनिधियो के हाथ और राज्य कार्य के लिये आवश्यक पैसे मजूर करने का और देने का काम सामान्य जनता के हाथो में था। इस त्रैवर्णिक व्यवस्थामें कोई भी एक वर्ग सिर पर नही चढ़ सकता था और सबको यथोचित सुविधा मिलती थी।

मुख्य वात है सही आदमी का चुनाव। आदमी की योग्यता निश्चित करने के लिए प्राचीन ग्रन्थकारो ने ये नियम रखे थे

"वित्त ववु कर्मजाति विद्यावयासिमान्यानि। धर्मसूत्राणि अ० ६.
श्रुतनु सर्वेभ्यो गरीय। पदपेक्षस्तद्वृत्ति। धर्मसूत्राणि अ० ८
वित्त बवुर्वय कर्म विद्या भवति पचमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तर॥ मनुस्मृति २।१३६।
वयोववुश्च वित्तच विद्याधारण तथा।
-एतानि मान्यस्थानानानि गरीयो यद्यदुत्तर॥ भृगुसहिता

वय का अर्थ है जन्म के बाद बीती हुई आयु। वघु का अर्थ है मनुष्य की सहायता के लिए आनेवाला व्यक्ति। वित्त अधिकार में जो सपत्ति है उसे कहते है। विद्या उपलब्ध ज्ञान को कहते है और आचरण में आदतें शुमार होती है। इन पाच बातो पर आदमी की योग्यता अवलवित थी। और इनमें तारतमता है। आयु से जो बडप्पन मिलता है वह तो स्वाभाविक है, अत वह सबसे हलका है, उससे बडा वह है जो उच्च कुल का हो, उससे भी बडा वह है जो पैसेवाला हो। परन्तु पैसे से ज्यादा बडा विद्यावाला है, यह स्पष्ट है। अन्त में आचरण की श्रेष्ठता को सबसे बडी योग्यता माना गया है, यह बात ध्यान में रखने लायक है। इन पाच बातो की विस्तार में चर्चा यहा की जाती है।

आयुर्वेद के अनुसार "आषोडशाद्वृद्धि" है। कौटिल्य के अनुसार बारह वर्ष की लडकी और सोलह वर्ष का लडका सज्ञान माना जाता है। द्वादश वर्षा स्त्री प्राप्त व्यवहारा भवति। षोडशवर्ष पुमान्। षोडशाब्दा च या स्त्रोस्यात्पचविंशतिक पुमान्। वागभट्ट आदि अन्य शास्त्रकारो के अनुसार सोलह वर्ष की स्त्री और बीस वर्ष का लडका स्वतत्राचरण के योग्य माने गये है। मतदान की आयु-मर्यादा भी इसीके अनुसार रखी जाती थी। उपनयन में १६ से २४ तक वय सही माना जाता था, बाद में वह "व्रात्य" होने के लायक नही रहता था। ग्राम पचायत में १६ वर्ष और राजकीय कार्य में २४ वर्ष की वयोमर्यादा मतदान के लिए मानी जाय, ऐसा अलिखित नियम था।

किसी भी काम के करने के लिए प्रत्येक मनुष्य को कम-से-कम वधु आवश्यक थे, एक पुरस्कर्त्ता, एक अनुमन्ता। वधु का अर्थ था उस काम से बधा हुआ, जिसमें उसके हाथ गुथे है ऐसा सहायक। प्रत्येक मतदाता को कम-से-कम दो बन्धु थे, मा और बाप। काण्व स्मृति में कहा गया "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषोवेद।" इस स्मृति के अनुसार मा काम-पुरुषार्थ की गुरु, बाप अर्थ-पुरुषार्थ का गुरु और आचार्य धर्म-पुरुषार्थ का गुरू है। क्या खायें, क्या पियें, कितना उपयोग लें यह काम पुरुषार्थ के अन्दर आता है, यह मा सिखाती है। पैसा कमाने की अक्ल बाप सिखाता है इस प्रकार से जिसे अधिक बन्धु हो वह अधिक मान्य है, ऐसा माना जाता था।

वित्त के सम्बन्ध में हवा, पानी तो परमात्मा की देन थी। आज की तरह जल कर (वाटर टैक्स) और शुद्ध हवा के लिए भी उच्च वाटिका होना जरूरी नही था। अन्न, वस्त्र और गृह कष्ट से अर्जित करना पडता था। जिसे किसी भी चीज की अपेक्षा नही है ऐसा विरक्त अथवा पशुतुल्य मनुष्य मतदाता नही हो सकता था।

चतुर्थमायुषा भोग त्यक्त्वा सगान् परिव्रजेत्॥ मनुस्मृति ६।३३

७५ वर्ष की आयु के बाद सन्यास लेना आवश्यक था। ७५ वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्ति को मताधिकार भी नही था।

भृगुसहिता में पहले अध्याय में विद्या की परिभाषा इस प्रकार से दी गयी है।

शक्तोमूकोऽपि यत्कर्तुं कलासज्ञ तु तत्स्मृतं।
यद्यत्स्याद्वाचिक सम्यक्कर्म विद्येति सज्ञित॥

जो काम गूगा भी कर सकता है उसे कला या कारीगरी कहा जाय और जो काम अच्छी तरह से करने के बाद उसकी उत्पत्ति मुह से ठीक समझा दी जा सकती है उसे विद्या कहते है। कम-से-कम लिखना-पढ़ना आना मतदाता के लिए आवश्यक है। अथर्ववेद में प्राचीन राजाओ का उल्लेख है जो बडे अभिमान से कहते थे कि मेरे राज्य में विद्वान न हो ऐसा एक भी आदमी नही है।

न स्तेवो म जनपदे न कदर्यो न मद्यपी।
नाना हिताग्निनविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणीकुत॥

मतदाता अच्छे आचरणवाला होना चाहिये। मतदाता समाज विध्वसक, समाज के बधन न माननेवाला, समाजबहिष्कृत व्यक्ति नही हो सकता। समाज की सुव्यवस्था का निर्माण करनेवाले प्रतिनिधि चुनने का जिन्हे अधिकार हो वह व्यक्ति समाज द्वेषी हो ही नही सकता। इस प्रकार से मतदाताओ के वय, वधु, वित्त, विद्या, व्यवहार की चर्चा हो गई।

अब ग्राम पचायत के प्रतिनिधियो के बारे में भी वही पाच साधन देखें तो प्रतिनिधि होने के लिए तीस वर्षो से ऊपर वय होना चाहिये। आयुर्वेद में कहा गया है कि आपचविंशतेर्यौवन आचत्वारिंशत सपूर्णता। पच्चीस वर्ष तक मनुष्य का मन चचल और अस्थिर होता है। चालीस में जाकर वह प्रगल्भ हो जाताहै। राजनीति में कूदने से पहले मनुष्य को :१ शाला में योग्य शिक्षा मिलनी चाहिये २ योग्य रीति से पारिवारिक जीवन बिताना आना चाहिये और ३ जहा तक सभव हो दूसरो के लिए कष्ट सहने की और काम करने की शिक्षा मिलनी चाहिये। ग्राम पचायत का प्रतिनिधि बननेवाले की आयु ३० वर्ष, जिला मडल में पैंतीस और राजसभा के प्रतिनिधि की आयु चालीस होनी चाहिये। राज सभा में ६० वर्ष से ऊपर आयुवाला कोई सदस्य न हो ऐसा प्राचीन आर्यो का नियम था।

बधुओ के बारे में कहा गया था कि बधु समवयस्क हो। एक ही गाव में एक ही पेशा करनेवालो में १० वर्ष से वयस्क बड़ा कहा जाता है, उसके अन्दर के सब एक समान, एक-सी कारीगरी में पाच वर्ष के अनुभववाला बडा, एक-सी विद्या-सपन्नो में तीन वर्ष से अधिक आयुवाला बडा और एक-सा मान प्राप्त करनेवालो में पहले मान प्राप्त व्यक्ति अधिक श्रेष्ठ माना जाय। धर्मसूत्रो के छठे अध्याय में सूत्र है

दशवर्ष वृद्ध पौर। पचभि कलाभर॥
श्रोत्रियश्चारणास्त्रिभि। दीक्षितस्य प्राक्क्रमाद्॥
और मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में १३४वा श्लोक है.
दशाब्दाख्य पौरसख्य पचाब्दाख्य कला भृता।
त्र्यब्द पूर्ण श्रोत्रियाणा स्वल्पेनापि स्वयोनिषु॥

विद्या के सम्बन्ध में कौटिल्य ने चार प्रकार माने है। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दडनीति चार विद्या है। सबल और निर्बल पक्षो का अतर हेतुओ से जाना जा सकता है और यह हेतु ज्ञान आन्वीक्षकी विद्या से जाना जा सकता है। धर्माधर्मविवे त्रयी विद्या से, अर्थ और अनर्थका, अन्तर वार्ता विद्या से और न्याय-अन्याय का भेद दडनीति से जाना जा सकता है। मूल इस प्रकार से है

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दडनीतिश्चेति चतस्त्रे विद्या ।

बलाबले आन्वीक्षिक्या, धर्माधर्मौ त्रैय्या अर्थानर्थौ वार्तया,

नयानयौ दडनीत्या । तामिरर्मार्योश्च विद्यात्द्विद्याना विद्यात्व ।

वित्त के सबध में साधारणत यह माना जाता था कि जिस कार्य में जो पैसे देता है उसका मत अवश्य ध्यान में लिया जाय । समाज में सब व्यक्तियों की एक दूसरे से और सबकी पराक्रम-सुरक्षा के निमित्त खेती का काम लिया जाता है और उसका विनियोग न्याय और सैनिक व्यवस्था में किया जाय । इन विषयो में सब व्यक्ति प्रतिनिधित्व के योग्य है यह स्पष्ट ही है। कौटिल्य कहते है :

परचक्राट वीभूत तु प्रत्यानीय राजा यथास्व प्रयच्छेत् ।

चोरहृतमविद्यमान स्वद्रव्य, प्रयच्छेद ।

प्रत्यानेतु अशक्तो वा स्वयग्रहिणाहृत प्रत्यानीय तन्निकय वा प्रयच्छेद ॥ कौटिल्य ३।१६।७०

चोरहृतमपजित्य यथा स्थान गमयेद ।

कोशाद्वा दद्यात् ॥ धर्मसूत्राणि १०।४६।४७ ।

स्तेनाना निग्रहादस्य यशो राष्ट्रच वर्धते । मनुस्मृति ८।३०२।

विदेशी आक्रमण के कारण अथवा वन्य तस्करो के कारण किसी का कुछ लुट गया तो राजा वह उसे वापसि लाकर दे । चोर यदि कोई माल ले जाय और वह वापिस न मिल सके तो राजा अपने खर्चे से कीमत भरकर दे । जबरदस्ती से जो माल ले जाया जाय उसकी भी व्यवस्था इसी प्रकार से हो । चोर से जेल में काम कराने की जो प्रथा चल पडी उसके मूल में भी यही भावना थी कि चोरी की हुई चीज के दाम वसूल किये जाय । कौटिल्य ने यहा तक लिखा है कि "सस्य भक्षणे सस्योपद्यात निष्पत्तित. परिसख्याय द्विगुण द्वापयेद ३।१०।६२।" अर्थात् जानवर जितना अनाज फल खा गये है वह नाप-तौल कर उससे दुगुने दाम जानवर के मालिक से वसूल किया जाय ।

मतदाता के आचरण पर उतना निर्बध नही है, जितना कि प्रतिनिधि के आचरण पर है । प्रतिनिधि बहुत योग्य व्यक्ति होना चाहिये । वह 'सप्त व्यसन वर्जित' चाहिये । व्यसन का अर्थ कौटिल्य के अनुसार यह है कि "श्रेय मे, कल्याणकारी सन्मार्ग से जो किसी को फेंक देता है वह व्यसन कहलाता है " व्यस्यति एन श्रेयसस्तदमद् ८।१।१२७ आगे चलकर कौटिल्य ने बताया है कि प्रतिनिधि किन किन दुर्गुणो से मुक्त हो

१ गाली-गलौज वह न करे,

२ द्रव्य का दुरुपयोग न करे,

३ वह मारपीट न करे, इस प्रकार से यह तीनो बातें कोप या क्रोध से जो उत्पन्न है उनसे बचें और

४ शिकार

५ जूआ

६ वेश्यागमन और

७ शराबखोरी या अन्य नशाखोरी यह काम से उत्पन्न चार व्यसन उनमें न हो । वह 'पर धन तरुणी निस्पृह' हो, यानी दूसरे की स्त्री और धन के प्रति उनमें कोई मोह नही होना चाहिये । जब प्रतिनिधि चुना जाय तब उसके अडोसी-पडोसी से पूछकर उसका शील, बल, स्वास्थ्य सात्विकता जाच ली जाय

"सवासिभ्य शीलबलारोग्य सत्यसत्वयोग परीक्षेत् ।"

ग्राम पचायत के काम नीचे लिखे हुआ करते थे

१ गाव में पीने के पानी का इन्तजाम करना ।

२ गाव के बच्चो की पढाई की व्यवस्था करना

३ गाव के झगडे-टटो का फैसला करना

४ गाव से दूसरे गाव को जानेवाले रास्ते ठीक रखना, और

५ गाव के देवालय आदि धार्मिक मामलो का प्रबन्ध रखना ।

इन कामो में पहले और चौथे कामो के लिये गाव का हर आदमी महीने में एक दिन दे या एक दिन की मजदूरी एक मजदूर को दे, इस प्रकार का नियम था । मनु के अनुसार, 'एकैक कार्येत्कर्म मासि मासि महीपति' ७।१३८ और धर्म सूत्रो के अनुसार "शिल्पिनो मासि मास्येकैक अह कर्मकुर्यु नौ चक्रीवतश्च, भक्त तेभ्यो दद्यात् ।" १०।३० से ३६

और बृहस्पति स्मृति में है

'शुल्क दद्यात्तनो मासमेकेक पन्यमेववा ।

अवधिविर मूल्येन वणिजस्ते पृथक-पृथक ॥

कमकर लोग गाव के लिए माह में एक-एक दिन काम करें । नाववाले और गाडीवाले भी वैसा ही करें । उस दिन उन्हें मुफ्त भोजन मिले । और लोग बिना मजूरी लिए मजूरी दें । इसी तरह से पहले बडे-बडे काम होते थे । और कामो के लिए प्रत्येक परिवार अपने निर्वाह के बाद बचे रहनेवाले द्रव्य का पाचवा हिस्सा दें ऐसा नियम था ।

"पचाशद् भाग आदेयो राज्ञा पशु हिरण्मयो" मनुस्मृति ७।१३०

"पशु हिरण्ययो पचाशद् भाग" धर्मसूत्राणि ३।१० सू० २४

"कुटुब पोषण कुर्यान्नित्य कोशाच्च वर्धयेद् ।"

अन्यत्रापत्तित कोशादेव ग्राह्य च नेतराद् ॥" व्याघ्र स्मृति ।

कुटुब पोषण के बाद बचनेवाले द्रव्य पर यह कर था । अकाल इत्यादि की स्थिति में यह कर माफ कर दिया जाता था । खेती की उपज बेचकर पशु या सोना मोल लेते थे उस पर यह कर था ।

गाव के लडाई-झगडे के निबटारे का काम पच नि शुल्क करते । उनके काम में व्यवहार की रीति समझानेवाले सहायक लोग हुआ करते थे । धर्मसूत्रो के ग्यारहवें अध्याय में लिखा है कि किसान-व्यापारी, गडेरिए, सर्राफ, कारीगर आदि अपनी मदद के लिए अपने-अपने वर्ग से व्यक्ति लें । यह सहायक सख्या में तीन से अधिक न हो । इनसे पद्धति या रुढि पूछकर उसके अनुसार निर्णय दिया जाय । न्याय देते समय अनुमान पर भी अधिक ध्यान दिया जाता था ।

कर्षक वणिक्पशुपाल कुसीदि कारव स्वेस्वेवर्गे ।

स्ववर्गे अयत्राधर्मान्त्रिरयुन्यायाविग में तर्कोभ्युपाय

तेभ्यो यथाविकारमयन्त्रित्यवहृत्य धर्म व्यवस्था ।

राजा जब तक प्रजा की सुव्यवस्था का पूर्ण प्रबन्ध न करे, तब तक वह कर लेने का अधिकारी नही था ।

भारतीय कृषि का एक महान रोग

खेतों का विभक्तिकरण

श्री अवनीद्र कुमार विद्यालंकार

विश्व की दो तिहाई आवादी आर्थिक दृष्टि से पिछड़े प्रदेशो और इलाको में रहती है। इन प्रदेशो की मुख्य समस्या गरीबी है। गरीबी का मुख्य कारण है कि इन प्रदेशो के किसान गरीब हैं। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों की अधिकांश आवादी के जीवन का सहारा खेती है। इनके आर्थिक तत्र का आधार खेती है। किस महादेश में जन सख्या का कितना बडा भाग खेती में लगा हुआ है, यह निम्न तालिका से स्पष्ट है:

खेती में विश्व आबादी का अनुपात १९४९

क्षेत्र	कुल आवादी लाखों में	खेतिहर आवादी लाखो में	खेतिहर आवादी कुल आवादी के अनुपात में
उत्तरी अमेरिका	१६३०	३३०	२०
यूरोप	२९१०	१२९०	३३
	१२०	४०	३३
दक्षिण अमरिका	१०७०	६४०	६०
मध्य अमरीका	५००	३३०	६७
एशिया	१२५५०	८७८०	७०
अफ्रीका	१९८०	१४६०	७४
विश्व का कुल	२०७६०	१२८७०	३५७

विश्व की कुल आवादी का ६० प्रतिशत या लगभग १३० करोड लोग खेती पर आश्रित हैं। इनमें से एक अरब से अधिक एशिया, अफ्रीका, मध्य और दक्षिण अमेरिका में रहते हैं। इसके विपरीत यूरोप में तीन के पीछे एक, उत्तरीय अमरीका में ५ के पीछे केवल एक व्यक्ति अपनी जीविका के लिए खेती पर निर्भर है और एशिया और अफ्रीका के प्रति चार व्यक्तियो में से तीन खेती से गुजारा कर रहे है।

कृषि-जीवी देश में प्रति एकड पैदावार कम है। औद्योगिक देशो में प्रति एकड उत्पादन अधिक है। क्षेत्र, आबादी की घनता के कारण प्रति व्यक्ति उत्पादन भी कम है। इन अन्तरो का उत्पादन पर भी प्रभाव पडता है। खेतिहर और औद्योगिक देशो के मध्य उत्पत्ति का अन्तर निम्न सारिणी से प्रकट है.

महादेश	प्रति हैक्टर पैदावार			खेती में प्रति व्यक्ति उत्पादन		
	युद्ध पूर्व मेट्रिक टनों में	१९४७-४८ मेट्रिक टनो में	१९४७-४८ युद्ध पूर्व का प्रतिशत	युद्ध पूर्व मेट्रिक टनों में	१९४७-४८ मेट्रिक टनो में	१९४७-४८ युद्ध पूर्व का प्रतिशत
विश्व का औसत	१ २४	१ ३०	१०५	० ४२	० ४२	१००
उत्तर और मध्य अमरीका	१ ०७	१ ५०	१४०	१ ८०	२ ५७	१४३
यूरोप	१ ५१	१ ३४	८९	१ ०४	० ८८	८५
ओसेनिया	१० ०६	१ २०	११३	१ ९४	२ ३९	१२३
एशिया	१ २६	१ २०	९५	० २४	० २२	९९
अफ्रीका	० ७७	० ७३	९५	० १२	० १२	१००

खेती में प्रति व्यक्ति उत्पत्ति का अन्तर इस बात का सूचक है कि विभिन्न देशो के गावो और किसानो के जीवन मान में कितना अन्तर है। उत्तरी अमरीका में प्रति किसान पैदावार लगभग ८॥ टन है। वहा जीवन मान ऊचा होना स्वाभाविक है। इसके विपरीत एशिया में ४। टन और अफ्रीका में १॥। टन है।

खेती के अन्दर कम पैदावार होने के अनेक कारण है। भूमि का कमजोर होना, प्रतिकूल आबहवा, पुराना तरीका और टेकनीक, उपकरण, साज-सामान, देहाती आबादी की अत्यधिक घनता, खेत की पैदावार का कम कीमत मिलना, आदि। ये सब बातें विभिन्न अंशों में महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण है, कृषिका ढाचा, जिसका ग्राम्य-जीवन-मान पर प्रभाव पडता है। खेती का ढाचा जब हम कहते है तो इसके अन्तर्भेद भू-धरण, भूस्वामित्व रिवाजी या कानूनी, क्षेत्र स्वामित्व की बडी स्टेटों और किसान प्रक्षेत्रों, या किसानो के मध्य विभिन्न प्रकार-प्रमाणो के प्रदेशो का वितरण, भूकाश्तकारी, भू-प्रणाली, जिसमें भूमि जोती जाती है और पैदावार बाटा जाता है, प्रत्येक सगठन, उत्पादन और भूमि-व्यवस्था खेती की वित्तीय मशीनरी, सरकार द्वारा करो के रूप में देहाती समाज पर डाला जाना और ग्राम्य जनता को सरकार द्वारा की जानेवाली सेवा में, यथा यात्रिक परामर्श, शिक्षा सुविधा, स्वास्थ्य सेवा, जलपूर्त्ति और यातायात का सचार।

समाज का आर्थिक विकास हरेक देश के अन्दर एक ही रीति और ढग से नही हुआ। विदेशी सस्थाओ का प्रभाव भी हरेक पर अलग-अलग पडा है। फलत हरेक का धरण भी अलग-अलग है। खेती के ढाचे की मुख्य बात जो हमारे सामने सर्व प्रथम आती है वह है खेतो का बहुत छोटे-छोटे टुकडों में विभक्त होना। छोटे आकार परिमाण का खेत कौन सा है इसका लक्षण करना या इसकी परिभाषा देना सरल नही, क्योकि प्रत्येक देश में यह अलग-अलग है। सयुक्त राज्य अमेरिका और इगलैड के कुछ भागो में ३० हैक्टर ७५ एकड का प्रक्षेत्र छोटा माना जाता है। इसके मुकाबले पूर्वीय यूरोप में जहा औसतन परिमाण का प्रक्षेत्र रकबा ५ हैक्टर साढे बारह एकड है, यह एशियाई देशो में एक हैक्टर ढाई एकड का प्रक्षेत्र बडा माना जायगा। आर्थिक दृष्टि से न्यूनतम परिमाण बताना भी सरल नही क्योकि हरेक देश में खेती का तरीका और उसका उपयोग अलग-अलग है। यदि बैलो द्वारा खेती की जाती है, ट्रैक्टरो से नही तो स्वभावत खेती का परिमाण छोटा होगा।

लेकिन यह प्रश्न बना रहता है कि आर्थिक दृष्टियो से लाभजनक खेती के लिए न्यूनतम रकबा कितने का होना चाहिये। इसका विचार और निर्णय करने की भी दो कसौटिया है। एक है कि किसान के खेती-उपकरण कितनी भूमि का पूरा-पूरा उपयोग कर सकने में समर्थ है और दूसरी कसौटी है एक-एक किसान परिवार के जीवन-निर्वाह, भरण-पोषण के वास्ते कितनी न्यूनतम जमीन की जरूरत है। इसका मान प्रति व्यक्ति खास-खास जमीन के अनुसार तय होगा। आहार स्वास्थ्य-वर्द्धक पौष्टिक एव रोग प्रतिबधक होना चाहिये। पर इसके आधार पर टुकडो का निर्णय नही किया जा सकता, क्योकि जोत की सारी जमीन एक जैसी नही है। फिर खेती करने और जुताई का ढग भी अलग-अलग है। जुताई कितनी गहरी होती है इस पर उत्पादन निर्भर है। फिर सिंचाई की सुविधा से भी पैदावार में अन्तर आता है। भारत के अन्दर नदी-घाटी में सिंचन दोहरी फसल की जमीनो में असिंचित एकल फसल की जमीन को तुलना में छ गुणा पैदावार होती है।

इन सब भेदो के बावजूद यह सत्य है कि अधिकाश देशो में बडे फार्म प्रक्षेत्र बहुत थोडे है। जन सख्या के बढने पर और उत्तराधिकार के कानूनो के कारण खेती की जमीन का विभक्तिकरण सदियो से हो रहा है। जिस देश के अन्दर जितनी पुरानी आबादी है उसमें जमीन का बटवारा भी उतना ही अधिक हुआ है। प्रक्षेत्र इतने अधिक छोटे है कि वे किसान परिवार का भली प्रकार पालन-पोषण करने में असमर्थ है। प्रक्षेत्र के अत्यधिक विभक्तिकरण होने के कारण स्वामित्व केन्द्रित हो जाता है और इससे सम्पत्ति के विषम वितरण होने में वृद्धि होती है। छोटे-छोटे प्रक्षेत्र किसान का पेट नही भर सकते थे और वह बडे भू स्वामी और महाजन से कर्ज लेने को बाध्य होता है और कर्ज न चुकाने की अवस्था में अपनी जमीन उनके हवाले करने को बाध्य होता है। आबादी की घनता जहा अधिक है वहा फार्म भी उसी अनुपात में छोटे है। पहले दी गई सारिणी की तरह भारत के विषय में भी आगे दी जा रही है। सारिणी से प्रकट है कि खेती योग्य भूमि के अनुपात में जहा आबादी अधिक है वहा फार्म आबादी की घनता भी अधिक है। प्रक्षेत्र आबादी की सघनता का क्रम है, जापान, मिश्र, कोरिया, हिन्देशिया, हिन्दचीन, सीलोन, चीन और भारत। लेकिन अमेरिका के बोलिविया, कोलम्बिया और पेरू भी इसी वर्ग में है। लेकिन प्रति व्यक्ति खेती योग्य भूमि के फार्म आबादी की घनता का यथार्थ द्योतक नही है। क्योकि खेती योग्य सारी भूमि को जोतने योग्य जमीन में नही सम्मिलित किया गया है। इन देशो में प्रति व्यक्ति जोत की जमीन १।३ हैक्टर एक एकड से अधिक है। जापान की फार्म प्रक्षेत्र आबादी ३४५ लाख है और वह ५९ लाख हेक्टर जमीन पर गुजारा करती है। मिश्र की मुख्य जनसख्या १४० और १५० लाख के मध्य है और यह २५० लाख हेक्टर पर जोती है। हिन्देशिया, जावा और मलाया की देहाती आबादी ४५० और ५०० लाख के बीच है और १०० लाख हैक्टर जुते खेत पर बसर करती है। १९३८ में औसतन ०.८६ हैक्टर था। भारत में देहाती आबादी २८५० लाख है और ९८० लाख हेक्टर खेती योग्य जमीन है। यद्यपि उपर्युक्त तीनो देशो की अपेक्षा प्रति हैक्टर आबादी कम है, पर जीवन मान पर आबादी की घनता का प्रभाव अत्यधिक है क्योकि प्रति एकड उत्पादन कम है, फसल की पैदावार कम है और दोहरी फसल एक सीमित क्षेत्र में ही बोई जाती है। मिश्र, जापान और जावा में प्रति एकड पैदावार भारत की तुलना में ज्यादा है। भारत के विभिन्न राज्यों में प्रति परिवार जोत की जमीन कितनी है यह निम्न सारिणी से प्रकट है। यह काग्रेस द्वारा नियुक्त कुमारप्पा कमिटी की रिपोर्ट से ली गई है।

विभिन्न परिमाण के खेतों के साथ परिवार का प्रतिशत

प्रान्त	१ से कम	२ से ५	५ से १०	१० और अधिक
आसाम	३८ ६	२७ ४	२१ १	१२ ६
गुजरात	२७ ५	२५ ७	२३ ३	२४ ५
दक्खिन	१९ ८	१६ ७	१८ ८	४७ ७
कर्णाटक	१२ २	१९.२	२१ ७	४६ ९
पश्चिमी वंगाल	३४ ७	२८ ७	२० ०	१६ ६
मध्य प्रदेश	२८.३	४९ ०	२१ ०	३० ०
उडीसा	५०.०	२७ ०	१२ ०	१० ०
मद्रास	५१ ०	३१ ०	७० ०	११ ०
उत्तर प्रदेश	५५ ८	२५ ४	१२ ८	६ ०
पजाब	३७ ९	१७ ९	२० ५	२३ ७

भारत की देहाती आवादी के जीवन मान पर यह सारिणी अच्छा प्रकाश डालती है। चीन के गावो में भी वहुत सघन आवादी है। वारह प्रान्तो के १७००० फार्मों की जाच की गयी थी। इससे मालूम हुआ कि १५०० व्यक्ति प्रति वर्ग मील रहते है, या प्रक्षेत्र फार्म पर प्रति व्यक्ति को आधा एकड जमीन है। इससे जाहिर है कि इन गावो की आबादी की घनता भारत की अपेक्षा दुगुणी है। लेकिन प्रति एकड औसतन फसल भी भारत से चीन में दुगुणी है।

सघन वस्ती के प्रदेशो में, औसतन प्रक्षेत्र रकवा छोटा होगा, यदि जमीन समान रूप से वाटी भी जाय तव भी स्थिति में अन्तर न आयगा। जव औसतन रकवे छोटे होगे, तव प्रक्षेत्र रकवो के आकार परिमाण में अत्यधिक असमानता होगी, अधिक सख्या के प्रक्षेत्र घटकर औसतन आकार से कम के होगे और इस कारण अधिकतर सख्या में रकवे भरण-पोषण के न्यूनतम मान से भी कम के होगे। जैसे जापान के पजम का औसतन आकार एक हेक्टर या ढाई एकड है। हाल के सुधार ने फार्मों का परिमाण अपेक्षाकृत कम कर दिया है। फिर भी ४१ प्रतिशत प्रक्षेत्र रकवे १ २ एकड से कम के हैं।

भारत में अलाभजनक रकवे अनुपातत वडी सख्या में हैं। अधिकाश राज्यों में रकवे का आकार ४ और ५ एकड के मध्य है। भारत के लिए आर्थिक दृष्टि से लाभजनक रकवा ५ एकड का माना जाता है जिसमें २ ३ एकड जमीन सुसिंचित होनी चाहिये। लेकिन भारत के कुछ वारिश क्षेत्र को कुल एक तिहाई जमीन ऐसी है जिसमें अच्छी वर्षा होती है या सिंचाई की अच्छी व्यवस्था है। प्रति औसत रकवे के साथ २ एकड सुसिंचित जमीन भी नही है। इसके वदले और सूखी ४ एकड जमीन कमी को पूरा करने के लिए चाहिए। इस प्रकार औसतन प्रक्षेत्र एकड भी न्यूनतम भरण-पोषण योग्य मान से कम है और अधिकाश रकवे औसतन प्रक्षेत्र रकवे से कम है।

वढती जनसख्या का खेती पर कितना भारी दवाव पड रहा है यह निम्न सारिणी प्रकट है।

बोरसाद ताल्लुका कैरा जिला, गुजरात में रकबों का आकार

आकार	१९०१ सख्या	१९०१ प्रतिशत	१९२१ सख्या	१९२१ प्रतिशत	१९०१ से रकवो में वृद्धि कमी
५ एकड से कम	७७४०	५८	१९७४०	८२	१२५
६ से २५ एकड तक	५१०७	२८	३९१६	१६	२३
२६ से १०० के बीच	५७०	४	४३२	२	३
१०० से ५०० के बीच	३०		२९		
जोड	१३४४७	९०	८४११७	१००	१५१
	१९०१		१९२१		
कुल क्षेत्र एकड	९४६६०		९२६३९		
औसतन रकबा एकड में	७		३ ८		

यह है ७२ गावो की जाच का परिणाम। वीस साल के अन्दर कुल रकवो की सख्या ७९ प्रतिशत वढ गई, लेकिन १९१० में जहा औसतन रकवा ७ एकड का था वहा १९२१ में केवल ३ ८ एकड का रह गया।

एक जोडी वैल साल में औसतन २५ एकड जोतते है और वम-फील्ड थ्योरी के अनुसार यह आर्थिक दृष्टि से लाभजनक रकवा है। १९२१–२२ में २१००० रकवा में से केवल ३४०० रकवे या २ प्रतिशत से भी कम, २५ एकड से अधिक के थे। वोरसाद ताल्लुका के लोगो के लिए यह मान वहुत ऊँचा है। इसलिए "इडियन एग्रीकल्चरल इकनामिक्स" के लेखक श्री ए० डी० पटेल का कहना है

इसलिए ताल्लुका के लोगो के जीवन मान के अनुसार हम लाभजनक रकवे के परिमाण करने का यत्न करते हैं। हमारे ताल्लुके में रकवे का आकार प्रति परिवार साढे १२ एकड होना चाहिये। पर लाभजनक रकवे के हमारे परिमाण का दो तिहाई ही वस्तुत प्रति परिवार जोत है।

सूरत जिले के वोरसाद ताल्लुके के वारे में १९२१–३० में "लाइफ एन्ड लेवर इन गुजरात ताल्लुकाज" के लेखक जे० वी० शुक्ल के लिखा था कि इसके लिए लाभजनक रकवे का परिमाण २० एकड होना चाहिये। पर स्थिति क्या थी

ग्राम समूहों के अनुसार रकबों की सारिणी

समूह	रकवो की कुल सख्या	लाभजनक या उससे ऊपर के रकवो की सख्या	अलाभजनक रकवो की सख्या	कुल रकवो में अलाभजनक रकवो का प्रतिशत।
१	९२	१८	७३	७९ ३
२	१२८	७	१२१	९४ ५
३	७६	९	६७	८८ १
४	९२	३	८८	९६ ७
५	२०३	८	१९६	९६ ०
योग	५९१	४५	५४५	४५४ ६

बम्बई प्रान्त के एग्रीकल्चर डाइरेक्टर डा० हैरल्ड मान ने १९१७ में पूना जिले के एक गाव की जाच कर बताया था कि १७७१ में औसतन रकवा ४० एकड का था, १८२०।४० में १४ एकड का था, और १९१४।१५ में वह घट कर ७ एकड का रह गया। ८१ प्रतिशत रकबे, अत्यधिक अनुकूल परिस्थिति में भी अपने स्वामी का भरण-पोषण नही कर पाते, डा० मान इस निष्कर्ष पर पहुचे थे। इससे यह स्पष्ट है कि पिछले ७० वर्षों में रकबो के अन्दर बडा परिवर्तन हुआ है। ब्रिटिश काल से पहले और ब्रिटिश शासन के आरम्भ में साधारणत रकबे उचित आकार के थे, अधिकतर ९ से १० एकड के थे और दो एकड से कम के वैयक्तिक रकबे अज्ञात ही थे। अब रकबो की सख्या बढ़ गई है और लगभग दुगुणी हो गई है और ८१ प्रतिशत रकबे आकार में २० एकड से कम है और ६० प्रतिशत से अन्यान्य ६ एकड से भी कम है।

डा० मान ने बम्बई के ठाणा जिले के भिकाडी ताल्लुके की जाच की थी। आपने ९५८४ खातेदारो की जाचकर निम्न परिमाण सबद्ध किया है *

वुलसार ताल्लुका सूरत जिला के आजाम की जाच श्री मुल्तार ने १९२७।२८ में की थी। गाव में ४६१ परिवार थे जिनमें २४९ या ५४ प्रतिशत किसान थे। खेत कितने छोटे-छोटे टुकडो में विभक्त हो गए थे यह उन्होने इस प्रकार बताया है।

उपविभाग

रकबो की सख्या	१९००/०१	१९१७/१८	१९२६/२७
१०० एकड से अधिक के	१	१	१
७१ से १०० एकड	५	३	
५१ से ७० एकड	८	६	८
३१ से ५० एकड	२१	९	७
१५ से ३० एकड	३४	३७	३७
६ से १५ एकड	३६	१०७	९५
१ से ५ एकड	६४	१३२	१३३
१ एकड से नीचे	४४	१०९	२४३
योग	२१६	४०४	५२४

खंड खंड होना

खड की सख्या	निशिचत रकबो कीसख्या के साथ रकबे	खडों की सख्या	निशिचत खडों की संख्या के साथ रकबो की स०
१ से ५	२८६	२१/२५	७
६ से १०	६२	२६/३०	८
११ से १५	४२	३१/४०	६
१६ से २०	२२	४० से अधिक	३

एक एकड़ से कम के प्लाटों का परिणाम और संख्या

३०/४० भुज	२०१	१०/१५ भुज	३३९
२०/३० भुज	३११	५/१० भुज	३३९
१५/२६ भुज	२१५	५/१० भुज	३३९
१५/२६ भुज	२१६	५ भुज से नीचे	३०५

(१ भुज बराबर है १/४० एकड)

दक्षिण भारत की स्थिति इससे भिन्न नही। डा० गिलबर्ट ने १९१६ में कुछ गावो की जाच की थी। १९३६ में इन्हीं गावों की पुन जाच की गई, इन जाचो का परिणाम इस प्रकार है

रकबो का परिमाण	१९२६ रकबो की सख्या	१९२६ मात्रा एकड में	१९३६ खेतो की सख्या	१९३६ मात्रा एकड में
१से१० एकड के मध्य	३८	२५०	१२१	५३५
१० से २५ „	३८	६४९	३७	५९४
२५ से ५० „	१२	४६९	८	२६४
५० से १०० „	३	४७१	१	१०५
१०० से २५० „	३	२११	३	१६०
योग	९४	२०५०	१७०	१६५८

*रकबे	१८८६ सख्या	१८८६ प्र०श०	१९०३ सख्या	१९०३ प्रति शत	१९३१ सख्या	१९३१ प्रतिशत	१९३७ संख्या	१९३७ प्रति शत
५ से कम	३७३१	४९७	६४१६	६२·६	१०५५८	७४२	६६३८	६९१
५ से २५ एकड	३०४१	४०३	३२०६	३१६	३४०४	२४१	२४२६	२५५
२५ से १०० एकड	६९४	९३	५५६	५४	२०६	१४	४३८	४५
१०० से ५०० एकड	३९	५	४१	४	३०	३	७९०	९
५०० से ऊपर								
योग	७५०५	९९८	१०२१९	१०००	१४१९८	१०००	१०२९२	१०००

कुछ क्षेत्र में कमी होने के साथ रकबो की सख्या में वृद्धि होती गई । १६१६ में रकबे का जो परिमाण था उससे २० वर्ष के बाद १६३६ में आधा ही रह गया। एक और भी उल्लेख योग्य वात यह है कि १ से २० एकडके रकबो और अभी अधिक उपविभाग हुआ है।

रकबो के खड-खड होने की प्रक्रिया सारे देश में जारी है। मालाबार जिले के मुल्लयूर गाव की १६३६ में जाच की गई थी। उसका परिणाम इस प्रकार रहा

आकार	सख्या	एकडो में विस्तार
चौथाई एकड से कम	१०६	१८ १०
चौथाई से आधा एकड	१२५	४४ ६८
आधा से एक एकड	१५२	१०० ४६
एक से २ एकड	६६	६५ ७३
२ एकड से ५	६२	१६२ ७८
५ से १० एकड	२४	१६६ ७८
१० से २० एकड	११	१४५ ८२
२० एकड से ऊपर	७	३६० ६६
योग	५५६	११५८३७

इस गाव में रकबे का औसतन परिणाम २ १ एकड है। नारियल क्षेत्र में यदि गहरी खेती की जाय तो २ १ एकड का रकबा आर्थिक दृष्टि से अलाभजनक नही कहा जा सकता। परन्तु कुल रकबों का प्रतिशत एक एकड से भी कम है और ४२ प्रतिशत रकबे तो आधे एकड से भी कम के हैं।

"साउथ इडियन विलेजेज" के अनुसार गगेककोडम तिनेवली जिला गाव के अन्दर "पिछले १५ और २० वर्षो के अन्दर काश्तकारो की वहुत वृद्धि हुई है। इनमें से वहुत से काश्तकार खाली समय में खेतिहर मजदूर भी है। नीचे की तालिका से मालूम होगा कि भू-स्वामियो की सख्या में कमी हुई है और बडे जमीन्दार के हाथ में जमीन के केन्द्रीकरण हुआ है। यथा

गंगैक कोडम गांव तिनेवेली जिला

आकार	भूस्वामियो की सख्या १६१६	भूस्वामियो की सख्या १६३४
१ एकड से कम	१०५	१००
१ एकड से ५ एकड	२२०	६००
५ एकड से २० एकड	२५०	५०
१० एकड़ से २० एकड	१००	३०
२० एकड से ५० एकड	१६०	५०
५० एकड़ से १०० एकड	६	३
योग	८४४	८३३

१६३६ में लेंड रेवेन्यू कमीशन नियुक्त किया था। इसने अपनी रिपोर्ट में लिखा था, यह मानते हुए कि १६३१ में ७० प्रतिशत आवादी काश्तकार थी तो खेती करनेवालो की कुल सख्या ३२७ लाख होती है। जोत में कुल जमीन है लगभग ३१७ लाख एकड है, अत औसतन प्रतिशत एक एकड से कुछ कम है। क्लाउड कमीशन ने यह भी लिखा कि कमीशन खेत के लिये डाइरेक्टर आफ लेंड रेकर्ड द्वारा की गई जाच की एक अत्यन्त उद्वेगजनक वात यह है कि ४१ ६ प्रतिशत परिवारो के पास २ एकड या इससे भी कम जमीन है और जिनके पास २ और ४ एकड के वीच जमीन है वे २० ६ प्रतिशत है। इसका अर्थ है कि खेतिहर परिवारो में से २।५ भाग के पास २ एकड से भी कम जमीन है और वह उनके जोवन निर्वाह के लिए कम है और वे विना किसी कानूनी अधिकार के दारमदार के रूप में जमीन लेने को वाध्य होते हैं या दिन में दूसरो के खेत पर मजदूरी करने के लिए लाचार है।

डोरवा, दानापुर सवडिवीजन पटना एक जमीन्दारी गाव है। १६४६ में इसकी भारत सरकार ने जाच करवाई थी, इस जाच के अनुसार औसतन रकवा ६ एकड ही है।। गाव में ६३ काश्तकार परिवार थे, उनके पास जमीन इस प्रकार थी

	परिवारो की सख्या
२ एकड से कम	१६
२ से ५ एकड	२१
५ से १० एकड	१४
२० एकड से ऊपर	१२

रिपोर्ट लेखको का कहना है कि लगभग ४४ प्रतिशत के पास २ एकड से भी कम जमीन है। २५ प्रतिशत के पास २ से ५ एकड है। १७ प्रतिशत के पास ५ से १० एकड और केवल १४ प्रतिशत के पास १६ एकड जमीन है।

मध्य प्रदेश के एक गाव रकपरी नामक ताल्लुक, नागपुर से ८ मील दूर, की भी १६४६ में जाच की गयी थी। भारत सरकार द्वारा की गई जाच का परिणाम इस प्रकार है

आकार	प्रतिशत
२ एकड़ से कम	..
२ से ५ एकड	६.६
५ से १० एकड	२४ २
१० से १५ एकड	२५ ८
१५ से २० एकड	१० ४
२० से ३० एकड	१७ २
३० से ४० एकड़	५.२
४० से ऊपर	१० ३

आसाम राज्य के कामरूप जिला के अन्तर्गत भडारी सबडिवीजन में भम्रपारा नामक एक गाव है। इस गाव की जाच भी १९४९ में की गई थी। रकबो के आकार के सम्बन्ध में इसकी जाच की रिपोर्ट में कहा गया है

आकार	रकबों की कुल सख्या
२ एकड से न्यून	१३ ८
२ एकड से ५ एकड से न्यून	३६ २
५ एकड और १० एकड से न्यून	४४ २
१० एकड और उससे ऊपर	५ २

इससे स्पष्ट है कि ५० प्रतिशत रकबे ५ एकड से भी कम है और केवल २ २ प्रतिशत के पास १० एकड या इससे अधिक जमीन है।

उत्तर प्रदेश के आजमगढ जिले के एक गाव का नाम रक्सौलपुरा है। इस गाव की भी १९४९ में जाच की गई थी। इस गाव में २०२ परिवार खेती करते आते थे। ५५ एकड जमीन जोत में थी। यह इस प्रकार बटी थी

रकबे का आकार	काश्तकारो की सख्या
२ एकड से कम	१४४
२ एकड से ५ एकड तक	२६
५ एकड से १० एकड तक	१६
१० एकड और उससे ऊपर	८
रकबे का औसतन आकार	३ ०

उडीसा की हालत भारत के अन्य राज्यो से भिन्न नही है। कटक जिले के सदर सबडिवीजन में खूटनी गाव है। गाव से रेलवे स्टेशन केवल एक मील दूर है। इस गाव में खेतो का विभाग उपविभाग इस प्रकार है

रकबो का आकार	काश्तकारो की सख्या
२ एकड से कम	२४
२ से ५ एकड	२८
५ एकड से १० एकड	३
१० एकड और उससे ऊपर	...

रकबो का टुकडा होना बराबर जारी है। इससे कोई अभी खास परिवर्तन नही हुआ। मद्रास राज्य के चिरुरुचि जिले में एक गाव बगलोर है। १९४९ में इसकी जाच की गई थी। जाच से मालूम हुआ कि काश्तकारो की सख्या १४७ है। रकबो की आकार इस प्रकार था

रकबो का आकार	काश्तकारो की सख्या
२ एकड़ से कम	८२
२ एकड से ५ एकड	४९
५ से १० एकड	२०
[illegible]एकड और उससे ऊपर	६
	१५७

भारत के समान मिश्र में भी रकबे बहुत छोटे-छोटे है। आबादी-आकार भी बहुत है। यथा .

मिस्र में भूस्वामित्व का वितरण १९४७

रकबो का आकार	स्वामियोकी सख्या	कुल	क्षेत्र स्वामित्व फेड्डन	कुलका प्रतिशत
१ फेड्डन और निम्न	१९२१०००	७२ १	७८५०००	१३.१
१ से ५ फेड्डन	५८७०००	२२ १	१२१९०००	२०.३
५ से ५० फेड्डन	१४३०००	५ ४	१७७४०००	२९ ७
५० से ऊपर फेड्डन	११०००	४	२२०००००	३६ ८
योग	२६६२०००	१०० ०	५९७८०००	१०० ०

१ फेड्डन = १ ०३८ एकड या ० ४२ हैक्टर

भारतीय अकाल कमीशन के अनुसार प्रति रकबा औसतन पैदावार मद्रास, बगाल और उत्तर प्रदेश में २ टन है तथा पजाब में ३ टन है। ऊपर ऐसे भी रकबे है जहा पैदावार दो टन से भी कम है। अकाल कमीशन के अनुसार ये इस प्रकार है।

एकड़ टन से कम पैदा करने वाले रकबों का प्रतिशत

नाम राज्य	प्रतिशत सख्या
मद्रास	७४
बगाल	५०
बम्बई	५०
उत्तर प्रदेश डेढ टन से कम	५०

अलाभजनक रकबो की औसत समस्या का महत्त्व उस समय प्रकट होता है, जब यह मालूम होता है कि खेती करनेवालो में से अधिकाश को जोत की जमीन में स्वामित्व नही होता न वे उसके मालिक होते है और न वे काश्तकार। छोटे प्रक्षेत्रो की समस्या मुख्यत भारत, चीन के कुछ भागो और बर्मा को छोडकर सम्पूर्ण एशिया में है। कैरिबियन प्रदेश में, मिस्र और जापान में भी यह उग्र सीमा पर पहुची हुई है। आबादी की सघनता इसका एक मुख्य कारण है। अत खेती का ढाचा बदलने मात्र से यह समस्या हल न होगी।

छोटे क्षेत्रो के होने का एक बडा कारण देहाती आबादी की बडी सख्या में होना है, पर अलाभजनक फार्म उन देशो में भी पाए जाते है जो देहाती आबादी में सख्या की समस्या से परेशान नही है। फिलीपीन में औसतन रकबा ४ हैक्टर १० एकड का है। लेकिन आधे से अधिक फार्म दो हैक्टर का है। इसके दो कारण है। भूस्वामित्व का विषम वितरण हुआ है और लूजान और वीसायन द्वीपो में आबादी केन्द्रित हो गई है।

दक्षिण अमरीका में इसके विपरीत ऐसे देश है जिनमें रकबे बहुत बडे है और आर्थिक ह्रास से इसी कारण लाभजनक नही। अर्जेन्टीना में निजी खेती की जमीनो में ८५ प्रतिशत ५०० हैक्टर से बडे स्टेट है। इसके साथ ही फार्म आबादी में से ८० प्रतिशत के पास एक एकड़ भी जमीन नही है। ब्राजील म भी यही बात है। लगभग आधी जमीन १००० हैक्टर्स से अधिक की स्टेट है और आधे फार्म २० हैक्टर से कम के है और ये कुल जुती जमीन केवल २० प्रतिशत से भी कम है। लेकिन अमरीका में बड़े-बडे चारागाह है और फार्मों के बडे होने का एक यह भी कारण है।

रकबे भी अनेक खडो और टुकडो में होते है और ये दूर-दूर बिखरे होते हैं। यह आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशो तक ही सीमित नही। यह स्विटजरलेंड, फ्रास और दक्षिण जर्मनी में भी है। दक्षिण यूरोप के विशेषत पोलेंड और वाल्कन प्रदेशो में यह प्रक्रिया दूर तक गई हुई है। मसलन युगोस्लेविया में १२ एकड का फार्म अलग-अलग ३० खडो या प्लाटो में बटा होता है। खडीकरण का कारण भी प्रक्षेत्रो की आबादी का बढना और उत्तराधिकार कानून असम होना है।

छोटे रकबो का होना और फिर उनका खड-खड में बटना और फिर उनका बिखरा होना एक औसत और उग्र समस्या है, यह असन्दिग्ध है। प्रश्न यह है कि इसे कैसे हल किया जाय ?

अब तक इसके दो रास्ते बताए गए है। एक है सामूहिक खेती और दूसरा है सहकारी खेती का। सामूहिक खेती रूस जैसे देशों में सफल हो सकती है जहा बडी मात्रा में जमीन परती पडी है। परन्तु जहा जमीन की भूख बढी हुई है और हरेक व्यक्ति जमीन पर स्वत्व पाने को उत्सुक है और पूर्वजो की जमीन के प्रति जहा लोगो को मोह है वहा सहकारी खेती की प्रणाली ही उचित और सफल हो सकती है।

मेक्सिको में सामूहिक खेती का परिश्रम इस कारण सफल हुआ क्योंकि वहा परती जमीन बहुत थी। 'एजीडोज' नवीन जमीन बन्दोबस्त, १९१५ में नवीन कृषि सुधार के अन्दर हुआ। १९३६ में प्रेजीडेन्ट लाजोर कार्डेनाज ने २२१ 'एजीडोज' बनाये। अकेले लेगूना प्रदेश में ही प्रक्षेत्र की ३ लाख एकड जमीन, और ५ लाख एकड वर्गैर सुवरी जमीन ३२००० किसानो में बाटदी गई। १९४० में जीगेजो की सख्या १५००० हो गई। कुल जमीन ६२४ लाख एकड थी और उस पर १४ लाख किसान बसे हुए थे। अनुमान है कि एक तिहाई 'एजीडोज' अर्थात् ५००० सामूहिक है और शेष वैधानिक रकबे है। लेकिन हरेक वर्ग की जमीन सामान्य अधिकार में है।

'एजीडोज' का निर्माण स्वेच्छा के आधार पर हुआ है। कम-से-कम अधिकारी २० किसानो द्वारा एक समूह बनाना और जमीन के लिए आवेदन पत्र देना आवश्यक है। जमीन की प्राप्ति और उस पर बसना सामूहिक है पर वैधानिक या सामूहिक सबसे खेती करने के विषय में वे निर्णय कर सकते है। प्रशासन चुनी हुई दो कमिटियो के हाथ में होता है। कमिटी में तीन सदस्य और तीन उसके एवजी होते है। इनमें से एक कमिटी कार्यपालिका होती है और वह भी सदस्यो में से चुनी जाती है। दूसरी कमिटी का काम आय निरीक्षण होता है। साधारणत सभा द्वारा प्रमुख अधिकारी चुने जाते है। 'एजीडोज' का निरीक्षण ऊची एजेन्सिया करती है क्योंकि 'एडीजोज' के ७० प्रतिशत सदस्य निरक्षर है। इसकी आय वेतन के रूप में बाटी जाती है। वेतन का निर्णय आय की मात्रा और आय की स्थिति की पर निर्भर है। जहा सामूहिक रूप से उत्पादन किया जाता है वहा भी जमीन वैधानिक रहती है।

बडे परिमाण में परती पडी जमीनो को बसाने में ही सामूहिक खेती का परीक्षण किया जा सकता है और इस प्रकार जमीन इस देश में अधिक नही है।

सोवियत सामूहिक खेती के परिणाम की अपेक्षा फिनीस्तीन में 'कुवट्जा' या यहूदी सामुदायिक प्रक्षेत्र अधिक महत्त्वपूर्ण एक सामाजिक जरिया है—यह जातीय और साम्प्रदायिक सगठन है और सोवियत 'कम्यून से बहुत मिलता-जुलता है। जमीन वैयक्तिक सम्पत्ति का नाम नही। 'केवृट्जा' खुद नेशनल फड से जमीन पर कर्ज लेता है। इसका इन्तजाम प्रति वर्ष चुनी एक प्रबन्ध कमिटी करती है सोवियत 'कम्यून' से इसका अन्तर यह है कि यह मुख्यत पूजीवादी समाज के ढाचे के अन्दर काम करती है। शिक्षा, स्वास्थ्य, सस्कृति और काम के वितरण के लिए अलग-अलग कमिटिया है। इसमें वैयक्तिक पुरस्कार का सर्वथा अभाव है।

कुवट्जा किसी अश में एक नूतन आदर्श का सूचक है और भारत में इसके समानान्तर कोई दूसरी चीज नही है। सब जगह से सताये और भगाये जाकर यहूदियो ने इसराइल को जीओनिज्म का धाम बनाया है। हमारे किसान की ऐसी स्थिति नही। इसके लिए जिस प्रेरणा और लक्ष्य की जरूरत है, उसका हमारे देश के किसानो में अभाव है।

उत्पादन की विशाल वृद्धि के लिए पूजीवादी खेती और सामूहिक खेती की प्रणाली उपयोगी है। किन्तु भारत में साधारणत इसके लिए उपर्युक्त अवस्था नही है। इनके मुकाबले हालैंड और डेनमार्क में प्रचलित सहकारी खेती की प्रणाली इस देश की हालतो एवं परिस्थितियो के अनुकूल है और किसान का व्यक्तित्व भी स्वतत्र रूप से विकास करने का अवसर पाता है। इस प्रणाली में वैयक्तिक खेती करने के सब लाभ शामिल है, अर्थात् किसान का वैयक्तिक उत्पादन—क्षमता और उपक्रम का पूरा-पूरा लाभ इसको मिलता है। इसके साथ वह सहकारी प्रक्षेत्र सस्था के सदस्य होने के नाते विशाल परिमाण की खेती का भी लाभ उठाता है। अर्थात् यह भी आधुनिक मशीनो, विशेषज्ञो का परामर्श, कच्चे माल की खरीद और उत्पादन माल की बिक्री आदि में सहकारी प्रक्षेत्र सस्था का लाभ पाता है।

हम अपने देश भारत में नवीन कृषि या आर्थिक तत्र की स्थापना कर रहे है। जिसकी निम्न विशेषताए है —

(१) प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व का विकास करने का अवसर प्राप्त हो।

(२) शोषण और विद्रोह सर्वथा न हो,

(३) उत्पादन की अधिकतम कार्य क्षमता हो, और

(४) खेती-योजना और प्रणाली व्यावहारिक हो।

भारतीय किसान समाज एक ही अवस्था में नही है। प्रत्येक राज्य के अन्दर ही किसान विभिन्न सामाजिक अवस्थाओ में है। अत एक की खेती की प्रणाली सबके लिए उपयुक्त न होगी। इसलिए यदि २० जोत का रकबा आर्थिक दृष्टि से लाभजनक हो तो किसान का वैयक्तिक रूप से खेती करने की व्यवस्था आज के समान भविष्य में भी रहनी चाहिये। सहकारी खेती में सम्मिलित होना उसकी इच्छा पर छोडना चाहिये।

इस सम्बन्ध में मुख्य प्रश्न यह है कि आर्थिक दृष्टि से लाभजनक रकबा किसको माना जाय। इसका निर्णय और देश के लिए एक ही नहीं हो सकता। एक राज्य के लिये भी एक नही हो सकता। क्योकि अवस्थाए एक नही। वृष्टि, आर्थिक तत्र, खेती करने की प्रणाली और उसका तत्र किसानो का जीवन-मान ये कुछ आधारभूत तत्त्व है जिनके आधार पर आर्थिक दृष्टि से लाभजनक रकबा का निर्णय किया जाना चाहिये। इसका उद्देश्य यह होना चाहिये।

(१) यह जीवन-निर्वाह का उचित मान प्रदान करे।

(२) साधारण आकार के परिवार के सब सदस्यो को पूरा रोजगार दे और कम-से-कम एक जोडी बैलो के लायक हो।

(३) प्रादेशिक और क्षेत्रीय आर्थिक तत्र की व्यवस्था किसान के अनुकूल हो।

बुनियादी रकबा कितना बडा होना चाहिये, जो आर्थिक दृष्टि से लाभजनक हो, यह निर्णय करना सरल नही। अकेली सिचाई सुविधा ही खेती का रूप बदल देती है। अत बुनियादी रकबे का निर्णय हरेक क्षेत्र की अवस्था के अनुसार होना चाहिये। बुनियादी रकबे का निर्णय करने के साथ अधिकतम बडे रकबो की भी सीमा निश्चित करना आवश्यक है। नियोजन कमीशन ने इसकी आवश्यकता स्वीकार की है।

भारत में १९२१ से सहकारी खेती का प्रचलन करने का मान किया जा रहा है। पजाब, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में यह प्रयोग उस समय से चालू है। कानून ने सहकारी खेती को सर्वथा स्वच्छा पर नही छोडा है। उसमें कुछ बाध्यता भी है। मसलन यदि एक इलाके के दो तिहाई किसान सहकारी खेती के लिए तैयार होते है तो शेष एक तिहाई किसान को भी उनके साथ मिलकर सहकारी खेती में योग देना होता है।

१९४९ तक पजाब, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में लगभग १६००००० एकड जमीन का एकीकरण कन्सोलिडेशन किया गया। फलत. ४२५०००० खेत के प्लाट ६४६००० प्लाटो में बदल गए। एकीकरण का पजाब में यह लाभ हुआ है कि भूस्वामियो ने अपने रकबे की सिंचाई के लिए कुआ बना लिया है। बाध बाधना, जमीन को समतल बनाना, जल की बचत करना और खाद के लिए गड्ढे खोदना इसके कारण सम्भव हो गया है। कुछ गावो में बेटर लिविंग कोआपरेटिव सुन्दरतर सहकारिता संस्था को अच्छी सफलता मिली है।

रकबो को खड-खड होने से बचाने के लिए बम्बई सरकार ने फ्रैगमेंटेशन एन्ड कसोलिडेशन आफ होल्डिग ऐक्ट १९४७ बनाया और पजाब सरकार ने ईस्ट पजाब होल्डिग कसोलिडेशन एन्ड प्रीवेंशन आफ फ्रैगमेंटेशन ऐक्ट १९४८ बनाया है। इन कानूनो से राज्य सरकारो को एक इलाके के वास्ते प्लाट का न्यूनतम आकार निश्चय करने, जमीन को हस्तान्तरित करने या विभाजन करने को रोकना और जमींदारों की अनुमति के बगैर भूमि एकीकरण की योजना लागू करने का अधिकार प्राप्त हुआ है।

खेतो के एकीकरण और उनको खड-खड होने से बचाने की ओर सरकार और जनता दोनो का ध्यान है। कुछ प्रदेशो को छोडकर जहा सामूहिक खेती के लिए प्रर्याप्त जमीन है और अभी तक गैर आबाद है, शेष देश के लिए सहकारी खेती का हालैंड और डेनमार्क में प्रचलित रूप को हमारे देश ने चुना है।

वन-सम्पदा का महत्व

"आर्य जब सर्व प्रथम भारतवर्ष में आये मैंने ही उन्हे अपनी गोद में आश्रय दिया और फल-मूल खिलाया। मेरे ही अनुपम साज को पहन प्रकृति इतनी रूपसी बन गई कि उसने आर्यों के कोमल भावुक मन को मथकर वेद का प्रथम मन्त्र निकाला।" —वन की आत्मकथा

वन मानव के सास्कृतिक, बौद्धिक, औद्योगिक और आर्थिक विकास का उद्गम है। मानव का कोई भी कार्यक्रम वन की वस्तु के बिना सफल नही हो सकता। मानव समाज को सुखी और ऐश्वर्य सम्पन्न रखने में वन का बहुत बडा हाथ है। हमारे जीवन की मुख्य आवश्यकताओ की पूर्त्ति के आधार वन और वन-पदार्थ है। कृषि का वन से बहुत गहरा सम्बन्ध है तथा मानव के सास्कृतिक विकास के लिए वन का वातावरण विशेष उपयक्त है। वन हमारे लिये सदा से सादगी, सच्चाई और मनुष्यत्व के उचित पाठ पढाने तथा तज्जनित गुण ग्रहण कराने के केन्द्र रहे है।

वन के आध्यात्मिक सौन्दर्य ने आदिकाल से मनुष्य के अन्त करण को आकर्षित किया है। जितने प्राचीन ऋषि-महात्मा भारतवर्ष में हुए है, प्राय सभी ने वन-भूमि में तपस्या कर ज्ञान प्राप्त किया था। महात्मा बुद्ध ने महल छोड वट-वृक्ष के नीचे बैठकर दिव्य-दृष्टि पायी। वेद, उपनिषद, आदि अद्वितीय ग्रन्थो की आत्मा वन के वातावरण से ही आयी थी। मानव-मन ससार की कपट-क्रूरताओ से ऊबकर आत्मा की शांति के लिये वन की ओर अग्रसर होता है।

वन और संस्कृति

प्राचीन काल मे विद्याध्ययन भी वन के शान्त और मनोहर वायुमडल में हुआ करता था। इस वैज्ञानिक और विलासप्रिय युगमें फिर हमारा अशान्त हृदय आलीशान इमारतो से विमुख हो वन के आह्वान को सुनने लगा है। अमेरिका आधुनिक युग में भौतिक सुखो का सर्वश्रेष्ठ केन्द्र है, वहा विज्ञान और उद्योग के मधुर फल लोगो के हाथ में रक्खे हुए है, ऐश्वर्य और सुख साधन की कोई कमी नही है। ससार में कोई भी देश अबतक इतना सुखी नही हो सका है, फिर भी इस सुख-विलास में तर लोग महसूस करते है कि उनकी अन्तरात्मा में कोई ऐसी कमी रह गई है जो उन्हें अशान्त कर रही है। वे अनुभव कर रहे है कि सब होते हुए भी वे सुखी नही है। सुख की ये सामग्रिय उन्हें सुखी नही कर पाती। उनकी आत्मा की एक अज्ञात क्षुधा भौतिक सम्पदाओ से तृप्त नही हो रही है, यही कारण है कि भारतवर्ष से जानेवाले किसी भी साधु-महात्मा की अमेरिका में बडी कद्र होती है। उनकी अज्ञात प्रेरणा की ओर लोग अग्रसर होते है कि शायद उनकी आन्तरिक अशान्ति का समाधान इन महात्माओ की ज्ञान-शिक्षा से हो जाय। ये साधु-महात्मा बाहर भारतवर्ष की वही सास्कृतिक सभ्यता अपने साथ लेकर जाते हैं जिसमे आत्मा प्रधान मानी गयी है शरीर गौण। यदि यह उन्मत्त ससार वैज्ञानिक और औद्योगिक आविष्कारो से यह समझ बैठा है कि सभ्यता और सुख की चरम सीमा यही है तो यह उसकी भारी भूल है। यदि वह सच्चा सुख प्राप्त करना चाहता है और एक दूसरे से प्रेम निर्वाह के साथ शान्ति से रहना चाहता है तो उसे इसी सभ्यता की शरण लेनी पडेगी जिसका आधार और जन्म-भूमि वन है। हम जब ध्यान और ज्ञान की चर्चा करते हैं, सत्य और अहिंसा का विषय उठाते हैं तब अनायास ही हमें हिमालय याद आता है। ईश्वर का ध्यान तो हम कलकत्ते की चौरगी सडक के किनारे या दिल्ली के कनाट पथ पर भी कर सकते है क्योकि हमारे ऋषि-मुनियो ने सिखाया है कि ईश्वर सर्वत्र है, हर प्राणी में है, प्रत्येक अणु में है। किन्तु यह सर्व विदित है कि ज्ञान और ध्यान हलचलके बीच नही हो सकता, इसके लिये तो वन का आश्रय आवश्यक है। विशाल-सृष्टि और मन के गठन में वातावरण का प्रमुख हाथ है। हमारी जो विचार-धारा मशीन के चीत्कारों के बीच उत्पन्न होगी वह अन्तर के उस प्यास को नही बुझा सकती जो सर्व सम्पन्न अमेरिका निवासी अशान्त उद्विग्न हो अनुभव करने लगे है। सत्य और अहिंसा के दूत महात्मा गाधी वन में तपस्या करने तो नही बैठे थे पर उन्होने राम और दधीचि के जीवन से ही शिक्षा पायी जिनकी आत्मा को वन-प्रकृति से इस मूल-धर्म का सन्देश मिला था।

आदिकवि वाल्मीकि ने "पृथ्वीच सकानना" शब्द का व्यवहार किया है, जिससे स्पष्ट है कि पृथ्वी को उसके वन-सखा से पृथक वे कल्पना ही नही कर सकते थे। महाकवि कालिदास की शकुन्तला वन में ही पली थी। अब हम झूठी सभ्यता के फरेब में पडकर वन को सभ्यता का विपक्षी समझने लगे है। परन्तु यह मानना ही पडेगा कि भारतवर्ष की सास्कृतिक गरिमा गगा की तरह वन से ही बहकर आयी है और हमारी अद्वितीय आध्यात्मिक सभ्यता को अक्षय बनाये रखने के लिए वन का अस्तित्व अनिवार्य है। बेबिलन, मिश्र आदि सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुचकर भी वन-सम्पदा खो-देने से मरुभूमि बन गए।

वन और समाज

वन पदार्थ पर मानव-समाज को बहुत कुछ निर्भर करना पडता है, पहले लकडी की ही बात लीजिए। घर बनाने के लिए तथा कुर्सी, टेबुल, खाट इत्यादि के बनाने में कृषि की सामग्री, रेल के स्लीपर, नाव, रेल के डब्बे, पुल इत्यादि के लिए लकडी की विशेष आवश्यकता है। कुछ लोग कहते है कि लोहे का शहतीर देकर मकान बना लेंगे। कुर्सी, टेबुल इत्यादि भी लोहे के बनते है। रेल के स्लीपर भी लोहे के बनने लगे है। किन्तु उपर्युक्त वस्तु के बनाने में कुछ अश तक लकडी की जरूरत पडेगी ही। फिर घर के लिये लोहे का शहतीर कितने को मयस्सर है? धनी लोग

श्री योगेन्द्रनाथ सिन्हा
तथा
श्री सच्चिदानन्द सिंह

भले ही उसे प्राप्त कर ले, पर गाव के साधारण लोग यदि घर इत्यादि के निर्माण में लोहे पर निर्भर होना चाहें तो यह असम्भव सा है। एक तो उनके कच्चे घर लोहे के शहतीर इत्यादि का भार सम्हाल नही सकते और न बैल ही लोहे का हल-जुआठ खीच सकते हैं। दूसरी बात यह है कि इतना लोहा आयगा कहा से ? हमारे देश में इतना लोहा बनने में अभी सदिया लगेंगी कि वह लकडी की जगह ले सके। फिर लोहे का दाम इतना ज्यादा पडेगा कि वह साधारण जनता की शक्ति और पहुच के बाहर ही रहेगा। हमारे यहा लोहे की तो कमी है ही, लेकिन वन की मात्रा भी कम होने के कारण सबको पूरी लकडी नही मिल सकती। तुलनात्मक दृष्टि से हम घर बनाने इत्यादि की लकडी, जलाने की लकडी, लकडी से कागज बनाने का जो पल्प (Pulp) निकलता है, इन सभी के खर्च में दूसरे देशो की अपेक्षा तकलीफ सहकर ही करते हैं। हमारे और दूसरे देशो में प्रत्येक व्यक्ति को कितना वन-पदार्थ सालाना खर्च करने को मिलता है उसका हिसाब यो है —

वन पदार्थ का विवरण	सालाना खर्च व्यक्ति पीछे		
	अमेरिकामें	स्वीडनमें	भारतवर्ष में
१ घर बनाने, कृषि के लिये तथा कुर्सी, टेबुल इत्यादि के लिये लकडी	३० मन	२८ मन	६ सेर
२ जलाने की लकडी	५॥ मन	२७ मन	१६ सेर
३ कागज बनाने का पल्प	३ मन	२ मन	आधा सेर

अब जलावन की लकडी का विषय लीजिये। लोग कह सकते हैं कि लकडी न मिले तो हम कोयला जलायेंगे या बिजली मे खाना पका लेंगे। भू-गर्भ इतिहास से पता चलता है कि कोयला भी वन की लकडी से ही बना हुआ है जो लकडी अति प्राचीन युग में जमीन के नीचे भूचाल इत्यादि से गड गयी थी। कोयले की मात्रा भी सीमित है, वह रोज घटती है, बढती नही। यदि इस कोयले पर ही मनुष्य निर्भर करे तो एक-न-एक दिन कोयले की कमी के कारण उसे भीषण विपत्ति का सामना करना पडेगा। फिर दूर-दूर देहातो मे कोयला भेजने का जितना खर्च पडेगा, उसका बोझ साधारण किसान सह नहीं सकते। सभी कोयला खर्च भी करने लगे तो कारखानो को—जिनका काम लकडी से नही चल सकता बडा भारी धक्का लगेगा। अभी तो भारतवर्ष में कारखाना की काफी कमी है, ज्यो-ज्यो कारखानो की सख्या बढेगी, कोयले की खपत भी त्यो-त्यो बढती जायगी। इसलिए उचित है कि हम घर मे लकडी ही जलावें और कोयले को कारखाने के लिए बचावे। यदि हम वन की रक्षा पर ध्यान रक्खे तो लकडी का भ.डार कभी भी खतम न होगा यद्यपि कोयले की खान शेप हो जायेगी।

शिक्षा, जो सभ्यता का मुख्य अग है, उसकी भी सामग्री वन से ही मिलती है। प्राचीन काल मे भोज-पत्र या ताल-पत्र पर लिखा जाता था। अब कागज पर लिखा जाता है और कागज पर ही समाचार छपते है। लेकिन कागज किस वस्तु से बनता है ? कागज भारतवर्ष [illegible] विशेष कर बास और सबई घास से बनता है तथा दूसरे देशो मे पाइ[illegible] स्प्रूस इत्यादि लकडी से। इससे स्पष्ट है कि वन न रहे तो शिक्षा और सभ्य[illegible] का स्रोत ही सूख जाय।

वन जडी-बूटियो की खान है, औषधि आयुर्वेदिक हो या एलोपैथि[illegible] सभी का आधार मुख्यत वन की जडी-बूटी ही है।

शत्रुओ के आक्रमण मे भी वन हमारी सहायता करता है। गत विश्[illegible] युद्ध में देखा गया कि गोला बारूद, हवाई जहाज इत्यादि रखने [illegible] जगह जगलो में ही खोजी गई। वन मे छिपे रहने से हवाई जहाज के आ[illegible]मण में इनकी रक्षा होती है। युद्ध के समय ऐसे देशो में भी जहा लो[illegible] काफी है, लकडी की विशेष आवश्यकता आ पहुचती है। सेना के लि[illegible] जहा-तहा छोटी-छोटी छावनी बनाने में, जल्दीबाजी के पुल बनाने [illegible] खाना पकाने मे लकडी के बिना काम नही चल सकता। इग्लैंड ने १९१४ [illegible] १९१८ तक की लडाई में अपने यहा जगल की कमी का कटु अनुभव कि[illegible] था और तभी से एक फौरेस्ट्री कमीशन (forestry commission[illegible] स्थापित हुआ जिसका काम था उत्तर खड में वृक्ष रोपकर वन बढाना [illegible] पिछली लडाई में हम भारतवर्ष में ही देख चुके है कि तरह-तरह [illegible] लकडी किस अपरिमित मात्रा में लडाई के काम में लगी थी। बल्कि इ[illegible] आवश्यकता की पूर्ति में इस देश के कई भागो में वनो की बुरी दशा [illegible] गई। इससे ज्ञात होता है कि देश-रक्षा के लिए जितनी आवश्यकता से[illegible] की है उतनी ही आवश्यकता वन और वन-पदार्थों की है।

दुर्भिक्ष के समय वन के कन्द-मूल तथा फल सहायक होते है। जि[illegible] अचलो में वन है वहा भुखमरी कभी सुनी नही जाती। केन्द, पियार, बे[illegible] महुआ इत्यादि के फल साधारणतया खाये जाते है। वन के निकट रह[illegible] वाले कुछ समय तक प्रधानत इन फलो पर निर्वाह भी कर लेते हैं [illegible] कई तरह के कन्दे, वन-आलू इत्यादि भी खोद कर खाने के लिये ला[illegible] जाते है। हिमालय पर अखरोट, स्ट्राबेरी, जगली अनार इत्यादि बहुताय[illegible] मिलते है। कोयनार के पत्ते का साग होता है और इण्डिगोफेरा [illegible] सेलो की भाजी भी बनती है। वन के निकट रहनेवाले लोगो के लि[illegible] खाद्य-समस्या उतनी विकट नही है जितनी अन्य लोगो के लिए।

मवेशी के चरने के लिए घास पर्याप्त मात्रा में वन में ही मिल सक[illegible] है। भारतवर्ष में प्राय २८ करोड मवेशी है और इनके लिए वन सरी[illegible] प्राकृतिक चारागाह न मिलें तो चारा पैदा करके इन्हें पालना बडा कठि[illegible] प्रश्न हो जायगा। हमारे देश में जो व्रजभूमि कभी वनो, उपवनो, ल[illegible] कुजो, फल-फूलो से आच्छादित तथा झरनो के कल-कल और मयूर[illegible] पक्षियो के कल-कूजन से गुजित रहती थी, वह आज उजाड हो गई [illegible] जहा बडे-बडे चरागाहो मे गो-समूह चरा करते थे और घी-दूध [illegible] नदिया बहती थी वहा अब दूध के लाले पड गये है। यमुना के जि[illegible] सुरम्य तट पर कृष्ण की मुरली के मधुर स्वर का साम्राज्य था, वनस्प[illegible] के अभाव से उसकी भूमि कट गई है। जिस गोवर्द्धन पर लता-कुज [illegible] फूल-फल के सुन्दर वृक्ष शोभायमान थे, अब उसका सौन्दर्य नष्ट हो ग[illegible] है और वृक्षो तथा वनो के अभाव में राजस्थान का रेगिस्तान तीव्र ग[illegible] से इस पुण्यभूमि को निगलता जा रहा है। किन्तु हर्ष की बात है [illegible]

सरकार का ध्यान व्रजभूमि की इस हीनावस्था की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ है और उसके पुनरुद्धार के लिये सरकार की ओर से इस भूमि में विभिन्न उपर्युक्त स्थलो पर वृक्षारोपण की विस्तृत योजना तैयार की गई है और कार्यारम्भ हो चुका है। आशा की जाती है कि निकट भविष्य में इसकी स्थिति वहुत कुछ सुधर जायगी।

वन और व्यवसाय

वन कई तरह के व्यवसाय तथा उद्योग-धधो का केन्द्र या आधार है। वन तथा वन के इर्द-गिर्द शहरो में लकडी के कई कारखाने चलते हैं जिनमें वहुसख्यक व्यक्ति रोजी पाते हैं। जगलो में लकडी की कटाई, ढोलाई इत्यादि मे लाखोलाख आदमी जीविकोपार्जन करते है। लकडी के तरह-तरह के खिलौने वनते है, पेड और लताओ के छिलके से रस्सी वनती है और वास की टोकरी इत्यादि। इसी तरह वहुतेरे कुटीर शिल्प वन-पदार्थ पर निर्भर है।

विहार तथा मध्य प्रदेश मे लाह की उपज कुसुम, पलास और वेर के वृक्षो पर होती है। अन्तराष्ट्रिय व्यवसाय में लाह का मुख्य स्थान है। देश में चपडे के कई कारखाने भी हैं जिनमें वहुत लोगो का भरण-पोषण होता है। रेशम और तसर, जिनका भारतवर्ष में काफी वडा उद्योग है, वन के ही पदार्थ है, क्योकि इनके कोये तूत और आसन के पेडो पर लगते है। उत्तर प्रदेश में पाइन के पेडो से तारपीन वनता है, जिसके वडे-वडे कारखाने भी है। खैर के वृक्षो से कई प्रदेशो में कथ वनता है जिसका व्यवसाय भी काफी वडा है।

हर्रा का फल चमडा पकाने के काम में आता है और काफी मात्रा में विदेश भेजा जाता है। इसी तरह कई तरह के छिलके या पत्ते चमडा पकाने के काम में लाये जाते है। सेमल की लकडी से दियासलाई वनती है। वन पदार्थ वास या सवई घास से जो कागज वनता है उसका भी हमारे देश में वहुत वडा उद्योग है जिससे आर्थिक लाभ होता है और श्रमजीवियो को रोजी मिलती है। पकिंग वक्स, शस्त्र और औजार के मूठ आदि का भी व्यवसाय होता है।

भारतवर्ष में जितना वन चाहिये उससे कम है जिसके कारण कई वन-पदार्थ हमें विदेशो से मगाने पडते है। जो वन पदार्थ विदेशो से आते हैं उनका व्योरा यो है—

१	चीरी हुई लकडी	३,००,००० घनफुट
२	जलावन की लकडी	१००० घनफुट
३	कागज वनाने का पल्प	२१,००० घनफुट
४	अखवार का कागज	२,८७,००० घनफुट
५	दूसरे तरह का कागज या कूट	१,७१,००० घनफुट
६	फाइवर वोर्ड	३१,५०० घनफुट

रूपये के हिसाव से वन-पदार्थो के आयात और निर्यात का आकडा यो है —

आयात	१९,६८,५०,००० रूपये
निर्यात	७३,३०,००० रूपये

अर्थात् लगभग १९ करोड रूपया हमारे देश का खर्च होता है वाहर से वन-पदार्थ खरीदकर मगाने में। इसके वितरीत कनाडा देश को लकडी इत्यादि वेचकर ३ अरव ३ करोड रूपया सालाना मुनाफा होता है और फिनलेंड को जो भारतवर्ष के एक प्रदेश के वरावर है, १ अरव ३४ करोड रूपये की वचत होती है। यदि हम अपने वनो का क्षेत्रफल वढाकर तथा उसकी स्थिति सुधारकर इस १९ करोड के आयात खर्च को वचा लें तो उनसे हम देश के कई काल्याणकारी कार्य आमानी से करके समाज को महान लाभ पहुचा सकते हैं।

वन का वैज्ञानिक प्रवन्ध

लोग कहते हैं, वन का प्रवन्ध क्या ? पेड तो खुद वढता है, आप उसे खीचकर तो वढाते नही, तो प्रवन्ध किस लिये ? वन की रक्षा ही करनी है तो उसे काटिये मत। लेकिन हम यहा वताना चाहते है कि वन मे पेड काटे भी जा सकते है और साथ-साथ वन की रक्षा भी हो सकती है। यह कैसे ?

वन एक सम्पत्ति है, जिस तरह हर सम्पत्ति से हमें आमदनी प्राप्त करने का हक है, गाय से दूध लेने का, खेत से उपज लेने का, घर से किराया लेने का और वैंक से अपने जमा रूपयो के सूद लेने का, उसी तरह वन-सम्पत्ति से भी लाभ उठाने का हमे अधिकार है। यह नियम हर सम्पत्ति पर लागू है कि उसका व्याज लिया जाय और मूलधन को सुरक्षित रक्खा जाय, तभी उस सम्पत्ति का कोई हानि न होगी। तो वन-सम्पत्ति का व्याज क्या है ? इसका व्याज है उसके वृक्षो की सामूहिक वृद्धि। हर पेड पर हर रोज कुछ न-कुछ वढता है। किसी भी वन के हरेक पेड की वार्षिक वृद्धि जोडी जाय तो वही उसका वार्षिक व्याज हुआ। यह तो सम्भव नही कि प्रत्येक पेडको छीलकर उसकी वार्षिक वृद्धि निकाल ली जाय। इसलिए उस वृद्धि को वृक्षो की सख्या में परिणत करते है और उसी को कूप (Coupe) वनाकर निकालते हैं। कूप वन की वार्षिक वृद्धि हुई। ध्यान रक्खा जाता है कि काटने से कोई जगह खाली न हो जाय, वल्कि जहा पेड घने है वहा दो-चार पेड निकाल लेने से जो पेड वचें उन्हें वढने में और भी सुविधा होगी। इससे आप समझ सकते है कि वैज्ञानिक रीति से वन काटने पर नुकसान नही हो सकता, वल्कि उसकी उन्नति होती है।

उसके व्याज का भी कुछ हिस्सा छोड दिया जाता है। वैज्ञानिक प्रवन्ध में अधिक लकडी काटने से भी जहा क्षति नही होती वहा वेनियम उसके आधा भी काटने से जगल नष्ट हो जा सकता है। यही कारण है कि जमीन्दारी जगल वहुत कुछ वरवाद हो गये लेकिन सरकार की देख-रेखवाले जगल दिनदिन उन्नति पर है। वैज्ञानिक प्रवन्ध मे वन को एक वडा वाग समझा जाता है। जिस तरह माली अपने वाग के हर पौधे की रक्षा करता है उसी तरह वन विभाग के अधिकारी और कर्मचारीगण अपने वृक्षो की देख-रेख करते है। हमारे देश में वैज्ञानिक प्रवन्व अभी कुछ नीचे स्तर पर ही है। यूरोप में फी एकड ३५ घनफुट लकडी हर साल निकाली जाती है लेकिन भारतवर्ष मे अभी तक केवल २५ घनफुट लकडी प्रति एकड निकाली जाती है।

वन और जल विद्युत

जल विद्युत सचार के लिये यह आवश्यक है कि नदियो मे साल भर पानी वहा करे। स्वीटजरलैंड में कोयला नही है। वहा की रेल विजली से चलती है, कारखाने विजली से काम करते है और सडक के किनारे लोहार

की भट्ठी भी बिजली से गरम होती है। उन लोगो ने अनुभव से सीखा कि जल-विद्युत पैदा करने के लिये जिस जल की आवश्यकता है वह पहाडो के वनाच्छादित रहने पर ही नदियो से बराबर आता रहेगा। इसीलिए स्वीटजरलैंड में छोटी पहाडी भी वनहीन नही है, नीचे से तिहाई भाग तक पहाडी पर खेती या बागवानी की जा सकती है, पर इसके ऊपर के जगलो को काटने की कानूनन शख्त मनाही है। इटली में भी युगो के वीरान पहाड फिर से वृक्ष लगाकर ढके जा रहे हैं, बाढ को रोकने के लिये। अमेरिका में प्रतिवर्ष कई करोड डालर वीरान भूमि को वृक्षो से ढककर उर्वर मिट्टी बचाने में खर्च किये जाते है। कारण यह है कि जहा वन नष्ट हो गया है वहा की पैदावार कम होती जा रही है।

भारतवर्ष में कोयले की उतनी कमी नही है पर कोयले के खर्च में मितव्ययिता आवश्यक है। देश के प्रत्येक भाग में कोयला है भी नही, और जगह-जगह ले जाने में खर्च भी पडता है। इन कारणा से तथा बिजली को सस्ती करने के लिए अन्य देशो की तरह यहा भी जल-विद्युत सचार की व्यवस्था जोरो से की जा रही है। बडे-बडे बाघ (dam) बन रहे है, जैसे—भाखरा और नागल, दामोदर घाटी, हीराकुड इत्यादि। यहा इजीनियरो ने बड़े-बडे बाध (dams) बनाये गये हैं और बनाये जा रहे हैं। उद्देश्य यह है कि वर्षा जल का अधिक हिस्सा बाध द्वारा निर्मित झीलो में सरक्षित कर लिया जाय और उसी जल के क्रमिक प्रवाह से जल-विद्युत का सचार साल भर होता रहे। अभाग्यवश इन इजीनियरो ने इस काम में वन के महत्त्व पर समुचित ध्यान नही दिया है। ऊपर 'वन और बाढ' के सम्बन्ध में बताया गया है कि किस तरह नग्न भूमि से वर्षा का जल मिट्टी काटकर बहाता है। जितने वर्गमील क्षेत्र से किसी झील में पानी आता है, उतने की सारी धुली मिट्टी आकर झील में विशेषकर बाध के पीछे आकर जमा होगी और कुछ वर्षों के बाद झील का सतह उठ जायगा और उसमें पानी जमा होने की जगह हर साल कम होती जायगी। यह निश्चित है कि यदि इन बाधो या झीलो के ऊपर वन का समुचित आच्छादन न हो तो ये उसके बहुत पहले आहत-सूची में आ जायेंगे जिस भय का इजिनियरो ने वन-महत्ता की अज्ञानता में अन्दाज कर रक्खा है।

ऊपर कहा गया है कि जहा समुचित रूप से वन है वहा वर्ष के विविध महीनो में वर्षा का विभाजन अधिक उपयोगी रूप से होता है। यह भी बतला देने की चेष्टा की गई है कि पहाडी अचलो में यदि वन न रहे तो सारी उर्वरा मिट्टी धुलकर बह जाय और खेती की जमीन ऊसर वीरान या धीरे-धीरे खन्दक बन जाय, इसलिए ऐसे इलाको में तो वन कृषि का सहयोगी ही नहीं, बल्कि प्राण है। 'वन और बाढ' शीर्षक के नीचे कहा गया है कि वन-सम्पन्न अचलो में वर्षा-जल को जमीन स्याही-सोख की तरह सोख लेती है और उसे सरक्षित कर बरसात के बाद कई महीनो तक झरना के रूप मे बहाती रहती है जिससे सिंचाई में सुविधा होती है। इससे स्पष्ट है कि कृषि को वन से बडी सहायता मिलती है। पहाडो के ठीक नीचे जो खेत है वे तो एक ही वर्ष मे मिट्टी, बालू, पत्थर से भर कर बेकार हो जाय यदि पेड की जडे पहाड की मिट्टी को बाध कर न रक्खे।

वन से ढके पहाडो से जो वर्षा-जल आता है वह अपने साथ सडी पत्तियो की खाद लाता है जिससे फसल को लाभ पहुँचाता है।

हल-जुआठ आदि खेती के समान वन के आस-पास किसानो को सस्ते दाम मे सुगमता से मिल सकते हैं।

लकडी के अभाव से गोबर के कण्डे बनाकर जलाये जाते हैं। यदि लकडी काफी मिले तो यह गोबर खाद के काम में लाया जाता जिससे फसल मे काफी वृद्धि होती। अन्दाज लगाया जाता है कि भारत में प्रतिवर्ष लगभग ४० करोड बैलगाडी गोबर इसी तरह जला दिया जाता है। यदि यह सारा गोबर खाद बनाकर खेत में डाला जाता दो अनुमानत ४० करोड मन खाद्य पदार्थ और अधिक पैदा होता।

वन और वृष्टि

वन से वृष्टि का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यो तो वृष्टि के अनेक कारण है और हो सकता है कि वनहीन जगह में कभी मूसलाधार वृष्टि हो और वनाच्छादित अचल सूखा रह जाय। परन्तु मूसलाधार वृष्टि से क्या लाभ? हमें तो थोडा-थोडा पानी साल भर या वर्ष के अधिकाश समय तक मिलता रहे तो खेती का काम ठीक से चले। यदि ५० इच वर्षा हो या तीन महीनो में हो जाय तो उससे उतना लाभ नही होगा जितना कि इसकी आधी वर्षा बारह महीनो में बट कर हो। वन का हाथ इसी में है कि वर्षा को थोडा-थोडा करके बरसाता है। बिहार के पटना, शाहाबाद इत्यादि मे जाडे और बरसात के बीच बहुत कम वर्षा होती है किन्तु छोटानागपुर में बहुधा थोडा-थोडा पानी बरसा करता है, फलत टॅवाधान की एक फसल बरसात के पहले ही लोग कही-कही उपजा लेते हैं। इस तरह की खेती वन के इलाको में ही सम्भव है। इसके अतिरिक्त वन हवा की गर्मी को घटाकर तथा उसे नमी प्रदान कर शीतल बनाता है। यही कारण है कि गर्मी के दिनो में गया और पटने की अपेक्षा हजारीबाग और राची में गर्मी का प्रकोप कम रहता है। इसी तरह के उदाहरण अन्य प्रदेशो के सम्बन्ध में भी दिये जा सकते हैं।

वन और बाढ़

लोग कहा करते है कि लकडी इत्यादि की बात तो मानी जा सकती है पर जब आप यह समझाने लगते है कि पहाडो पर जगल हो तो नदियो में बाढ न आये, यह चन्डूखाने का गप सा लगता है। कहा हिमालय और विन्ध्य प्रर्वत और कहा गगा और सोन में बाढ? कहा छोटानागपुर की पहाडिया और कहा बगाल की बाढ। यह तो होमियोपैथी के मजाक सा दीखता है कि हरद्वार की गगा में एक बूद दवा डाल दो और पटने में पी लो तो रोग अच्छा हो जाय।

बात कुछ अजीब सी लगती है जरूर, फिर भी सच्ची है। वन की अदृश्य उपयोगिताओ के समझाने में उन्ही कठिनाइयो का सामना करना पडता है जो यह प्रमाणित करने मे कि पृथ्वी चिपटी नही, गोल है, हम ऊगली रखकर नही बता सकते कि पृथ्वी यहा गोल है, उसी तरह हम उगली रखकर यह भी नही बता सकते कि देखिये वन-रक्षा की गई तो अमुक लाभ तुन्रत हो गया और वन-विनाश से अमुक हानि हो गई। वन रक्षा से जो लाभ होता है उसके होने में समय लगता है और उसके दुरुपयोग से जो हानि होती है उसमे भी समय लगता है। इसीलिए वन-वैज्ञानिक की बातो पर सहज में विश्वास नही किया जाता। परिणाम का दृष्टान्त देकर ही हम हानि या लाभ समझा सकते हैं।

बाढ का विषय ही लिया जाय। दो पहाडियो का मानसिक चित्रण कीजिए। दोनो एक दूसरे के समीप है पर एक पहाडी वन से पूर्ण आच्छादित है और दूसरी नग्न, वीरान। वर्षा हो रही है। देखा जाय दोनो पर वर्षा का क्या असर पड रहा है। पहले नग्न वीरान पहाड को लीजिये। बून्दें सीधे जमीन पर आ पडती हैं और मिट्टी को कुरेद डालती हैं। मिट्टी के अच्छी तरह भीग जाने के वाद पानी पहाड के उतार पर वहने लगता है। पानी जितने नीचे वढता है उसकी गति उतनी ही तीव्र होती जाती है और उसमें मिट्टी-कक ड, वालू वहाकर ले जाने की शक्ति भी उसी अनुपात से वढती जाती है। इसीलिए वीरान पहाड से जो वर्षा का जल नीचे छलाग मारता हुआ उतरता है, वह लाल होता है और उसमें मिट्टी, ककड भरा रहता है। ऐसे पहाड पर छाया तो है ही नही, जमीन धूप में सूखकर कडी हो गई है इसलिए पहाड की भूमि पानी को सोख भी नही सकती। अत वर्षा का सारा जल गडगडाता हुआ और मिट्टी को धोकर वहाता हुआ नीचे चला आता है। वर्षा के दो-चार घटो के वाद उस पहाड को सूखा ही पाइयेगा। पहाड से जो पानी उतरा, वह छोटे नालो मे गया, फिर वडे नालों में, और अन्त में नदी में। अव अनुमान कीजिए एक पहाडी जिला, जिसका क्षेत्रफल पाच हजार वर्गमील है और जिसमें जगल वरवाद होने के वाद इसी प्रकार नग्न, वीरान पहाड और पहाडिया हैं वर्षा तमाम हो रही है। अव इन सारे पाच हजार वर्गमील का वर्षा-जल एक ही साथ उतर कर यदि नदियो में एकाएक पहुच जाय तो वाढ को कौन रोक सकता है? इधर समतल मे वाढ हुई और उधर पहाडी इलाके में उर्वरा मिट्टी वह जाने से फसल में कमी होने लगी। ऐसे इलाको में वरसात के कुछ दिनो के वाद ही नदी, नाले सभी सूखे मिलते हैं। सिचाई के लिए पानी की तो वात ही न पूछिये, यहा तो मवेशी वरसात के वाद प्यासे फिरते हैं। ऐसे वीरान पहाड-वाले जिले में कितना भी पानी वरसे, वरसात के वाद पानी नही मिल सकता। वल्कि जितनी ही वर्षा अधिक हो, उतनी ही खरावी पहुचती है क्योकि उसी मात्रा में मिट्टी भी धुलेगी और समतल मे वाढ भी आयेगी।

अव देखा जाय उस पहाडी की हालत, जो वन के पेड, पौधो और लताओ से आच्छादित है। यहा वर्षा की वून्दें पहले तो पत्तो पर पडती हैं और यही उनकी ताकत खत्म हो जाती है। कुछ देर के वाद पत्तो से चूकर वर्षा-जल जमीन पर आता है। यह तो अनुभव सभी को है कि वर्षा आ जाय तो पहले लोग किसी पेड के नीचे पानी से वचने के लिए आश्रय लेते है। हल्की वर्षा हुई तो आदमी भीगने से वच भी जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वन की जमीन पर जो वर्षा-जल पहुचता है, उसमें मिट्टी काटने की ताकत नही रहती है। जगल के भीतर की जमीन सूखी अत्रसडी पत्तियो से ढकी रहती है। वर्षा-जल उसके भीतर से होकर मिट्टी तक पहुचता है। यहा की मिट्टी मुलायम होती है और उसके साथ सडे पत्तो का खाद मिश्रित रहता है। यहा की जमीन वर्षा जल का एक पूरा अग स्याही सोख की तरह सोख लेती है और यही पानी पीछे झरना वनकर निकलता है। जो पानी वचा, वही पहाड के नीचे उतरता है। उसके उतरने में इतनी वाधाए हैं कि पानी तेजी से नही वह सकता इसलिए मिट्टी भी नही धुलती। पानी एक साथ नही वहकर धीरे-धीरे नाले और नदियो में पहुचता है। इसीलिए वाढकी सम्भावना नही रहती और उपजाऊ मिट्टी भी जहा की तहा वचकर रह जाती है। वरसात के वाद यही सचित वर्षा-जल नालो और नदियो में झरना वनकर आता है जिससे सिंचाई का काम हो सकता है। इस तरह देखते है कि पार्वत्य अचलो मे वन के अस्तित्व का कितना वडा महत्त्व है। कोसी की वाढ को जो भारत की समस्या हो गई है साधारण लोग दैवी प्रकोप समझते हैं पर उसका दायित्व तो सुदूर हिमालय के उस वनहीन हिस्से को है जहा से वह वहकर आती है।

वन-प्रबन्ध का सक्षिप्त इतिहास

जव जगल जरूरत से ज्यादा था तव जगल काटकर आवाद करना ही धर्म समझा जाता था। यद्यपि यूरोप में सैकडो वर्ष पहले से वैज्ञानिक वन-प्रवन्ध की व्यवस्था चल रही थी, पर भारतवर्ष मे सर्व प्रथम सन् १८५६ ई० में वन-रक्षा की ओर ध्यान गया। जमीन्दारी जगलो को कानून के अन्दर लाने और उनको वैज्ञानिक प्रवन्ध की परिधि में दे डालने में विहार ने सवसे पहले कदम उठाया और इसका श्रेय विहार के राजस्व-मत्री श्री कृष्ण वल्लभ सहाय जी को है।

१९४६ ई० तक यहा करीव २५०० वर्गमील वन सरकारी प्रवन्ध में था पर उसके विपरीत करीव १० हजार वर्गमील वन जमीन्दारोंके हाथ नष्ट-भ्रष्ट हो रहा था। १९४६ में विहार प्राइवेट फौरेस्ट्स ऐक्ट (Bihar Private Forests Act) वना जिसके अनुसार प्राय सभी जमीन्दारी वन सरकार के प्रवन्ध में लाये गये। इसके वाद दूसरे-दूसरे प्रदेशो ने भी जमीन्दारी वनो को प्रवन्ध में लेने का कार्य आरम्भ किया।

किसी भी देश में जमीन का २० से २५ प्रतिशत हिस्सा वन से आच्छादित रहना चाहिये जिसमें उपर्युक्त सभी पहलुओ से जनता का कल्याण हो। भारतवर्ष में भूमि का क्षेत्रफल ११,७६,८६४ वर्गमील है पर वन का रकवा १,७१, ३२८ वर्गमील ही है अर्थात् जगल जमीन का १४ प्रतिशत है, जवकि फिनलैंड में ७४ प्रतिशत, स्वीटजरलैंड में ५५ प्रतिशत, रूस में ४४ प्रतिशत, फ्रास में २४ प्रतिशत और इटली में २० प्रतिशत वन हैं। इसलिए हमारे यहा वीरान जगहो में वन रोपकर वढाने की आवश्यकता है और जो वन वचा हुआ है उसकी भी वैज्ञानिक प्रवन्ध द्वारा उन्नति करनी है क्योकि जहा यूरोप में एकड पीछे ३५ घनफुट लकडी की सालाना आमदनी होती है वहा भारतवर्ष में २५ घनफुट से भी कम।

वन रक्षा में सभी का गहरा सम्वन्ध है। कपडा, तेल, सिमेन्ट या गल्ला भी कम हो जाय तव विदेशो से मगा लिया जा सकता है, खेती एक साल उजड जाय तो दूसरे साल उसमें पर्याप्त मात्रा में खाद देकर अच्छी फसल उपजायी जा सकती है, पर वन एक वार नष्ट हो जाय तो उसे न दूसरे देश से मगा सकते है या न एक-दो साल में तैयार ही कर सकते हैं। सखुआ या सागवान का पेड आज लगाया जाय तो एक सौ वीस वरस के वाद उससे काम की लकडी मिल सकती है। अत वन-सम्पदा से लाभ उठाने के लिए काफी धैर्य और सयम से काम लेने की आवश्यकता है।

बिहार में कृषि का पुनरसंघटन

प्रो० केदारनाथ प्रसाद, एम० ए०

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है। अति प्राचीन काल से कृषि, बिहारियो के प्रमुख पेशो में से एक रही है। राज्य की आर्थिक अवस्था मुख्यत कृषि पर ही आधारित है, क्योकि यहा की ८६ प्रतिशत आबादी कृपि पर ही प्रत्यक्षत निर्भर करती है। गावो के शिल्पी और मिलो में काम करनेवाले मजदूरो का भी कृषि से गहरा सम्पर्क है।

एक शव्द मे, केवल अतीत में ही नही वरन् वर्तमान में भी राज्य का सम्पूर्ण आर्थिक सगठन कृषि के द्वारा ही निश्चित होता है। यह अनुमान किया गया है कि प्रतिवर्ष राज्य की कुल आय का ६७ प्रतिशत केवल कृपि से आता है। इस प्रकार विहार में कृषि के महत्व को किसी प्रकार अस्वीकार नही किया जा सकता। निर्धन प्रजा, निर्धना राजा, निर्धन देशवाली पुरानी किंवदन्ती बिहार जैसे राज्य के लिए बिलकुल सत्य उतरती है।

मौसिमी फसल के नष्ट होते ही समूची आर्थिक प्रणाली अव्यवस्थित और शोचनीय हो जाती है। कृपि के उत्पादन से ही हमारे वहुत से उद्योगो को कच्चा माल मिलता है। अनेको व्यक्ति अन्य व्यापार में लगे हुए हैं। राज्य सरकार को कृपि के जरिये मालगुजारी और कृषि कर के रूप मे खासी आमदनी होती है। वहुत अंश में कृषको को अल्प क्रय-शक्ति के कारण कुछ उद्योगो में वनी वस्तुओ का उपभोग सीमित हो जाता है। कृपि की प्रगति से ही वनोन्नति भी होती है तथा इसी के द्वारा अन्तर्देशीय व्यापार का सतुलन निर्णीत होता है।

राज्य की निरन्तर वढती हुई आवादी का एकमात्र सहारा भूमि ही है इससे इन्कार नही किया जा सकता। पिछले तीन दशको मे भूमि पर जनसख्या का भार वहुत अधिक वढा है जिसके फलस्वरूप ग्रामीण आर्थिक प्रणाली में भयकर गत्यरोध उपस्थित हो गया है। १९२१ और १९५१ के बीच जबकि जनसख्या में ११० लाख की वृद्धि हुई है, कृपि योग्य भूमि मे केवल २० लाख एकड की वृद्धि हुई है। प्रति वर्ष जन वृद्धि की दर १ ३ प्र० श० रही है। प्रतिवर्ष ४ से ५ लाख तक नये मुह वढ जाते है। ग्रामीण जन सख्या जिसके जीवन का मुख्य आधार कृपि है, प्रति दिन १ २५ हजार की दर से वढती है।

कृपि, जो विहार की आत्मा है, आज दयनीय स्थिति मे गुजर रही है। हम जिस दृष्टिकोण से देखे, कृपि की ईकाई, औजारो का उपयोग, फसल परिवर्तन, आधुनिक तरीको से फसल वृद्धि, विहार की कृपि वहुत ही पिछडी दशा मे है। पशु पालन तथा कृपि से सम्बन्धित अन्य पेशे भी अभी तक अनिश्चित स्थिति मे है।

प्रति एकड उत्पादन से जो आय हमें प्राप्त होती है, वह भी करुणाजनक ही है। बिहार में प्रति एकड धान की उपज से ८८, गेहूँ से १८४, जौ से ७४, मकई से ६०, चना से ८२, तीसी से ३०, सरसो से ८२, ईख से २७३ और तम्बाकू से ८६० रूपयो की आय होती है। धान, जौ, गेहू, मकई और चना की प्रति एकड उपज क्रमश ६२७, ६१७, ७७७,६७२ और ६४४ पौंड है। यह तनिक चौंका देनेवाली वात है कि जहा भारत में प्रति एकड धान की उपज १०४५ पौंड है वहा बिहार मे यह सिर्फ ६८७ पौंड है।

हमारी कृषि की सबसे बडी कठिनाई है, प्रति एकड उत्पादन की निम्न दर। खाद्य पदार्थ का कुल उत्पादन कम नही, प्रति एकड उपज भी अत्यन्त अल्प है। इसके बहुत से कारण है। बिहार में सिंचाई की व्यवस्था बहुत कम है। सभी सिंचाई के साधनो के बाद भी कुल बोई जानेवाली भूमि का केवल २३ ४ प्रतिशत ही सिंचाई की सुविधा से युक्त है। इस प्रकार यहा की कृषि पूर्णतया वर्षा पर आधारित रहने को बाध्य है। वर्षा की अपूर्णता और अनियमितता के कारण वहुत सी फसल मारी जाती है। कृषक अच्छे बीज का प्रबन्ध नही कर पाते, बीज को सुरक्षित रखने का उनका ढग भी अच्छा नही है। खेतो में खाद डालने की प्रथा अपूर्ण होने के साथ-साथ अवैज्ञानिक भी है। खेती के पुराने तरीके और अलाभदायक हैं। पशु सहायक होने के बजाय बोझ बने हुए हैं। कृषक अनपढ, रुढिवादी, भाग्य पर जीनेवाले और गरीब हैं। खेतो का विभाजन इतने बडे पैमाने पर हुआ है कि एक खेत का औसत क्षेत्रफल ३ ५ एकड रह गया है। विहार मे प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि ३ एकड पडती है। अनार्थिक चकलो के वावजूद भूमि ह्रास, फसल परिवर्त्तन का अज्ञान और सम्मिलित खेती के अभाव में भूमि का उचित उपयोग नही हो पाता। जगली जानवरो, कीडो और टिड्डियो के चलते फसल का एक वडा हिस्सा नष्ट हो जाता है। अधिकाश आवादी के कृपि पर आधारित रहने के कारण कृषि लाभदायक पेशा नही रह गई है। हमारी कृपि मे अन्य भी कई न्यूनतायें हैं।

प्रथमत यहा पूजी का अभाव है। सहयोग समितियो का कार्य वहुत आशाजनक नहीं रहा है। कृपको की गरीवी भी एक महान वाधा है। वे गरीवी में ही जनमते है, गरीवी में ही पलते और गरीवी में ही मर जाते

है। साहूकार और बनिये बिना किसी बाधा के उनका शोषण करते हैं। बाजार का सगठन पुराने तरीके पर होने के कारण भी उन्हें अधिक लाभ नही हो पाता। जीवन के आवश्यक साधनो को प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार की रोजियो का सर्वथा अभाव है। ग्रामीण आर्थिक प्रणालियो मे मौसिमी और अपूर्ण रोजी ही लोगो के जीने का एकमात्र साधन है। भूमि-हीन किसान किसी प्रकार अपने को जिन्दा रखने में समर्थ होते हैं। अधिक लगान तथा भयकर तगी के चलते उनके जीवन की सारी प्रफुल्लता लुप्त हो जाती है। उनको खेती जैसे मनहूस काम मे लगा रहना पडता है, जिससे कि उनके जीवन में किसी प्रकार की विकास की सभावना नही रहती है। इसके अतिरिक्त बाढ के भयकर प्रकोप से विहार की कृषि को भयकर धक्का लगा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले अग्रेजो की इस ओर से उदासीनता, निश्चय ही कृषि की दयनीय दशा के मूल में है।

यह कहना निष्प्रयोजन ही है कि राज्य तथा देश के कल्याण के लिये कृषि सगठन अत्यावश्यक है। आखिर किस प्रकार हम इस महान कार्य की पूर्ति कर सकते हैं? निश्चय ही सफल कृषि के मार्ग की सभी बाधाओ को हटाकर हम इस कार्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। आज की सबसे बडी आवश्यकता यह है कि कृषि के अधिकाधिक साधन हमारे पास हो। सिंचाई के निम्न साधनो पर हमें निश्चय ही अधिक जोर देना चाहिये। सिंचाई के सम्मुन्नत साधनो के जरिये कृषि में ५० से १०० प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है।

बीज के सुधार के फलस्वरूप भी उत्पादन में ५ से ६ प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। तीसरा स्थान खाद का है। उनके जरिये २० से ४० प्रति-शत उत्पादन बढ सकता है। सहयोग समितियो तथा ग्राम पचायतो के माध्यम से सरकार को पर्याप्त जलावन का प्रबन्ध करना चाहिये जिससे गोबर का दुरुपयोग न हो सके। सिंचाई की सुविधा, अच्छे बीज और उत्तम खाद के जरिये कृषि उत्पादन में २५ प्रतिशत वृद्धि हो सकती है।

खेती के वर्त्तमान तरीके में आज आवश्यक परिवर्त्तन जरूरी है। सरकार का कर्तव्य है कि वह कम दाम में खेती के आधुनिक औजार किसानो को दे। मानव श्रम के अधिकाधिक उपयोग को ध्यान में रखते हुए खेती के तरीको का आधुनीकीकरण जरूरी है। बैलगाडियो की बनावट और आकार-प्रकार में भी सुधार अपेक्षित है। पशु पालन पर भी अधिक ध्यान देना होगा। अधिकाधिक पशु चिकित्सालयों, चारो की वृद्धि और नस्ल सुधार के जरिये आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सकता है।

वयस्क मताधिकार पर आधारित किसी भी गणराज्य के लिये यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि वहा के किसान स्वय अपने पथ का निर्माण करे। चाहे वह आर्थिक क्षेत्र हो या सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र हो या सास्कृतिक, सभी जगह उन देहातियो द्वारा उन्नति का पथ निर्मित हो सकता है। युग-युग से उपेक्षित किसानो और मजदूरो के प्रति हमें अपनी दृष्टि बदलनी होगी। उन्हें उचित शिक्षा देकर इस योग्य बनाना होगा कि वे आधुनिक विचार धारा से परिचित हो सकें। इसके लिए यह जरूरी है कि व्यावहारिक प्रदर्शन द्वारा उन्हें शिक्षा दी जाय। आधुनिक ढग की शिक्षा उनके लिए किसी काम की नही। खेतो की चकबन्दी का काम भी ईमानदारी से करना होगा। अब जब कि जमीन्दारी प्रथा का उन्मूलन हो गया है उन क्षेत्रो में सहयोगी खेती अच्छी तरह हो सकती है।

खेती के तरीको का राष्ट्रीकरण करके भूमि पर वर्त्तमान जनभार को कम करना होगा। कृषि में लगे हुए अतिरिक्त व्यक्तियो को लाभदायक रोजी के साधनो का विस्तार कर उन्हें इस योग्य बनाना होगा कि वे न्यूनतम आर्थिक सुविधा प्राप्त कर सकें। भूमि बन्धक, बैंको और सहयोग समितियो के विस्तार के द्वारा उन्हे सस्ती साख और कम दाम पर कृषि के औजारो का प्रबन्ध करना होगा। कर्ज देने के व्यवसाय को निश्चय ही स्वस्थ और सगठित होना होगा। कृषि बाजार का पुनर्निर्माण आज की अत्यन्त तीव्र आवश्यकता है और राज्य को उसके त्वरित विकास के लिए सन्नद्ध होना अत्यावश्यक है। बाजारो में फैली बुराइयो को समूल विनष्ट करने मे सरकारी दूकानें और सहयोग समितिया ही सफल हो सकती हैं। यदि आवागमन के साधनो तथा वहन सुविधाओ का सुचारु प्रबन्ध जल्द-से-जल्द किया जाय तो देहाती जीवन में एक महान परिवर्त्तन होगा और गाव तुरन्त ही आर्थिक कार्य के आकर्षक अखाडे बन जायेंगे।

दस्तकारी और कुटीर उद्योगो का पुनर्वास आज कितना आवश्यक है, सम्भवत उतना कभी नही था। अतिरिक्त जनशक्ति और कर्महीन अवकाश में आवश्यक सन्तुलन आज की तीव्र आवश्यकता हो गई है। कृषक में सुधार आज अत्यावश्यक है। अधिकाधिक बेकार पडी हुई जमीन कृषि के अन्तर्गत लाना होगा। इस प्रकार हम खाद्य की भयकर कमी जो आज समूचे आर्थिक निर्माण को उलटने पर तुली हुई है, को दूर कर सकते हैं। कृषि सम्बन्धी शिक्षा और खोज की निरन्तर वृद्धि होनी चाहिये। इसके लिये कालेजो को ग्रामो में अधिकाधिक सख्या मे खोलना आवश्यक है। कृषि सम्बन्धी बीमा कम्पनियो की भी आज जरूरत कम नही। ग्राम बैंक भी इस दिशा मे काफी सहायता प्रदान कर सकेंगे और इनके जरिये अदूर-दर्शिता की समाप्ति तथा लोगो का भूमि, रूपया, सोना आदि के प्रति जो अत्यधिक मोह है उसका अन्त होगा। ये ग्राम सुधार के पथ की महान बाधाए हैं।

इन कृषि सम्बन्धी समस्याओ की भूमिका मे पिछले वर्षों में सरकार द्वारा किये गये प्रयत्नो का अवलोकन लाभदायक होगा। हम कह सकते हैं कि सरकार ने इस सम्बन्ध में सात काम किये हैं १ सूद पर कर्ज देने की व्यवसाय के नियत्रण का कानून, २ भूमि की मालगुजारी प्रथा में सुधार, ३ अधिक अन्न उपजाओ योजना की सृष्टि और उसकी सफलता के लिये सभी प्रकार की सहायता देने का कार्य ४ सिंचन साधनो का निर्माण, ५ कृषको को खाद, बीज और कृषि औजार आदि प्रदान करना, ६ पशुओ के स्वास्थ्य मे सुधार और ७ फल तरकारियो के अधिकाधिक उत्पादन, तथा दूध, मधु आदि को अधिकाधिक मात्रा मे तैयार करने की योजना।

१९४६ मे विहार सरकार ने राज्य को खाद्य वस्तुओ के विषय मे आत्म-निर्भर बनाने के विचार से एक पचवर्षीय योजना में ३,३३,०९,१९० रूपयो का अनावर्तक व्यय और १,३६,४४,६६२ रूपयो का आवर्तक व्यय करने का निश्चय किया गया। कार्यक्रम को सात भागो में विभक्त किया गया (१) कुए खोदना, (२) लघु सिंचन योजनाओ

का निर्माण, (३) ट्यूववेल का प्रवन्ध, (४) सिंचाई की वृहद् योजनाओ का विकास, (५) चौरो का उद्धार, (६) बजर भूमि कर्षण तथा (७) खाद का प्रवन्ध ।

पिछले आर्थिक वर्ष तक करीब-करीब सभी क्षेत्रो मे प्रगति रही । नीचे दिये गये लक्ष्य प्राप्त किये गये, मध्यम आकार की नहरे, पईन और वाघ ९०, कुए ४००१, ट्यूब पप २०९७, लिफ्ट पट २३४७, ट्यूब पप वेल १५, रहट १०५३, नहर कम्पोस्ट ४५७४ टन, खाद्यान्न क्रीत वीज ९४७२ मन, तरकारियो का बिका वीज ३०९ मन और कृषि सम्बन्धी साहित्य की ५००० प्रतियो का मुफ्त वितरण। १९५१–५२ मे कृषि विभाग की खोज विभाग द्वारा खास कर ईख, खाद और आलू की खेती के सम्वन्ध मे काफी काम किया गया। जगली जानवरो को मारने के लिए एक हथियार से लैस टुकडी का प्रवन्ध किया गया है। तरकारियो के बीज के विक्रय के लिए एक अर्थ के सम्बन्ध में आत्म निर्भर रखनेवाले उपाय का प्रबन्व किया जा रहा हे और फलो तथा तरकारियो की कृषि में सुधार लाने के लिये कृपि विभाग सन्नद्ध है। भूमि विकास कर्ज के जरिये वजर भूमि कर्षण के लिए २५ से २८ लाख रूपये प्रति वर्ष वितरित किये जाते हैं। लाखो की सख्या मे कृपि योग्य वेकार भूमि जोती और बोयी जा रही है। प्राकृतिक विपत्तियो और विनाश के अवसर पर लोगो को सहायता दी जाती हे।

केन्द्रीय सरकार के जरिये सिन्दरी के खाद का कारखाना और राची मे लाख अनुसधान केन्द्र चलाये जा रहे हैं। कृषि की उन्नति मे दोनो का महत्त्व अपूर्व है। लाल मिर्च, आलू, धान, गेहू, मकई और आम की वीमारियो को दूर करने के लिए कल्याणकर प्रयत्न सरकार द्वारा किये गये हैं। धान, गेहू, जौ, अरहर, चना, खेसारी, तीसी, सरसो, ईख और चीना वादाम के उत्तम प्रकारो की खोज हुई है। कृपको को अच्छी फसल उपजाने के लिए उत्साहित करने के हेतु समय-समय पर फसल प्रतियोगिता सगठित की जाती है। इन प्रतियोगिताओ में जो प्रथम आते हे उन्हे सरकार कृपि पडित की उपाधि प्रदान करती हे। उन्हें ट्रेक्टर तथा आर्थिक सहायता प्रदान की जाती हे। कुल राज्यो में करीव १० सरकारी फार्म हैं और उनमे से कुछ मे पशुओ की नस्ल सुधार का काम बहुत सफलत-पूर्वक हुआ है। इन फार्मों मे अच्छे बीज, खेती के औजार तथा पशु सस्ते दर पर विकने के लिए रखे जाते हैं।

पचवर्षीय योजना मे यह स्वीकार किया गया है कि किसी भी सगठित आर्थिक उन्नति की योजना मे कृपि का पुनस्सगठन और सुधार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हाल ही मे खाद्य पदार्थ और कच्चे माल की वढती हुई आवश्यकता के चलते समाज के सभी क्षेत्रो मे इसके महत्त्व का अनुभव किया गया हे। खेती मे लगे हुए भूमि तथा श्रम के साधनो का उचित उपयोग करके ही पचवर्षीय योजना पूर्ण रूप मे सफल हो सकेगी। कृपि का विस्तार होने के साथ ही-साथ गहरी खेती भी अत्यन्त आवश्यक है। ग्रामीण आर्थिक प्रणाली का आज नियमित रूप मे सुधार करना आवश्यक है। आज एक नई और हमारी आवश्यकताओ के अनुरूप भूमि प्रथा की जरूरत है। खाद्य पदार्थो के साथ ही व्यावसायिक वस्तुओ की पैदावार वढाना आवश्यक है।

अगर मकई, वाजरा, चीना वादाम, सावा, कोदो, महुआ का फूल आदि मोटे पदार्थों के उत्पादन को वढाया जाय तो इससे सम्भवत खाद्य सकट की विकरालता कम होगी और जब तक कटनी नही होती या वर्षा के अभाव मे वेकार पडी रहनेवाली जनता को रोजी प्रदान करनेमे तथा जीवित रखने के लिए इससे अच्छा उपाय नही हो सकता है।

सिंचाई के दीर्घ और अल्प साधनो का विकास भी कृपि उत्पादन में सहायक होगा । जीवन और जगलो की रक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दुग्घशाला विकास, उद्योग और वागवानी के विकास के जरिये ग्रामीणो को रोजी का लाभदायक जरिया प्रदान कर सकते हैं। इसके लिये उन्हें सस्ते और हल्के शक्ति-यत्रो और औजारो को प्रदान करना जरूरी है। नदी की सुविधाओ के विकास के साथ-साथ मत्स्य उद्योग भी विकसित होगा। कृपको को आर्थिक सुविधा देकर आर्थिक निर्माण का काम सरल किया जा सकता है। सामूहिक विकास और ग्राम विस्तार योजना के जरिये ग्रामो मे नवजीवन का सचार होगा ।

विहार मे १९५१–५५ के बीच ऐसा अनुमान किया गया है कि खेती पर १२ करोड ८४ लाख ३० हजार रूपये खर्च किये जायेगे। राज्य सरकार ने ७७५९०० टन अधिक खाद्यान्न उत्पादन की योजना वनाई है जिसमें १२३००० टन का उत्पादन सिंचाई की वडी योजनाओ के और ३५३३०० सिंचाई के छोटी योजनाओ के फलस्वरूप होगा। वजर भूमि कर्षण के जरिये १६६३०० टन उत्पादन वढेगा तथा अन्य विविध कार्यों से भी १३२३००० टन उत्पादन की वृद्धि होगी। ३००० गाठ अधिक रूई, १७४८००० गाठ अधिक जूट, ३५९००० टन अधिक ईख, ६०००० टन अधिक तेलहन का लक्ष्य भी अपनी पच वर्षीय योजना में राज्य सरकार ने रखा है और इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है। इस बीच २२५००० एकड बजर भूमि में कृपि होगी और ३६९००० एकड भूमि का सुधार किया जायगा।

इसमे सदेह नही कि लोगो में उत्तम बीज का प्रचार किया जायगा। पर निरन्तर अच्छे प्रकार के बीज के प्रवेश से कही कृषको को विश्वास न डिग जाय यह भी देखना होगा। खाद, सिंचन, अनुसधान, अन्नकर, कृषि शिक्षा आदि के अन्य पक्षो पर भी जोर देना होगा और उसके अनुसार काम भी किया जा रहा है, पर स्थानाभाव के कारण सबो पर विस्तृत विचार प्रस्तुत करना मेरे लिये सभव नही। अन्तिम महत्त्वपूर्ण वात यह है कि गावो का सहयोग के आधार पर प्रबन्ध कृषि के लिए अत्यन्त आवश्यक माना गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार गाव की समस्त भूमि पर सम्मिलित खेती की जायेगी और समूची उपज को मिश्रित श्रम और अधिकार के सिद्धान्तानुसार गाव के व्यक्तियो मे वितरित कर दिया जायगा। जब तक यह प्रवन्ध पूरा होगा तव तक उपज समितिया, रजिस्टर्ड कृषि फार्म तथा कृषि सहयोग समितिया कायम कर काम चलाया जायगा।

ऐसी आशा की जाती है कि इन साधनो के जरिये विहार, जिसे भारत का हृदय कहा जाता है, अपने चिर गौरव को पुनर्लाभ करने मे सफल हो सकेगा ।

———

भूदान आन्दोलन का आधार

डा० ओमप्रकाश गुप्त, एम० ए०, एल० एल० बी०, डी० लिट्

भूदान यज्ञ के भगीरथ, सन्त विनोवा ने यह सकल्प कर लिया है कि अब भारत में कोई भी व्यक्ति भूमि-हीन नही रहेगा। हर किमी के मन में भूदान यज्ञ के इस आन्दोलन के आधार को खोजने की तीव्र उत्कठा होना स्वाभाविक ही है। जमीनो का वटवारा फिर से होना चाहिये इससे तो कोई भी व्यक्ति या दल असहमत नहीं हो सकता। सभी लोग इसकी आवश्यकता को मानते हैं और आज से नहीं वर्षों पहले से, अपनी-अपनी शक्ति और सगठन के अनुसार इसके लिए आवाज उठा रहे थे। हिन्दुस्तान आजाद हुआ। यदि आजाद हिन्दुस्तान की आजाद सरकार स्वय ही जनीनो की इस समस्या को हल करने के लिये कोई कानून वना देती अथवा रूस और चीन की तरह यदि यहा भी तलवार के वल पर जवरदस्ती जमीनो पर कब्जा कर लिया गया होता तो शायद हिन्दुस्तान के प्राय सारे राजनीतिक दल सन्तुष्ट हो जाते, किन्तु जरा सन्त विनोवा से तो पूछिये क्या वह भी चुपचाप अपने आश्रम में वैठे रहते? विनोवा चुप वैठनेवाले नही थे। उनके दिमाग में केवल जमीनो का फिर से वटवारा हो यही वात नही है इसीलिए तो जव कत्ल और कानून के रास्ते की वात आती है वह उसका विरोध करते हैं। विनोवा जी न तो कत्ल से भय खाते हैं और न कानून से ही उनको कोई घृणा है। दुनिया के सारे शान्तिवादी जन अपने सम्मेलन की दूसरी वैठक के लिए सेवाग्राम आकर रहे तो विनोवा जी ने उन सवको सम्वोधन करके वडे स्पष्ट शव्दो में कहा था कि मै इन छोटे-छोटे घरेलू या आन्तरिक सघर्षों की अपेक्षा महायुद्ध को कही अविक पसन्द करता हू। इसी प्रकार जव उत्तर प्रदेश मे वहा की सरकार को भूदान-यज्ञ में मिली हुई जमीनो के सम्बन्ध मे कानून वनाना था तो स्वय विनोवा जी भी उस कानून के वनानेवालो में एक थे। विनोवा जी कत्ल और कानून के रास्तो को सिर्फ इसलिए नापसन्द करते हैं कि इन दोनो रास्तो से जमीने भले ही मिल जाए किन्तु जिस धर्म-विचार का प्रसार वह करना चाहते हैं वह इनसे हरगिज नही हो सकता।

वापू के स्वर्गवास के उपरान्त सेवाग्राम मे एक सम्मेलन हुआ जिसमें गाधी विचार को समझनेवाले सभी वडे-वडे नेता तथा रचनात्मक कामो मे लगे हुए अन्य वहुत से कार्यकर्त्ता उपस्थित थे। उस समय विनोवा जी ने सर्वोदय विचार को वडे विस्तार के साथ लोगो के सामने रखा और साम्ययोग के आधार पर सर्वोदय समाज की रचना का कार्यक्रम देश के सामने आया। जो विनोवा दुनिया की दृष्टि मे ओझल होकर अवतक अपनी प्रयोगशाला में वैठे हुए एक वैज्ञानिक की तरह अहिंसक समाज-रचना के प्रयोगो में डूवे हुए सर्वोदय शास्त्र के अनुसवान में निमग्न थे, अव वाहर आए। वापू के चले जाने के वाद सारे देश में जो एक प्रकार की निराशा, जडता और किंकर्तव्यविमूढता सी छा गई थी उसे दूर करने के लिए साम्ययोग का सम्वल लेकर इन्होने अपनी पहली शान्ति यात्रा आरम्भ की। विनोवा जी की यह यात्रा मोटर और रेलगाडी के द्वारा हुई। इस यात्रा में जहा और वहुत से अनुभव हुए उन्होने उपनिषदो के 'चरैवेति, चरैवेति' के इस मूल मत्र का प्रत्यक्ष दर्शन कर लिया। हैदरावाद की पैदलयात्रा को इसीलिए उन्होने सर्वोदय यात्रा माना। इसी सर्वोदय यात्रा के सिलसिले में जव वह तैलगाना में घूम रहे थे, एक दिन पोचमपल्ली नामके गाव में भगवान की ओर से उन्हें भूदान यज्ञ की प्रेरणा मिली। यदि पोचमपली गाव के हरिजन ८० एकड जमीन की माग न करते और वहीं उनकी माग को पूरा करनेवाले श्री रामचन्द्र रेड्डी स्वेच्छा से खडे होकर अपनी सौ एकड जमीन विनोवा जी को अर्पण न कर देते, यानी जहां जमीन मागनेवाले हैं वहां जमीन देनेवाले हैं इसका प्रत्यक्ष दर्शन विनोवा जी को न हो गया होता अथवा भूदान यज्ञ की यह प्रेरणा उन्हें न मिली होती तो क्या वह अपनी सर्वोदय यात्रा को समाप्त कर देते? कदापि नही। विनोवा जी ने शान्ति-सेना-काचन मुक्ति, शुद्ध व्यवहार तथा पूर्ण साम्य योग के जो प्रयोग अव तक किय और कराया था उनका व्यापक रूप अव वह देश में देखना चाहते थे और वास्तव में इसी विचार का प्रचार और प्रसार करने के लिए वह सारे देश में पैदल घूमना चाहते थे। इसका यह मतलव यह नही है कि भूमि की समस्या उनके सामने नही थी। भूमि की समस्या तो न मालूम कितने वर्ष पहले से उनके दिमाग में थी। सन १९३० में धूलिया जेल में जव किसी ने उनसे पूछा कि स्वराज्य प्राप्ति के वाद आप सवसे पहले कौन सा काम हाथ में लेंगे तो उन्होने स्पष्ट शव्दो में कहा था कि मै सवसे पहले भूमि वितरण के काम को ही करूगा।

विनोवा जी आज जव वार-वार कहते हैं कि भूदान यज्ञ वापू का ही काम है और जो मैं कर रहा हू वापू का ही काम कर रहा हू तो इसमें विनोवा की अपार विनम्रता और अगाघ गुरुभक्ति तो है ही, किन्तु भूदान यज्ञ आन्दोलन की उस आधारशिला की ओर भी सकेत है जिसके वीज गाधी जी ने अपने जीवन काल में ही डाल दिया था। फरवरी सन १९३० के अपने साप्ताहिक 'यंग इडिया' में वापू जी ने लिखा है:

"अहिंसा के रास्ते मे सबसे बडी रुकावट पैसेवाले, स्टेटवाले, जमीन्दार, मिल मालिक वगैरा देशी स्वार्थ हैं। अंग्रेजी राज्य ही इनके जन्म का कारण है। यह इतना नही समझते कि जनता के खून पर इनका जीवन चल रहा है। जब समझमें आता भी है तो वे जिन अंग्रेजो के हाथ की कठपुतली और दलाल बने हुए है उन्ही की तरह बेरहम हो जाते हैं। उन्हें सहज ही यह समझ लेना चाहिये कि जब अपने लाखो-करोडो भाई-बहन दाने-दाने को तरसते है तो उन्हें दबाये रखना एक जुर्म है और इसलिए उन्हे अपनी दलाली छोड देनी चाहिए।"

जमीन्दारो को समझाते हुए कराची कांग्रेस के बाद बापू जी ने कहा था —

"मैं आपके दिल तक एक सत्य पहुचाना चाहता हू। आपको बदल देना चाहता हू ताकि आपके पास जो कुछ अपनी निजी सम्पत्ति हो उसे आप अपनी प्रजा के लिए ट्रस्ट की तरह रखें और उन्ही के हित में इसका इस्तेमाल करें। लेकिन मैं आपको सावधान भी कर देना चाहता हू। मैं आपको कहूगा कि आपकी जमीन पर जितनी मालिकी आपकी है उतनी ही किसानो की भी है। आपको अपने माल को ऐशो आराम या फिजूलखर्ची मे न उडाकर किसानो की भलाई के काम मे लगाना चाहिये। जहा एक बार आपने अपने किसानो के साथ प्रेम का नाता जोडा और उन्हें लगा कि आप उनके हैं और वह आपके, एक परिवार की नाई उनके हित आपके साथ सुरक्षित है तो विश्वास रखिये उनमें और आपमें कभी टक्कर नही हो सकता।"

आदर्श जमीन्दार कैसा हो इस पर भी बापूजी ने स्पष्ट कहा है —

" आदर्श जमीन्दार को इस बात पर सन्तोष नही कर लेना चाहिये कि यदि गाववाले स्वास्थ्य और सफाई के नियमो का पालन नही करते तो वह क्या करे। किसान को उसके जीवन की जरूरी चीजे दिलाने के लिये वह खुद गरीब बन जाय, वह अपने इलाके के किसानो की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करे, ऐसे स्कूल खोलें जहा किसानो के बच्चो के साथ ही उसके बच्चे भी पढे। गाव के कुंओ और तालावो की सफाई करे। किसानो को सडक पर झाडू देना सिखाए और उसका मैला खुद ही उठाए। यदि वह समय की गति को पहचान जाय तो उसका यह ख्याल कि मेरे पास जो चीजे है उनपर ईश्वर की ओर से मुझे हक मिला हुआ है बदल जायगा और देखते-देखते हमारे देश के सात लाख घर जो आज गाव कहलाते हैं शान्ति, स्वास्थ्य और सुख-चैन के श्रोत बन जायेंगे।"

सन् १९३९ की गर्मियो मे जब वह विहार आए हुए थे तो चम्पारण जिले के वृन्दावन नामक स्थान में किसानो से उन्होने कहा था

"मैं मानता हू कि जिस जमीन को तुम जोतते हो वह तुम्हारी होनी चाहिये लेकिन वह एकदम तुम्हारी नही हो सकती। जमीन्दारो से तुम उसे छीन थोडे ही सकते हो ? अहिंसा ही एक रास्ता है, तुम अपनी खुद की शक्ति को पहचानो।"

अन्त मे सन् १९३९ मे ही उन्होने कहा था —

'सच्चा समाजवाद तो हमे हमारे पुरखो ने विरासत मे मिला है जिन्होंने सिखाया "सबै भूमि गोपाल की" फिर इस भेद-भाव का सवाल ही कहा पैदा होता है। मनुष्य ने ही इस भेद-भाव को बनाया है और इसलिये मनुष्य ही उसे मिटा सकता है।"

"मुझे पूरा विश्वास है कि हम अपने इस ध्येय की पूर्ति का उतना ही बढिया रास्ता निकाल सकते है जितना रूस हो चाहे कोई अन्य देश निकाल सकता है। हमारा रास्ता बिना हिंसा का होगा। जमीन और धन तथा जायदाद उसकी जो हो वह उस पर काम करे।"

सन् १९४२ में आगा खा जेल में मीरा बहन के प्रश्न का उत्तर देते हुए बापू ने इस प्रश्न को और भी स्पष्ट करके कहा था .

"जमीन पर मालिकी सरकार की होगी। मेरा ख्याल है कि हुकूमत की बागडोर ऐसे लोगो के हाथ मे होगी जिन्हे इस आदर्श में विश्वास है। ज्यादा जमीन्दार तो राजी से ही अपनी जमीन छोड देंगे और जो ऐसा नही करेंगे उन्हें कानून से करना होगा।"

जमीनो के बटवारे की समस्या सन् १९३० से ही विनोबा जी के मन में इतनी तीव्र थी और फिर बापू जी ने समय-समय पर इस मसले पर जितनी गहराई और स्पष्टता से प्रकाश डाला है इन सब चीजो को देखकर यदि लोग जमीनो के बटवारे को ही विनोबा जी के इस भूदान-यज्ञ आन्दोलन का उद्देश्य या आधार मान बैठे तो हम उन्हें अधिक दोष नही देंगे। हजारो जगह और हजारो तरह से इस युग के अध्यवर्यु स्वय विनोबा जी ने इस आन्दोलन के आधार के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाला है किन्तु फिर भी जब बार-बार लोग पूछते हैं क्या कानून का आश्रय लिए बिना जमीन की समस्या हल हो सकती है ?" आपके कार्यों की सफलता कब तक सभव है ?" "क्या जमीन जैसी महान समस्या युद्ध और हानि के बिना हल हो सकती है ?" "भूदान यज्ञ से जमीन के छोटे-छोटे टुकडे हो जायेंगे, क्या आर्थिक दृष्टि से यह अपर्याप्त और अहितकर नही होगा ? "गरीबो से जमीन लेकर क्या आप उन्हें और गरीब नही बनाते हैं ?", "हमारे देश की चारो सीमाओ पर कम्युनिज्म का प्रचार हो चुका है। ऐसी स्थिति में हमारी रचना टिकेगी या नही यह शका हो रही है। आप यह भूदान यज्ञ ही जारी रखनेवाले है या और कोई प्रोग्राम देश के सामने रखनेवाले हैं ताकि भारतीय समाज-रचना टिक सके ?" तो हमें लगता है कि ये लोग अभी तक भूदान यज्ञ के इस आन्दोलन का उद्देश्य केवल जमीनें माग कर वे जमीनो को बाट देना मात्र ही समझते हैं। ऐसे लोगो से और उनके द्वारा सबको फिर एक बार हम बडे जोरदार शब्दो में यह बतला देना चाहते है कि भूदान-यज्ञ के इस आन्दोलन का उद्देश्य केवल देश की जमीनो का बटवारा ही हरगिज नही है। हमने तो एक सभा में यहा तक कहा था कि यदि इसका उद्देश्य केवल जमीनो का बटवारा मात्र होता तो हम तो हरगिज इसमें शामिल नही होते, क्योकि आज की विषमतामूलक समाज व्यवस्था के रहते हुए इस तरह का कोई भी बटवारा टिकाऊ नही हो सकता। वास्तव में भूदान यज्ञ तो आज के हमारे समाज मे स्थापित समस्त विषमताओ को दूर करके साम्य योग के आधार पर केवल बहुसख्या का नही बल्कि सारे समाज का हित चाहनेवाले सर्वोदय समाज की स्थापना का एक साधन मात्र है। स्वय विनोबा जी ने भूदान यज्ञ को धर्म-विचार के प्रचार का वाहक माना है। विनोबा जी का कहना है कि "मैं पहले विचार

परिवर्तन के द्वारा लोगों का हृदय परिवर्तन करूगा, उसके बाद उनका जीवन बदलूगा और अन्त में पूरे समाज का ही परिवर्तन करूगा।" विचार सूक्ष्म होते है उनपर लोगो की दृष्टि आसानी से नही ठहरती। उनका प्रचार करने के लिए, अतएव, किसी स्थूल आधार या माध्यम की जरूरत होती है। "सबै भूमि गोपाल की", "सब सपति रघुपति के आही" "सर्वभूत हितेरत" तथा "तेन त्यक्तेन भुजीथा" इत्यादि सूक्ष्म धर्म विचारो को समझाने के लिए वास्तव में भूदान यज्ञ का सहारा लिया गया है। एक कट्ठा और दो कट्ठा जमीन रखनेवाले से भी कुछ-न-कुछ दान में देते क्यो ? यदि जमीनो का बटवारा मात्र ही इस आन्दोलन का ध्येय होता तो फिर इन छोटी जमीनवालो से दान-पत्र भरवाने का कोई मतलब नही था, इन्हें तो उल्टे जमीन मिलने ही वाली है। वास्तव में भूदान यज्ञ में असली सकेत तो सम्पत्ति और स्वामित्व के विसर्जन का है और सम्पत्ति और स्वामित्व में परिमाण की कीमत नही होती, एक पैसा भी सम्पत्ति है उसका भी मोह होता है, एक कट्ठे जमीन में भी स्वामित्व छिपा रहता है।

ऊपर हृदय परिवर्तन, जीवन परिवर्तन और अन्त में समाज परिवर्तन की बात आई है। इसी त्रिसूत्री परिवर्तन को धर्म विचार या साम्य योग समझना चाहिए। विनोबा जी ने भूदान यज्ञ को इसी विचार का वाहन माना है। सक्षेप में यह त्रिसूत्री परिवर्तन ही भूदान यज्ञ का आधार है। इसलिए अब अति सक्षेप में इस त्रिसूत्री परिवर्तन का ही विवेचन करेंगे। हृदय परिवर्तन, जीवन परिवर्तन और समाज परिवर्तन इन तीनो के पीछे हमारी क्या कल्पना है यह अच्छी तरह से समझने के लिए पहले हृदय जीवन और समाज की, प्रक्रियाओ तथा उनकी वर्तमान स्थिति पर विचार कर लेना आवश्यक है। ससार के अन्य प्राणियो के प्रति हमारा व्यवहार कैसा हो यह बात हृदय तय करता है, ससार की समस्त भोग्य वस्तुओ की ओर हमारा जैसा रुख रहता है वैसा ही हमारा जीवन बनता है और प्रकृति या ईश्वर से मिली हुई योग्य वस्तुओ की व्यवस्था करना समाज का धर्म है।

ससार मे अगर एक ही मनुष्य होता तो उसके सामने हृदय परिवर्तन का या समाज परिवर्तन का प्रश्न ही कभी नही आता। उसके सामने सिर्फ इतना ही सवाल होता कि अपना जीवन चलाने के लिए वह आस-पास की सृष्टि का कितना और कैसा उपयोग करे, किन्तु मनुष्यो का एक समूह या समाज विद्यमान है। इसलिए अब उसके सामने इस भौतिक प्रश्न के अतिरिक्त एक दूसरा सामाजिक प्रश्न भी आ जाता है अर्थात् इस प्रश्न के अतिरिक्त कि सृष्टि पर अधिकार कैसे किया जाय ये प्रश्न भी उसके सामने आते है कि एक दूसरे के प्रति कैसा व्यवहार करे, अर्थात् मनुष्य अपने पारस्परिक व्यवहार में समाज के मानसिक सुख-दुख का सतुलन कैसे सभाले ? तथा उनमें आपस में व्यवस्था कैसे की जाय अर्थात् मनुष्य की मिल्कियत, जिसमें जमीन, धन-दौलत, बल-बुद्धि इत्यादि सारे गुण सब शामिल है, आपस मे कैसे बाटी जाय। वास्तव में आज हमारे सामने ही नही पूरे मानव समाज के सामने केवल एक यही समस्या है यदि उसकी यह समस्या हल हो जाय तो सारी समस्याए हल हो जाय। सृष्टि के आदि से यही समस्या मनुष्य को तग करती आ रही है। अबतक कितने युग बीत गये, कितनी सभ्यताए आई और खतम हो गई, कितने राजनीतिक दल बने और बिगड गये और कितनी क्रान्तिया आई और चली गई, कितने सत-महात्मा और सुधारको ने इस समस्या को हाथ में लिया और आगे बढाया किन्तु पूरी तरह से अभी इसका हल किसी को मिला नही।

आज के युग को विज्ञान का युग कहते है। प्रकृति को उन्होने जीत लिया है ऐसा उनका दावा है। देश, काल और दूरी के बधनो को भी आज के वैज्ञानिक ने तोड फेका है। सुख और सुविधा की इतनी अधिक और ऐसी-ऐसी चीजें उन्होने तैयार कर ली है जिनकी कुछ समय पहले मनुष्य को कल्पना भी नही थी। उत्पादन, कार्यक्षमता और आयातनिर्यात के साधनो में भी बेहद उन्नति उन्होने कर डाली है, किन्तु फिर भी जब चारो ओर बढती हुई बेकारी और भुखमरी को देखते है तो स्वभावतया यह प्रश्न मन में उठता है कि इतनी विपुलता मे ऐसी विपन्नता क्यो ? दुनिया में भौतिक दूरी जितनी ही कम होती जाती है उतनी दिलो की दूरी बढती जाती है ऐसा क्यो ? जितना हम एक दूसरे के पास आते जाते है उतना ही एक दूसरे के खून के प्यासे होते जाते है, ऐसा क्यो ? अभी पहले महायुद्ध का भय निकला नही था कि दूसरा उससे भी भयकर महायुद्ध आ गया और दूसरे के आसू अभी सूखे नही कि तीसरे की तैयारिया चल रही है। यह सब हम अपनी आखो से देख रहे है। ऐसा क्यो हुआ इसका मुख्य कारण यही है कि भौतिक विज्ञान का अध्ययन तो हमने खूब आगे बढाया किन्तु मानव विज्ञान या आत्म विज्ञान (साइन्स ऑफ मैन) को बिलकुल भुला दिया। भौतिक प्रगति और आध्यात्मिक प्रगति के बीच में एक बडी खाई पड गई, एक बहुत तेज गति से आगे बढती ही चली गई और दूसरी इतनी पीछे रह गई कि लोगो को इसका स्मरण ही नही रहा। वे भूल गये कि उसकी जरूरत है। भौतिक विज्ञान भोग की वस्तुओ का उत्पादन बढा सकता है, जहा पहले एक छटाक पैदा होता था वहा तीन छटाक कर सकता है, जहा पहले एक गज कपडा तैयार हो सकता था वहा तीन गज तैयार कर सकता है और उसने ऐसा किया भी किन्तु विज्ञान गेहू को भूखो के पास और उस कपडे को नगो के पास ले जाने का काम तो नही कर सकता, यह काम तो मनुष्य को ही करना है। अब हम देखते है कि लाखो मन गल्ला जला दिया जाता है, हजारो गाठ कपडे को बर्बाद कर दी जाती है और यह सब उचित और शास्त्रीय समझा जाता है तो हमें लगता है मनुष्य विज्ञान का गुलाम हो गया है। अर्थ के कोडो ने उसकी सारी मानवता को छीन लिया है, उसकी समझ में नही आता है कि अन्न का प्रथम और अन्तिम कार्य क्षुधा शान्ति है, कपडे का निर्माण शरीर की रक्षा के लिए हुआ है, तन ढकने मे ही उसका उपयोग है और हरेक प्राणी को भूख लगती है तथा हरेक प्राणी को ही वस्त्र की आवश्यकता होती है। अतएव अन्न, वस्त्र आदि जीवन की जितनी भी उपयोगी और आवश्यक चीजें है उनपर सबका ही समान अधिकार है, जिसको जब और जितनी चीजो की जरूरत हो उसे तब और उतनी चीजें मिलनी चाहिये। घर में घर की सारी चीज पर जैसे घर के सभी लोगो का समान अधिकार होता है, उसमें यह नही देखा जाता कि यह लडका तो बीमार रहता है, कोई काम ही इससे नही होता और वह लडका तो खूब काम करता है इसलिए

उसे अधिक मिलना चाहिये बल्कि प्राय ठीक उसका उल्टा ही होता है, जो बीमार है कम या बिलकुल ही काम नही कर सकता उसे बहुत अधिक मिलता है और जो बहुत ज्यादा काम करता है उसे बहुत कम और कभी-कभी तो बिलकुल नही मिलता। क्यो ? घर के सारे लोग जितनी उनमें शक्ति है उसे पूरी तरह से लगाकर घर को सम्पन्न और समृद्ध बनाते है। वे लोग व्यक्तियो के रूप में नही सोचते, पूरे घर के रूप में सोचते है। विचार कीजिए, यदि उस घर के लोग यह तय कर लें कि प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता को न देखकर उसकी योग्यता के अनुसार अथवा उसकी कार्य क्षमता के अनुसार कम या ज्यादा पारिश्रमिक अथवा जीवन की सुविधाए मिलनी चाहिये तो वह घर रह जायेगा या एक जीता जागता बूचरखाना बन जायगा ? जितने समर्थवान होगे उन्हें ही सबसे अधिक सुख-सुविधायें मिलेंगी, उनका जीवन स्तर बहुत ऊचा उठ जायगा किन्तु जो किसी कारण से थोडे असमर्थ या रोगी होगे उनका जीवन बिलकुल खाई में गिर जायगा। बच्चे और बूढो की क्या दशा होगी इसकी पाठक लोग स्वय कल्पना करें और देखें कि इस प्रकार की गृह-व्यवस्था कितने दिन तक टिकेगी। अब उसी घर का दूसरा चित्र देखिये, जहां घर के सारे लोग मिलकर प्रत्येक व्यक्ति को वोट का अधिकार दे देते है और सब काम वोट के बल पर चलता है तो घर में यदि १० व्यक्ति है और उनमें से मान लो एक दिन ६ व्यक्तियो ने तय कर लिया कि आज केवल मिर्चो का ही साग बनेगा तो जिन चार को मिर्च नुकसान देती है सोचिये उनकी दशा क्या होगी ? जब तक बहुत सख्या की राय से अल्प सख्या के हितो की रक्षा की जायगी तब तक पारिवारिक वातावरण स्थापित नही हो सकता। मिर्च न खानेवाले मिर्च खानेवालो में से किसी को अपनी ओर फोडना चाहेगे और मिर्च खानेवाले इसे सहन नही करेगे, तब देखिये, घर कैसा आखाडा बन जाता है। अब मान लीजिये घर के कुछ मनचले लोग समता लाने का निश्चय करके यह तय कर लें कि जिन लोगो के हाथ में सत्ता है उन्हें खत्म किये वगैर ममता नही आ सकती तो फिर सारा घर ईर्ष्या और द्वेष की भट्ठी ही बन जायेगा। शान्ति नही आ सकती क्योकि हिसा मे से प्रतिहिसा का ही निर्माण होता है चाहे थोडी देश तक शान्ति जैसी दिखाई देती रहे। इतना ही नही उसके कारण मनुष्यता का मूल्य घट जाता है। उसकी प्रतिष्ठा कम हो जाती है।

समाज घर का ही एक समष्टि रूप है, उसी का एक वडा आकार है। इसीलिए जो चीज घर के सम्बन्ध मे है वही पूरे समाज के लिए भी लागू होती है। ऊपर की चर्चा में हमने देखा कि जब तक हम मनुष्य-मनुष्य में भेद करते रहेगे मानव समाज में शान्ति नही आ सकती। शान्ति तो तभी आ सकती है जब हम यह अनुभव करने लग जाय कि हरेक मानव में एक ही आत्मा समान रूप मे है। आत्मा की एकता का अनुभव जिस दिन मनुष्य को होने लगेगा वह उसीके आधार पर और भी गहराई मे विचार करेगा। जब प्रत्येक मनुष्य मे अपना और अपने मे सबका दर्शन उसे होने लगेगा तो फिर उसकी आवश्यकताए भी सबकी आवश्यकताए बन जायेगी, वह किसी से छीन झपट या दुबका छिपा अथवा चोरी करके कोई चीज नही लेगा। उसे जब भूख लगेगी तो वह सोचेगा कि औरो को भी भूख लग रही होगी, उसे जब ठड लगेगी तो वह सोचेगा कि औरो को भी ठड लग रही होगी और इसलिए अन्न और वस्त्र पर सबका उतना ही अधिकार है जितना उसका। वह सबको खिलाकर खाने में और सबको पहनाकर पहनने में ही आनन्द का अनुभव करने लगेगा।

जब हम एक बुनियादी आध्यात्मिक विचार ग्रहण करते हैं तो जीवन की अनेक शाखाओ, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक इत्यादि में हमारा प्रवेश हो जाता है। हमारे पास जो कुछ भी जमीन जायदाद, सम्पत्ति, बुद्धि-शक्ति इत्यादि है सबका मालिक भगवान है हम नही। और चूंकि हमारे सभी गुण समाज के लिये है अतएव हमें चाहिये कि हमारे पास जो शक्तिया है उन्हें हम ईश्वर की देन मानें और समाज को अर्पण कर दें। इतना ही नही अन्त मे तो वह अपने शरीर पर भी अपनी मालिकी नही मानेगा। हमने शुरू में ही किसी जगह कहा है कि भूमि दान यज्ञ का यह आन्दोलन सम्पत्ति और मालिकी के मोह को दूर करना चाहता है। गरीब और अमीर जब हमें अपनी सब प्रकार की सम्पत्ति का स्वेच्छा से एक हिस्सा दरिद्रनारायण के लिए देते हैं तो उनके हृदय में एक बडा भारी परिवर्तन आता है। इस आन्दोलन का सिंहवालोकन करते हुए विनोबा ने एक जगह कहा है —

"भूदान यज्ञ से जो हवा बन रही है, नैतिक मूल्यो की जो प्रतिष्ठा लोगो के ध्यान में आ रही है, सामाजिक अन्याय न सहन करने की और मुक्त होने की जो तीव्र भावना पैदा हो रही है, जो सबसे पिछडे हुए है उनकी ओर सबसे पहले ध्यान देना चाहिये यह बात जो लोगो की समझ में आ रही है जिसे मैने प्रजा सूय यज्ञ कहा, धर्म प्रवर्तक चक्र कहा, बेजबान मजदूरो का उत्तर कहा, उसके मुकाबले भूमि का मसला हल होने की बात में विशेष महत्त्व को नही मानता। यह जो आबहवा फैली है, और इसमें जो प्राण है, इसका स्पर्श सबको हुआ तो न सिर्फ भूमि का मसला ही हल होगा बल्कि सारे मसले हल होगे क्योकि मानव समाज में जो-जो मसले पैदा हुए है उन सबके मूल में जो कुप्रवृत्ति और उद्बुद्धि है उसी पर इससे प्रहार होता है।"

मनुष्य के आचार-व्यवहार में ही उसके हृदय का सच्चा दर्शन होता है। इसको उलट कर यो भी कह सकते है कि जैसा उसका हृदय होता है वैसे ही उसके आचार व्यवहार भी बन जाते हैं। आज हमारे जीवन में जो नित्य नए-नए मसले पैदा होते चले जाते हैं तो उसका मूल कारण हमारे हृदय की वह कुप्रवृत्ति और उद्बुद्धि ही है जो "हम और हमारे ही लिए सब कुछ होना चाहिये" की अति सकुचित भावना को जाग्रत करके कम-से-कम या बिलकुल ही श्रम न करके अधिक-से-अधिक प्राप्त कर लेने की जीवनाकाक्षा। आज हमे लाखो मन गल्ला बाहर से मगाना पडता है, क्यो ? इसलिए नही कि हम गल्ला नही उपजा सकते, या उपजाने के साधन हमारे पास नही है बल्कि इसलिए कि जिनके पास उपजाने की साधन है वे स्वय उपजाने का श्रम नही करते और जो श्रम करते है या कर सकते है उनके पास साधन नही है। गरीब और अमीर सब कोई श्रम को टालने की ही चिन्ता मे लगे रहते है। दूसरे शब्दो में हर कोई एक दूसरे को श्रमिक बनाकर, कमिया और गुलाम बनाकर उसके श्रम पर जीना चाहता है। अपनी इस कुप्रवृत्ति और कुचेष्टा को समाज के सामने न्याय और नैतिक सिद्ध करने के लिए उसने एक समाज-व्यवस्था कायम की जो हवा पानी और

रोशनी की तरह सबको और सबके लिए मिली हुई जमीन जैसे उत्पादन के बुनियादी साधन होने पर भी व्यक्ति को मालिकी का अधिकार देती है और इतना ही नही बल्कि उसे समाज में ऊंचा स्थान भी देती है। अब आप सोचिए यदि वही मनुष्य जिसने अबतक अपनी सारी शक्ति लगाकर न्याय-अन्याय, झूठ-सच, सारे प्रपंच करके उत्पादन के साधनो को एकत्र करना और बिना श्रम के उनके किराये पर ही मौज उडाना अपने जीवन का ध्येय बना रक्खा था, जिसने अपने कमिया और मजदूर को कुत्ते और बिल्ली से भी निम्नतर मान रक्खा था आज यह मानने लगता है कि उसके पास न केवल जमीन है बल्कि और भी जितनी शक्तिया है वे सब समाज की सेवा के लिए है, व्यक्तिगत स्वार्थ साधना के लिये नही। व्यक्तिगत स्वार्थ को समाज के चरणो में अर्पित कर देने मे ही कल्याण है। हरेक आदमी जैसा अब तक प्रचलित था अपनी कमाई का जिम्मेदार और हकदार है। यह न मानकर यथाशक्ति कमाई करनेवाले किसी भी व्यक्ति को सम्मिलित कमाई का समान हकदार मानता है तो फिर उसके जीवन में स्त्री-पुरुष भेद,शरीर परिश्रम के उपभेद, शारीरिक और मानसिक परिश्रम का उपभेद इत्यादि वर्ग और इसलिए विषमता तथा विद्वेष उत्पन्न करनेवाली दीवारे कैसे रह सकती हैं। जब नैतिक और भौतिक वस्तुओ का भेद उसकी समझ में आ जाएगा और वह यह समझ लेगा कि कम या ज्यादा शक्ति के अनुसार पोषण में कमी या वृद्धि करने की कल्पना गलत है। सेवा जो नैतिक वस्तु है उसकी कीमत पोषण जो भौतिक वस्तु है उसमें नही हो सकती तो उसका सारा जीवन ही बदल जाये। उसका अर्थशास्त्र के क्रय-विक्रय की कुटिल नीति पर न खडा रहकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की दिव्य आधारशिला पर आधारित होगा। अब वह जो कुछ करेगा वह नफा कमाने के लिए नही, बल्कि सेवा के लिए करेगा। वणिक चर्चा के स्थान में भ्रातृ चर्चा उसके जीवन का लक्ष्य बन जायेगा, वह सम्पत्ति तो पैदा करेगा और यथाशक्ति खूब करेगा किन्तु धर्म के रास्ते से पैदा करेगा और मोक्ष दिलानेवाले कामो में यानी एसे कामो मे जिसमें मै और तू मेरा और तेरा का भेद भाव नही है उस सम्पति का विनियोग करेगा। बापू के शब्दो में तब वह अपनी समस्त शक्तियो का समाज के हित के लिए ट्रस्टी बन जायगा। उपभोग से हटकर अब उसके जीवन का लक्ष्य सेवा मे केन्द्रित हो जाएगा।

पाठक विचार करें कि उन्हे पैसे के बल पर चलनेवाला होटल चाहिये या सेवा निष्ठा की प्रेरणा पर चलनेवाला सुन्दर घर? उन्हे होटल व्याय की सर्विस पसन्द है या मा, बहन और भाई की सेवा? भूदान यज्ञ आन्दोलन के पास इसका जवाब है। स्वय विनोबा जी इसे बुनियादी मसला मानते हुए लिखते हैं, "आजकल तो सर्विस की बात चली है। सिविल सर्विस, एडुकेशनल सर्विस, मेडिकल सर्विस यहा तक कि भोजन, मोटर और चर्या की भी सर्विसें होती हैं। सिविल सर्विस के जो नौकर हैं उन्हें हजार रूपया तनख्वाह मिलती है और उनके जो स्वामी हैं गरीब जनता, उनको आठ आना रोज मिलते है। वे लाखो कमाते हैं, वे सेवक होन का दावा करते हैं और जो सारे समाज के लिए अन्न पैदा करता है वह सोचता है कि मै तो अपने पेट के लिए काम कर रहा हू। इस तरह की सर्विसो को क्या कहा जाय। हमारी भाषा में उसके लिए, ढोंग यही शब्द है। इस दभ को खतम करने के लिए ही मैंने यह विचार सामने रक्खा कि भूमि पर सब का समान अधिकार है, हमारे पास अपनी सतति, सम्पत्ति, भूमि और बुद्धि जो कुछ भी है वह सब समाज के लिए है। जैसा अपरिग्रह हम चाहते है, उसमे वैभव तो बढेगा पर समाज का बढेगा। समाज नारायण स्वरूप है, इसलिए लक्ष्मी तो उसके पास पडी रहेगी। वह वैरागी शकर है, पर कुबेर उसके हाथ में रहेगा। अपरिग्रह का आधार जल में एक भव्य और सुन्दर समाज का निर्माण करना है। उसी बुनियादी रूप में मैंने भूमि का मसला उठाया है।"

"आज जो धन कमाता है, वह उसके साथ रोग और चिन्ता भी कमाता है। धन कमाकर पुत्र मित्र और पडोसी के प्रेम को खोता है इसीसे वह दुखी भी है। आज समाज में श्रीमान और गरीब दोनो दुखी है, इसलिये यह समाज रचना बदलनी होगी।"

हम देखते है एक आदर्श परिवार में छोटे-बडे, स्त्री-पुरुष, बालक बूढे, समर्थ अल्प समर्थवान और बिलकुल समर्थ जितने भी प्राणी होते हैं सबको समान सरक्षण मिलता है, ऐसा नही होता कि छोटा बच्चा है या बहुत बूढा है जो कुछ नही कमाता उसे कम सरक्षण मिलता होगा। सरक्षण की समानता का परिवार मे यह भी अर्थ नही होता कि सबको बराबर रूपया बाट दिया जाता हो बल्कि जिसकी जितनी आवश्यकता होती है उसको उतना मिलता है। और यह भी नही होता कि एक को तो खूब दूध, मलाई और मालपुआ मिले और दूसरे को सत्तू। यह भी कल्पना वहा नही आती कि जिसकी जैसी सेवा हो उसे वैसा ही पोषण मिले। घर में झाडू बुहारू करनेवाली एक छोटी बिटिया को और आठ घटे कस कर खेत मे काम करनेवाले गृहपति को एक सा ही दाल-भात और तरकारी मिलती है। दोनो की भूख के परिमाण में दोनो को मिलता है। और जहा तक काम करने का सम्बन्ध है प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार ही काम करता है। गरज यह कि सबकी सम्मिलित सेवा का फल सबको सम्मिलितरूप से मिले। सरक्षण के साथ समान अनुपात होता है। सक्षेप में यही कहा जा सकता है कि समाज की व्यवस्था न तो 'कमाओ तो खाओ' अथवा "जितना लगाओ उतना पाओ" या "जितना काम उतना दाम" वाली पूजीवादी अथवा पूजी सापेक्ष्य व्यवस्था होती है और न व्यवस्थापक के दड पर ही परिवार का काम चलता है। पैसे मे भी सब काम होते हैं अथवा दड के भय से ही लोग सीधे रास्ते पर रहते है यह विचार परिवार के अनुभव से गलत साबित होते है। घर में जो समर्थ लोग होते हैं वास्तव में असमर्थ और अल्प समर्थवानो की सेवा में ही अपनी शक्ति की शोभा मानते हैं।

परिवार में जो आर्थिक दुरवस्था थोडे बहुत अश मे सर्वत्र पायी जाती है उसे भी पूरे समाज पर लागू किया जा सकता है। आखिर समाज कुटुम्ब का ही तो एक बडा रूप है। जो चीजें या जिस प्रकार की व्यवस्था घर या कुटुम्ब में होना सम्भव है वह समाजमें भी बडी आसानी से लागू हो सकती है। आज यह मान लिया गया है कि राष्ट्र की कुशलता, प्रामाणिकता, उत्साह और जिम्मेदारी को तो प्रोत्साहन देने का एक मात्र मार्ग कम या अधिक वेतन देना है, किन्तु पारिवारिक व्यवस्था का अनुभव यह

बताता है कि इसकी अपेक्षा सामुदायिक जिम्मेदारी मनुष्य को कही अधिक प्रेरणा देनेवाली वस्तु है क्योकि उसमें सामाजिक गौरव और आर्थिक सतोष छिपे रहते हैं। लडकेके लिये मा की शाबाशी जितनी उत्साह-वर्द्धक होती है उतने सैकडो अवान्तर पारितोषिक नही हो सकते, उलटे उनसे लोभ पैदा होने का डर रहता है। सक्षेप में इसलिए सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी हमारे आज के मूल्य बदल जायेंगे। हम न सिर्फ शोषणहीन बल्कि शासनहीन अथवा दड निरपेक्षित समाज की रचना चाहते हैं ।

शासनहीन या दडनिरपेक्षित समाज का यह अर्थ हर्गिज न होगा कि हम ऐसे समाज रचना की कल्पना करते हैं जिसमें कोई भी व्यवस्था या व्यवस्थापक होगा ही नही। यह तो पागलो की एक बहक हो सकती है, कोई व्यावहारिक तथ्य इसमे नही है। हम जिसे राम राज्य या ग्राम राज्य कहते हैं उसमे राज्य का प्रत्यक्ष सचालन कुछ समर्थ व्यक्तियो के हाथ में रहेगा। अतिम प्रमाण कोई एक व्यक्ति भी वहा होगा। फर्क केवल इतना होगा कि सत्ता के व्यापकतम विभाजन के कारण उसकी उपस्थिति का अनुभव लोगो को प्राय नही सा होगा। विनोबा जी प्राय कहा करते हैं कि भगवान ने अपनी सत्ता को इतना विकेन्द्रित कर दिया अथवा यो कहिये लोगो को इतना अधिक स्वावलम्वी और स्वय पूर्ण बना दिया है कि कभी-कभी उन्हे भगवान के अस्तित्व में भी सदेह होने लगता है। सर्वोदय समाज रचना के अनुसार इसलिए राज्य सत्ता गाव-गाव में बट जायेगी यानी गाव-गाव मे अपना राज्य होगा। मुख्य केन्द्र तो रहेगा किन्तु उसमें सत्ता नाम मात्र की ही रहेगी। दूसरे शब्दो मे यो कह सकते है कि समर्थो के हाथ मे आज की तरह शस्त्र, शास्त्र और सम्पत्ति की सत्ता न रहकर केवल सेवा की सत्ता रह जायेगी। ऐसा लोकमत तैयार हो जाएगा कि समर्थ व्यक्ति यदि समाज को अपनी शक्तियो का इस तरह से उपयोग नही करेंगे तो राज्य प्रणाली के सिद्धान्तो के अनुसार वे अपराधी ठहराये जायेंगे।

समर्थो के हाथ में सेवा के अतिरिक्त अन्य सत्ता जाने ही न पाये इसके लिये यह अनिवार्य है कि जनता निरीह, असहाय और दुर्बल न रहे। हरेक गाव आर्थिक स्थिति मे बहुत अश में एक स्वार्यहीन ईकाई बन जाना चाहिये। ऐसी स्थिति होनी चाहिये कि समर्थ अपनी इच्छा से जनता के साथ सहयोग करें और जनता स्वतत्रतापूर्वक समर्थोको सहयोग दे। यह तभी हो सकता है जब जनता अपने पैरो पर खडी हो। जीवन की सारी प्राथमिक या बुनियादी आवश्यकताए गाव-की-गाव मे ही पूरी होनी चाहिये। अधिकाश गौण आवश्यकताओं की पूर्त्तिया भी वही-की-वही हो जानी चाहिए। किसान के खेत की पैदावार से जो पक्का माल बन सके वह यथासम्भव उसी के घर "गृह उद्योग" द्वारा गाव में बनाया जाना चाहिए। आज तो वह सरसो पैदा करता है, कपास पैदा करता है किन्तु तेल भी खरीदता है और कपडा भी। आठ आने सेर कपास बेचकर १५ रु० सेर [illegible] खरीदता है। बाकी साढे चौदह रुपये के लिए कोठी का अनाज बेचता है और [illegible] भूखा रहता है। घी-दूध बेचकर जमीन खरीदता है। शरीर मे मास ही नही तो फिर चेहरे पर कान्ति और आखो मे तेज [illegible] से होगा। यह दयनीय दशा कब तक चलेगी? इसलिए आदर्श [illegible] के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि सारे राज्य मे खेती के पूरक ग्रामोद्योग का जाल फैला हुआ हो। इन गृह उद्योगो और ग्रामें उद्योगो के सरक्षण और स्थैर्य का प्रबन्ध राज व्यवस्था करे। सरक्षण का अर्थ है जो पक्का माल इन उद्योगो के द्वारा तैयार होता है वह माल मिलो के द्वारा तैयार न कराए जाय, साथ ही इन उद्योगो से जो माल तैयार हो उसकी बिक्री की जिम्मेदारी भी सरकारी ही होनी चाहिये। हमारी सरकार ने खादी ग्रामोद्योग बोर्ड बनाया है, क्या हम उससे आशा करे कि उसका पहला कर्त्तव्य खादी और ग्रामोद्योग के सरक्षण और स्थैर्य का प्रबन्ध करना है। सम्पत्ति का विभाजन वर्षा की बून्दो की तरह घर-घर में करने के लिए, जनता को स्वावलम्बी बनाने के लिए, समर्थों की सेवा प्राप्त करने के लिए तथा जनता के पारस्परिक सहयोग को दृढ करने के लिए भी ग्रामोद्योगो के समान, सहज, सुलभ और समर्थ योजना कोई दूसरी नही है। आर्थिक क्षेत्र मे यदि समता नही होगी तो ऊँच नीच का भेद बढेगा, परावलम्बन्न पैदा होगा, एक आत्मा दूसरी आत्मा की गुलाम बनेगी। इसीलिए तो विनोबा जी सीताराम की तरह भूदान-यज्ञ और ग्रामोद्योग दोनो का साथ-साथ जप करते हैं।

सामाजिक क्षेत्र में जाति भेद या ऊँच नीच का भाव भी हमारी समाज रचना मे नही टिक सकेगा। किसी ब्राह्मण का गुण है तो उसे उसके अनुकूल काम दिया जायगा किन्तु उसके कारण वह दूसरो से ऊँचा नही समझा जायगा। उसी तरह चमार, मेहतर और डोम आदिभी नीच नही समझे जा सकते। समाज सेवा की दृष्टि से इसलिए प्रत्येक व्यक्ति समाज का दिया हुआ काम करेगा और समाज उसकी योग्यता देखकर उसे काम देगा। योग्यता के विकास में आनुवशिक सस्कारो की सहायता ली जाय, तदनुरूप होकर व्यक्ति जिस काम को उठाना अपना कर्त्तव्य समझे, दूसरा कोई व्यक्ति उसमें उससे प्रतिद्वन्द्विता न करे, सबको समान सरक्षण और तुल्य वेतन मिले, जिम्मेदारी अपने-अपने काम करनेवाले समान व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ के नाते समकक्ष माने जाय और उनकी स्वकर्म रूप पूजा से भगवान प्रसन्न हो।

सर्वोदय समाज व्यवस्था या रामराज्य अथवा ग्राम राज्य की जितनी चर्चा हमने अबतक की है उसके साथ अब हम एक आदर्श व्यवस्था की कसौटी के तत्त्व पाठको के विचारार्थ देते हैं।

(१) सर्व राष्ट्रीय भ्रातृभाव,

(२) राष्ट्र के सबलो का ज्ञानपूर्वक, यथाशक्ति परन्तु सहज स्फूर्त और हार्दिक सहकार,

(३) समर्थ अल्प सख्या और सर्व सामान्य बहुसख्या का मतैक्य,

(४) सबके सर्वागीण और समाज विकास की दृष्टि,

(५) राज्य सत्ता का व्यापकतम विभाजन,

(६) अल्पतम शासन,

(७) सुलभतम तत्र,

(८) न्यूनतम व्यय,

(९) कम-से-कम रखवाली, और

(१०) सार्वत्रिक अव्याहत एव तटस्थ अथवा मुख्य ज्ञान प्रचार।

भूदान यज्ञ का यह आन्दोलन इसलिए मनुष्य को नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सभी क्षेत्रो में परिवर्तन लाना चाहता है। इसी को क्रान्ति कहते है। आजकल हिंसा को ही क्रान्ति समझते है किन्तु जहा बुनियादी चीजो में क्रान्ति नही वहा ऊपर-ऊपर के परिवर्तन को क्रान्ति कहना गलत होगा। क्रान्ति तभी होती है जब हम अपने नैतिक जीवन मे परिवर्तन करते है। यह भूदान तो एक पञ्चर है। आरम्भ में विचार को समझने और मोह-ममता से मुक्त होने का एक साधन है। ममता छूटे कैसे? जमीन की मालिकी का मोह छोडना तो इस मोह मुक्ति का पहला कदम है। दान देना किसी पर कृपा नही है। अन्त में हमारी कल्पना तो यह है कि गावो की जितनी भूमि है वह सब गाववालो की है। आगे जाकर हम तो कहेंगे कि यदि प्रान्त मे भूमि कम है और मनुष्य ज्यादा है तो दूसरे प्रान्तो मे जाकर रहे। एक देश से दूसरे देश मे भी लोग बसने के लिए जाने चाहिये। भूमाता सारी-की-सारी पूर्ण मुक्त है, जो जहा रहना चाहे रह सके। जहा सेवा करना चाहता हो, कर सके। हम इस प्रकार दुनिया के नागरिक बनना चाहते है और आर्थिक सामाजिक तथा राजनैतिक भेद रखना नही चाहते है। जमीन चाहे थोडी या बहुत छोटी हो या बडी हो सब परमेश्वर की देन है। हम उसके मालिक नही बन सकते। हिन्दुस्तान के लोग हिन्दुस्तान के मालिक, जर्मनी के लोग जर्मनी के मालिक, यह विचार ही गलत है। सारी हवा, सारा पानी, सारी रोशनी और सारी धरती, सारी-की-सारी सबकी है। बस, सक्षेप में यही भूदान यज्ञ आन्दोलन का मूलाधार है।

ग्रामीण उद्योगों का विकास

श्री जयनारायण सिंह

किसी भी देश के आर्थिक विकास में प्रयत्नशील होने के पहले वहा के अर्थनीति विधायको को उस देश के मूल आर्थिक तत्त्वो से पूर्ण परिचित हो जाना चाहिये। प्रत्येक देश की अपनी विशेष आर्थिक परिस्थितिया हुआ करती हैं। हमारा देश इसका अपवाद नही हो सकता। भारतीय आर्थिक तत्त्व की भी कई विशेषताए है। उनमें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, कृपि की प्रधानता, जन साधारण में फैला हुआ प्रचड भाग्यवाद और तज्जनित आर्थिक प्रश्नो के प्रति शून्य उदासीनता, ग्रामीण जनसख्या का बाहुल्य और औद्योगिक मनोवृत्ति का सर्वथा अभाव, निम्न जीवन स्तर और बेकारी की समस्या आदि।

यूरोप से सम्बन्ध रखने पर भी भारत में या पूरब के अन्य देशो में उस पाश्चात्य आर्थिक दृष्टिकोण की अनुपस्थिति दीख पडती है। जो आर्थिक या भौतिक विकास का बिन्दु माना जाता है। पूर्वीय आर्थिक चिन्तन धारा और उस पर आधारित पूर्वीय अर्थनीति पश्चिम के आर्थिक विचारो से कुछ भिन्न पडती है। इस कारण, अविकसित देशो की आर्थिक समस्याओ पर उनकी विशेषताओ को ध्यान मे रखते हुए स्वतत्र रूप से चिन्तन करने की आवश्यकता है। ये विशेषताए भारत में भी काफी सशक्त हैं और प्रत्येक आर्थिक योजना मे इन पर समुचित विचार अपेक्षित है। ये विशेषताए बम्बई और कलकत्ता जैसे व्यावसायिक नगरो और जमशेदपुर तथा डालमियानगर जैसे औद्योगिक केन्द्रो के बावजूद भी सशक्त हैं, इसका अनुमान तो गावो की दशा के निकटतम अध्ययन से ही लग सकता है। यह बात तब और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है जब हम गावो में या दिहातो मे रहते हुए विशाल जन समुदाय का ध्यान करते हैं।

भारत मे लगभग सात लाख गाव हैं और इनमें साढे २९ करोड लोग रहते हैं। इस प्रकार जन सख्या का प्राय ६६ प्रतिशत भाग गावो मे रहता है। इस अपार जन समूह की प्रधान जीविका कृपि है। कुछ गृह-उद्योग भी यत्र-तत्र हैं पर उनकी अवस्था अत्यन्त दयनीय है। इस प्रकार कृषि मात्र ही जीविकोपार्जन का मुख्य साधन है। कृपि की समस्या स्पष्टत गावो की मुख्य आर्थिक समस्या है। कृपि के प्रस्तुत व्यय की प्रणाली मे परिवर्तन की आवश्यकता, ऐसे परिवर्तनो की सम्भावना आदि प्रश्न हमारे गावो की आर्थिक प्रश्नावली में प्रमुख है।

भारत मे कृपि के कार्य क्षेत्र गाव हैं। ग्रामीण जन समूह का बहुत बडा भाग अशिक्षित है, पर अभी तो उत्पादन के वे ही साधन काम में लाये जाते हैं जो सदियो से प्रचलित थे। कृषि के नये साधन और नई प्रणालिया जिन्होने पश्चिम के कृषि उत्पादन की काया पलट कर दी है, यहा केवल वैज्ञानिको एव विशेषज्ञो की जानकारी के विषय हैं। खेतो में काम करनेवाले कृपको को इतनी खबरें तक नही है। एक ओर तो प्रयोगशालाओ में आधुनिकतम प्रणालिया एव साधनो के अनुसधान हो रहे है, दूसरी तरफ भारतीय कृषक पुरानी लकीर का फकीर बना हुआ है। प्रयोगशालाओ के कार्य भी महत्त्वपूर्ण है पर उनसे भी महत्त्वपूर्ण है जानी हुई बातो से उस व्यक्ति को अवगत कराना जो खेतो में वास्तविक उत्पादन का कार्य कर रहा है।

कृषि की समस्या हमारे यहा मुख्यत सिंचाई की समस्या है अत कृषि के विकास का मापदड सिंचाई की व्यवस्था की प्रगति है। प्रथम पचवर्षीय योजना में इस सत्य को स्वीकार किया गया है और सिंचाई सम्बन्धी निर्माण कार्य को अत्यधिक महत्व दिया गया है। साथ ही कृषि कार्य में वृद्धि, बजरो को खेती लायक बनाने के प्रयत्न और शोध कार्य के नतीजो के प्रयोग की व्यवस्था है। ग्रामीण आर्थिक जीवन में बहुरूपता और विस्तार पर अधिक जोर दिया गया है और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए डेरी, फल-फूलो के उत्पादन और अन्य ग्रामोद्योगो के विकास का प्रस्ताव है। कृपि के लिए पूजी की व्यवस्था के सम्बन्ध में भी कुछ सुझाव रखे गये है। इसी विचार से योजना में सहकारी सस्थाओ का बहुत बडा महत्त्व माना गया है। इस दिशा मे रिजर्व बैंक की दिलचस्पी देखते हुए प्रगति की आशा भी की जा सकती है।

कृपि से सम्बन्धित सबसे मौलिक प्रश्न भूमि पर अधिकार का है। "भूमि कृपक की", यह नारा तो प्राय स्वीकृत है पर इसके तार्किक निष्कर्ष पर पहुचने में बडी-बडी अडचनें आ जाती हैं। पर यह भी अत्यधिक स्पष्ट है कि इन्हे हल किये बिना भी काम चलने का नही। इसीलिए जहा एक तरफ योजना मे लक्षित उत्पादन वृद्धि की ओर प्रयत्नशील होना आवश्यक है, दूसरी ओर भूमि सम्बन्धित नीति ऐसी होनी चाहिये जो सम्पत्ति और आय सम्बन्धित विषमता को दूर करे, शोषण का अन्त करें, कृपक और श्रमिक की सुरक्षा की व्यवस्था करे और ग्रामीण जन समूह के भिन्न भागो में पद और अवसर की समता के लिए आशा का सचार करे।

पचवर्षीय योजना में भूमि सुधार के जो प्रस्ताव है उनका भूमि सम्बन्धी इन पाच हितो से सम्बन्ध है, (१) मध्यवर्ती वर्ग, (२) बडे

भूमिपति, (३) निम्न और मध्य वर्ग के भूमिपति, (४) भूमिहीन कृषक, (५) भूमिहीन मजदूर। पहली श्रेणी के लोगो का भूमि से सम्बन्ध विच्छेद कराया जा चुका है और भारत सरकार की एक विज्ञप्ति से यह ज्ञात होता है कि पश्चिमी वगाल को छोडकर 'ए' और 'वी' वर्ग के सभी राज्यो मे इनके हको को समाप्त कर दिया गया है।

एक व्यक्ति के पास कितनी जमीन रहनी चाहिये, इसकी ऊपरी सतह को निर्धारित करने के सिद्धान्त को योजना मे स्वीकार कर लिया गया है। किन्तु, इसका निर्णय व्यक्तिगत अधिकार और कर्त्तव्य की विवेचना और भूमि वितरण के लिए उपलब्ध भूमि से नही वल्कि अर्थशास्त्र और उत्पादन सम्वन्धी साधारण दृष्टिकोण एव सार्वजनिक हित की दृष्टि से होना चाहिये। इस आधार पर एक व्यक्ति के अधिकार मे रहनेवाली और एक व्यक्ति के अधिकार में छोडी जानेवाली भूमि की ऊपरी सतह दो उद्देश्यो के लिये निश्चित की जा सकती है? (१) भविष्य में भूमि प्राप्ति और (२) व्यक्तिगत कृषि-कार्य के पुनरारम्भ के लिये।

पचवर्षीय योजना में इस वात की भी चर्चा मिलती है कि प्रत्येक राज्य में ऐसे नियम बनें जिनके आधार पर कृषि कार्य और कृषि व्यवस्था में कार्य क्षमता का एक समुचित मानदड निश्चित हो सके। इस मानदड के अनुसार बडे-बडे फार्मों के दो भेद किये जा सकते हैं। (१) वे जिनकी व्यवस्था इतनी अच्छी है कि उनको खड-खड करने से उत्पादन घटने का डर है, (२) वे जो इस मानदड पर खरे नही उतरते हैं। इन दूसरी तरह के फार्मों पर ही भूमि सम्बन्धी प्रस्तावो को पहले कार्यान्वित करना चाहिये। इन्हें सहकारिता के आधार पर सगठित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिये, इस प्रकार के उनलोगो की भूमि का, जो वडे पैमाने पर भूमि रखते हैं वहुत हद तक पुनर्वितरण हो जा सकेगा।

निम्न और मध्य श्रेणी के भूमिपतियो के विषय में नीति का उद्देश्य प्रोत्साहन और सहयोग दान होना चाहिये। साथ-ही-साथ सहकारी आन्दोलन को भी यथासभव सहायता मिलनी चाहिये। छोटे-छोटे होल्डिगो का एकीकरण और न्यूनतम होल्डिग की सीमा के निर्धारण की भी व्यवस्था होनी चाहिये। भूमिहीन कृपको के लिए एक निश्चित अवधि होनी चाहिये और उस अवधि के वाद कृपि कार्य के अधिकार की पुनर्प्राप्ति की भी गारटी होनी चाहिये जवतक कि भूमिपति स्वय खेती करना नही चाहें।

भूमि वितरण के प्रस्तावो से मुख्यत ऐसे लोगो को ही लाभ होता है जो किसी-न-किसी रूप मे भूमि रखते हैं। इसीलिए भूमिहीन मजदूरो की दृष्टि से भूदान यज्ञ का विशेष महत्त्व है। इसके द्वारा भूमिहीनो को भूमि प्राप्त करने का अवसर मिलता है। भूदान यज्ञ प्रस्तुत आर्थिक तत्र को चुनौती है जिसमे एक ओर तो कुल वश और जन्म की विशेषता से भूमि पर अधिकार मिलता है और दूसरी ओर इन्ही कारणो से भूमि पर अधिकार मे सन्निहित उन्नति और अभ्युदय के सुअवसर से वचित रहना पडता है। इस प्रकार हम देखते है भूमि सुधार की समस्या में तत्वात्मक परिवर्त्तन का प्रश्न प्रमुख हो जाता है।

छोटे और अनार्थिक होल्डिग कृषि विकास के मार्ग मे प्रमुख व्यवधान हैं। अत निम्न और मध्य श्रेणी के भूमिपतियों को सहकारिता के आधारपर सगठित करने का प्रयत्न करना चाहिये। 'भूमि कृपको की' के सिद्धान्त को इसी पथ पर कार्यान्वित किया जा सकता है। साथ-ही-साथ उन सुदूर और निर्दिष्ट उद्देश्यो की ओर भी दृष्टि रखनी चाहिये जिनकी प्राप्ति के वाद ही यह सिद्धान्त मूर्त्त रूप पा सकता है। इस निर्दिष्ट पथ पर ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था को गतिशील करना चाहिये। इसके लिए ग्राम्य स्तर पर ऐसे सगठन का आयोजन आवश्यक है जिसके अधिकार का श्रोत सम्पूर्ण ग्रामीण जन-समूह हो। इस सगठन को गावो के सम्पर्क-विकास के लिए उत्तरदायी होना चाहिये। कुछ इसी प्रकार के सगठन की ओर पचवर्षीय योजना में सकेत है।

भूमि पर जनसख्या का दवाव वढता जा रहा है और अन्य उद्योग विकसित नही हो पाए हैं। अत गाव की सारी भूमि का सहयोग के आधार पर प्रवन्ध होना चाहिये तथा कृषि के अलावा अन्य उद्योग-धधो और सामाजिक सेवाओ का भी सगठन होना चाहिये। गावो में एक नवीन वातावरण लाने के लिए और आर्थिक विकास के कार्य में सार्वजनिक उत्साह की सृष्टि के लिए सहकारी समितियो का सगठन आवश्यक प्रतीत होता है। ये समितिया गावो के विकास के प्रकाश-केन्द्र वनेंगी। इनका मुख्य उद्देश्य गाव की भूमि और अन्य प्राकृतिक साधनो का सर्व हित की दृष्टि से विकास होना चाहिए। ऐसो 'सहकारी ग्राम्य व्यवस्था' कोआपरेटिव विलेज मैनेजमेंट ही इस प्रकार की राष्ट्रीय योजना को आधार वना सकती है जिसमें दरिद्रता एव जाति और पद मे उद्भूत सामाजिक विपमता का उन्मूलन हो सके। ग्राम विकास के निरीक्षण के लिए और भूमि सुधार की देखरेख के लिए एक "केन्द्रीय भूमि सुधार सस्था" की व्यवस्था भी पचवर्षीय योजना में है।

१९५१ की जनगणना के अनुसार साढे उनतीस करोड गावो में रहनेवाले लोगो में से लगभग २५ करोड कृषि मे लगे हैं। इनमें अट्ठारह प्रतिशत भूमि जोतनेवाले और उनके आश्रित लोग हैं। यह आज की कृपि व्यवस्था का वहुत वडा दोष है। पचवर्षीय योजना मे विभिन्न उपायो से इसको दूर करने की व्यवस्था है। खेतिहर मजदूरो के कल्याण के लिए निम्नलिखित उपायो की ओर पचवर्षीय योजना मे सकेत है

(क) वैसी भूमि पर जिसमें घर हैं, घरवाले के अधिकार की स्वीकृति और यथासम्भव शाक-भाजी के लिए छोटे-छोटे उद्यानो की व्यवस्था।

(ख) भूदान आन्दोलन में सहयोग प्रदान और उसे ग्रामोत्थान का एक स्थायी अग वनाना।

(ग) श्रम सहकारी समितियो का सगठन और उन्हे ही सिंचाई और निर्माण कार्यो का माध्यम वनाने का प्रयत्न।

(घ) नई भूमि या नये सिरे से प्रयोग मे लाई गई कृपि योग्य भूमि पर भूमि-हीन मजदूरो या भिन्न और मध्य श्रेणी के अनार्थिक होल्डिगोंके मालिको का सहकारिता के आधार पर सगठन,

(ङ) इस प्रकार के सहकारी ग्रूपो को आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता,

(च) छात्र वृत्ति और उद्योग शिक्षा द्वारा विशेष आर्थिक सहयोग,

(छ) गाव के विस्तार कार्यकर्ताओ, खेतिहर मजदूरो के रोजगार और कल्याण का उत्तरदायित्व देना और इस सम्बन्ध में ग्राम पचायतो के उत्तरदायित्व पर विशेष जोर देना।

हम देखते हैं कि कृषि समस्या के दो पहलू है, (१) प्राचीन साधनो और प्रणालियो का बहिष्कार और उसकी अर्वाचीन साधनो सामग्रियो और पद्धतियो का प्रयोग, और (२) "भूमि कृषक का" सिद्धान्त के आधार पर भूमि का पुनर्वितरण और भूमि के प्रस्तुत मानवीय सम्बन्धो का तदनरूप पुनःसस्थापन। साधारणतया इन दोनो पहलुओ में कोई विरोध नही है। सत्य तो यह है कि किसी भी प्रकार के विकास के पहले मानवीय सम्बन्धो का ही निश्चित होना परमावश्यक है। भारत में कृषि के पहले पहलू पर ही विशेष ध्यान दिये जाने को कुछ अर्थशास्त्रियो ने असगत माना है। पर खाद्यान्न सकट जैसी एक असाधारण परिस्थिति के उपस्थित रहने के कारण उसके तत्कालीन हल के रूप में यह उलट फेर कुछ अश तक परिस्थितजन्य भी माना जा सकता है। भूमि सम्बन्धो की समस्या स्वाभावत दीर्घकालीन है। अत इसकी जगह पर हमारी चिन्ता का मुख्य विषय हो गया है प्रस्तुत और उपलब्ध साधनो तथा शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित हो जानेवाली प्रणालियो द्वारा अधिकाधिक उत्पादन-वृद्धि। जहा इस दिशा में जो प्रयत्न हो रहे है उन्हें द्रुततर बनाने का प्रयत्न होना चाहियें, भूमि सम्बन्धो के पुन सस्थापन का निर्दिष्ट हमारी आखो से ओझल नही होना चाहिये क्योकि उनकी अनुपस्थिति में उत्पादन वृद्धि की दिशा मे भी मार्ग अवरुद्ध होने का डर है। सबसे बड़ी बात यह है कि इन सम्बन्धो के पुनस्सस्थापन की अनुपस्थिति मे यदि कुछ विकास हो भी तो वह सर्वांगीण और स्थायी नही हो सकता।

निकट भविष्य में प्लानिंग कमीशन ने राज्य सरकारो को प्रस्तावित भूमि गणना के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक सलाह देने का निश्चय किया है। इस गणना के द्वारा भूमिहीन कृषको के बीच उपलब्ध भूमि का अन्दाज लग सकेगा। इधर राज्य सरकारो और योजना आयोग के बीच प्रस्तुत भूमि होल्डिग की ऊपरी सतह को निश्चित करने के विषय मे कुछ मतभेद सा हो गया है। इस विषय में विश्वसनीय आकडे उपलब्ध नही है। एक मोटे हिसाब से तीस एकड की होल्डिग के आधार पर समूची कृषि योग्य भूमि का आठ प्रतिशत भाग इसके अन्तर्गत आ सकता है। इसमें वैसी भूमि के आकडे नही है जिन्हे भूमिपति दूसरो को जोतने के लिए देते है क्योकि ऐसे जोतनेवालो को जोतने और खरीदने का अधिकार देने की बात सोची जा रही है। ऐसी भूमि कुल मिला कर पचास प्रतिशत के लगभग होगी। इस प्रकार लगभग चार प्रतिशत या इससे भी कम भूमि के भविष्य में निर्णय का प्रश्न है। ऐसी भूमि के बारे सविधान के आधार पर बाजार दर पर मुआवजा देना आवश्यक समझा जाता है।

इस प्रकार की भूमि के लिये योजना आयोग ने तत्कालीन और दूसरा स्थायी हल सोच रक्खा है। इसका प्रयोग भूमि गणना हो जाने और इस कोटि की भूमि का अदाज मिल जाने पर होगा। तत्कालीन सुझाव के अनुसार राज्य सरकारो को कृषि कार्य और कृषि व्यवस्था सम्बन्धी क्षमता के मानदड को निश्चित करने के लिए कानून बनाने होगे। जो भूमि इन जाचो में खरी उतर सकेगी, उसके प्रस्तुत सम्बन्धो को ज्यो-का-त्यो रक्खा जायगा जिससे उत्पादन वृद्धि मे बाधा न हो पाए। पर जो भूमि उत्पादन सम्बन्धी इन जाचो में खरी न उतर सकेगी उसे सरकार बिना मुआवजा के लेकर भूमिहीन कृषको के बीच सहकारी या अन्य किसी ढग से वितरित कर देने का अधिकार रक्खेगी। इस स्थायी हल में भूमि सम्बन्धी स्वीकृत सिद्धान्त, "भूमि कृषक की" के अनुसार सम्पूर्ण भूमि के पुनर्वितरण और नये सम्बन्धो के पुनस्सस्थापन तथा कृषि सम्बन्धी नये विचारो और साधनो के उपयोग की बात है।

हाल मे ही राष्ट्रीय विकास समिति के द्वारा योजना में अब तक की गई प्रगति पर विचार किया गया था। ग्रामीण जीवन के विकास के लिए कम्युनिटी डेवलपमेंट प्रोजेक्ट्स और नेशनल ऐक्सटेंशन सर्विस तथा अन्य माध्यम से जो कार्य किये जा रहे हैं उन पर सतोष प्रकट किया गया और उसके और विस्तार तथा तदर्थ समुचित जन जागरण के लिए आवश्यक कदमो पर विचार किया गया। यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रस्तुत बेकारी की विकटता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तावित व्यय में कुछ वृद्धि करने की बात सोची जा रही है। पचवर्षीय योजना में जो प्रगति हुई है उसे असतोषजनक माना गया। पर खाद्यस्थिति में कुछ सुधार के कारण अन्नायात मे कमी करनकी चर्चा हो रही है। इस प्रकार खाद्योत्पादन में कुछ प्रगति हुई है किन्तु और उत्पादन सम्बन्धी कोई भी विकास या लाभ बिना तत्रात्मक परिवर्तन के स्थायी नही हो सकता। अत भूमि सम्बन्धो के बारे में जो निर्दिष्ट उद्देश्य है उसकी ओर आख रखना और उस दिशा में अधिकाधिक कार्यशील होना अत्यावशयक है।

हमारे यहा भूमि पर जनसख्या के गुरुतर दबाव की बात सर्वविदित है। ऐसा भी कहा जाता है कि यदि सारी भूमि वितरण के लिए उपलब्ध भी हो जाय तो सभी को इतनी जमीन नही दी जा सकती कि अनार्थिक होल्डिगो से मुक्ति मिल सके। इसलिए ऐसी जनसख्या को जिसको भूमि पर काम मिलने की आशा नही है, अन्य रोजगारो की व्यवस्था भी आवश्यक है। हमारे यहा कुशल श्रमिक, समुचित कलपुर्जे और आवश्यक पूजी सबका नितान्त अभाव है। इसलिए पाश्चात्य ढग से बडे पैमाने पर उद्योग-धधो का इतना विकास होना असम्भव है कि भूमि से हटाये गये विशाल जनसमूह को उनमें लगाया जा सके। उनके अलावा इसके लिए बहुत बडे पैमाने पर औद्योगिक शिक्षा का भी अभाव है जिसके बिना यह अपार जनसमुदाय बडे उद्योग-धधो के लिये उपयोगी नही हो सकता।

सम्भवत इसी दृष्टि से पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ग्रामीण विकास के कार्यक्रमो में ग्रामोद्योगो को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उन्हे कृषि उत्पादन के समकक्ष ही प्रश्रय मिला है। इन उद्योगो के विकास के लिए यह आवश्यक है उनके विनाश के जो मूल कारण थे उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जाय। सगठन, सहकारीनीति, शोध एव शिक्षण तथा आवश्यक वित्त की व्यवस्था अपेक्षित है। बडे उद्योग-धधो का विकास और उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओ का मूल्य कम होने तथा आयात की वृद्धि के कारण कारीगरो की बनाई चीजो की माग मे कमी होने से ही गृह उद्योगो को धक्का लगा था, इसलिए गावो को इस प्रकार सगठन करना चाहिये कि वे बदलते हुए जमाने के साथ चल सकें। गाव के बेकार लोगो के रोजगार की व्यवस्था में उनका विशेष उत्तरदायित्व होना चाहिये। किन्तु इस दायित्व को पूरा करने के लिए सरकारी नीति को भी अनुकूल और सहायक होना चाहिये। इस नीति का प्राथमिक उद्देश्य ऐसे क्षेत्रो का सगठन होना चाहिये जहा गृह-उद्योगो का विकास हो सके। जहा कही भी बडे उद्योग-धधो और

गृह-उद्योगो में सघर्ष होने की आशका हो दोनों के पारस्परिक सम्बन्धो और समुचित क्षेत्रो का निश्चय हो जाना चाहिये। पर जब तक गृह और छोटे उद्योगो की टेकनीक का शीघ्र परिवर्तन नही होता, सरकारी नीति और सहायता का अल्पकालीन महत्त्व ही क्या हो सकता है। इनकी टेकनीक और सगठन में उन्नति के लिए श्रमिक कार्यक्रम की आवश्यकता होगी। अत योजना में शिक्षण केन्द्रो एव उत्पादन केन्द्रो की भी व्यवस्था है और साथ ही तेल, साबुन, धान कूटना, गुड, चमडा आदि ग्राम उद्योगो के विकास के कार्यक्रम है।

ग्राम उद्योगो के अलावा जो छोटे-छोटे उद्योग है, उन्हें तो श्रेणियो में विभक्त किया जा सकता है, एक वे जो परम्परागत दक्षता एव हुनर का प्रतिनिधित्व करते है और वे दूसरे जो हाल ही के है और जिनका बडे उद्योगो से भी सम्बन्ध है। किन्तु ग्राम उद्योगो की तरह इनकी भी विशेष शिक्षा की आवश्यकता है एक ओर तो छोटे उद्योगो और दस्तकारियो को बडे उद्योगो से सम्बद्ध। करने की आवश्यकता है, पर दूसरी ओर इनके आन्तरिक सगठन में उन्नति तथा इनके विकास के लिए समुचित, आर्थिक और शैक्षणिक साहाय्य की भी परम आवश्यकता है। ग्राम उद्योग और कृषि विकास के इन सारे कार्यक्रमो को सम्पूर्ण राष्ट्रीय विकास के अभिन्न अग के रूप मे देखने का प्रयत्न होना चाहिये।

ऊपर जो विचार प्रकट किए गए है उनसे लगता है कि गावो की आर्थिक दुरवस्था ग्रामीण जीवन का सबसे पेचीदा प्रश्न है। इसका अनुमान तो इसीसे लगाया जा सकता है कि ग्रामीण समाज एक दु सह ऋण भार से कराह रहा है। यद्यपि यहा पर इस समस्या पर पर्याप्त चिन्तन हुआ है और कुछ सरकारी कदम भी इसे हल करने के मार्ग मे उठाए गए है पर यह प्रश्न अभी हल नही हो सका है। स्पष्ट है कि ग्रामीण जीवन के सस्थापन के प्रयत्नो में सर्वप्रथम ध्यान इस समस्या के समाधान की ओर होना चाहिये। ग्रामीण जीवन के आर्थिक पक्ष की चर्चा कर देते समय ग्रामीणके शरीर नाशक दैत्य, आत्मविनाशक अज्ञान, भूमि क्षुधा, महाजनो और जमीन्दारो द्वारा निर्दय शोषण, अनार्थिक होल्डिगो तथा जर्जर प्रणालियो के कारण परिवार के मात्र भरण-पोषण के लिये भी पर्याप्त भूमि नही पाने में उनकी असमर्थता, और इस कृषि आय को पूरित करने के लिए गृह उद्योगो की अतीव आवश्यकता है इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये। पिछली पक्तियो में इन सभी की चर्चा यत्र-तत्र हुई है और यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है कि गावो के पुनर्निर्माण का प्रश्न उनके आर्थिक सस्थापन का प्रश्न है। हल के रूप में कृषि और भूमि मे सुधार तथा ग्रामोद्योगो के पुनरुत्थान की ओर सकेत किया गया है। सर्वत्र मान्यता यह है कि सहकारी ग्राम्य व्यवस्था मे निहित विकेन्द्रित आर्थिक तत्र ही इस देश के लिए और हमारे गावो के लिए हितकर होगा। आगे की पंक्तियो में इसी मान्यता की परीक्षा और समीक्षा की जायेगी।

यहा एक बात की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक प्रतीत होता है। उत्पादन प्रणाली और आर्थिक व्यवस्था द्वारा ही सामाजिक और राजनीतिक भित्तियो का स्वरूप निर्धारित होता है। अत आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी निश्चय पर पहुचने के पहले इस के स्वरूप का निश्चय होना चाहिये जिसमें ऐसी आर्थिक व्यवस्था की योजना बनाई जाय जो उस स्वरूप की। अत ग्रामीण जीवन के आर्थिक विकास में ग्रामीण जीवन की मुख्य आधारशिलाओ की ओर भी ध्यान देना परम आवश्यक है। ये आधारशिलाए कहां तक गाव के निर्धारित भावी रूपको साकार बनानेमें सहायक हो सकती हैं, या कहा तक उनमे परिवर्तन और सशोधन की आवश्यकता है। एक प्रश्न महत्त्वपूर्ण है क्योकि तदनुरूप आर्थिक व्यवस्था की योजना करनी पडेगी किन्तु गावो के भावी स्वरूप का निर्धारण देश की राजनीतिक और सामाजिक मान्यताओ से परे नही हो सकता है। गावो को भारत के राष्ट्रीय जीवन का अभिन्न अग बनाना है। अपने सविधान में हमने एक शोषणरहित और वर्गविहीन समाज तथा राजनीति के क्षेत्र में एक पूर्ण क्षेत्र में सहकारी प्रबन्ध और विकेन्द्रित तत्र को स्वीकार करना पडेगा।

गत कई वर्षो में हमारे यहा उद्योग के क्षेत्र मे कुछ प्रगति हुई है। फलस्वरूप कतिपय उद्योगो मे सगठन और टेकनीक दोनो दिशाओ में प्रगति का आभास मिलता है। इसके विपरीत कृषि के क्षेत्र मे वही पुराने जमाने की लकीर पीटी जा रही है। इस प्रकार आशिक और असतुलित विकास का प्रश्न उठ खडा होता है। इस सतुलन को दूर करने की दृष्टि से भी कृषि और पिछडे उद्योगो की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। कृषि ग्रामीण समाज के जीविकोपार्जन का साधन मात्र ही नही है। यह एक विशेष जीवन-दर्शन का प्रतीक है। यह जीवन-दर्शन हमारे रग-रग में इस तरह व्याप्त है कि इसे दूर करने का प्रयत्न असम्भव ही नही अवाछनीय भी है। एक ही प्रकार की आर्थिक समस्याओ के समाधान विभिन्न राजनीतिक पृष्ठभूमि और सामाजिक सगठन मे भिन्न-भिन्न हुआ करते है। ये समाधान तभी स्थायी और प्रभावोत्पादक हो सकते है, यदि ये सर्वमान्य जीवन दर्शन, सास्कृतिक परम्परा, राजनीतिक पृष्ठभूमि और सामाजिक सगठन के अनुकूल हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि सुसम्बद्ध और स्थायी आर्थिक विकास के लिए जीवन के अन्य पक्षो पर भी ध्यान देना आवश्यक है। वस्तुत किसी भी योजना की सफलता इसीमें है कि वह आर्थिक प्रगति के साथ-साथ अन्य क्षेत्रो मे भी जागरण पैदा कर सके। एक ऐसा वातावरण पैदा कर सके जिसमें आर्थिक योजना की प्रमुख मान्यताओं में जनसाधारण का विश्वास हो और ये मान्यताए जीवन के अन्य क्षेत्रो की मान्यताओ के साथ जोडी जा सकें।

इधर कुछ अर्से से कृषि पर आधारित जीवन दर्शन और उससे सम्बद्ध राजनीतिक और सामाजिक मान्यताए गावो की फैली हुई अशिक्षा के अन्धकार में लुप्तप्राय होती जा रही थी। यत्र-तत्र शिक्षा के आलोक से, हाल में पश्चिम के औद्योगिक विकास और तदोत्पन्न जीवन की सुख-सामग्रियो की ओर ध्यान गया है। पर आवश्यकता इस बात की है कि अपने इतिहास के पिछले पृष्ठो में वर्णित सुसमृद्ध समाज और उसके आर्थिक स्वरूप की ओर भी हमारा ध्यान जाय। इस प्रश्न पर हमे गम्भीर रूपमे विचार करना है कि क्या यहा भी विकास का एकमात्र अर्थ है औद्योगिक क्रान्ति और तदोद्भूत अनेक बुराइयो की पुनरावृत्ति। क्रान्ति की आवश्यकता यहा भी है पर इसका आधार पूजी और मशीन नही बल्कि जमीन होगा। आर्थिक तत्र मे यह मानवीय स्पर्श ही औद्योगिक जन-कटुता को दूर कर सकेगा। यही स्पर्श सर्वोदय योजना का प्रतीक है। ऐसा भी हो सकता है कि औद्योगिक क्रान्ति के द्वारा दिये गये नवीन साधनो से ग्रामीण जनता के विके-

न्द्रित जीवन को ही अर्वाचीन, सब प्रकार से अर्वाचीन बनाने का प्रयत्न किया जाय। इस रीति से इस मानवीय स्पर्श के साथ-साथ हम अपने प्राचीन मूल्यो को अक्षुण्ण रखते हुए भी अर्वाचीन बना सकेंगे।

विकास के इस पहलू पर विचार, पश्चिम की बदलती हुई विचार-धाराके कारण भी आवश्यक प्रतीत होता है। वैसे देशो में जहा औद्योगीकरण की नीति स्वीकृत हो चुकी थी वहा भी गावो और कृषि पर फिरसे ध्यान दिया जाने लगा है और विकेन्द्रीकरण को प्रश्रय मिलने लगा है। विशेष कर इग्लैड और युगोस्लाविया में इस दिशा में जो प्रयत्न किये गये है वे सराहनीय और महत्त्वपूर्ण है। इनसे विदित होता है कि औद्योगिक क्रान्ति के अग्रदूत ब्रिटेन के पूजीवादी और बडे उद्योगो पर आधारित युगोस्लेविया के साम्यवादी तत्र में भी परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है इसलिए हमे भी नये सिरे से निर्माण करने में इस दृष्टिकोण को ध्यान मे रखना चाहिये।

गाव, कस्बे और नगर में सभी आर्थिक सगठन की इकाइया है। कृषि की आवश्यकताओ के अनुसार जब थोडी-थोडी दूर पर लोग बसने लगते है तो ये बस्तिया गाव का रूप धारण करती हैं। जब तक ये बस्तिया कृषि उत्पादन का केन्द्र रहती है इनकी लम्बाई-चौडाई कम रहा करती है। जैसे इनमें अन्य उद्योग-धघे केन्द्रित होते जाते है उनका क्षेत्रफल भी बढता जाता है। इन विभिन्न आर्थिक इकाइयो के साथ-साथ आर्थिक रूप-रेखा का एक दूसरा पहलू भी जुडा हुआ है। इस पहलू को उद्योग बनाम कृषि का नाम दे सकते है। यह विवाद इधर कुछ ठढा पडता जा रहा है शायद इसलिए कि प्रथम पचवर्षीय योजना द्वारा इस विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण निश्चय किये गये है। प्रथमत यह विवाद भ्रामक है क्योकि उद्योग या कृषि सभी देश मे रहनेवाले जन समह की आवश्यकताओ की पूर्त्ति के लिए है। अत इस क्षेत्र के उत्पादन मे कितनी वृद्धि हो और साधनो का कौन सा भार इस क्षेत्र मे लगे इसका निर्णय जनसाधारण की आवश्यकताओ के आधार पर ही किया जा सकता है। जहा लोग अन्न की कमी से भूखे मर रहे हो वहा विलास की सामग्रियो के उत्पादन की बात ग्राह्य नहीं हो सकती। इसलए कृषि और उद्योग की सीमा और परिधि का निश्चय विद्वानो के विवादद्वारा नही जन साधारण की आवश्यकताओ और उन्हें पूरा करने के लिए किये गये प्रयत्नो द्वारा ही होना चाहिये। शायद इसी विचार धारा से प्रभावित हो, योजनाकारो के प्रथम पचवर्षीय योजना में कृषि और गृह उद्योगो को सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

एक और भी समस्या है जिसकी ओर आये दिन अधिकाधिक ध्यान दिया जाने लगा है। यह समस्या रोजगार की है। इस दृष्टि से भी समाज की आर्थिक व्यवस्था, गृह उद्योगो के विकास और कृषि तथा उद्योगो के प्रश्नो की महत्ता स्वीकार करनी पडती है। जिस समय पचवर्षीय योजना तैयार हो रही थी उस समय बेकारी की समस्या आज की तरह दुस्सह न हो पाई थी। सम्भवत इसीलिए रोजगार की बढती और जीवन-स्तर को चरम लक्ष्य मानते हुए भी उसमें प्राथमिक और निकटवर्ती उद्देश्य नही माना गया। पर आज सर्वसम्मति से इसे प्राथमिक स्थान दिया जाने लगा है। इस दृष्टि से भी ग्रामीण उद्योगो के द्रुतकर विकास की आवश्यकता है। भारत के अर्थ मत्री श्री देशमुख की राय में विकेन्द्रित उद्योग द्वारा ही समस्या का स्थायी निदान हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि चाहे विकास से अधिक जनसख्या को लाभान्वित करने की दृष्टि से या अधिकाधिक भूभाग को विकसित करने की दृष्टि से, आवश्यक चीजो के उत्पादन और रोजगार की बढती दृष्टि से, यह सम्पूर्ण आर्थिक तत्र के सतुलित विकास की दृष्टि से, सास्कृतिक उन्नयन की दृष्टि से यह गणतत्र के सुदृढ शिलान्यास की दृष्टि से, कृषि और गावो का सहकारी सगठन और विकेन्द्रिकरण के आधार पर पुनरुत्थान आवश्यक है। इसीलिए पचवर्षीय योजना में ऐसे सुझाव रखे गये है कि उनके द्वारा ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था में जान फूकी जा सके और गाव राष्ट्र-निर्माण की योजना की अविच्छिन्न इकाई बन सके।

बिहार भूमि की देन :

खान, धातु और खनिज

श्री ललिता प्रसाद विद्यार्थी

किसी राष्ट्र की राजनीतिक सत्ता और आर्थिक विकास के मूल में उस देश में पाये जानेवाले औद्योगिक साधनो का विशेष महत्त्व है। इगलैंड के इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट है इस देश का विकास औद्योगिक क्रान्ति के साथ प्रारम्भ हुआ और जब तक इसकी खानो से लोहा और कोयला प्रचुर परिमाण में मिलते रहे, इसके राज्य और बाजार के क्षेत्र बढते ही गए और अन्त में यह विश्व का सर्वशक्तिशाली राष्ट्र हो गया। परन्तु समय ने पलटा खाया और औद्योगिक साधनो के ह्रास के साथ-साथ इसका भाग्य-सूर्य छिपता गया। और आज विश्व के क्षितिज पर अमेरिका सर्व-शक्तिशाली राष्ट्र बन कर चमका है जिसका मूल कारण भी औद्योगिक साधनो का विकास ही है। इतना ही नहीं, रूस, जर्मनी, जापान एव अन्य ऐसे देशो के औद्योगिक इतिहास भी इस बात की पुष्टि करते है कि राष्ट्र को समृद्धिशाली और शक्तिशाली बनाने में उस देश के औद्योगिक साधनो का विशेष महत्त्व है। भारत सरकारभी आज औद्योगिक विकास के लिए कितनी योजनाए बना रही है और इस दृष्टिकोण से भारत में विहार का स्थान विचारणीय एव महत्त्वपूर्ण है।

बिहार का औद्योगिक साधन

कहना न होगा बिहार औद्योगिक साधनो मे धनी है। यहा लगभग सभी खनिज पदार्थ प्रचुर परिमाण में मिलते है। अन्य वस्तुए भी उद्योग के लिए प्राप्त है। ऐसी खेतिहर फसलो की भी कमी नही जिनका उपयोग कच्चेमाल के रूप में कल-कारखानो में होती है। सच पूछिये तो प्रकृति ने बिहार को सभी औद्योगिक साधनो से सजाया है। प्रान्त के प्राकृतिक विभाजन पर ही विचार कीजिए। उत्तरी विहार भारत की वाटिका है। चम्पारण के सोमेश्वर से पूर्णिया के खालपोखर तक, न कही पहाड है और न जगल ही। सारा उत्तरी विहार सपाट मैदान है जहा ईख, पाट, तम्बाकू, तेलहन, नील इत्यादि फसलें आसानी से उपजायी जाती है जिनपर यहा के कारखाने कच्चे माल के लिए निर्भर करते हैं। इसके विपरीत छोटानागपुर की उपत्यका भारतकी तिजोरी है। इसके गर्भ मे कोयला, लोहा, अबरख, ताम्बा, मैंगनीज, क्रोमाइट, इत्यादि प्रमुख औद्योगिक धातुए प्रचुर परिमाण में वर्तमान है। इसके अलावा चूना-पत्थर, बालू-पत्थर, साबुन-पत्थर, फायर-क्ले, बाक्साइट अलम इत्यादि खनिज पदार्थ भी कम परिमाण मे नही मिलते हैं। इतना ही नही छोटा नागपुर की यह उपत्यका ऐसे जगलो मे भी आच्छादित है जिनमे यहा के कल-कारखानो को कच्चे माल मिलते है। इस तरह विहार के औद्योगिक साधनो पर विहगम दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि इनके साधनो को तीन श्रेणियो में विभाग कर सकते हैं प्रथम खनिज पदार्थ, द्वितीय वन्य पदार्थ और तृतीय कृषि पदार्थ। अब प्रत्येक श्रेणी पर सविस्तार विचार किया जाय।

खनिज पदार्थ

विहार में वे सभी खनिज पदार्थ प्रचुर परिमाण में मिलते हैं, जिनकी उपस्थिति से कोई भूखड महत्त्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र हो सकता है। कुछ ऐसे खनिज पदार्थ है जिनके लिए पूरे देश को विहार पर निर्भर करना पडता है और कुछ ऐसे भी धातु हैं जिनके लिए विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रो को भी विहार का मुह जोहना पड़ता है। इस रहस्य के मूल में विहार

की भौगर्भिक वनवट है जिसके कारण तरह-तरह के खनिज पदार्थ ही नहीं प्रत्युत अन्य औद्योगिक क्षेत्रो को कच्चा माल मिलता है।

भौगर्भिक विशेषता

गगा के मैदान के दक्षिण की ९० प्रतिशत भूमि प्राचीनतम चट्टान की वनी है जिस चट्टान के भूगर्भशास्त्रज्ञो ने "आर्चियन रौक" को सज्ञा दी है। शेप भूमि "गोडवाना लैंड" कहा गया है जिसके गर्भ में विस्तृत कोयला क्षेत्र स्थित है। उत्पत्ति के दृष्टिकोण से "आर्चियन रौक" को दो भागो में वाटा जाता है, आग्नेय चट्टान और परतदार चट्टान। आर्चियन समय के इस परतदार चट्टान में नाना प्रकार के खनिज पदार्थ विद्यमान है। ये खनिज पदार्थ इस चट्टान मे तह-पर-तह जहा-तहा जमे हैं। ऐसी चट्टानें छोटानागपुर उपत्यका के उत्तरी और दक्षिणी हिस्से में मुख्यत पाई जाती हैं। सिंहभूमि का असस्कृत लोहा (कच्चा लोहा) ऐसी ही चट्टान मे पाया जाता है। इसी लोहे के क्षेत्र में मैंगनीज, ताबा और "कायनाइट" भी प्राप्त होते हैं। उत्तरी छोटानागपुर (हजारीबाग) तथा गया और मुगेर का अवरख क्षेत्र पेगमेटाइट चट्टान के साथ सम्बद्ध है। आर्चियन समय के आग्नेय चट्टानो मे क्रोमाइट तथा आसब्सट्स नामक खनिज पदार्थ मिलते है। इसी आग्नेय चट्टान के विस्तृत क्षेत्र में यत्र-तत्र परतदार चट्टान के भी कुछ टुकडे उभडे हुए हैं। ऐसी चट्टान जिसे चूना पत्थर की सज्ञा दी गयी है जहा-तहा डालटेनगज से रामगढ तक मिलती है जिससे चूना और सिमेंट वनाए जाते है। शाहाबाद के दक्षिण में वालू-पत्थर, चूना-पत्थर, मिट्टी पत्थर तथा 'क्वारजाइट' के परतो से बनो हुई कैमूर की उपत्यका है जिससे भी चूना और सिमेंट वनाने योग्य पत्थर मिलता है। दक्षिणी पलामू और राची के उत्तरीय पश्चिमी हिस्सो मे 'पट' नामक उपत्यका है जो डेक्कन लाखा का पूर्वी हिस्सा है। इस उपत्यका की उपरी सतह पर 'लेटराइट' की उत्पत्ति हुई है जो परिवर्तित होकर 'वाक्साइट' वन जाता है। 'वाक्साइट' से अलुमिनियम वनता है।

उत्तरी मैदान की भौगर्भिक वनावट मे कोई विशेपता नही। सारा क्षेत्र पुरानी एव नयी अलुवीयल मिट्टी द्वारा निर्मित है। पुरानी अलुवीयल मिट्टी मे एक प्रकार का ककड मिलता है जिससे भी चूना और सिमेट वनता है। ऐसी ही मिट्टी मे कही-कही साल्टपिटर और रेह पाए जाते हैं। नयी अलुवीयल मे ऐसी मिट्टी मिलती है जिसका उपयोग वर्तन, ईट, टाइल्स इत्यादि वनाने के उद्योग मे होना है। इस तरह से विहार के भौगोलिक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यहा निम्नलिखित खनिज पदार्थ पाए जाते हैं

(क) कोयला,
(ख) असस्कृत लोहा या असशोधित लोहा,
(ग) चूना पत्थर,
(घ) वालू पत्थर,
(ङ) मैंगनीज,
(च) अबरख,
(छ) असस्कृत ताबा,
(ज) कायनाइट,
(झ) स्टीटाइट, सोप स्टोन,
(ञ) वाक्साइट,
(ट) क्रोमाइट,
(ठ) फायर क्ले, चाइना क्ले, क्ले,
(ड) आसब्सट्स,

इनके अतिरिक्त कुछ और खनिज पदार्थो का नाम बिहार सरकार के माइनिंग अफसर ने अपनी रिपोर्ट में दी है वे अक्षरानुसार निम्न-लिखित हैं :—

(ढ) अलम,
(ण) अपाटाइट
(त) आरसैनिक,
(थ) औचर,
(द) कोएडम,
(ध) ग्रेफाइट,
(न) टुगस्टेन,
(प) वीसमत,
(फ) वेरीटीस,
(ब) यूरेनीटाइट।

कोयला

कोयला बिहार ही का नही वल्कि सारे देश की औद्योगिक शक्ति का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त यह कितने उद्यागो को कच्चामाल भी है। अतएव कोयला जैसे महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थ के आधिक्य के कारण बिहार दुनिया के औद्योगिक क्षेत्रो में अपना एक विशिष्ट स्थान बना सका है। इस उद्योग का प्रारम्भ १८९१ ई० में झरिया के कोयला क्षेत्र की खुदाई के साथ होता है। उस समय से उत्तरोत्तर खानें की खुदाई बढती गयी और सन् १९४४-४६ के आकडा के अनुसार बिहार के कोयले का औसत वार्षिक उत्पादन डेढ करोड टन है जो भारत के कुल उत्पादन का ५६ प्रतिशत होगा। माइनिंग अफसर की रिपोर्ट १९५० के अनुसार भारत के मुख्य कोयला क्षेत्रो में से २० से अधिक कोयला क्षेत्र बिहार में ही है। इन कोयला क्षेत्रो से देश के कुल कोयले का ६६ प्रतिशत कोयला प्रतिवर्ष मिलता है। अकेले झरिया कोयला क्षेत्र से भारत का ५० प्रतिशत कोयला निकलता है। कोयले का यह वृहद् क्षेत्र बिहार राज्य के मध्य में दामोदर और कोयल नदी की घाटियो में पश्चिम में डाल्टेनगज से लेकर पूरब में देवघर तक फैला है। कोयला क्षेत्र को निम्नलिखित वर्गों में वाटा जा सकता है —

(क) दामोदर घाटी कोयला क्षेत्र,-इस घाटीके कोयला क्षेत्र से विहार का ९५०९ प्रतिशत कोयला निकलता है और कोयले के इस उद्योग में १,१५,००० व्यक्ति काम करते है विहार का कुल कोयला कोप इसक्षेत्र में ही स्थित है। इस घाटी के मुख्य कोयला क्षेत्र (१) झरिया, (२) वोकारो, (३) रानीगज, (४) चन्द्रपुर, (५) उत्तरी करणपुरा, (६)

दक्षिणी करणपुरा और (७) रामगढ है। निम्नलिखित तालिका से विहार की खानो का औसत उत्पादन १९३७-४० पता चल सकता है

कोयले की खाने	उत्पादन	कुल का प्रतिशत
१ झरिया	१०,४२५,०००	७१ १
२ वोकारो	२,१००,०००	१४ ३
३ रानीगज, विहार	८४२,०००	५ ७
४ गिरिडीह	६६९,०००	४ ६
५ करणपुरा	५७६,०००	३ ९
६ जयन्ती, डालटेनगज राजमहल इत्यादि	११,०००	१ २

इस क्षेत्र का सभी कोयला "विटुमीनस" अथवा 'कोकिंग' के लिए उच्च श्रेणी का है। कोयला निकालने की प्रणाली में भी काफी सुधार हुआ है। 'स्टोइग' प्रणाली का व्यवहार झरिया के समीपवर्ती कोयले की खानो मे विशेषत जामाडोवा में होता है। इस प्रणाली के द्वारा खान से शत-प्रतिशत कोयला निकाला जा सकता है और रिक्त स्थान में पानी के साथ वालू भर दिया जाता है। जामाडोवा मे वालू दामोदर घाटी से रस्सी के पूरे द्वारा लाया जाता है और "हाइड्रोलिक" प्रणाली द्वारा वालू खान के रिक्त स्थानो में भर दिया जाता है। इस स्ट इग के कारण कोयला निकाला हुआ स्थान नीचे की ओर धस कर 'गोफ' नही वनता है और जगल जमाने या मजदूरो के लिए मकान वनाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। दामोदर घाटी के कोयले के क्षेत्र में आवागमन की काफी सुविधा है। नदियो की चौडी घाटियो के कारण रेल और सड़क के जाल से विछ गए है।

(ख) हजारीवाग कोयला क्षेत्र जिसके प्रधान केन्द्र है (१) इटेड-कोरी,(२) चोप, और (३) गिरिडीह।

(ग) अडजोय घाटी या देवघर कोयला क्षेत्र जिसके मुख्य केन्द्र है, (१) गन्ती (२)साहजोवी, और (३) कुदितकराय।

(घ) राजमहल कोयला क्षेत्र, जिसके मुख्य खान केन्द्र है, (१) ग्रालिमनी, (२) पचवारी, चपरवीठा, (४) जलपारी और (५)हुरा।

(ङ) कोयल घाटी के कोयला क्षेत्र यह कोयला क्षेत्र पलामू जिले में (१) डालटेनगज, (२) हुतार, और औरगा कोयला क्षेत्रो के नाम से फैला है। (१) डालटेनगज कोयला का क्षेत्रफल ३० वर्गमील है। इसकी खानो मे कोयले की कितनी मोटी परतें है जिनमे से एक की मोटाई २५ फुट है। कुल कोप ९० लाख टन है। सन् १९२४।२८ ई० के औसत आकडे के अनुसार यहा ६००० टन कोयला प्रत्येक वर्ष निकलता है। (२) हुतार कोयला क्षेत्र ५८ वर्गमील है। इस क्षेत्र की खानो में कोयल को परते ८, ९ और १४ फीट की है। इसका भी कुल कोप ९० लाख टन का है। दो सौ टन कोयला प्रतिवर्ष इस खान से निकाला जाता है। (३) औरगा क्षेत्र ८७ वर्गमील है,परन्तु ५८।। वर्गमील क्षेत्र मे ही कोयला मिल सकेगा, कुल कोप २ करोड टन का है, परन्तु कोयला निम्न श्रेणी का है।

भारत का ४५ प्रतिशत (२५९५ करोड टन कोयला विहार के ही गर्भ मे है। भारत के उच्च श्रेणी के कोयला कोप २८७ २ करोड टन जिसका ६१ प्रतिशत विहार में ही है। इतना ही नही, भारत का ८३ प्रतिशत कोकिं' कोयला (१२५ करोड टन) विहार में ही छिपा है।

इन वातो से विहार के कोयला उद्योग का उत्तरदायित्व कई गुना अधिक हो जाता है। विहार के कोयला उद्योग मे कोप-सरक्षण की काफी आवश्यकता है। इधर कोयला अव्यवस्थित रूप से वडे पैमाने पर मनमाने ढग पर निकाला जा रहा है और इस तरह अमूल्य राष्ट्रीय सम्पत्ति के शीघ्र ह्रास का मार्ग खोला जा रहा है। जहा पहले ७७५ प्रतिशत निम्नकोटि का तथा २५ प्रतिशत उच्च श्रेणी का कोयला निकाला जाता था, वहा अव यह अनुपात ठीक उलटा हो गया है। यह नीति देश के दीर्घकालीन हितो के लिए घातक और अदूरदर्शितापूर्ण है। "इडिया कोल फील्ड", कमिटी के अनुसार, वर्त्तमान उत्पादन की दर से कुल कोप की आयु ६५ वर्ष की होती है। अतएव यदि सरकार कोयले के उत्पादन, वितरण तथा उपयोग की युक्तिसगत नीति नही वना सकी तो उद्योग की वात तो दूर रही, कोई राष्ट्रीय योजना भी नही तैयार कर सकती।

लोहा

विहार के खनिज पदार्थ की दूसरी विशेपता यह है कि मिश्रित लोहा क्षेत्र भी कोयला क्षेत्र के समीप स्थित है। इसी लोहे और कोयले के परस्पर सामीप्य के कारण जमशेदपुर के लोहे और इस्पात के उद्योग ने, जो १९१२ ई० में स्थापित हुआ था, आज कितने सहायक और सहयोगी उद्योगो के साथ दुनिया में आज अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान वना लिया है। इडियन टेरिफ इडस्ट्री की रिपोर्ट मे कहा गया है,इस राज्य मे दुनिया का सवसे वडा और सवसे उत्तम मिश्रित लोहा क्षेत्र स्थित है। लोहे की खान की खुदाई सर्व प्रथम १९०४ ई० मे मयूरभज की खानो मे प्रारम्भ हुई। इसके वाद सिहभूम के कोलहन और क्योझार स्टेट्स की खानो से लोहा निकाला जाने लगा। प्रथम और द्वितीय युद्धो के समय में लोहा और इस्पात उद्योग की वृद्धि के साथ-साथ मिश्रित लोहे के उत्पादन मे भी वहुत वृद्धि होती गयी। कोलहन के नोआमडी की खान का उत्पादन ७०४, २५१ टन प्रतिवर्प है और उसी स्टेट अव सिहभूमि का एक भूखड के गोआ मनोहरपुर मे एक दूसरी खान है जो इस धातु के लिए विशेप विख्यात है। १९४४ के आकडे के अनुसार सिहभूम जिले ने टाटा द्वारा उत्पादित अनस्कृत मिश्रित लोहे का ४२ ४ प्रतिशत १,६५८,९९३ टन उत्पादन किया है। सिहभूमि का असशोधित लोहा वहुत ही उच्च श्रेणी का है। उसमें ६० प्रतिशत से कम लौह द्रव्य कभी भी नही रहता है। सी० एस० फाक्स के अनुसार इस लौह—क्षेत्र का असशोधित लोहा अफ्रीका के सुप्रसिद्ध सीनेसोटा और मिसिगन की खानो से निकले लोहे से उत्तम कोटि का है।

कोलहन को छोडकर सिहभूम जिले में ७ खाने है जिनमे लोहा निकाला जाता है। सिहभूम का कुल कोप जिसमे ६० प्रतिशत लौह द्रव्य है और १०० फीट की गहराई तक मिलता है, १,०४७,०००,००० टन है।

लोहे और इस्पात के उद्योग मे काम आनेवाले वहुत से अन्य खनिज पदार्थ है, जैसे चूना, पत्थर, मैगनीज, क्रोमाइट, अपाटाइट आदि, असशोधित लोहा, चूना पत्थर और कोक (कोयले की जलाकर) तैयार

किया जाता है, के साथ मिलाकर 'ब्लास्ट फर्नेस" में गलाया जाता है। अतएव चूना पत्थर, कच्चा लोहा, बनाने के लिए परमावश्यक है। बिहार मे चूना पत्थर की तो कमी नही है फिर भी जमशेदपुर के कारखाने के लिए मध्य प्रान्त का चूना पत्थर उत्तम और सस्ता पडता है।

चूना पत्थर सोनघाटी मे कैमूर उपत्यका से काटा जाता है। यही से जपला और डालमियानगर की सिमेंट फैक्टरियो को चूना पत्थर भेजा जाता है। इसके अलावा डालटेनगज और रामगढ के बीच कितने ऐसे पहाड हैं जिनमे से चूना पत्थर काटकर कारखाने मे भेज जाता है।

अपाटाइट, टाटा कारखाने मे "फासफारिक" कच्चा लोहा बनाने का काम होता है। खेती के लिए खाद तैयार करने में भी इसकी आवश्यकता पडती है यह बिहार के तीन क्षेत्रो मे पाया जाता है (क) अबरख क्षेत्र में यह 'पेगमेटाइट' पत्थर के साथ कई जगह से निकाला जाता है। (ख) धालभूमि सबडिवीजन मे ताबा क्षेत्र के समानान्तर १२ मील तक पत्थर गोरा से खजलदारी ग्राम तक के बीच यह पाया जाता है। (ग) और सरायकेला मे भी यह मिलता है। टाटा कारखाने में मद्रास से भी अपाटाइट आता है।

इस्पात तैयार करने के लिए कच्चे लोहे मे मैंगनीज या क्रोमाइट या डोनोमाइट से किसी धातु को मिलाकर गलाया जाता है। इन धातुओ को अगरेजी मे "एल्लाय मेटल्स' या मिश्रण योग्य धातु कहते हैं। मैंगनीज छोटानापुर के अनेक हिस्सो में पाया जा सकता है, परन्तु अभी तक सिहभूमि में ही यह खान से निकाला जाता है। इस जिले से प्रतिवर्ष ११,००० टन असशोधित मैंगनीज का उत्पादन होता है। मैंगनीज की मुख्य खान चाइबासा तथा सिहभूमि जिले के वीस्तापुर, गीटीलपी, कलेन्डा, गूरावामा, लागीया, टेकगसरायी टूटूगूटू, बराइबुक, जमादा, और गोटकुरी मे है। टाटा के कारखानो में सिहभूम और क्योझर के ही मैंगनीज का उपयोग होता है।

क्रोमाइट का उपयोग मिश्रण के रूप में कडे लोहे बनाने मे होता है। इसका व्यवहार रासायनिक तथा चर्मशोधन उद्योग मे भी होता है। क्रोमाइट की सात खाने सिहभूमि मे है। चाइबासा से पश्चिम में स्थित कोल्हन की पहाडियो मे भी यह प्रचुर परिमाण मे मिलता है।

लोहा और इस्पात के उद्योग के लिए फायर क्ले और सिलिका तथा निम्नकोटि का वाक्साइट आवश्यक खनिज पदार्थ है। फायर क्ले और सिलिका से फायर ब्रिक्स एक प्रकार की ईट बनाया जाता है जिसका व्यवहार लोहा गलानेवाले बडे चूल्हे ब्लास्ट फर्नेस और ओपन हर्थ फर्नेस के बनाने मे होता है। इस ईट की विशेषता यह है कि ब्लास्ट फर्नेस की १४०० किलोवाट की गर्मी मे भी नही गलती। इनका उपयोग कोक बनाने वाले चूल्हे मे भी होता है। इन खनिज पदार्थ की हमारे प्रान्त मे कमी नहीं। वैसे तो यह भारत के कई हिस्सो मे पाया जाता है परन्तु झरिया [illegible] का "फायर क्ले" सबसे अच्छा है। मुगेर के खडगपुर पहाड मे बाक्साइट मिलता है जिसमे सिलिका का अनुपात अधिक रहता है।

ताबा एक मुख्य धातु है जो कासा तथा पीतल के उद्योग मे मिश्रित धातु के रूप मे आता है। आधुनिक युग में ताबा का महत्व बहुत बढ गया है। भाग्यवश बिहार में ताबा का उद्योग बहुत पुराना है। अभी भी यहा तावा का कुल कोष कम नही है। ताबा क्षेत्र ८० मील की लम्बाई में बामिनी नदी के दूर पारम से प्रारम्भ होकर खरसावा, सरायकेला ढालभूमि होते हुए मयूरभज की सीमा तक फैला है। इस क्षेत्र का मुख्य भाग राजदाह और बढिया के बीच में पडता है। घाटशीला से तीन मील की दूरी पर मउभडार मे "इडिया कापर कारपोरेशन' के नाम के एक वडा कारखाना है। यहा से लगभग दश मील की दूरी पर स्थित मोसावनी की खान विशेष विख्यात है। उखा और धोबनी नामक दो और खानें हैं जहा असस्कृत ताबा (कौपर ओर) निकाला जाता है। मोसावनी का कुल कोष का परिमाण १९४० ई० में १० लाख टन था, जिसमें तावा का अश दो से तीन प्रतिशत था। हजारीवाग जिले के वारगुल्ड में भी ताबा की खान की उपस्थिति की सम्भावना थी, परन्तु ८० वर्ष के प्रयत्न के बाद भी वहा कुछ नही मिल सका है।

अबरख

बिहार का अबरख भारत में क्या सारे विश्व में विख्यात है। अबरख के लिए अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, जैसे महत्त्वपूर्ण देश भी बिहार के मुखापेक्षी है। बिहार का अबरख खड पूरब से पश्चिम दिशा में गया, हजारीबाग, और मुगेर जिले के कुछ हिस्सो मे फैला है। इस खड की लम्बाई ६० मील और चौडाई १२ से १४ मील तक है। कोडरमा इस खड का केन्द्र है। इस खड में 'मस्कोवाइट' और "फ्लेगोपाइट' नामक सबसे उत्तम श्रेणी का अबरख मिलता है। २० प्रतिशत अबरख नेलोर मद्रास से आता है। एक साल के आकडे १९४१ से ज्ञात हो जायगा कि कितना और कितनी कीमत का अबरख निकला था।

स्थान	हन्डरवेट	कीमत (रू० में)
हजारीवाग	६१,१०८	२३ ३२,८१८
गया	२०,०५५	७,३२,७८८
मुगेर	३,४६७	९१,९०३
भागलपुर	९२२	६,६४६
मानभूम	२४६	७,७१८
नेलोर (मद्रास)	१५,६४७	६,४८,०७५
निलगिरी और ट्रावणकोर	१६७	१८,१६७
राजपूताना	२,८१४	१,११,५०६

वाक्साइट

भारत का अधिकाश वाक्साइट बिहार मे ही मिलता है। वाक्साइट की उत्पत्ति की कहानी बडी ही दिलचस्प है। डा० सी० एस० फाक्स के अनुसार वाक्साइट दो प्रकार का होता है (१) मेडिटेरेनीयन और (२) इडियम। गर्म देशो मे वाक्साइट पत्थरो मे परिवर्तित होने से होता है। पहले पत्थर विशेष मिट्टी के रूप मे परिवर्तित होता है और इसके वाद वाक्साइट नामक खनिज पदार्थ में। वाक्साइट राची और पलामू की उपत्यका मे तीन हजार फीट से अधिक की ऊचाई पर मिलता है। लोहरदगा

के समीपवर्ती वगान नामक पठार तो इसका घर ही है। केवल इस पठार पर ५ लाख टन वाक्साइट का कोप है। रासायनिक विश्लेषण के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इस हिस्से के वाक्साइट में ५५ से ५६ प्रतिशत तक 'अलूमीना' द्रव्य पाया जाता है। बाक्साइट अलुमूनियम बनाने के लिए कच्चा माल के अलावे ईकेरस और पेट्रोलियम को साथ करने तथा फायर ब्रिक्स और फिटकिरी के उद्योग-धधो मे भी काम आता है। राची के पकरीपट और सेरेन्डग तथा पलामू के नेतरहाट मे भी यह पाया जाता है। मूरी (राची) की अलुमूनियम फैक्ट्री में इसी इलाके के कच्चे माल की खपत होती है।

कायनाइट वडे पैमाने पर केवल विहार मे ही मिलता है। सिंहभूमि मे कायनाइट का ७० मील लम्बा खन्ड कोइनाइट क्वार्ज पत्थर के साथ लापसुवारू से लेकर खरसावा और सरायकेला तक फैला है। हिसाव लगाया गया है कि तीन फीट की गहराई तक कुल कोप यो है

लापसुवारू	२१४,००० टन
घागीडीह	२०,००० टन
वडीयावक्का	१०,००० टन
कन्यालुका	८,००० टन

टाल्क का व्यवहार सोप स्टोन के ऐमा होता है। खास तरह के टाल्क को 'स्टीयटाइट' कहते हैं। कागज, रग, रवर, चमडा इत्यादि के उद्योग में भी इसकी वुकनी का उपयोग होता है। यह सिंहभूमि के चाईवासा और केडपोसी के समीप मिलता है। राजगीर और वराकर के वीच की पहाडियो में भी और गया जिले में भी पाया जाता है। ।

वहुत से एसे खनिज पदार्थ हैं जिनका उपयोग रग के उद्योग मे होता है। ऐसे खनिज पदार्थों में अलम, फिटकरी, औचर तथा ग्रेफाइट नामक धातु विहार में मिलता है। दस फीट मोटी फिटकरी की परत रोहतास गढ के समीप तथा राजगीर के गर्म पानी के सोते में भी मिलती है। औचर तथा गेरू राजमहल पहाड के 'क्योलीन' के साथ तथा सिंहभूम में कितनी जगहो पर पाए जाते हैं। ग्रेफाइट पेंसिल की लीड वनाने के काम में भी आता है। यह छोटानागपुर की कितनी जगहो के अलावा पलाम के लातेहार के समीप भी मिलता है।

'यूरेनाइट'' जिससे य्रेनियम निकाला जाता है, गया की सीगुर अवरख खान में मिलता है। फ सफट जिसके साथ थोरियम मिल सकता है, गया जिल के पीचील्ली के समीप पेगमेटाइट पत्थर के साथ पाया जाता है। गस्टन नामक खनिज पदार्थ टाटानगर के समीप है। यह प्रमाणित हुआ है कि यह सौ फीट को गहराई पर है।

आसवस्टम रगदार खनिज पदार्थ है। यह कई तरह का होता है। विहार में अम्पीवोल आसवस्टस सरायकेला मे मिलता है, परन्तु वारावाना का आसवेस्टस आ . से नही जलता है। अतएव, कारखाने में व्यवहार करने के लिए इससे कपडा इत्यादि वनाया जाता है। इसे सिमेंट मे मिला कर आग से नही जलनेवाली पक्की छत वनाई जाती है।

वेरील एक ऐसा धातु है तो तावा, अलुमूनियम, मैगनेसीयम तथा लोहे के मिश्रण से धातु के रूप में व्यवहार किया जाता है। इसे तावा के साथ मिलाने से जो चीज तैयार होती है वह अधिक कडी और मजवूत होती है। विहार में वेरील, अवरख की खानो से पेगमेटाइट के साथ निकाला जाता है। खासकर गया, और हजारीवाग के कोडरमा, जोरेमार और गावन में यह प्रचुर परिमाण मे मिलता है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि विहार खान-उद्योग में अन्य प्रान्तो से आगे है। लोहा, अवरख, भवन निर्माण सामग्री और ताबा की खानो में १,६०,००० आदमी काम करते हैं। मैंगनीज, और क्रोमाइट की खानो में ३४,००० व्यक्ति लगे है। अलग-अलग कोयले मे १,१५,०००, अवरख मे २३, ५००, असस्कृत मिश्रित लोहे मे १०,०००, (१९४८) भवन निर्माण सामग्री मे ९,०००, तावा की खान में ३,००० तथा अन्य धातु की खानो मे ३४००० व्यक्ति काम करते हैं। इन खनिज पदार्थो के कारण कितने कल-कारखाने स्थापित हो गए है जिनमें लाखो आदमी लगे हुए हैं।

इन खनिज पदार्थों पर आश्रित उद्योग-धधो का विशेप महत्त्व है। विहार की लगभग ८० प्रतिशत औद्योगिक पूजी और ४५ प्रतिशत औद्योगिक मजदूर इन्ही उद्योग-धधो में लगे हैं। सक्षेप में नोचे उन कारखानो की तालिका दी जाती है जो कच्चे माल के लिए खनिज पदार्थों पर निर्भर करते है। ऐसे कारखाने की सख्या लगभग १५० है

उद्योग का नाम	व्यवहार मे आनेवाले खनिज पदार्थ	मजदूरो की सख्या	विख्यात स्थान और कारखानो की सख्या
लोहा और इस्पात का कारखाना	असशोधित लोहा, कोक, चूना पत्थर, मिश्रित धातु।	२९,७३०	१ टाटानगर
सहायक लोहा, इस्पात के कारखाने	इस्पात, टीन, पैंट, कच्चा लोहा, छड, फाएर क्ले, सीलीका कोक।	८,७२४	११ जमशेदपुर जमालपुर
फायर ब्रीक्स और टाइल्स	फायर क्ले, सीलीका, कोक।	६,२६८	८ धनवाद और झरिया के समीप
सीमेंट कारखाना	चूना पत्थर, जीपसम्, वाक्साइट	४,०००	६ कल्याणपुर, खीखन पुर, खेलारी, जपला, डालमियानगर
कोक फैक्टरी	कोयला	२९,००९	झरिया के आसपास वेरारी (प्रसिद्ध)
ग्लास फैक्ट्री	वालू, कोयला इत्यादि	११,५००	११ पटना २, दामोदरघाटी ४, छिटफुट ५
तावा गलाने का कारखाना	असशोधित तावा	१,४००	१, घाटशीला के पास मउ भडार मे
तावाके तार वनाने का कारखाना	तावा	११,२९४	९ जमशेदपुर इत्यादि
अलमुनियम फैक्ट्री	वाक्सइट		१ मूरी
छोटे-छोटे उद्योग			१०२

जलविद्युत की संभावनाए

खनिज-पदार्थ ग्रौर उनपर आश्रित उद्योग-धधे के सिलसिले मे एक ग्रौर ग्रौद्योगिक शक्ति, इन्डस्ट्रियल पावर, की चर्चा कर देना आवश्यक है जिसे कुछ वैज्ञानिको ने सफेद कोयला, व्हाइट कोल, या जल विद्युत, हाइड्रोइलेक्ट्रिसिटी, की सज्ञा दी है। कहना न होगा कि हमारे देश में ग्रौर खास कर विहार में अभी तक इस शक्ति का विकास नही हुआ है। अभी तक पूरे देश की प्रेरक शक्ति पोटेशियल पावर, का १५ प्रतिशत, ५ लाख किलोवाट, मात्र ही उत्पादन हो पाता है। परन्तु सोवियत रूस, सयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा कनाडा का उत्पादन भारत से क्रमश ४५,२९ ग्रौर १५ गुणा अधिक है। फ्रास, स्वीटजरलैंड, नार्वे, स्वेडन ग्रौर जापान ऐसे-ऐसे छोटे देशो का उत्पादन हमारे देश से ५ से १० गुणा तक अधिक है। जहा स्वेडन में २१०० किलोवाट, स्वीटजरलैंड में १९४४ किलोवाट ग्रौर सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में १६६० किलोवाट बिजली ग्रौसत एक व्यक्ति पर खर्च होती है वहा भारत में केवल ९ २ किलोवाट विजली की खपत प्रत्येक व्यक्ति पर पडती है। परन्तु स्वतत्रता के पश्चात इस अभाव को दूर करने के लिए ग्रौर कोयला सरक्षण योजना को प्रश्रय देने के लिए जल विद्युत के विकास की ग्रोर सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ है। बहु-मुखी योजनाग्रो की वडी चर्चा है, वहुतसी छोटी-बडी योजनाए केन्द्रीय ग्रौर प्रान्तीय सरकार के हाथ में है।

विहार भी इस दृष्टिकोण से पीछे नही है। दो बहुमुखी योजना दामोदर वहुमुखी योजना ग्रौर कोशी बहुमुखी योजना, तो भारत में अपना महत्त्व रखती है। दामोदर घाटी की वहुमुखी योजना (डी० वी० सी०) अमेरिका की टेनेसी वैली (टी० वी०) के आधार पर नियोजित की गयी है ग्रौर केन्द्रीर सरकार, बिहार सरकार एव पश्चिमी वगाल सरकार द्वारा निर्मित कारपोरेशन के हाथ मे दे दी गयी है। इस योजना के अन्तर्गत बाढ रोकने, सिंचाई का प्रवन्ध करने तथा जल-विद्युत उत्पादन करने का प्रबन्ध है। आठ वाघे वनाये जायेंगे ग्रौर एक बाध के साथ एक जल विद्युत का स्टेशन वद्ध रहेगा। इस तरह जल विद्युत पैदा करनेवाले स्टेशन से २ लाख किलोवाट विजली पैदा हो सकती है। इसके अलावा वोकारो थर्मल प्लेंट में निम्नकोटि के कोयला पलभराइजड कोल का उपयोग करके दो लाख किलोवाट विजली पैदा किया जायेगा। वोकारो थर्मल प्लेंट का काम अव आरम्भ हो गया है। यदि ये योजनाएँ पूरी हो जाती है तो सारा छोटानागपुर ग्रौर दक्षिणी विहार के कुछ भाग तथा पश्चिमी वगाल के कुछ हिस्सो में जल-विद्युत आसानी से उपलव्व हो सकेगा।

सेट्रल टेकनिकल पावर वोर्ड के अनुसार विजली के तार नेट वर्क ग्रोफ ट्रान्समीशन लाइन झरिया ग्रौर रानीगज के कोयला क्षेत्र से होते हुए हवडा से लेकर अवरख क्षेत्र (हजारीवाग ग्रौर गया) तक फैले रहेगे। कलकत्ता, जमशेदपुर, डाल्टेनगज इत्यादि शहरो के होते हुए भी विजली के तार दौडेगे। जल विद्युत का उपयोग खानो ग्रौर कारखानो में भी किया जायगा। जल विद्युत का उपयोग कोयले, अवरख, फायर क्ले, चूना पत्थर की खानो मे करके अधिक सुलभ ग्रौर सुन्दर ढग से खनिज पदार्थ निकाले जा सकते है। लोहा, इस्पात, अल्मुनियम, सिमेंट इत्यादि के कारखानो मे यह 'ग्रौद्योगिक शक्ति' के रूप मे उपयोग किया जायगा।

मिट्टी के तरह-तरह के वर्तन वनाने का उद्योग-धधा, जिसके लिये उपयुक्त मिट्टी दामोदर घाटी में पाया जाता है, का पूर्ण रूपेण विकास होगा।

उत्तरी बिहार में भी कोशी की वहुमुखी योजना की ग्रोर भी केन्द्रीय सरकार ग्रौर प्रान्तीय सरकार बहुत प्रयत्नशील है। इस नदी में प्रत्येक वर्ष बाढ को रोकने, उसके पानी को सिंचाई ग्रौर बिजली पैदा करने के उपयोग में लाने के लिए योजनाए तैयार हो चुकी हैं। जल विद्युत पैदा करने के दृष्टिकोण से भी कोशी कम उपयोगी नही प्रमाणित होगी। बात यह है कि २४० मील तो कोशी हिमालय के पहाडी इलाको में बहती है जहा इसे बर्फ का भी सामना करना पडता है। इसकी घाटी में वर्षा भी कम नही होती। ग्रौसत ६ इच की वर्षा तो इसकी घाटी में हो ही जाती है। इसके फलस्वरूप कोशी नदी अपने साथ ४ करोड घन फीट पानी लाती है। भारत में ब्रह्मपुत्र के अलावा इतना पानी अपने साथ कोई दूसरी नदी नही लाती है। अतएव कोशी, पहाडी इलाको से वहने ग्रौर अधिक पानी लाने के कारण, जल विद्युत के दृष्टिकोण से वहुत उप-योगी है।

निर्माणवेत्ताग्रो के अनुसार कोशी की बाढ को रोकने के लिए प्रथम बाध चतरा गौर्ज (नेपाल) पर बनाना होगा। इस बाध की ऊचाई ७५० फीट होगी जो भारत में क्या विश्व में भी उच्चतम वाधो मे एक होगा। इस वाध के निर्माण से १ करोड दस लाख घन फीट पानी का तालाव वन सकता है। उसी स्थान पर एक पावर प्लेंट भी वैठाया जा सकता है जिससे १०८ लाख किलोवाट बिजली तैयार हो सकती है। यदि इस योजना के अनुसार बाढ पर नियन्त्रण होता है, मिट्टी के कटान पर रुकावट होती है तथा फिर से भूमि उपजाऊ हो जाती है, तो जल विद्युत के विकास से इस क्षेत्र मे कितने ऐसे कारखाने खुल जायेंगे जिनको कृषि सम्बन्धी कच्चेमाल (जूट, ईख, तम्बाकू, धान, तेलहन, दलहन) प्रचुर परिमाण में मिल सकेंगे।

जगल से प्राप्त औद्योगिक साधन

छोटानागपुर में एक ग्रौर दूसरा ग्रौद्योगिक साधन वर्त्तमान है, वह है जगल। जगल अमूल्य तथा आवश्यक राष्ट्रीय सम्पत्ति है। आधुनिक वैज्ञानिको का कहना है कि देश के सर्वांगीण विकास के लिए लगभग एक चौथाई हिस्सा जगलो से ढँका होना चाहिये। इस दृष्टिकोण से बिहार कुछ पीछे पड जाता है। बिहार के अधिकाश जगल छोटानागपुर में ही है। इसके अतिरिक्त केवल सताल परगना ग्रौर चम्पारण का उत्तरी-पश्चिमी हिस्सा ही जगलो से ढका है।

विहार सरकार के १९५० के आकडे के अनुसार जगलो का कुल क्षेत्रफल १११,००० वर्गमील होता है जो सम्पूर्ण क्षेत्रफल का केवल १४ २ प्रतिशत होता है। इस तरह विहार को अपने वन्य-साधन पूरा करने के लिए कम-से-कम ६ प्रतिशत जमीन पर ग्रौर जगल लगाने की आवश्यकता है। फिर भी इस समय जो जगल है वह ग्रौद्योगिक साधनो म कम नही है। १९४६ ई० में इन जगलो से ५० हजार टन टिम्वर निकाला गया था। आज भी छोटानागपुर का साल पूरे भारत म मशहूर है। प्राइवेट प्रवन्ध के कारण सभी जगल तहस-नहस हो रहे थे। अव सरकार ने राष्ट्रीय सम्पत्ति

की ओर ध्यान दिया है और वह दिन दूर नही कि इन्ही जगलो से ५ लाख टन टिम्वर और ६० लाख टन जलावन की लकडी निकाली जायेगी ।

लाह का उद्योग-धंधा

टिम्वर के अतिरिक्त जगलो में कितने ऐसे वृक्ष पाए जाते है जिनका औद्योगिक महत्त्व है । उन वृक्षो में विशेषत पलास, कुसुम, वेर, इत्यादि ऐसे वृक्ष है जिन पर लाह के कीडे पाले जाते हैं । लाह के कीडे छोटानागपुर के कोने-कोने में मिलते हैं । सतालपरगना और गया जिले में भी लाह की फसल होती हैं । भारतवर्ष का ८० प्रतिशत लाह का उत्पादन विहार में ही होता है और दुनिया की ४१ प्रतिशत माग विहार ही पूरा करता है । विहार को लाह के उद्योग में एकाधिकार है ।

छोटानागपुर के मानभूम जिले में इस उद्योग का जन्म हुआ था । हाल-हाल तक यह उस इलाके में केवल घरेलू उद्योग-धधे के रूप में प्रचलित था । 'स्टीम मशीन' के आने पर भी लाह के घरेलू उद्योग-धधे को अधिक धक्का नही लगा है और लगभग ६० प्रतिशत उद्योग तो पुराने ही ढग से चल रहा है । अधिकाश लाह की मिलें मानभूम में हैं । झालदा तो इसका केन्द्र ही ठहरा । यहा लाह तैयार करने की १५ छोटी-वडी मिलें है, सात मिलें तो ऐसी है जहा "स्टीम" का खूव उपयोग होता है और वडे पैमाने पर "कच्चे माल" पीस और गलाकर "सेलेक" तैयार किया जाता है ।

झालदा में इस उद्योग-धधे के केन्द्रीकरण का दो मुख्य कारण हैं। पहला तो यह कि इस उद्योग के लिए निपुण श्रम की वहुत आवश्यकता पडती है जो जहा उपलव्व है । मशीन के सहारे कच्चे माल को पीस कर लाह के दाने (सीलेक) तो आसानी से वनाया जा सकता है परन्तु लाह के दाने को गला करके लाह के चपडे (सेलेक) वनाने का काम निपुण मजदूरो द्वारा ही हो सकता है । दूसरी वात यह है कि लाह के कीडे होते हैं जो वेर, कुसुम, या पलास के पेडो पर पाले जाते है । इनके पालने के भी तरीके है । इसके अलावा उन वृक्षो की भी देख-रेख करनी पडती है तथा ऐसी दशा पैदा करनी पडती है जिनसे कीडे की फसल लगे और अच्छी तरह लगे । ये सव परिस्थितिया इन जगलो में उपस्थित हैं और इन्ही के फलस्वरूप यहा लाह का कच्चा माल प्रचुर परिमाण मे मिल सकता है । मानभूम के वाद सिंहभूम और पलामू का नम्वर आता है । गया और हजारीवाग मे भी कच्चा माल मिलता है जिससे सेलेक और किटीलेक नामक तैयार माल का उत्पादन होता है । राची इस उद्योग के व्यापार का मुख्य केन्द्र है । सताल परगने में पाकुर लाह के उद्योग-धधे तथा व्यापार के लिए विशेष विख्यात है । सेलेक जिसे वहा के लोग चपडा कहते है, अधिक स्थान मे नही वनता । अधिकाश जगहो में लाह के दाने ही वनते है । "सेलेक" ही वह वस्तु है जो विदेश भेजा जाता है । इसी 'सेलेक' से लाह की अन्य वस्तुए वनती हैं । विहार में 'सेलेक' का सहायक उद्योग-धधा है, जो इसे कच्चा माल के रूप में व्यवहार कर सके अभी तक नही स्थापित हो सका है । हा, अन्य पैमाने पर कही-कही लहठी, खिलौने इत्यादि वस्तुए वनती हैं । इन उद्योग में अभी काफी सुधार की आवश्यकता है । कच्चा माल और निपुण श्रम का आधिक्य है । जगलो में आवागमन की भी कम असुविधा नही । फिर भी, कितने ऐसे जगल है जहा लाह की अच्छी फसल हो सकती है । परन्तु आवागमन की असुविधा और आदिवासियो के अज्ञान के कारण वहा कुछ भी नही होता है । सरकार को इसकी ओर ध्यान देना है ।

कागज के उद्योग-धधे

दूसरा उद्योग कागज का है जो अपने कच्चे माल के लिए जगलो के वास और घासो पर आश्रित है । विहार में इस उद्योग को चलाने के लिए कच्चे माल की कमी नही है । छाटानागपुर में पर्याप्त वास है और पूर्णिया में सवाई घास । केवल एक कारखाना डालमियानगर में है जिनमें १६०३ (१९५०) मजदूर काम करते है । इस कारखाने में वास की खपत होती है जो सोन नदी के द्वारा छोटानागपुर से लाया जाता है । उत्पादन के कोई आकडे नही दिए जा सकते क्योकि समय-समय पर तरह-तरह के कागज और वोर्ड इत्यादि वनते रहते हैं । हा, मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि ३५ टन कागज प्रतिदिन इस कारखाने में तैयार होता है ।

विहार के पूर्णिया और सताल परगने में भी कागज के उद्योग के लिए सवाई घास पर्याप्त परिमाण में मिलती है । परन्तु यह घास वगाल के कागज के कारखाने के लिए भेज दी जाती है । यदि पूर्णिया या सतालपरगने में कागज प्लेंट वैठाया जाय, तो मिल मालिक को खासा लाभ हो । दामोदर घाटी योजना की पूर्त्ति के पश्चात दामोदर घाटी मे भी एक कारखाना खुल सकता है । जो हो, विहार के पास कागज के कारखाना चलाने के लिए प्राकृतिक साधन वर्तमान है । यदि इसे आर्थिक साधन मिल जाय और सरकारी प्रोत्साहन प्राप्त हो जाय तो कारखाना आसानी से स्थापित हो सकता है । विहार सरकार की औद्योगिक विकास-योजना के अनुसार यहा एक कागज का कारखाना खुलना चाहिये ।

जगलो पर आश्रित तीसरा लकडी काटने और 'टिम्वर' निकालने का उद्योग है जिसे अग्रेजी में सा मिलिंग कहते हैं । यह उद्योग छोटानागपुर में विशेषत केन्द्रित है । इसका भविष्य भी उज्ज्वल है । वात यह है कि कुछ वर्ष पहले विहार में जगल-सरक्षण नामक कोई योजना न थी । जमीन्दार मनमाने ढग से जगल को तहस-नहस किया करते थे । उस समय भी यहा २९ मिलें थी जिनमे १५०० मजदूर काम करते थे । गत पाच वर्षो से जगल सरक्षण पर सरकार ने काफी ध्यान दिया है । फलत यह उद्योग नियन्त्रित और वैज्ञानिक ढग पर चलने लगा है ।

इसके अलावा जगलो मे कुछ खास तरह के वृक्ष होते हैं जिनसे किसी-न-किसी रूप में उद्योग-धधे को लाभ पहुचता है । उदाहरणार्थ विहार में आसन और अर्जुन के वृक्ष है जिसपर रेशम के कीडे पाले जाते हैं । खैर के वृक्ष से कथ निकाला जाता है । महुआ के फूल से शराव वनती है । सेमर के फल मे रूई निकलती है । आवनूस या केन्द के वृक्ष तो आजकल विशेषत उल्लेखनीय है । इसके पत्ते से वीडी वनायी जाती है । ऐसे वृक्ष विशेषत हजारीवाग, पलामू और गया जिले में है । वीडी का व्यवहार वढने से इस उद्योग में काफी वृद्धि हुई है ।

अन्त में मै एक और उद्योग का उल्लेख करना चाहता चाहूगा जिसके लिए कच्चा माल, वाजार और निपुण श्रम इत्यादि उपलव्व हैं और वह है नकली रेशम के सूत से कपडे वनाने का उद्योग-धधा । नकली रेशमी सूत

से कपडा बुनने का उद्योग बिहार में दिनोदिन बढता जा रहा है। १९४४-४५ के आकडो के अनुसार २० करोड पौंड रेशमी सूत की (रेयन यार्न) तो बिहार के ही करघा उद्योग-धधो में खपत हो जाती है। इसी तरह भारत के अन्य प्रान्तो में यह सूत विदेश से मगाया जाता है। यदि सूत बनाने का कारखाना यहा स्थापित होता तो सारे स्टेट की माग पूरी होती ही, सारे भारत के बाजार में विदेश से सूत आना बद हो जाता।

इस उद्योग के लिए वास, घास, सन, जूट, गेहूँ के खेर इत्यादि कच्चा माल चाहिये जो बिहार में आसानी से पर्याप्त मात्रा में प्राप्त है। बिहार सरकार को इस उद्योग की ओर ध्यान देना चाहिए। यदि रेयन उद्योग के लिए मशीन, मिल, और निपुण रासायनिक की सहायता मिलेगी तो इस उद्योग की स्थापना के लिए भागलपुर उत्तम स्थान है। यहा इस उद्योग के लिए आवश्यक साधन, पानी, निपुण श्रम, बाजार इत्यादि मिल जायेंगे। पेनेल रिपोर्ट ओन आफिसीयल सिल्क एड रेयन इन्डस्ट्रीज का भी यही मत है।

इस तरह बिहार के जगलो और उनपर आश्रित उद्योगो धधो के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इस क्षेत्र में विकास की बहुत सम्भावनाए है। जगलो की सरक्षण-नीति और बिहार के औद्योगिक विकास की योजना के कारण इस ओर काफी वृद्धि होगी। रेयन और सलाउ के नये कारखाने खुलेंगे, लाह के उद्योग में विकास होगा और कागज के नए कारखाने स्थापित होंगे। आज भी जगल के उद्योग-धधो का केन्द्रीकरण छोटा नागपुर के अधिकाश हिस्सो मे होता जा रहा है और वह दिन दूर नही जब बिहार की यह जगली भूमि (दामोदर घाटी योजना के कारण भी) बिहार का ही नही सारे राष्ट्र का मुख्य औद्योगिक क्षेत्र बन जायगा। १९४४–४६ के औसत आकडे के अनुसार बिहार के जगल उद्योग-धधे की दशा निम्नलिखित तालिका से एक नजर में झलक जायेगी

उद्योग का नाम	कारखाने की सख्या	मजदूरोकी सख्या	विशेष बातें
१ लाह और सेलेक के कारखाने	६०	१९३६	झालदा और विलासपुर मे इसका केन्द्रीकरण
२ कागज का कारखाना	१	१६०३	डालमियानगर
३ सा मिल	२९	१५००	छोटानागपुर में इधर काफी वृद्धि हुई है।
४ छोटे-छोटे उद्योगधधे	६	१०१६	"
	९६	६१५५	

कृषि पर आधारित

यदि छोटानागपुर मे तरह-तरह के खनिज पदार्थ और जगल पर्याप्त परिमाण मे विद्यमान है तो उत्तरी बिहार मे इनका एकदम अभाव है। न [illegible] जैसी चिमनिया आकाश मे धुआ उगलती नजर आती है [illegible] की तरह गोफ, [illegible] अथवा खान की सुरग [illegible] देखने को मिलता है। यह तो अक्षरश शस्य श्यामला कृषि प्रधान भूखड है। चम्पारण के सोमेश्वर से पूर्णिया के खालपोखर तक न कही पहाड है और न जगल ही। सारा उत्तरी बिहार सपाट मैदान है। मिट्टी उपजाऊ है। वर्षा और ताप पर्याप्त परिमाण में प्राप्त है। दर्जनो नदिया इसे सीचती है। फलो की बाटिकाए इस क्षेत्र की सम्पन्नता को और भी बढा देती है। सचमुच, यह बिहार की ही नही, सारे भारत की बाटिका है।

इन भौगोलिक विशेषताओ के कारण उत्तरी बिहार में कितनी औद्योगिक फसलें, गन्ना, पाट, धान, तेलहन, तम्बाकू इत्यादि की उपज अच्छी होती है। उत्तरी बिहार को धान और ऊख का इलाका की सज्ञा दी गयी है। बात यह है कि गन्ने के लिए चिकनी मिट्टी चाहिये और सिंचाई का प्रबन्ध रखना चाहिये जो इस इलाके में उपलब्ध है। पूर्णिया तो पाट का घर ही ठहरा। पूर्णिया की कुल उपजाऊ भूमि के ६३ प्रतिशत जमीन में यही व्यावसायिक फसल उपजायी जाती है। तेलहन भी उत्तरी बिहार में कम नही उपजता। तम्बाकू मुजफ्फरपुर और पूर्णिया जिले में खूब उपजता है। बिहार के अन्य जिलो मे इसकी उपज नही के ही बराबर होती है। यहा तक कि मुगेर जिले में जहा इनकी खपत आसानी से हो सकती थी वहा की कुल उपजाऊ भूमि के १ ५ प्रतिशत में ही यह फसल उपजायी जाती है।

दक्षिण बिहार में भी धान और गन्ने की उपज कम नही होती। नीचे की तालिका से ज्ञात होगा कि लगभग २५ प्रतिशत जमीन में तो धान की फसल होती है। हा, उत्तरी बिहार की अपेक्षा यहा की जमीन में अधिक गेहू बोया जाता है। छोटानागपुर तो जगल और पहाडो का मुल्क है। वहा के लोग भी सभ्यता की दौड मे पीछे ही है। अतएव न वहा खेती करने योग्य अधिक भूमि ही प्राप्त है (कुल जमीन का २१ प्रतिशत) और न ऐसे उद्योग-धधे ही पनपते है जो कृषि पर निर्भर करते हो। औद्योगिक फसलो की वर्तमान स्थिति निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायेगी

नाम	खेतीकरने योग्यभूमि	खेती की भूमि	धान	गन्ना	तेलहन	पाट	तम्बाकू
तिरहुत कमिश्नरी							
सारन	९० ३	७० २	२० ३	३ ५	६ ५	०	० ०६
चम्पारण	८९ ६	६२ ९	३८ ३	६ ०	७ ३	० १	० ०४
मुजफ्फरपुर	९८ ६	५४ ७	४० १	३ ०	३ ३	० २	२ ६
दरभगा	७१ ६	६३ ४	४९ २	३ ३	७ २	० ०३	० ६
पटना कमिश्नरी							
पटना	७६ ३	७० ३	२६ ०	१ ३	३ ७	०	०८
गया	७० ३	३९ ६	४८ ६	२ ३	४ ८	०	००६
शाहाबाद	८० १	५१ ६	२८ १	२ ३	६ ०४	०	०४
भागलपुर कमिश्नरी							
भागलपुर	६७ ५	४६ १	४६ १	० ९	८ ४	४	३
पूर्णिया	३६ ४	३६ ८	४४ ८	१ २	६ १	२१ ६	२ ५
मुगेर	८० ४	४६ १	२४ ४	८ ०	४ ३	० २	६
सतालपरगना	५४ ९	३३ १	४७ ९	१	७ ०	०३	०७

नाम	खेती करने योग्यभूमि	खेती की भूमि	धान	गन्ना	तेलहन	पाट	तम्वाकू
छोटानागपुर कमिश्नरी							
राची	४२१	४११	६०४	००२	० ८००		०२
हजारीवाग	२३५	२०९	४६७	९	१०००	०	०३
पलामू	१९५	१५५	२८७	८	१२०५	०	०३
मानभूमि	२०२	२०२	६७८	९	७	०	०
सिंहभूमि	१८६	१७४	७७४	१	८६	०	.०४

इस सक्षिप्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि विहार में खेतो से, खासकर छोटानागपुर को छोडकर, उद्योग-धघो के लिए पर्याप्त मात्रा मे कच्चा माल प्राप्त होते हैं। इस कच्चे माल की खपत सर्व प्रथम घरेलू उद्योग-घघे में होती थी। परन्तु मशीन का प्रचलन होने से घरेलू उद्योग-धघे को वहुत वडा धक्का पहुचा और अव इनकी अधिकाश खपत फैक्टरियो और मिलो में होती है। एक-एक करके प्रत्येक उद्योग-घधे के वारे में विचार करना उचित होगा।

चीनी उद्योग

कहना न होगा कि गुड और शक्कर वनाने का उद्योग विहार में पौराणिक काल से चला आ रहा है। जव मशीन युग की सभ्यता आई, तव चीनी की प्रथम फैक्टरी खोलने का श्रेय भारतमें विहार ही को मिला। १९०० ई० मे यहा प्रथम चीनी मिल की स्थापना हुई। नील के उद्योग में मदी पडने से चीनी के उद्योग में और भी सरगर्मी आई और १९०४ ई० में पुन चीनी के ३ कारखाने खुले। इसी समय पडोसी प्रान्त उत्तर प्रदेश में भी एक कारखाने की स्थापना हुई। परन्तु अभी तक देश के कारखानो में तैयार चीनी विदेशी चीनी से महगी पडती थी और इसी हेतु लोग भारतीय चीनी खरीदना पसद नही करते थे। केन्द्रीय सरकार ने १९३२ ई० में विदेश से आनवाली चीनी पर सरक्षण कर लगाया। इसके वाद तो चीनी के कारखानो की सख्या दिनोदिन वढती गयी और इस समय देश में १४० मिलें है जिनमें से विहार में ३६ मिलें है। ये मिलें विहार के उसी हिस्से में स्थित है जहा ईख की फसल वहुत अच्छी होती है। यह इलाका गगा के उत्तर में राज्य की पश्चिमी सीमा से लेकर पूरव में कोशी नदी तक का भूखड है। विहार के इसी हिस्से मे गन्ना की सवसे अच्छी फसल होती है। यहा की मिट्टी और जलवायु इसी फसल के योग्य है तथा नयी भूमि होने के कारण कृत्रिम सिंचाई की भी आवश्यकता नही पडती। इस हिस्से की ५९ प्रतिशत जमीन में जिसका क्षेत्रफल २,४५,००० एकड है, ईख की खेती होती है। इसके अलावा आरा और गया जिले में भी ईख की फसल अच्छी होती है। परन्तु इन हिस्सो में नहर, पइन, अहरा या अन्य उपायो से सिंचाई का प्रवन्ध करना पडता है।

'विहार का औद्योगिक विकास', (१९५०) शीर्षक एक लेख में डा० महमूद ने वतलाया था कि भारतीय सरकार की योजना के अनुसार विहार में तीन चीनी मिल स्थापित करने का विचार था। इसी योजना के अनुसार एक मिल वारसलीगज मे स्थापित हुई। परन्तु इसके लिए उपर्युक्त भौगोलिक स्थिति होने पर भी अर्थाभाव से यह एक साल मे ही वन्द हो गयी। इसी योजना के अनुसार पूर्णिया के करहागोला में भी एक मिल स्थापित होनी चाहिये।

जूट का उद्योग-धंधा

इस राज्य में पाट की तीन मिले है, दो पूर्णिया और एक दरभगा जिले में। इन मिलो में १९४६ ई० की रिपोर्ट के अनुसार क्रमश ३,७३६ और १,४३६ मजदूर काम करते हैं। देश के विभाजन से भारतीय जूट उद्योग को गहरा धक्का लगा है। वगाल के विभाजन से ७२ ८१ प्रतिशत जूट का खेत अव पाकिस्तान में चला गया परन्तु कुल मिलें भारत में ही रह गयी। पाकिस्तान पर कच्चे माल के लिए निर्भर करना अच्छा नही। अतएव अपने देश में ही इसकी खेती वढाना आवश्यक है। विहार ही ऐसा राज्य है जहा इसकी पैदावार वढायी जा सकती है। इस समय इसकी उपज पूर्णिया, महरसा, भागलपुर, दरभगा, चम्पारण तथा सतालपरगने में होती है। परन्तु ऊपर के आकडे से स्पष्ट है कि केवल पूर्णिया जिले में जूट उपजाने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जूट की खेती मे उपज वहुत कम-वेशी हुआ करती है। जहां १९३६ ई० में ३, ६२,००० एकड जमीन में जूट की उपज होती थी वहा १९४७ ई० मे सरकारी वार्षिक विवरण के अनुसार केवल १,४४,०० एकड जमीन मे ही जूट वोया गया था। देश के विभाजन के कारण पुन जूट उपजाने की प्रेरणा वढी है। गत वर्ष सवा दो हजार एकड अधिक जमीन मे जूट वोया गया। हिसाव लगाया गया है कि यदि परती जमीन को जोता जाय तथा अच्छे वीज और खाद का उपयोग किया जाय तो जूट की पैदावार मे शतप्रतिशत वृद्धि होगी। ऐसे तो विहार सरकार के पास तीन जूट मिल स्थापित करने की योजना है। परन्तु पहले हुगली के समीप स्थित वगाल की जूट मिलो को कच्चा माल देकर उनमें जान फूकनी है। इस तरह पाकिस्तान से कच्चा माल नही मिलने के कारण जो यदा-कदा वेकारी और मदी पड सकती है, उसे रोकना है।

कपडे के उद्योग-धंधे

कृषि पर आश्रित उद्योगो मे कपडे का विशेष महत्त्व है। कपडे का उद्योग तो अव कच्चे माल के क्षेत्र में ही केन्द्रित होने लगा है। इसी कारण भारत की अधिकाश कपडे की मिले वम्बई और अहमदावाद में स्थित है जो रूई पैदा करनेवाले हिस्से में पडती है। विहार मे अव रूई की फसल नाम मात्र को होती है। अतएव यहा कोई कपडे का विख्यात कारखाना नही है। यहा केवल दो सूत कातने और एक कपडा वुनने की मिलें हैं। सूत कातने की मिल एक फुलवारी शरीफ और दूसरी वक्सर सेंट्रल जेल में है। "गया काटन मिल' मे सूत की कताई और वुनाई दोनो होती है। यहा मोटा कपडा तैयार होता है जिसकी खपत मानभूमि और सिंहभूमि के मजदूरो मे खूव होती है। १९३९ ई० के आकडे के अनुसार ६०,००० गज कपडा और २० गाठ सूत प्रतिदिन तैयार होता था। कच्चा माल उत्तर प्रदेश और वम्वई मे आता था। इन मिलो मे ७,८३६ मजदूर (१९५०) में काम करते थे। इस समय इन मिलो की, विशेषतया 'गया काटन मिल' की दशा एकदम अच्छी नही है। उत्पादन में वहुत ही मदी आ गयी।

है, मजदूरो की सख्या बहुत ही घट गयी है और मजदूर की हडताल तो आम चीज हो गयी है।

कपडे की मिल के लिए बिहार में कोई रूई नही उपजती। पहले रूई की खेती होती थी परन्तु इस समय तो अल्प पैमाने पर भी बहुत ही कम जगह होती है। अतएव निकट भविष्य में कपडे का कारखाना खुलना सदेहात्मक दीखता है। परन्तु बिहार में कपडे का बाजार बहुत ही विस्तृत है। यहा की क्रय-शक्ति भी बहुत है। अतएव 'बाजार' में कारखाने खोलने की नयी प्रवृत्ति के कारण यह आशा की जाती है कि बिहार में कपडे के कारखाने स्थापित हो सकते है। परन्तु पूजी भी लोग इस उद्यो मे लगाने से हिचकते है। बिहार सरकार की विकास योजना के अनुसार यहा आठ सूत कातने और बुनने के कारखाने खुलने चाहिये परन्तु इस ओर अभी कुछ काम नही हुआ। शायद पूजी का अभाव और मशीन की प्राप्ति में कठिनाई के कारण यह विचार छोड देना होगा।

धान का उद्योग

बिहार के उत्तरी छोर पर केवल चावल के उद्योग-धधे होते हैं। इस हिस्से मे चावल की उपज ज्यादा होती है। दूसरी बात यह है कि नेपाल में भी धान की खूब उपज होती है। परन्तु वहा न तो आसानी से मिल ही खोली जा सकती है और न चावल के लिए वहा बाजार ही है जहा उसकी खपत हो सके। फलत नेपाल का धान पहाड की इसी तराई में लाया जाता है। इन्ही सब भौगोलिक अवस्थाओ के कारण बिहार के पहाड की तराई में एक किनारे से दूसरे किनारे तक बहुत सी मिलें खुल गयी ह। इनके अलावा दक्षिण बिहार में भी कुछ छिटपुट मिले है। इन मिलो के अलावा धनकुट्टी बडे पैमाने पर घरेलू उद्योग-धधे के रूप में भी हमारे राज्य में वर्त्तमान है। यो तो इसका आकडा प्राप्त नही है, फिर भी अन्दाज लगाया गया है कि लगभग आधा चावल से अधिक किसानो द्वारा अपने घर में तैयार किया जाता है।

मिलेजुले उद्योग–धधे

तेल की मिले साधारणत उत्तरी और दक्षिणी बिहार में स्थित है। भागलपुर में अधिकाश मिलें है। १९४९ ई० के आकडे के अनुसार तेल की मिलो की सख्या ८१ है जिनमें १,६४५ मजदूर काम करते है। तम्बाकू की ६ फैक्टरिया है जिनमे ३,६१८ मजदूर काम करते है। ये फैक्टरिया मुगेर और दरभगा जिले मे स्थित है। १९४८ ई० के आकडे के अनुसार चावल, तेल, दाल और आटा पीसने की मिली जुली ५२ मिलें है जिनमे २,३४८ आदमी काम करते है। ये मिलें कुछ-न-कुछ बिहार के सभी शहरो में स्थित है। इन दिनो इस तरह की मिलो की सख्या मे बहुत वृद्धि हो रही है और अब तक इनकी सख्या बहुत बढ गयी होगी।

इनके अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे खाद्य उद्योग-धधे (फुड इन्ड-स्ट्रीज) है जो कच्चे माल के लिए कृषि पर आश्रित है। कृषि पर आश्रित उद्योग-धधो की स्थिति इस तालिका (१९४९) से स्पष्ट हो जाती।

	मिल का नाम	मिलो की सख्या	मजदूरो की सख्या	स्थान
१	चीनी मिल	३४	२०,६००	उत्तरी बिहार, गया, शाहाबाद
२	जूट मिल	३	६,०८७	दरभगा और पूर्णिया
३	तम्बाकू	६	३,६१८	मुगेर और दरभगा
४	चावल मिल	६०	३,३५१	उत्तरी बिहार और अन्य स्थान
५.	तेल मिल	८१	१,६४५	भागलपुर और अन्य भाग
६	मिले जुले चावल, दाल, तेल और आटे के कारखाने	५२	२,३४८	
७	कृषि पर आश्रित छोटे उद्योग-धधे	५०	१,०८९	

इस तरह बिहार के इन औद्योगिक साधनो और उनके विकास की सम्भावनाओ के विश्लेषण करने से और औद्योगिक प्रवृत्तियो के मनन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि खास उद्योगो का केन्द्रीकरण किसी खास भौगोलिक हिस्से में होता जा रहा है। इस राज्य के औद्योगिक विकास के इतिहास के अध्ययन से यह बात भी जाहिर हो जाती है कि कुछ ऐसे भौगोलिक एव अर्थ शास्त्रीय कारण है जिनकी वजह से बिहार का औद्योगिक विकास अलग-अलग क्षेत्र में भिन्न-भिन्न चीजो का हुआ है। दक्खिन पूर्वी बिहार में, औद्योगिक धातुओ के आधिक्य के कारण, लोहे-ताबा इत्यादि के कारखाने खुल गए है। उसी तरह दामोदर घाटी में, कोयला क्षेत्र होने की वजह, से कोयले पर आश्रित उद्योग-धधे, कोक, खाद, फायर ब्रीक्स होते है। उत्तरी बिहार में उपजनेवाले कच्चे माल गन्ना, धान, और जूट के आधिक्य के कारण वहा ऐसे ही कारखाने है जिनमें इनकी खपत होती है। इसी प्रकार यदि बिहार के औद्योगिक साधनो की जाच की जाय और उसके औद्योगिक विकास का विश्लेषण किया जाय तो पता चलेगा कि बिहार को निम्नलिखित औद्योगिक हिस्सो में विभक्त किया जा सकता है—

(१) दक्खिन पूरब का औद्योगिक हिस्सा
(२) दामोदर घाटी का औद्योगिक हिस्सा
(३) अबरख क्षेत्र का औद्योगिक हिस्सा
(४) सोन घाटी का औद्योगिक हिस्सा
(५) तिरहुत में चीनी मिलो का औद्योगिक हिस्सा
(६) उत्तरी तराइयो में स्थित चावल मिलो का औद्योगिक हिस्सा
(७) दक्खिन गगा के समीप स्थित औद्योगिक हिस्सा
(८) मिले-जुले उद्योग-धधे

दामोदर घाटी का औद्योगिक हिस्सा

यह बिहार का दूसरा महत्त्वपूर्ण औद्योगिक खड है। इस औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार करनपुरा की कोयला खान से प्रान्त की पूरबी सीमा तक

है। यहा का मुख्य उद्योग खानो से कोयला निकालना है। कोयले की खानें विशेषत दामोदर घाटी के समीप में स्थित है और इसीलिए औद्योगिक कार्य भी नदी की दोनो ओर तक सीमित है।

कोयले की ऐसी प्रचुरता के कारण कितनी तरह के कारखाने स्थापित हो चुके हैं। धनबाद के समीप स्थित सिन्दरी की फैक्ट्री तो भारत ही का नही, सारे एशिया के लिए महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र है। केन्द्रीय सरकार के अथक प्रयास से यह पिछले साल से खाद का उत्पादन कर रही है, फिर फिर भी अभी योजना अपूर्ण ही है। योजना पूरी होने पर 'सिन्द्री फर्टेलाइजर' प्रतिदिन १,००० टन सल्फेट ऑफ अमोनिया (खाद) पैदा करेगा। इस रासायनिक उद्योग का कच्चा माल केवल कोयला, कोक और जिप्सम है। कोयला क्षेत्र में स्थित होने के कारण कोयला तो पर्याप्त मिल ही जायगा, हा, जिप्सम के लिए राजपूताना पर निर्भर करना पड़ता है। पूरी योजना के अनुसार २५०, ००० टन कोयला, १७८,००० टन कोक और ५३६,००० टन,जिप्सम की खपत प्रतिवर्ष होगी। बेरारी में भी (कोक) फैक्टरी है जहा 'कोक' तथा उसकी उत्पत्ति, जैसे कोलतार, खाद अमोनियम सल्फेट इत्यादि तैयार होते हैं। फायर ब्रीक्स के भी कारखाने हैं। धनबाद के समीप बनसार फायर ब्रीक्स सबसे बडा कारखाना है।

इसके अतिरिक्त पलामू और रामगढ के बीच कितने पहाड है जिनमें से सिमेंट बनाने के लिए चूना पत्थर काटकर कारखानो में भेजे जाते हैं। इन पत्थरो की प्राप्ति के कारण दो तरह के उद्योग कायम हो चुके है, पहला पत्थर काटने का और दूसरा सिमेंट बनाने का। इस उद्योग मे 'सोन घाटी खड' सबसे आगे है। महत्त्व की दृष्टि से इस खड का दूसरा स्थान है।

रांची के मूरी नामक स्थान में अलमुनियम का कारखाना है। मूरी स्वर्णरेखा नदी के किनारे स्थित है और दामोदर औद्योगिक क्षेत्र कुछ दूर पडता है। फिर भी इस कारखाने मे दामोदर घाटी के कोयले की खपत होती है। अलमुनियम "बाक्साइट" से बनता है। जिसका कोप लोहरदगा के पास बहुत बडा है। परन्तु इस उद्योग में जल विद्युत औद्योगिक शक्ति के लिए अधिक उत्तम है। आशा है, दामोदर से जलविद्युत मिलने पर इसके अन्य कारखाने भी खुलेंगे।

अबरख का औद्योगिक क्षेत्र

उत्तरी हजारीबाग,पूरबी गया और मुगेर के दक्खिन पश्चिम मे अबरख क्षेत्र फैला है। इस क्षेत्र का प्रमुख केन्द्र कोडरमा है। इस क्षेत्र से प्रान्त के ९९ ७ प्रतिशत अबरख निकलता है। १९३७ ई० के आकडे के अनुसार दुनिया के कुल अबरख का ९० प्रतिशत उमदा अबरख विहार की ही खानो से निकलता है। इन खानो में ३२ हजार आदमी काम करते है। इस हिस्से से औसतन १० हजार टन अबरख प्रतिवर्ष बाहर भेजा जाता है जिसका मूल्य लगभग २१० लाख रूपया होता है।

सोनघाटी का औद्योगिक क्षेत्र

कोयल और सोन नदियो के सगम से डेहरी तक पश्चिमी सोनघाटी औद्योगिक दृष्टिकोण मे विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इस औद्योगिक खड में सिमेंट, कागज और चीनी के कारखाने हैं। ये कारखाने डालमियानगर में है। सिमेंट के तीन चार और कारखाने हैं। जपला सिमेंट के कारखाने के लिये विख्यात है। यहा ३५ हजार मजदूर काम करते हैं। सिमेंट चूना पत्थर से बनता है जो कैमूर की उपत्यका मे प्रचुर परिमाण मे मिलता है। जपला के कारखाने में चूना पत्थर "बौलिया कीक्वेटिया" से आता है जहा एक हजार मजदूर काम करते हैं। डेहरी के कागज के कारखाने के लिये मध्यभारत, मिर्जापुर और छोटानागपुर से बास आते हैं। चीनी के कारखाने के लिये स्थानीय ईख ही काफी हो जाती है। डेहरी के आसपासवाले इलाको मे सिचाई का अच्छा प्रबन्ध है। अतएव ईख की फसल अच्छी होती है। फलत उसे दूर से ईख मगाने की आवश्यकता नही पडती। कच्चा माल मगाने और तैयार माल को बाहर भेजने के लिए यहा यातायात की काफी सुविधा है। ग्रैंड कार्ड लाइन द्वारा यह गगा के समृद्ध जिलो में अपना माल भेजता है तथा पूरब मे कलकत्ता और पश्चिम में दिल्ली से अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। इन्ही साधनो के कारण डेहरी का छोटा गाव आज विहार के औद्योगिक शहरो मे एक है।

दक्खिन-पूरब का औद्योगिक हिस्सा

इस हिस्से मे सिंहभूम और मानभूम के पूरे दक्खिनी भाग पडते हैं। यहा कुछ खनिज पदार्थ, जैसे लोहा, ताबा, मैंगनीज, चूना, पत्थर आदि प्रर्याप्त परिमाण में मिलते हैं। जमशेदपुर मे लोहा कारखाना और घाटशिला के ताबे का कारखाना विहार में ही नहीं सारे भारत मे अद्वितीय है। टाटा आयरन एन्ड स्टील इन्डस्ट्रीज की स्थापना से १९१२ मे भारतीय उद्योग में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। कच्चे लोहा और इस्पात का उत्पादन उत्तरोत्तर बढता गया। युद्ध के समय तो इसके उत्पादन मे और भी अधिक वृद्धि हो गयी थी। १९४१ में ८३९०० टन इस्पात तैयार हुआ था, १९४३–४४ तथा १९४६–४७ के औसत आकडे के अनुसार इस्पात का उत्पादन क्रमश ८,३१,००० टन और ७४९,००० टन था। इस समय इसका उत्पादन ८लाख टन के लगभग हो गया है। १९३९ ई० के आकडे के अनुसार टाटा ने १० लाख टन कच्चा लाह (पिग आयरन) तैयार किया था। उस समय इस्तपात का उत्पादन आकडा ७७७००० टन मात्र था।

इतना होने पर भी, 'टाटा आयरन एन्ड स्टील कम्पनी' का इस्पात पूरे देश की आवश्यकता को पूरा नही कर पाता है। कई और लोहे के कारखाने स्थापित करने की योजनाएँ बनायी जा रही हैं। इस क्षेत्र मे उसकी स्थापना करना भौगोलिक एव अर्थशास्त्रके दृष्टिकोण से श्रेयस्कर है। यदि यह स्थापित हो जाता है, तो भारत को विदेश से इस्पात मगाने की आवश्यकता नही पडेगी।

जमशेदपुर के लोहे के कारखाने के आसपास कितने सहायक उद्योग-धधे कायम हो गए है जिनमें टाटा इन्जीनियरिंग ऐन्ड लोकोमोटिव कम्पनी (टेलको), अग्रीको, टीन प्लेट कम्पनी, नेशनल केबुल कम्पनी इत्यादि विशेष विख्यात है। टेल्को बोआलर, रोड रोलर इत्यादि तैयार करता है। इजिन भी बनना प्रारम्भ हुआ है। 'एग्रीको' कृषि सम्बन्धी औजार, कुदाल, कुल्हाडी, हथौडा, खती, खुर्पी, हल के फाल इत्यादि तैयार करता है। यहा प्रति माह लगभग ३७,४,००० वस्तुए बनती है जिनमे कुदाल और कुल्हाडी की सख्या क्रमश ५०,००० और १०,००० है। इस उद्योग में विस्तार की बहुत सम्भावनाए है।

घाटशिला के पास स्वर्णरेखा नदी के दाहिने किनारे पर स्थित ऊ भडार मे तावा गलाने का काम 'घाटशिला कापर कारपोरेशन' नामक ...९७ ने में होता है। असस्कृत ताबा मोसाबनी और धोबनी से 'रोपवे' ।ः कारखाने में लाया जाता है। कई प्रणालियो से साफ करने के बाद .९६८ प्रतिशत तावा बनाया जाता है जिसे "आई० सी० सी० (वेस्ट सलेक्टेड कापर) कहते है।

यह तावा पीतल बनाने के लिए मिश्र धातु के ऐसा उपयोग किया जाता है। ६० प्रतिशत तावा को ४० प्रतिशत जस्ते के इस धातु पिंड को रौलिंग मिल में डालकर तरह-तरह की आकृति का 'सीट' तैयार किया जाता है जिसका उपयोग बर्तन या अन्य वस्तुए वनाने के काम में किया जाता है। रेडियो तार केबुल इत्यादि में उपयोग करने लायक उच्चकोटि का तावा अभी तक बिहार मे क्या सारे भारत में अप्राप्त है। आशा है, तावे की ऐसी खान का पता चलेगा। बिहार की सबसे बडी सीमेंट फैक्ट्री झीनकापानी इसी भूखड मे पडती है जहा सिहभूम के चूना पत्थर की खपत होती है ।

तिरहुत की चीनी मिलें

गगा के उत्तर मे राज्य की पश्चिमी सीमा से लेकर पूरब में कोशी नदी तक के इलाको में विहार की अधिकाश चीनी मिलें स्थित हैं। हाल के आकडे के अनुसार, विहार के ३४ मे से २६ कारखाने तो इसी हिस्से में पडते हैं। मजदूरो और माल उत्पादन के भी आँकडे कुछ ऐसे ही हैं। १९४१ के आकडे के अनुसार बिहार मे कुछ मजदूरो को जो चीनी मिलो मे काम करते थे, ८७ प्रतिशत मजदूर यही काम करते हैं। इस हिस्से का चीनी उत्पादन औसतन १९३६–४१ प्रान्तीय उत्पादन का ७८ प्रतिशत होता है।

चावल की मिलें

विहार के उत्तरी छोर पर केवल चावल के उद्योग-धधे होते है। यह खड पश्चिम मे सोमेश्वर और गडक से लेकर पूरव में पूर्णिया के फारबिसगज के बीच तक पडता है। इस खड की चौडाई कही भी २५ मील मे अधिक नही है। इसी हिस्से में विहार की ६२ प्रतिशत चावल मिलें हैं। मजदूरो का अनुपात ६७ प्रतिशत है। चावल मिलो के केन्द्रीकरण का एकमात्र कारण चीनी के उद्योग की तरह, कच्चे माल की प्रचुरता है। दूसरी वात यह है कि नेपाल में भी धान खूब होता है, परन्तु वहा मिले खुलने की सुविधा न होने के कारण वहा का सारा धान पहाड की इस तराई मे लाया जाता है। इसी कारण से पहाड की तराइयो में एक किनारे से दूसरे किनारे तक बहुत सी मिलें खुल गयी हैं।

दक्षिणी गगा का हिस्सा

दक्खिनी गगा का वह ऊँचा समतल स्थान जहा बाढ का प्रकोप कम होता है, बिहार के इतिहास में हमेशा महत्त्वपूर्ण रहा है। पहले जब नदिया ही आवागमन का एकमात्र साधन थी, गगा के किनारे स्वभावत बहुत से व्यापारिक केन्द्र कायम हो गए थे। आजकल उन प्राचीन केन्द्रो का और भी विकास हो गया है तथा कितनी तरह के उद्योग-धधे वहा कायम हो गए है जिनसे स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्त्ति होती रहती है। ऐसे शहरो में बक्सर, पटना, दानापुर, फुलवारी शरीफ, जमालपुर, मुगेर, भागलपुर तथा साहबगज का नाम उल्लेखनीय है जहा कुछ-न-कुछ उद्योग-धधे होते हैं। भागलपुर में रेशमी कपडे की मिलें हैं, मुगेर में सिगरेट बनती है और जमालपुर में लोहे तथा रेलवे का कारखाना होता है। फुलवारी शरीफ मे कपडा बुनने की एक मिल है। कपडे की मिल तो बिहार में केवल गया में ही है जो पटना से ५७ मील की दूरी पर है।

मिलेजुले उद्योग

मिले जुले उद्योग-धधो मे उनका नाम आता है जो इधर-उधर फैले हैं। जैसे जूट-लाह इत्यादि का उद्योग-धधा, जिनका उल्लेख विस्तार में पहले हो चुका है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उद्योग-धधे है जो छोटे पैमाने पर गृह उद्योग-धधे के रूप मे चल रहे है, जैसे सूती-रेशमी-ऊनी कपडे बुनना, चमडे का काम, लकडी का काम।

बिहार के औद्योगिक साधनो एव उनके वर्गीकरण के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि जितना विकास इनका होना चाहिये था उतना अभी नही हो सका है। कहा जा सकता है कि बिहार का औद्योगिक विकास अभी शैशवावस्था में है। नीचे दी हुई तालिका (१९५१) से स्पष्ट है कि यहा के मजदूरो, कारखानो इत्यादि की सख्या अन्य प्रगतिशील प्रान्तो की अपेक्षा कम है —*

फिर भी विहार का भविष्य, औद्योगिक दृष्टिकोण से उज्ज्वल है। औद्योगिक योजनाओ के अनुसार निकट भविष्य में ही यहा लोहा, जूट, और कपडे के कारखाने खुलेंगे। यह निश्चित है कि जल विद्युत शक्ति की योजनाओ के कार्यान्वित होने से बिहार का महत्त्वपूर्ण औद्योगिक विकास होगा।

*प्रान्त	कुल कारखाने	कुल मजदूर	कुल मजदूरी	कुल पूजी
पश्चिमी बगाल	१,२१८	४,७५,११५	२०,८३,०१,४९०	१०३,८७,३३,९५५ रु०
बम्बई	९५९	४,६८,११४	३७,८७,५३,७६२	१,२४,४१,७२,२५१ रु०
मद्रास	१२४४	१,३५,२६६	६,५४,७१,५६८	३५,३२,३७,७७४ रु०
उत्तर प्रदेश	५५९	१४४,१८८	७,२२,६०,८३५	४६,२२,२९,७४८ रु०
बिहार	३१६	७८,२९९	४,७१,५४,९७८	३६,०८,७४,४७० रु०

धरती के गीत

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी

साहित्य का आदि-स्रोत है मौखिक लोक-वार्त्ता, जिसके अन्तर्गत लोकोक्तिया, लोककथाए, लोकगीत, लोकविश्वास, पहेलिया और जत्र-मत्र आदि वहुमुखी सामग्री आ जाती है। गोर्की के कथनानुसार जनता ही आदि कवि है और वही आदि दार्शनिक। जन्मभूमि और राष्ट्रीय भावना के गीत प्रत्येक देश के लोक-साहित्य में मिलते हैं। वैसे यह ठीक है कि देश-देश के लोक-साहित्य मानव भावनाओ में समानता का परिचायक है, लेकिन साथ ही यह भी ठीक है कि एक देश का लोक-साहित्य दूसरे देश के लोक-साहित्य से, जलवायु के समान ही, भिन्न होता है। प्रत्येक देश के लोक-साहित्य पर जहा उस देश के रीति-रिवाजो की छाप रहती है, वहा अपने वीरो के शौर्य के प्रति भी हम लोक भावना को नतमस्तक होते देखते हैं।

भारतीय लोकगीतो में धरती माता की वन्दना के स्वर विशिष्ट स्थान रखते हैं। वुन्देलखडी लोकगीतो का एक विशेप उपभेद है "सौरा" जिसे प्राय किसान खेत में काम करते ममय गाते हैं। ध्यान से देखने से सौरा दोहे या सोरठे की जाति का अनगढ सा छन्द प्रतीत होता है। इसकी एक विशेपता यह है कि इसमे तुकान्त का ध्यान नही रखा जाता। "सौरा" की भावभूमि पर प्रकृति तथा मानव जीवन के अनेक छवि-चित्र मूर्त्तिमान होते दृष्टिगोचर होते हैं, एक स्थल पर धरती माता को सम्वोधन करते हुए किसान कहता है

> धरती माता तैंने काजर दये,
> सेंदरन भर लई माग।
> पहर हरिअला ठाडी भई,
> तैंने मोह लयो जगत ससार।[1]

सवको जन्म देनेवाली धरती माता के प्रति किसान की यह भावना भारत की अनेक भापाओ के लोकगीतो मे कलापूर्ण और कवित्वमय रूप मे अकित हुई है। धरती के गीत प्रेम और प्रेरणा के प्रतीक हैं। इस भाव-भूमि पर स्वप्न और आदर्श, आशा और आकाक्षा थिरकती हैं। धरती माता की वन्दना ही राष्ट्रीय भावना की पूर्वजा है, यह भावना भारतीय लोकगीतो को वेदकालीन पृथ्वी सूक्त से जा मिलाती है।

शत-शत शताव्दियो की स्मृतिया लोकगीतो मे स्वर भरती हैं। रत्नगर्भा जन्मभूमि की रक्षा का भार पृथ्वी-पुत्रो पर ही आता है क्योकि जन्मभूमि की मान-मर्यादा को ही वे अपनी मान-मर्यादा मान कर चलते हैं। समय-समय पर ऐतिहासिक कथाये भी लोक-साहित्य में स्थान पाती हैं, जन्मभूमि की रक्षा करनेवाले वीरो की दन्त-कथाओ के समान ही ऐतिहासिक कथाए भी लोक-मानस की राष्ट्रीय भावना को पुष्ट करती हैं। इन सभी कथाओ मे अलौकिकत्व अथवा अतिशयोक्ति का अश भी रहता है।

'सोने का हल और चादी का जुआ' की कल्पना धरती माता के सम्मान की प्रतीक है। एक उडिया लोकगीत में किसान गाता है·

> सोनार हल कुरे रूपार जुआली
> हीरा माणिकर वलद
> हलीया वनमाली हे।[1]

मथुरा से तीन मील की दूरी पर है महौली गाव। महौली खेडे के अपने विशिष्ट गीत मे धरती माता की वन्दना इस प्रकार की गयी है

> धरती माता नें हरयो करयो
> गऊ के जाये नें हरयो करयो
> महौली खेडे नें हरयो करो
> गगा माई नें हरयो करयो
> जमना रानी नें हरयो करयो
> धना भगत को हर ते हेत
> विना वीज उपजायो खेत
> घर भर आगन भरयो

फसल को माडते समय वैलो के चक्कर को गढवाल में 'दाई का फेरा' कहते हैं। इसीसे ऋतु वदलने की उपमा लेकर जन-कवि देश-वासियो को वसुधा की सौन्दर्य-श्री का ध्यान दिलाता है, जव वसन्त का आगमन होता है—

> आई गैन ऋतु बौडी, दाई जैंसो फेरो, झुमैलो।
> उचा देसी उचा जाला, ऊदा देसी ऊदा, झुमैलो।[2]

---

१ हे धरती माता, तुमने आखो मे काजल लगा लिया और सिन्दूर से माग भर ली। हरे वस्त्र पहनकर तुम खडी हुई तो तुमने सारे ससार को मोह लिया।

१ सोने का हल है चादी का जुआ हीरो और मणियो के हैं वैल। और हलवाहा है स्वय वनमाली (कृष्ण)।

२ ऋतु लौट कर आ गयी, फसल माडते समय वैलो के चक्कर के समान झुमैलो। ऊपर के लोग ऊपर चले जायेगे, नीचे देश के लोग नीचे चले जायेंगे—झुमैलो।

झुमैलो नृत्य का यह गढवाली गीत ऋतु परिवर्त्तन का एक सुन्दर प्रतीक प्रस्तुत करता है। 'गाव' की सीमित भावना यहा ऊचे देश और नीचे देश का अन्तर दर्शाती है।

एक राजस्थानी दोहे मे ग्रीष्म ऋतु का चित्रण देखिए —

कह लूवा कित जावस्यो पावस घर पडियाह।
हियें नवोला नारा रा वालम पीछडियाह ॥[१]

ऋतु-परिवर्तन का अनुभव गायक को जन्म-भूमि के और भी समीप ले आता है। लुओ के साथ मानव का कथोपकथन लोक काव्य की प्रिय वस्तु है। बुन्देलखड के एक "सौरा" में राम, लक्ष्मण और सीता को कृषि कार्य में सलग्न दिखाया गया है

राम ववें तो लछमन जोतियो,
सीता माता काढें काद,
लछमन दिउरा लौट के हेरिओ,
मेरी वारी दो-दो कान।[२]

बुन्देलखडी 'सारा' मे लक्ष्मण और सीता के प्रश्नोत्तर बार-बार गाये जाते हैं

सीता —काहे को बाधे लछमन धनइया, काहे को पाचो बान ?
मिरगा वारी ऐसे चुने, जैसे अनाथ की खेत।

लक्ष्मण —काहे को निरखो भौजी धनइया, काहे को पाचई बान ?
परा मिरगला मारन चलू, मोए दशरथ की आन।[3]

कृषि प्रधान भारत की जनता द्वारा अपने आदर्श नायको राम, सीता, लक्ष्मण को कृषि कार्य में सलग्न दिखाने की कल्पना महत्त्वपूर्ण है। इस वर्णन मे कोई अतिशयोक्ति नही। इस प्रकार के गीत जनता की कृषि मे निष्ठा के प्रतीक हैं। इनके गान द्वारा उनका आत्म विश्वास दृढ होता है।

उत्तर प्रदेश मे घाघ की सूक्तिया प्रसिद्ध है। एक स्थल पर घाघ ने सुखी परिवार का चित्रण करते हुए धरती पर वैंकुठ को उतार लाने की कल्पना प्रस्तुत की है

भुइया बेंडे हर हवैं चार, घर होई गिहियन गऊ दुधार,
अरहरक दाल जडहनक भात, गारल निबुआ और घिव भात।
सहर सखण्ड दही जौ होइ, बाके नैंन परोसे जोई
कहें घाघ तब सब ही झूठा, उहो छोडि इहवें वैंकुठा।[१]

जहा कृषि के साधन बहुत सीमित है, वहा किसान को अनथक परिश्रम की धुन लगी रहती है। जैसे वह स्वय प्रकृति से यह पाठ पढ चुका हो कि नवान्न के लिये भरसक प्रयत्न करे।

राजस्थानी किसान की बडी-बडी आवश्यकताए क्या-क्या हैं। यह वह स्वय बताता है

नई मूजरी खाट न चवैं टापरी,
मैंसडल्या दो चार क दूझे बाखरी।
वाजर इन्दा रोट दही में ओलणा,
इतरा दे करतार फेर नही बोलणा ॥[२]

एक प्रार्थना गीत में राजस्थानी किसान इसी भाव को और भी स्पष्ट करते हुए कहता है

म्हारा राम रघुनाथ।
इतना वर तो म्हाने दीज्यो,
नित उठ जोड़ू हाथ।
आथुणो तो खेत दीज्यो,
बिच में दीज्यो नाडी,
घरवाली ने छोरो दीज्यो
भैंस ल्यावे पाडी।
दोय तो म्हाने छाली दीज्यो
दोय दीज्यो लरडी,
काली भूरी दो नू दीज्यो
एक बणाला बरडी।
म्हारा राम रघुनाथ
इतना वर तो म्हाने दीज्यो
नित उठ जोड़ू हाथ।
एक तो म्हाने हलियो दीज्यो,
हाल दीज्यो ठाडी,
दोय तो म्हाने बैंला दीज्यो,
बिच में दीज्यो गाडी।

---

१ कहो, हे लूओ, तुम यहा जाओगी, जब धरती पर पावस ऋतु आ जायगी ? तुम उस नवविवाहिता नारी के हिय मे जाकर रहेगी जिसका बालम बिछुड गया हो।

२ राम बीज बो रहे हैं, लक्ष्मण हल चला रहे हैं, सीता माता निराई कर रही हैं। हे लक्ष्मण देवर, लौट कर देखो, मेरे खेत मे दो-दो अकुर निकल आये हैं।

३ सीता कहती है—काहे को धनुष बाधा है, लक्ष्मण, काहे को हैं पाचो बाण। मृग खेत मे ऐसे चरते हैं जैसे यह अनाथ का खेत हो। लक्ष्मण उत्तर देता है—काहे को धनुष को निरखती है भावज ? काहे को पाचो बाण को देख रही हो ? परतो में मृग मारने चलूगा। मुझे दशरथ की आन है।

१ ग्राम के समीप ही खेत हो। चार हल हो। घर में कार्य-निपुण पत्नी हो दूध देनेवाली गाय हो। खाने को अरहर की दाल और जडहन का भात हो।उसमे डालने को घी तथा निचोडने को नीवू हो। खाड और दही हो। भोजन परोसनेवाली बाके नैनोवाली पत्नी हो। घाघ कहते है, यदि ये सब बातें हो तो यही वैंकुठ है।

२ नई मूंज की खाट हो, झोपडी टपकती न रहे, दो-चार भैंसें हो, दूसरे उनके लिए कोठा हो, बाजरे का रोट दहीं मे डुबो कर खाने के लिए हो। बस करता ! इतना दे दो तो फिर मुह से कुछ नही बोलना।

वाजरी री रोटी दीज्यो
उपर सक्कर घी,
दोय तो उपरा ते दीज्यो
घणू पडैली सी,
म्हारा राम रघुनाथ
इतना वर तो म्हानें दीज्यो,
नित उठ जोडू हाथ।[१]

इस प्रकार किसान अपनी मोटी-मोटी आवश्यकताओ का वखान करता है।

पर शायद किसान को यह समझते देर नही लगती कि केवल प्रार्थना से काम नही चल सकता। उसे अपने परिश्रम पर भरोसा करना पडता है। जव परिश्रम फल देता है और घर में किसी वस्तु का अभाव नही रह जाता तो उसके कठ से आनन्द और उल्लास का गान मुखरित हो उठता है। जिसमे किसान अपने भगवान पर व्यग्य कसने से भी नही चूकता

वनवारी हो लाल, कोन्या थारे सारे।
गिरधारी हो लाल, कोन्या थारे सारे।
एं महल-मालिया थारे
थारी वरावरी म्हें करा
स कोई टूटा टापरी म्हारे ।[२]

आगे चलकर इस गीत में राजस्थानी किसान कहता है—तुम्हारे यहा कामधेनु है, हमारी भी भैंसें हैं। तुम्हारे यहा हाथी-घोडे हैं, हमारे भी ऊट हैं और ऊटनिया हैं। तुम्हारे पास भाला-वरछी है, हमारे पास जई-गडासी। तुम्हारे पास सागर है, हमारी भी तलैया है। तुम्हारे पास तोशक तकिए हैं, हमारी फटी गुदडी ही अच्छी है हमारे लिए। तुम्हारे पास रानी है, हमारी भी तो जाटनी है।

आदिवासियो के सामाजिक उल्लास और सामूहिक श्रम के गीत भी सामाजिक सत्य की पताका फहराते रहे हैं। शिशु के जन्म पर गाये जानेवाले गीत जाति और वश की वृद्धि का जयगान करते थे तो नई फसल की खुशी में गाये जानेवाले गीतो का लक्ष्य था श्रम को मधुर वनाना और अनाज से भरी हुई कोठियो की कल्पना प्रस्तुत करते हुए जाति के सुख-समृद्धिपूर्ण भविष्य का रजित चित्र प्रस्तुत करना।

प्राय यह समझा जाता है कि आदिम समाज में वैयक्तिक आचार को तनिक भी प्रमुखता नही मिलती और सर्वत्र सामूहिक दृष्टिकोण ही छाया रहता है। पर आदिम जातियो की मौखिक कविता के अध्ययन द्वारा हम इस परिणाम पर पहुचते हैं कि समाज की ईकाई के रूप में व्यक्ति की आवाज कही भी दवती नही।

छोटानागपुर के एक मुण्डा गीत मे खेत का चित्र किसी प्रेमी का हृदय-स्पन्दन लेकर आगे वढता है —

वुरु रे दोराडी वेंडा रे गगई
सागोती, नीदा सिंगी हलाहला आन।
सिंगी दो चेणें नीदा दो कुलाय,
सागोती, नीदा सिंगी हलाहला आन।[१]

छोटानागपुर के उरावो में "युवती का गीत" वडा ही लोकप्रिय है। ऐसा लगता है यह युवती अपनी मा को नही वल्कि धरती माता को पुकार रही है —

सन्नी मनें एग्हें अयगो
अथाह मेर्खा नू उढियार आ लगी,
उढियार आ लगी खत्तरआ हा मलखत्तरई,
मुन्दा इजआ के के अड्डा वेद्दा हो पोल्ली।
मनें एग हैं अक्कुन सन्नीम रई, वोलीन रई,
अक्कुन अन्नू नीदी ताकादिम निदकी रई,
अरगी अडसा अक्कुन धेंडा परिया आदिची,
एका तरा अरओय, अजमोम ढिया रई।
निंग अचरन ची अयग, आद वरच की दिन रई,
मलतो वीडी विल्ली नू इजआ हा पोल्लो,
एकअम वरन्डो वोगतआ हो टकओ,
भोखारो वदाली माडा हो टकओ,
ची अयम अचरन ।[२]

गोडो के एक करमा गीत मे जहा प्रेमी अपने चोले का रुदन प्रस्तुत करता है, वहा अपनी धरती का चित्र भी प्रस्तुत करता है

---

१. ओ हमारे राम रघुनाथ, मुझे इतना वर देना मैं नित आख खुलते ही हाथ जोडता हू पश्चिम में खेत देना, खेत के वीच तलैया हो। घरवाली को छोरा देना, भैंस भी पडिया लाये, दो भेड, काली और भूरी, जिनकी ऊन मे 'वरडी' वुनी जायगी। ओ हमारे राम रघुनाथ, मुझे इतना वर देना मैं नित आख खुलते ही हाथ जोडता हू। एक हल देना जिसके साथ मोटी फाल लगी रहे। दो वैल देना जिनके वीच गाडी चल रही हो। वाजरे की रोटी देना जिस पर शक्कर और घी हो। ओढने को देना दो गुदडे खूव जाडा पडेगा।

२. हे वनवारी, हममें से कोई तुम्हारे आसरे नही। हे गिरधारी हममें से कोई तुम्हारे आसरे नही। तुम्हारे महल अटारिया हैं, तुम्हारी वरावरी भी करता हू, हमारे यहा भी टूटी झोपडी है।

१. पहाड पर है अरहर, तराई पर गगई। हे सखी! दिन-रात तुम हला-हला किया करती हो। दिन मे पक्षी, रात मे खरगोश हैं हे सखी, दिन रात तुम हला-हला किया करती हो।

२. छोटा सा मन मेरा ओ मा, अथाह गगन में विचर रहा है। विचर रहा है—गिर नही रहा। अभी उसमे सिर्फ हवा ही भरी है। मन मेरा अभी तो छोटा सा है। नन्हा-सा। अभी उसका यौवनकाल भी नहीं आया। जिस ओर भी फूका जाय उस ओर ही उडता फिरता है। अपना आचल दे दो, मा उसे थामे रहेगा मेरा मन नहीं तो सूर्य की प्रचण्ड किरणो में वह खडा नही रह सकेगा और कोई आधी उसे उडा न ले जाय, काले मेघ उसे ढक न ले, अपना आचल दे दो, मा!

चोला रोवत है राम, बिन देखे परान ।
दादर झावर झोडी ढूढौं डोगरे बीच मझाय,
वै पतेरन तोला ढूढौ कहा लुकै है जाय
चोला रोवत है राम, बिन देख परान ।
माया ला तैं कसके टोरे, सुरता मोर भुलाई,
मोर मडइया सूनी करके, कहा करे पहुनाई,
चोला रोवत है राम, बिन देखे परान ।
इन नैनो में नीद न आये, हिरदा होइगे सूना,
डोगरे डहरी तौला ढूढौ विपता बढगे दूना,
चोला रोवत है राम, बिन देखे परान ।[1]

एक और गोड गीत मे यह दिखाया गया है कि जीवन की समस्या विकट हो रही है। किसी स्त्री का पति अपने बैल लेकर ऊचे पहाड को पार करके व्यापार के लिए चला जाता है। स्त्री का हृदय आशकित हो उठता है कि शायद यह धरती का लाल गाव के लौटकर न आये।

बैला चलिन राई घाट करौंदा बैला छोटे-छोटे रे।
डोगरे में आगि लगे जरथे पतेरा,
सुन-सुन के हीरा मोर जरथै करेजा,
बैला चलिन राई घाट करौंदा बैला छोटे-छोटे रे ॥[1]

धरती का लाल ,अपने जीवन सघर्ष की गाथा अपने पीढी-दर-पीढी चले आनेवाले गीतो मे बडे मजे से सुनाता है। और जब भी वह कोई पुराना गीत छेडता है, इस नये युग का सम्पर्क प्राप्त हुए बिना नही रहता। यही लोकगीत की शक्ति का रहस्य है।

१ चोला रो रहा है राम, प्रियतम को देखे विना। डोगर पहाड के वीच वार-वार चक्कर लगा चुकी, मैं तुझे दादर (पहाडी उच्चतम-भूमि), झावर (कुज), और झोडी (नालो के किनारे) ढूढ आई। मैंने सभी पतेरो (झाडियो) मे तुझे ढूढ लिया, तू कहा छिपा है ? चोला रो रहा है हे राम, प्रियतम को देखे विना। तुमने मेरी माया कैसे तोड दी ? मेरी सूरत तूने कैसे भुलाई ? मेरी मडैया सूनी करके तुम किसके घर मे मेहमान वने वैठे हो ? चोला रो रहा है हे राम, प्रियतम के देखे विना। इन नयनो मे नीद नही आती, हृदय सूना हो गया, पहाड-गली मे तुम्हे ढूढा, मेरी विपता दूनी हो गई। चोला रो रहा है, राम, प्रियतम को देखे विना।

१ बैल राई घाट की ओर चल पडे—करौंदे के रग के ये छोटे-छोटे बैल। पहाड पर आग लगी है, पत्ते जल रहे हैं। और मेरे हीरे के से प्रियतम, मेरा कलेजा जल रहा है। बैल राईघाट की ओर चल पडे—करौंदे के रग के ये छोटे-छोटे बैल।

कृषि की उत्पत्ति और वैदिक युग में भूमि-व्यवस्था

श्री प्रमथनाथ गुप्त

हम जिसे वैदिक युग कहते हैं, वह कई सौ वर्षो तक फैला हुआ युग है। इस वात को न समझने के कारण वैदिक युग का उल्लेख करते समय कई वार वहुत भारी गलतिया हो जाती है। ऋग्वैदिक साहित्य में जिस युग की वातें वर्णित है, वह ८०० से १००० वर्ष तक वर्त्तमान था ऐसा अनुमान किया गया है।

स्वाभाविक रूप से वैदिक साहित्य में इसी युग का उल्लेख है पर इस साहित्य में यत्र-तत्र प्राग्वैदिक युग के भी उल्लेख आ जाते हैं। वैदिक आर्य तो खेती में प्रवीण हो चुका था, पर प्राग्वैदिक युग-सम्वन्धी उल्लेखो मे यह ज्ञात होता है कि ऐसा युग इसके पहले मौजूद रहा होगा, जव खेती की उत्पत्ति नही हुई थी। यहा यह भी वता दिया जाय कि जैसे आम तौर से यह समझा जाता है कि खेती के युग के पहले पशुपालन का युग रहा, यह सव विद्वानो को मान्य नही है। इस विपय में 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' के ये वाक्य विशेप उल्लेखनीय हैं।

अभी तक इस विपय में मतभेद है कि पशुपालन का युग पहले था या कृपि का युग। अधिकाश विद्वानो का मत यह है कि कृपि सर्वत्र पशुपालन से प्राचीनतर है, किन्तु जर्मन इतिहास लेखको का यह विचार है कि इन दोनो में पूर्वोत्तर सम्वन्ध स्थापित करना गलत होगा, क्योकि जव एक जगह केवल पशु पालन ही हो रहा था, तो दूसरी जगह केवल कृपि हो रही थी। वी० गार्डन चाइल्ड ने लिखा है कि अव कोई विद्वान इस विपय पर जिद नही करता कि सार्वदेशिक रूप से पशु पालन का युग कृपि के पहले था क्योकि आज भी वहुत से ऐसे कृपक कवीले हैं, जिनमें कोई पालतू जानवर नही है। मध्य यूरोप और पश्चिमी चीन में जहा दोनो धधे सैकडो वर्ष से निश्चित रूप मे चल रहे थे, वहा के विपय मे भी जव पुरातात्विक फावरे से पूछा गया, तो उसने वतलाया कि किसनई का धधा पुराना है, लोग पालतू जानवरो पर किसी प्रकार का भरोसा नही करते थे, खेती की ही उपज से काम चलाते थे, और शायद थोडा वहुत शिकार भी करते थे। (ऐतिहासिक भौतिकवाद पृ० २०४–२०५)

हमे यहा पर इस विवाद मे पडने की कोई आवश्यकता नहीं है कि प्राग्वैदिक युग मे कृपि पहले आई या पशुपालन। सच तो यह है कि इस प्रश्न के निर्णय के लिए जितना मसाला होना चाहिये, उतना मसाला नही है। श्री जयचन्द्र विद्यालकार ने अपनी पुस्तक 'भारतीय इतिहास की रूप-रेखा में' वैदिक युग के समाज की वुनियादो का वर्णन करते हुए भूमिका के रूप मे जो वातें लिख दी है, वे निर्विवाद नही हैं।

उन्होने लिखा है, और ऐसा शायद उन्होने प्राग्वैदिक युग के सम्वन्ध में अनुमान भिडाते हुए लिखा है—"आरम्भिक मनुप्य का गुजारा शिकार से या फल-मूल वीन कर होता था। उसके वाद पशुपालन का जमाना आता है, और फिर धीरे-धीरे मनुष्य खेती करने लगता है। पशुपालन के युग में जगम और फिर कृपि के युग में स्थावर सम्पत्ति का उदय होता है, और स्थावर सम्पत्ति होने से समाज में स्थिरता आती है। शिकारियो की टोलिया या पशुपालको के गिरोह किसी एक जगह टिक कर नही रहता कृपक समाज स्वभावत एक निश्चित प्रदेश मे टिक जाता है। समाज के इस प्रकार स्थिर या अवस्थित होने पर ही राज्य का उदय होता है, और फिर सभ्यता का विशेप विकास।"

विद्यालकारजी के इस वक्तव्य मे जिस निश्चयता के साथ यह कहा गया है कि पशुपालन के युग के वाद खेती का युग आया, हम दिखला चुके कि यह क्रम आवश्यक नही है, और ऐसा कोई चिरतन नियम नही है। वाद को चलकर विद्यालकारजी ने स्वय ही कहा है, 'वैदिक आर्यो का समाज पशुपालको और कृपको का था, वल्कि प्राग्वैदिक युग में, इक्ष्वाकु और पुरूरवा के समय में भी वे पशुपालक और कृपक ही थे, केवल शिकार पर जीने के युग को पीछे छोड चुके थे, तो भी उस युग की याद अभी ताजी थी, जव लोग अनवस्थित-अवस्थित विश थे अर्थात् जव आर्य लोग केवल पशुपालक थे, और कृपक जीवन उन्होंने अपनाया न था।"

प्राग्वैदिक युग में आर्यो का कृपक और साथ ही पशुपालक होना विद्यालकारजी मानते है, फिर भी वे महज अनुमान के वूते पर यह कहते है कि इसके पहले वे केवल पशुपालक रहे होगे, और उन्हें खेती न आती होगी। इस अनुमान के लिये उन्होने किसी उल्लेख का हवाला नहीं दिया। यदि कल्पित चिरन्तन नियम के वूते पर उन्होने यह वाक्य कहे है, तो इस सम्वन्ध में यह वता देना जरूरी है कि खेती के साथ-ही साथ मनुप्य अवस्थित हो गये, और स्थायी वस्तियो में वस गये, ऐसा नही कहा जा सकता। इतिहास में इसके कई अपवाद हैं। ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं कि खेती की उत्पत्ति होने पर भी लोग वुद्धू बने रहे। चाइल्ड ने यह दिखलाया है कि गत शताव्दी में कनाडा के प्रशान्त मह[illegible] ओर के उपकूलो की कुछ

शिकारी तथा मछली मार कर जीनेवाली जातियो के सम्बन्ध में यह ज्ञात हुआ है कि यद्यपि यह लोग खेती नही करते थे, फिर भी इनके स्थायी सुन्दर लकडी के मकानो के गाव बसे हुए थे। इसी प्रकार बर्फ युग में फ्राम के मेगडेलेनियगण कई पुश्त तक एक ही गुफा मे रहते थे, इसमें सन्देह नही। दूसरी तरफ खेती के कुछ तरीके ऐसे है, जिन्हें काम में लानेवाले को इधर-उधर भटकते रहना पडता है। १९३६ तक एशिया, अफ्रीका, विशेष कर दक्षिण अफ्रीका के कुछ किसानो लिये खेती का अर्थ यह था कि जगल के एक टुकडे को या कुछ झाडियो को साफ कर लिया, फिर उसे डडानुमा चीज से चला दिया, फिर उसमें बीज बिखरा दिया, और जब फसल तैयार हो गई तो उसे काट लिया। वे इस जमीन को न तो कभी परती छोडते है, और न उसमे किसी प्रकार की खाद डालते है। अगली फसल के समय फिर उसमे बीज डाले जाते है। स्वाभाविक रूप से ऐसी अवस्था मे दो-एक बोआई और कटाई के बाद जमीन की उत्पादक-शक्ति विलुप्त हो जाती है या घट जाती है, तब जगल का एक दूसरा टुकडा साफ किया जाता है, और जब इस प्रकार जमीन बेकार हो जाती है, तब वहा से कबीला कूच कर जाता है, और वह दूसरी जगह उसी प्रकार खेती शुरु कर देता है।

इन लोगो के पास सामान बहुत थोडा होता है, और मकान भी इतने मामूली होते है, इसलिए सामान ले जाने या मकान बदलने में कोई दिक्कत नही होती। इस प्रकार की खेती प्रागैतिहासिक युग मे आल्पस पर्वत के उत्तर मारे यूरोप मे प्रचलित थी। ई० सन के प्रारम्भ तक कुछ जर्मन कबीलो मे भी इस प्रकार की खेती का प्रचलन था, ऐसा स्ट्राबो से मालूम होता है। इस समय भी आसाम की चावल उत्पादक नागा जाति में, एमेजन नदी की उपकूल की बोडो जाति मे तथा सूडान के कुछ खेतिहरो में इस प्रकार की खेती मौजूद है। वेरियर एलविन ने यह लिखा है कि दक्षिण की मैकाल पहाडियो के पास रहनेवाली कुछ आदिम निवासी जातियो में अब भी कुछ चलती-फिरती खेती होती है। मिर्जापुर के दूधी नामक स्थान के सम्बन्ध मे बताया जाता है कि पहले इसका अधिकाश हिस्सा घने जगलो से ढका हुआ था। यहा जो कुछ खेती होती थी, उसका तरीका यह था कि आदिम निवासीगण जगलो को जलाकर राख से ढकी हुई जमीन मे बीज बो देते थे, फिर जिस समय जमीन मे उपज घट जाती थी, तब फिर नये जगलो मे आग लगायी जाती थी। (ऐतिहासिक भौतिकवाद पृ० ५४–५५)

हम आज खेती से जो बात समझते है, आदिम खेती उस प्रकार की नहीं थी। आदिम खेती मे जैसा कि हम इगित कर चुके, किसी प्रकार हाथ से बीज डाल कर फसल होने पर उसे काट लेना मात्र था। हल जोतना, पाटा लगाना आदि जो बातें खेती के अपरिहार्य अग समझी जाती है, वे बातें उस समय अज्ञात थीं। खेती के बाद के युग मे पशुओ का जो उपयोग किया जाने लगा, उसका आविष्कार करते-करते मनुष्य जाति को बहुत समय लग गया। ऐसा ज्ञात होता है कि पहलेपहल पशुपालन का एकमात्र [illegible] रूप मे हुआ। पशुओ से काम भी लिया जा सकता है, यह बाद को पता लगा। धीरे-धीरे पशुओ के पचासों उपयोग मालूम होते गये। खाद सम्बन्धी विचार इस निरीक्षण के फलस्वरूप आया होगा कि जिस जमीन में पशु बैठाये जाते है, उसमें फसल अधिक होती है। सबसे प्रथम खाद गोबर की ही थी। भारत में अब भी वही आदिम खाद उपयोग में लाई जाती है, जबकि दुनिया बहुत आगे बढ चुकी है।

यद्यपि पशुपालन चलता रहा, पर पशु के दूध का भी उपयोग हो सकता है, यह बाद को ही पता लगा। ऐसा अनुमान है कि आर्यों के भारत आगमन के पहले यहा के आदिवासी खेती और पशुपालन मे बहुत आगे बढे होने पर भी वे दूध का इस्तेमाल नही जानते थे। यदि हम इस बात को देखे कि १९४३ में भी उडीसा की बन्डो जाति अपने जानवरो का दूध नही दुहती थी, यह बात कोई आश्चर्यजनक बात नही होगी। मनुष्य को इस सम्बन्ध में धीरे-धीरे ही ज्ञान हुआ होगा। दुग्ध सम्बन्धी यह ज्ञान बहुत ही उपयोगी था क्योकि इस आविष्कार के द्वारा पशु से इतना अधिक खाद प्राप्त किया जा सकता था, जितना उसका गोश्त खाने पर कभी प्राप्त नही हो सकता था। पर हम यहा पर विचारधाराओ के इतिहास के सम्बन्ध में कुछ कहने नही जा रहे है, फिर भी चलते हुए, यह इगित कर सकते है कि जब खेती मे पशु के उपयोग का पता लगा और दूध का आविष्कार हुआ, तो स्वाभाविक रूप से पशु-हिंसा की तरफ से लोगो का मन हटने लगा। पशुपालक खेतिहर जाति में मास भक्षण के विरुद्ध कुछ लोगो का हो जाना कोई आश्चर्य की बात नही है।

पशुओ से ऊन मिल सकता है, और शीत निवारण में उसका उपयोग हो सकता है, यह भी बाद को ही पता लगा होगा। ऐसा मालूम होता है कि चमडे से ऊन को अलग कर काम मे लाने के बजाय ऊन समेत चमडे को ओढने का रिवाज पहले चला होगा। मिश्र निवासियो में ऊन का उपयोग ई० पू० ३००० तक ज्ञात नही था, किन्तु इसके पहले ही ईराक में ऊन का चलन हो चुका था। ऋग्वैदिक युग मे चमडे के अतिरिक्त ऊनी वस्त्रो का भी इस्तेमाल किया जाता था। ऊर्ण या ऊन के बनाये हुए कपडे आर्यों के मुख्य पहिनावे थे। ऊनो में भी गान्धार का ऊन उत्कृष्ट माना जाता था। ऋग्वेद के एक मत्र में गान्धार की भेडो की तारीफ की गयी है। बकरो से भी ऊन प्राप्त किया जाता था। ऋग्वेद में सूती वस्त्रो का स्पष्ट उल्लेख नही है।

इसी प्रकार से चमडे के अन्य प्रयोगो का पता भी धीरे-धीरे लगा होगा। धीरे-धीरे पशु के सीग, खुर सभी अगो का उपयोग मनुष्य को मालूम होता गया।

पशुपालन और खेती के सम्मिलित युग में हम कई जगह पर पशुओ को विनिमय के साधन या सिक्के के रूप में देखते है। भारत में गाय बहुत दिनो तक विनिमय का माध्यम रही, तथा राजाओ तक के धन की पैमाइश उनके पशुओ की सख्या से की जाती थी। स्वाभाविक रूप से जब ऐसे युग में लडाइया होती थी, तो पशु छीने जाते थे। महाभारत मे लडाई में पशु छीनने की कई कहानिया आती है। जिस समय पाडव राजा विराट के यहा अज्ञातवास कर रहे थे, उस समय विराट राजा के पशुओ को लूटने के लिये कौरवो ने उनपर हमला किया था। उस समय राजा के आश्रित पाडवो ने उनकी रक्षा की थी। प्राचीन आर्यों मे युद्ध में पशुओ का छीना

जाना इतनी वडी वात थी कि युद्ध का प्राचीन नाम ही संस्कृत मे गवस्ति अर्थात् गाय की इच्छा कहा गया है।

हल का विकास एक वहुत वडी वात है खेती के प्रारम्भिक युग में हड्डी या लकडी से जमीन को थोडा वहुत चलाकर वीज डाल देना ही एकमात्र तरीका था, वाद को इसीसे हल का विकास हुआ। मिस्र में हो याने जमीन उलटने के उपयोग में आनेवाले एक लम्वे फले के औजार का पता मिलता है। प्राचीन जापान में ऐसे फावडो का पता मिलता है, जिनको जमीन पर रखकर खीचा जाता था। हेव्राइडिस द्वीप मे एक तरह के पदचालित हल का पता मिलता है। ऐसा समझा जाता है कि हम जिसे हल कहते है, वह कही किसी औजार से और कही किसी अन्य औजार से उत्पन्न हुआ।

पहले हलो मे पशु का उपयोग नही रहा होगा, वाद पशु का उपयोग हुआ, और अव तो ट्रैक्टर का युग है। इस सम्वन्ध मे भी खोज की गई है कि किन-किन अनाजो का उत्पादन किस-किस प्रकार से सीखा गया। हमने अपनी 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' नामक पुस्तक मे इस विषय पर कुछ विस्तार से विचार किया है, यहा पर हम कुछ मोटे तथ्य पेश करेंगे। भूमध्यसागर, पश्चिमी एशिया और भारतवर्ष की सभ्यतायें विशेष कर दो अनाजो पर निर्मित हुई है, एक जौ और दूसरा गेहू। यह समझना भारी भूल होगी कि जिस रूप में आज हम गेहू और जौ को देखते है, वह आदिकाल से ही ऐसा ही रहा है। गेहू के पूर्व पुरुष के रूप में दो जगली घासो का पता लगता है। एक का नाम डिकल और दूसरी का नाम ऐमर है। कुछ विद्वानो ने यह नतीजा निकाला है कि अफगानिस्तान और उत्तर पश्चिम चीन में ही गेहू पहलेपहल उत्पन्न हुआ। पर इस समय जो गेहू प्रचलित है वह डिकल और ऐमर से पृथक एक तीसरी ही किस्म का है, जिसका वैज्ञानिक नाम ट्रिटिकम वल्गारी है। जौ भी कुछ पहाडी घासो से ही विकसित हुआ है। उपलव्ध प्रमाणो से ज्ञात होता है कि अवीसिनिया और दक्षिण पूर्व एशिया में जौ की पहलेपहल वुआई हुई होगी।

इस प्रकार खेती का विकास होते-होते सैकडो वर्ष लग गये। प्रत्येक युग के लोग यह समझते है कि उन्ही के युग में सवसे अधिक आविष्कार हुये, पर जैसा कि हम दिखा चुके, खेती की उत्पत्ति और विकास के दौरान में कितने ही महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुये जिनके विषय में हमें कुछ धुधला-सा ही ज्ञान है।

जो कुछ भी हो जव हम ऋग्वैदिक समाज में पहुचते है, तो हम यह देखते है कि ऋग्वेद में जिस जाति या कवीलो का वर्णन है, वे खेती करते है, सिलाई-वुनाई सीख चुके है, तावे का उपयोग जानते है, रथ वनाते है, मकान वनाते है, वर्तन वनाना जानते है, और उनमे वैयक्तिक परिवार का सूत्रपात हो चुका है।

पुरातत्त्व का अव निश्चित मत है कि आज से सात हजार वर्ष पहले निकट पूर्व में कृषि-कला का उद्भव हुआ, और मनुष्य खाद्य एकत्रकारी प्राणी से खाद्य उत्पादक हो गया, फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि वेद किसी भी हालत में इससे पहले लिखे गये। अन्य अनेक प्रकार के प्रमाणो से यह ज्ञात होता है कि वेद कृषि-कला के आविष्कार के वहुत वाद लिखे गये। हमे यहा वेदो के समय निर्द्धारण के पचडे में पडने की आवश्यकता नही है। हमारे वर्तमान विषय के लिए इतना ही यथेष्ट है कि वैदिक आर्य खेती करनेवाले लोग थे।

वह समय पीछे छुट गया है, जव भूमि पर सामाजिक अधिकार था। आर्यों के दल-के-दल भारत मे आ रहे थे, और वे अनार्यों से जमीन छीनते जाते थे। पर अभी तक जमीन की कोई विशेष कमी नही थी, और अनार्य तथा आर्य दोनो खेती कर सकते थे। पर अव अनार्य विजित थे और आर्य विजेता। इस कारण आर्यों के मुकावले मे अनार्यो की परिस्थिति निकृष्ट-तर होती जाती थी। कैसे आर्य-अनार्य के इसी सम्वन्ध मे पहले दो वर्ण की और वाद को चतुर्वर्ण की उत्पत्ति हुई, इसके वारे मे यहा जानने की आवश्य-कता नही है। जिस समय भारतीय आर्यगण अभी वहुत कुछ खानावदोशी की अवस्था में थे, और जीतते हुए आगे वढते चले आ रहे थे, उस समय उनमें दासता के अधिक प्रचलन या चतुर्वर्ण की सम्भावना न होगी, यह स्पष्ट है।

आर्य नाना कुलो तथा कवीलो मे विभक्त थे। जरूरत पडने पर कई कुल या कवीले आपस में मित्रता कर लेते थे। परुष्णि और यमुना की लडाई के समय इस प्रकार की सववद्धता का विवरण मिलता है। युद्ध मे विजय या कार्यसिद्धि होने पर प्रत्येक कवीला अलग हो जाता था। एक कवीला विभिन्न देशो में विभक्त होता था। जन शव्द कवीले के अर्थ मे प्रयुक्त होता था।

भारतीय आर्यो का जीवन जन, विश, ग्राम आदि के इर्द-गिर्द परि-चालित होता था। इन्ही तीनो शव्दो मे आदिम आर्यो की भूमि व्यवस्था की सारी वाते निहित है। ऐसा मालूम होता है कि यद्यपि वाद को चलकर जमीन व्यक्तिगत सम्पत्ति हो गई, पर आर्यो के प्रथम सोपान मे भूमि किसी न-किसी अर्थ मे सामूहिक सम्पत्ति थी।

यद्यपि जन और विश शव्द के सम्वन्ध मे विशेष कोई मतभेद नही है, पर ग्राम शव्द का क्या अर्थ था, इस सम्वन्ध मे विद्वानो मे कुछ मतभेद है। आज तो ग्राम शव्द स्थानवाचक है, पर ऐसा ज्ञात होता है कि पहले अमुक ग्राम माने अमुक परिवारवृन्द मात्र था। यदि वह परिवारवृन्द स्थान को छोडकर चला जाता था, तो ग्राम चला जाता था। डाक्टर वेणी प्रसाद के अनुसार कुछ साथ मे रहनेवाले परिवार ही ग्राम के रूप में होते थे। कई ग्राम मिलकर विश या कैन्टन वनता था फिर कई विश मिलकर एक जन वनता था।

श्री जयचन्द्र विद्यालकार जन और विश को करीव-करीव एक ही अर्थ मे लेते है। उनके अनुसार एक जन की समूची जनता विश (१५।१।१–२) कहलाती थी। प्रत्येक जन के लोग (विश) यह समझते थे कि हमारा मूल पूर्वज एक जोडा था, उसकी सन्तान हुई, सन्तान की फिर सन्तान हुई, इस प्रकार संयुक्त परिवार वढता या फलता गया, उसकी अनेक शाखायें होती गई, जन के सव लोग सजात या सनाभि होते अथवा कम-से-कम अपने को सजात और सनाभि मानते थे।

जन का चित्र तो वहुत साफ है, पर जन, विश और ग्राम का क्या सम्वन्ध होता था, यह स्पष्ट है। कीथ ने दिखलाया है कि ऋग्वेद मे ये

शब्द बहुत ही अस्पष्टता के साथ व्यवहृत हुये है, उदाहरणार्थ भारतीयो को एक जगह पर जन, तथा दूसरी जगह पर ग्राम कहा गया है, इसलिए ग्राम के विश के अन्तर्गत होने का कोई प्रमाण नही है। विश के अर्थ अक्सर बस्ती के भी है। यह समझना गलत होगा कि जिस समय शब्द प्रचलित थे, उस समय इनके अर्थ में कोई गडबडी थी। बाद को शब्दो के अर्थ बदलते गये, पर वैदिक साहित्य में जो शब्द जहा था, उसे वही रहने दिया गया, इसी कारण बाद को चलकर उनके अर्थों मे गडबडी दृष्टिगोचर होती है।

विश अपना काम समिति और सभा के जरिये से करती थी। सभा और समिति में क्या अन्तर है, इस सम्बन्ध में भी विद्वानो मे मतभेद है। लुडविग का कहना है कि समिति मे सारी जनता रहती थी, और सभा मे केवल मघवन और ब्राह्मण रहते थे। जिमेर का कहना है कि सभा ग्राम की सभा थी, किन्तु हम वैदिक इन्डेक्स के लेखक हिलब्रान्डट के साथ इस सम्बन्ध मे एकमत है कि समिति और सभा करीब-करीब एक चीज है। एक तो सभा है और दूसरा प्राथमिक रूपसे सभास्थल के माने मे आता है। अथर्ववेद मे यह उल्लेख आता है कि सभा और समिति प्रजापति की दो कन्याये है, इस उल्लेख मे ये दोनो अलग-अलग सस्थाए हो जाती है। इन तथ्यों को तौलने के बाद डा० वेणी प्रसाद यह कहते है कि अथर्ववेद का यह हिस्सा ऋग्वेद के अधिकाश हिस्से से अर्वाचीनतर है, किन्तु इसके अतिरिक्त हम कुछ जानने मे असमर्थ है। सभा में वृद्ध ही आते थे, यह कोई बात नही है, उसमे जवान भी आते थे। आवश्यक कार्यों के बाद विनोद की बातें होती थी और तब वह गोष्ठी का काम देती। इस प्रकार सभा क्लब के रूप मे बदल जाती थी।

सभा और समिति मे क्या भेद था, था या नही था, किसी इलाके मे वही सस्था सभा कहलाती थी, और किसी मे समिति, इन बातो पर कोई अन्तिम फैसला न होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि इन सस्थाओ के जरिये से ही लोगो के सब तरह के सामूहिक जीवन, खेलकूद से लेकर जुआ और दूसरी तरफ सधि-विग्रह की सब बातो की आलोचना इन्ही में होती थी।

सारी बातो पर विचार करने के अनन्तर हम आसानी से यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि यदि वैदिक आर्यों के समाज को हम कई ऐतिहासिक सोपानो में बाट दें, तो हम यह कह सकते हैं कि प्रथम सोपान में पशु और भूमि कबीलो की सामूहिक सम्पत्ति होती थी। बाद को धीरे-धीरे सभा, समिति नाम भर के लिए रह गई, और राजा का विकास हुआ। राजा का विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ। पहलेपहल जब राजा दृष्टिगोचर होता है, तो वह एक चुना हुआ, और सो भी सामयिक कार्यसिद्धि के लिए चुना हुआ व्यक्ति होता था, फिर धीरे-धीरे यह चुनाव नाम मात्र का रह गया, और राजा तथा उसके पार्षद सर्वेसर्वा हो गये। भूमि सामूहिक सम्पत्ति से बहुत कुछ राजा की सम्पत्ति हो गई।

कई मत्रो में राजा और समिति में सद्भाव की कामना की गई है। अथर्ववेद के एक आशीर्वचन को लीजिए, उसमें कहा गया है–'तू अविचलित और ध्रुव होकर पशुओ का हनन कर, जो तेरे शत्रु है, उनको मार कर नीचे गिरा, समिति तेरे साथ सामजस्य रख कर चले।' अन्यत्र राजा प्रार्थना करता है—"प्रजापति की दो कन्यायें मेरी अनकलता करें।"

जो कुछ भी हो, अन्त तक समितिया लुप्त हो गई, जैसा कि पारस्कर गृह्यसूत्र से पता चलता है। इस ग्रन्थ मे समिति का उल्लेख स्मृति के रूप में किया गया है। जातको के समय (ई० पू ६००) के पहले ही समिति का अन्त हो जाता है। समिति के अवसान के बाद राजा माध्याकर्पण का केन्द्र बन गया, पर उसके बाद भी अभिषेक आदि के रूप में जो प्रथायें रह गई, उसमें जनता या समिति की स्वीकृति की बात कैसे छिपी हुई है यह इस सम्बन्धी अनुष्ठानो के अध्ययन से पता लगता है। भूमि राजा के अधीन व्यक्तिगत सम्पत्ति हो गई। इस प्रकार वैदिक काल में ही उस समाज का सूत्रपात हो जाता है, जो भारत मे अभी अभी तक मौजूद था, और कही कही अभी तक मौजूद है।

नवीन चीन के खेती सम्बन्धी कानून सुधार का एक विश्लेषण

श्री बी० एन० गांगुली

इस लेख में, चीन के जनवादी प्रजातत्र के खेत सम्बन्धी कानून मे जो नये सुधार किये गये हैं इसके विश्लेषण की चेष्टा की गयी है। इसे न समझने या कम समझने के कारण लोगो के मन में नवीन चीन के सम्बन्ध में अजीब धारणायें उत्पन्न हुई हैं। सबसे पहले यह बता देने की आवश्यकता है कि नवीन चीन में इस सम्बन्ध में जो सुधार किया गया है, उसका अर्थ यह नही है कि जमीन की मिल्कियत समाप्त कर दी गयी है, बल्कि जमीन पर जमीन्दार वर्ग के द्वारा सामन्तवादी शोषण का अन्त किया गया है। नये सुधार से केवल उस बेकार वर्ग का अन्त किया गया है, जो जमीन के मालिक होने के कारण हाथ पर हाथ धर कर बैठा रहता था, और शोषण पर पुष्ट होता था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हमला जमीन के सब मालिको पर नही किया गया है, बल्कि उस वर्ग पर किया गया है, जो कुछ काम नही करता था। जो लोग अपनी जमीन के मालिक होने के कारण उसे जोतते-बोते थे, उन पर किसी प्रकार आच आने देना इस सुधार का ध्येय नही है। बात यह है कि चीन के भूमि-सुधारको ने इस बात पर ध्यान रखा है कि कही सामन्तवाद की जड उखडने के साथ-साथ देहाती उद्योग-धधो का नाश न हो जाय, इसलिए एक को उखाड फेंकने के साथ-ही-साथ उन्होने राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग के उस हिस्से की रक्षा की है, जो आर्थिक व्यवस्था मे एक बहुत आवश्यक हिस्सा अदा कर रहे थे। इसलिए यह अध्यादेश दिया गया है कि उद्योग और व्यापार पर किसी प्रकार हस्तक्षेप न किया जाय।

भारत की तरह चीन मे उच्च किसान वर्ग बहुत जटिल सम्बन्ध रखते हैं। उदाहरणस्वरुप एक उच्च किसान एक दृष्टि से तो लगान लेनेवाला जमीन्दार हो सकता है, और दूसरी दृष्टि मे अपने खेत पर खेती करनेवाला मामूली किसान, और तीसरी दृष्टि से मजदूरी पर दूसरे के खेत मे फसल की कटाई करनेवाला मजदूर हो सकता है। ऐसी जटिल अवस्था में भूमि सुधार का कार्य केवल इतना ही रह जाता है कि एक किसान किस हद तक शोषक है यानी उसकी आमदनी का कितना हिस्सा शोषण से आता है, यह देखा जाय, और फिर यह तय किया जाय कि किस हद तक समाज के हित मे उसके शोषण को तरह दिया जा सकता है।

इसलिए केवल लट्ठमार तरीके से यह निर्णय दे देने पर काम नही चलता था कि सामन्तवादी शोषणयुक्त मिल्कियत का अन्त कर दिया जाय। यदि बिना किसी और विचार के इस सूत्र को कार्यान्वित किया जाता तो सारी जमीन को जब्त कर उसका राष्ट्रीकरण करना या जब्त की हुई जमीन को छोटे किसान मालिको में बाटना पडता। इस सम्बन्ध मे कोई गड़बडी न हो, इसलिए यह साफ कर दिया गया था कि जमीन पर किसान की मिल्कियत की पद्धति का परिवर्त्तन किया जायगा। कही इतने से भी कुछ अस्पष्टता न रह जाय, इसलिए आर्टिकिल २० में यह साफ कह दिया गया था कि "भूमि-सुधार कार्यक्रम की परिसमाप्ति के बाद जनवादी सरकार लोगो को पट्टे देगी, और जो लोग इस प्रकार जमीन के मालिक बनेंगे, उन्हें अपनी जमीन की व्यवस्था करने, बेचने, खरीदने और स्वतन्त्रतापूर्वक लगान पर उठाने के अधिकार स्वीकृत होगें।"

नवीन चीन में जमीन पर वैयक्तिक मिल्कियत की स्वीकृति किसी सूक्ष्म सिद्धान्त के आधार पर नही हुई है, बल्कि ऐसा केवल उपयोग की दृष्टि से किया गया है। आर्टिकल १ मे यह साफ कर दिया गया है कि इस स्वीकृति मे इन लाभो की आशा की जाती है (क) देहाती उत्पादन सम्बन्धी शक्तिया मुक्त हो जायगी। (ख) खेती के उत्पादन मे वृद्धि होगी, और इस प्रकार (ग) नवीन चीन के औद्योगीकरण के लिए रास्ता साफ हो जायगा।

कहना न होगा कि चीन के नेताओ ने इस सम्बन्ध में बड़े साहस से काम लिया है। जैसा कि लिउ सावची का कहना है कि चीन के औद्योगीकरण को विशाल देशी देहाती बाजारो पर निर्भर करना पडेगा, दूसरे शब्दो में इसका अर्थ यह है कि जब बढे हुए उत्पादन के कारण देहातो में लोगो की क्रयशक्ति मे वृद्धि होगी, तभी औद्योगीकरण का कार्यक्रम ठीक-ठीक चलेगा। इसीलिये गावो की उत्पादन शक्ति की मुक्ति पर जोर है, यानी उनके मार्ग मे जितनी बाधायें रही है, उनके दूरीकरण पर जोर है।

किन जमीनो को जब्त कर लिया गया, इनका स्पष्टीकरण आवश्यक है। केवल वह जमीन जब्त की गयी—जमीन्दारो की वे जमीनें जिन पर वह केवल जमीन्दार के रूप मे काबिज था, वे जमीनें जो पूर्व पुरुषो के मन्दिरो (यहा यह बता दिया जाय कि चीन मे पूर्व पुरुषो की पूजा होती

है, और उनके मन्दिरो के साथ सम्पत्ति लगी होती है), देव मन्दिरों, मठो, गिरजो, स्कूलो, अस्पतालो तथा अन्य सार्वजनिक ट्रस्टो की जमीनें। मसजिदो के साथ लगी हुई जमीनें जब्त नही की गई, धार्मिक सस्थाओ को इस जब्ती से जो वित्तीय हानि हुई है, उसे सरकार ने अपने ऊपर लेकर सार्वजनिक कोष से आवश्यकता के अनुसार उसकी पूर्त्ति की है। उन जमीनो की भी जब्ती नही की गई है, जिनपर व्यापारियो अथवा उद्योग-पतियो का अधिकार है, साथ ही उनके अधिकार के किसानो के घर भी जब्त नही किये गये हैं। ऐसे सब जमीन्दारो की जमीनें जब्त कर ली गयी, जो दूसरे काम करते हैं। बशर्ते कि उस इलाके में जितनी जमीन प्रत्येक व्यक्ति को मिल सकती है, उसकी दुगुनी से अधिक उसके पास है। अर्द्ध जमीन्दार किस्म के मोटे किसानो द्वारा लगान पर उठायी हुई जमीनें भी किसी–किसी हालत में जब्त कर ली गई है।

यह न समझा जाय कि केवल जमीनें ही जब्त की गई, कुछ हालतो मे खेती में काम आनेवाले पशु, खेती के औजार, फालतू अनाज और जमीन्दारो के फालतू देहाती घर भी जब्त करने की व्यवस्था की गई। यदि इस प्रकार जब्ती से उत्पादन के आवश्यक साधन प्राप्त न किये जाय, तो उत्पादन चालू ही नही रह सकता। फिर भी जमीन्दारो की फालतू चीजो की जब्ती मे नर्मी से काम लिया गया है, क्योकि, नही तो अराजकता फैलने का डर था, साथ ही इस बात का भी ख्याल रखा गया है कि यदि जमीन्दार ने उत्पादन में पूजी लगा रखी है, तो उससे अन्ततोगत्वा देश को लाभ ही है।

नये सुधार के अनुसार बटाई की इस प्रकार की खेती, जिसमे एक काम करता है और दूसरा खेत का मालिक होने के नाते उसका आधा हिस्सा लेता है, स्वीकृत नही है, फिर भी खेती मे लगनेवाले खेत के मालिक की मर्यादा स्वीकृत है। आर्टिकल ५ और ६ मे ऐसे लोगो को गिनाया गया है, जो खेती न करते हुए भी खेती की उपज के हकदार के रूप में स्वीकृत हैं। क्रान्तिकारी सैनिक, शहीदो के परिवार, मजदूर, स्टाफ के सदस्य, पेशेवर मजदूर, फेरीवाले तथा दूसरे कई लोगो की जमीन जब्त नही की गयी बशर्ते कि उस इलाके मे भूमि के पुर्नविभाजन के बाद प्रत्येक व्यक्ति को जितनी जमीन मिल सकती है, उससे दुगुनी से अधिक इनके पास न हो। पर इस सम्बन्ध मे भी काफी छूटे रखी गई हैं, उदाहरणस्वरूप अकेले रहनेवाले वृद्ध तथा वृद्धाये, अनाथ बालक तथा बालिकाये, अपाहिज, असहाय विधवा या विधुर, जो अपनी जमीन पर जीविका के लिये निर्भर हैं, वे दुगनी जमीनवाली हद से बरी हैं। यदि किसी ने अपने परिश्रम के धन से जमीन खरीदी है, तो वह भी दुगुनी जमीनवाली हद से बरी है।

लिउ शाओची ने इस प्रकार की रियायतो की इस तरह व्याख्या की है कि इन नियमो के अनुसार जितनी जमीन साधारण नियम से बरी हो जाती है, वह कुल जमीन की ३ से ५ फी सदी से अधिक नही ठहरती। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया है कि जो लोग प्रथम श्रेणी मे आते है, उनके साथ रियायत रखना जरूरी है। इनके अलावा जिन लोगो की श्रम-शक्ति नष्ट हो गयी या जो बेकार या अपाहिज हो चुके थे, उनके साथ भी रियायत रखना इस कारण जरूरी है कि अभी तक सामाजिक बीमावाला प्रबन्ध चालू नहीं किया जा सकता

यह सारी बात तो समझ में आती है, पर आर्टिकल ६ में यह जो रखा गया है कि "मोटे किसानो के पास जिनकी ऐसी जमीन हैं जिस पर वे खुद खेती करते है या मजदूरो से खेती करवाते हैं, उस जमीन की और साथ ही दूसरी सम्पत्तियो की रक्षा की जायगी," यह कम समझ में आती है। बात यह है कि मार्क्सवादी विचारो के अनुसार मजदूरो को रख कर काम करवाना शोषण के अन्तर्गत है। यह न समझा जाय कि चीन के नेता इस विचार से बिल्कुल हट गये हैं, उन्होने जो रियायत की है, वह बहुत थोडी है। यह भी नियम रखा गया है कि एक बार धनी किसानो और जमीन्दारो के माल की जब्ती का कार्यक्रम पूरा हो जाय, तो उसके बाद फिर उनके साथ छेड-छाड नही की जायगी। इस प्रकार मोटे किसानो की जो रक्षा चीन की आर्थिक पद्धति में की गयी है, वह एक नयी बात है, और साम्यवादी नीति में एक सुधार के रूप में है।

नये कानून मे इस बात की व्यवस्था है कि खेती का एक हिस्सा, जहा तक मिल्कियत और व्यवस्था का सम्बन्ध है, राष्ट्रीकृत होगा। यह नियम रखा गया है कि जहा राष्ट्रीकरण के बिना खेती अच्छी तरह नही हो सकेगी, वही राष्ट्रीकरण के शस्त्र को काम में लाया जायगा। यह स्मरण रहे कि आर्टिकल १६ के अनुसार जब्तशुदा और सरकार द्वारा सामयिक रूप से अधिकृत जगल, मछलीवाले तालाब, चाय बगान, टुग तेल उत्पादक स्थान, शहतूत के खेत, बास के जगल, फल के बगान, सरकडेवाली जमीन तथा परती जमीन और दूसरी विभाजन योग्य जमीन साधारण जमीन के रूप में समझी जायगी, और इन में से सभी उपर्युक्त अनुपात पर विभाजित किये जायेंगे। हा, अगर यह खतरा हो कि इस प्रकार इन चीजो को बाट देने से उत्पादन मे कमी होगी, तो इन्हें स्थानीय जनवादी सरकार की देख-रेख में ही काम में लाया जायगा। जिन तालाबो और बाधो आदि से सिचाई होती है, वह भी सरकार की सम्पत्ति मानी गई है। बडे जगल, बहुत बडे जलाशय, विशाल परती जमीन, पहाडो के किनारे, जिन पर अभी खेती नही हुई है, नमक की बडी खानें, दूसरी खाने, झीले, दलदल, नदिया और बन्दरगाह सरकारी सम्पत्ति है। हा, जिन क्षेत्रो में यह स्वीकृत हुआ है कि निजी पूजी और व्यवस्था के बिना इनका उपयोग ही न होता, वहा पर निजी पूजी को सरकारी देखरेख में काम करने की आज्ञा दी गयी है।

बडे कुज, बागान, चारागाह, शहतूत के खेत, बीज प्रयोग क्षेत्र, प्रयोगात्मक फार्म अब सरकार की सम्पत्ति हैं, भले ही वे पहले बडे जमीन्दारो की सम्पत्ति रही हो। अच्छे दृश्यवाले सुन्दर स्थान, ऐतिहासिक अवशेष, ऐतिहासिक दिलचस्पी के स्थान, जमीन्दारो की ऐसी फालतू देहाती हवेलिया, जो किसानो के काम में नही आ सकती और केवल सार्वजनिक काम में ही आ सकती है, प्रवासी चीनियो की जमीन और मकान जमीन्दारो या सार्वजनिक सस्थाओ के अधीन की रेतीली या नीची जमीन, रेल और सडक के पडोस की जमीन, नदी के तट, समुद्र को रोकने के लिये बनाया गया बाध, हवाई जहाज के अड्डो की जमीन, जहाज घाट और किलेबन्दीवाली जमीन, वे भूमिखड जिनपर एक निर्दिष्ट तारीख तक रेल, सडक, नहर, हवाई अड्डो का निर्माण निश्चित हो चुका है, ये सब सरकारी सम्पत्ति मान लिये गये हैं।

नये कानून के अनुसार जमीन वाटने के कुछ आधारभूत नियम वनाये गये हैं। किसान सघो को जमीन ले लेने तथा वाटने के वाहन के रूप में स्वीकार किया गया है। नये सुवारो को काम में लाने के लिए एक इकाई वनाकर फिर कार्य चालू किया गया है। इम सस्था को लमियाग का नाम दिया गया है। इस वात की गुजाइश रखी गयी है कि प्रत्येक स्थान पर वहा की स्थानीय आवश्यकता के अनुसार जमीन का विभाजन किया जाय। इस प्रकार चीनी नेताओ ने चीन को अन्ध जन-क्रान्ति के हाथो में नही छोडा है, और इस प्रकार चीन रूस की तरह व्यर्थ के सम्पत्ति-नाश, आर्थिक अराजकता मे वच गया है।

जव हम चीन में अनुभूत भूमि-विभाजन के सिद्धान्तो की जाच करते है, तो हमें यह पता लगता है कि वहा अन्ध समानतावाद का त्याग कर वास्तविक ढग से सव समस्याओ को सुलझाया गया है। इस वात को याद रखा गया है कि जमीन के पुनर्विभाजन या जमीन्दारी की जव्ती का अर्थ जमीन्दार से या किसी से वदला लेना नही है। जिनके पास थोडी जमीन है, उन्हें भी पुनर्विभाजन के ममय जमीन देने की व्यवस्था की गयी है, भले ही इस व्यवस्था के कारण उसके पास दूसरो से अधिक जमीन आ जाती हो। यद्यपि इस प्रकार अपवादात्मक वहुत मे कार्य किये गये, फिर भी जिनके पास जमीन नही थी या जिनके पास नाम मात्र जमीन थी, उनका विशेप ख्याल रखा गया है।

आर्टिकल ३१ के अनुसार करीव-करीव यह कह दिया गया है कि चीन में वर्ग रहेगें। किसान सघो को यह मनमाना अधिकार नही दिया गया कि वे चाहे जिसकी जमीन जव्त करे या चाहें जिमको जमीन दें। उनके विरुद्ध अपील हो सकती है। नये कानून के अनुसार वे ही लोग जमीन्दार है, जो सामन्तवादी शोपण के दोपी है। पर यदि कोई जमीन्दार कथित शोपण के वावजूद मध्यम दर्जे के किसानो मे वुरी हालत मे है, तो उसे जमीन्दार मानने का हठ नही किया गया। जो लोग लगान पर जमीन प्राप्त कर फिर मजदूरो की कमाई पर जीते हैं, उन्हे उप-जमीन्दार माना गया है। यह तो पहले ही वताया गया कि लाल सेना के लोग, शहीदो के लोग, मजदूर इत्यादि एक हद तक जमीन्दार नही माने जाते। यदि किमी व्यक्ति को कई तरीको से आमदनी होती है, तो उसका वर्ग उसकी प्रधान आमदनी से कूतने की व्यवस्था है। मच तो यह है कि जमीन्दार और मोटे किसान मे फर्क कही-कही पर मालूम ही नही होता। फिर भी नये कानून मे मोटे किसानो की आर्थिक पद्धति की रक्षा की व्यवस्था किये जाने से इनके पृथकत्व का स्पष्टीकरण जरूरी हो गया, और इम मम्वन्ध मे कसौटी तैयार की गई। यदि कोई व्यक्ति जितनी जमीन स्वय जोतता है, उममे अधिक लगान पर उठाता है, तो वह जहा तक फालतू जमीन है, जमीन्दार ममझा जाता है। यदि कोई किसान परिवार खुद काश्त मे तिगुनी या उममे अधिक जमीन लगान पर उठाता है, तो वह परिवार जमीन्दार-परिवार ममझा जाता है, साथ ही जो लोग जमीन्दार घराने मे उत्पन्न होकर भी स्वय मेहनत-मजदूरी करने पर मजवूर है, वे जमीन्दार नही ममझे जाते। जो कुछ वताया गया, उसने यह स्पप्ट है कि सिद्धान्त की दन्त कटाकटी मे न पडकर देश की सुविधाओ पर ध्यान रखकर कार्य करने की परिपाटी विकसित की गयी है। तभी मध्यम किसान केवल खुदकाश्त की जमीन का मालिक न होकर एक हद तक लगान पर जमीन दे सकता है, और कर्ज ले सकता है और दे सकता है। यह माना गया है कि एक ही व्यक्ति एक क्षेत्र में शोपक और दूसरे क्षेत्र मे प्राय उसी हद तक शोपित होने के कारण उसका शोपण शोपितत्व से कट जाता है। रूस की तरह चीन में मोटे किसान कुलक नही माने गये है। और उसके अधिकार नष्ट नही किये गये।

उन लोगो को गरीव किसान माना गया है, जिनके पास अपर्याप्त जमीन और औजार हैं, जिसे लगान पर जमीन और कर्ज से धन प्राप्त करना पडता है, और जो इस प्रकार वहुत मृदु शोपण का शिकार है।

खेतिहर मजदूर की परिभापा मे भी कुछ नवीनता कर दी गयी है, जिनके पास जमीन या औजार विल्कुल नही है, और जो दूसरो के खेत में काम करते है, वे खेतिहर मजदूर तो है ही, साथ ही वे भी खेतिहर मजदूर माने गये है, जिनके पास थोडी जमीन या थोडे औजार है।

सच वात तो यह है कि व्यवहार मे कौन क्या है, इस वात की परिभापा वहुत कुछ उस इलाके की परिस्थिति पर निर्भर रखा गया है। चीनियो ने श्रम और पूरक श्रम में फर्क किया है। एक का अर्थ आवश्यक श्रम है, और दूसरे का अर्थ अनावश्यक श्रम है। नियम यह रखा गया है कि यदि एक परिवार में एक व्यक्ति माल मे चार महीने आवश्यक श्रम मे लगा रहता है, तो यह माना जाता है कि वह परिवार श्रम मे लगा है, पर यदि परिवार पन्द्रह से अधिक व्यक्तियो का है, तो कम-से-कम तीन व्यक्तियो का साल में चार महीने आवश्यक श्रम मे लगा रहना जरूरी है। यह इसी आधार पर तय किया जाता है कि कौन क्या करता है। जो लोग जोताई-वुवाई,-कटाई में भाग लेते है, वे श्रम करनेवाले माने जाते है जबकि निराई गोडाई, तरकारी उत्पादन, पशुओ की देखरेख आदि कार्य करनेवाले लोग पूरक श्रम करनेवाले माने जाते है। यह न समझा जाय कि सभी क्षेत्रो में कट्टरता के साथ इस परिभापा का पालन किया जाता है, कई वार अपवादात्मक परिस्थितियो में कडाई के साथ परिभापा का अनुसरण नही किया जाता है।

मोटे किसान और मध्यम किसान में भी फर्क करने के लिए एक नियम यह रखा गया है कि यदि किमी किसान की आय की पचीस फी सदी से अधिक रकम शोपण से प्राप्त होती हे, तो वह मोटा या धनी किसान माना जाता है, नही तो वह मध्यम किसान माना जाता है। इसी प्रकार और कई छोटे-मोटे नियम रखे गये है, परन्तु सव नियमो की तरह मौके के अनुसार ढीलाई वरती जाती है।

अक्सर वर्ग निर्णय मे राजनीति का भी ख्याल रखा जाता है। यदि परिभापा के अनुसार धनी किसान ठहरनेवाले किसी व्यक्ति के सम्वन्ध मे यह पता लगता है कि उसने अपराधी ढग से क्रान्ति का विरोध किया था, तो उसकी सम्पत्ति जव्त कर ली जाती है, पर उसके परिवार के सव सदस्यो की सम्पत्ति जव्त नही होती।

चीन में इन वर्गीकरण के सिलसिले मे एक अजीव वर्ग उन लोगो का माना गया है, जो अजीव-गरीव पेशेवाले लोग कहलाते है, और किसी तरह पेट पालते है।

नये वर्गीकरण में वुद्धिजीवियो को पृथक वर्ग नही माना गया है। उन्हें "स्टाफ सदस्य" माना जाता है, पर वे मजदूर वर्ग के अश के रूप में समझे जाते हैं। जो लोग अनुचित उपायो से जीविका चलाते है, वे "आवारे तथा आलसी" वर्ग में रखे गये है। अजीव-गरीव पेशेवाले इस कोटि मे नही आते। पुरोहित और पादरी अनुचित उपायो से जीविका चलानेवाले वर्ग में आ जाते, पर उनके लिए एक अलग वर्ग की सृष्टि की है, जिसका नाम धार्मिक पेशेदार वर्ग वनाया गया है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया, उससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि क्रान्ति के कारण वहुत से लोगो का वर्ग परिवर्त्तन हुआ है। सभी यह चाहते हैं कि उन्हें किसान या मजदूर या कुछ नही तो अजीव-गरीव पेशेवालो मे रखा गाय, कम-से-कम उन्हें आवारो में तो न रखा जाय। मजदूर वर्ग मे रखे जाने के लिए यह जरूरी है कि कोई व्यक्ति कम-से-कम एक साल के लिये मुख्य रूप से श्रम करता रहा हो। यदि कोई व्यक्ति सामन्त या पूजीवादी वर्ग से है, पर इस गुण की कसौटी पर पूरा उतरता है, तो उसकी उत्पत्ति भुला दी जाती है। यदि किसी व्यक्ति की हैसियत मे विवाह के कारण परिवर्तन हुआ है, तो भी उससे कुछ फर्क नही आता वशर्ते कि वह इस कसौटी पर खरा उतर जाय।

स्वतत्र दस्तकारो को भी मजदूरो की श्रेणी में रखा गया है। यदि दस्तकार कुछ हद तक किराये के मजदूरो पर निर्भर करता है, तो भी वह मजदूर ही रहता है। पर एक हद के वाद उसका वर्गीकरण मध्यम किसान के अनुरूप माना जाता है। कुछ लोग दस्तकार पूजीपति भी माने गये हैं, ये लोग मुख्यत दूसरो के श्रम पर निर्भर रहते है, और मुनाफे के लिये काम करते हैं। फिर भी इनको प्रोत्साहन ही दिया जाता है। इसी प्रकार मोटे व्यापारी तथा फेरीवालो को भी प्रोत्साहन दिया जाता है, यद्यपि वे उत्पादक नही है, और मुनाफे के लिए काम करते हैं। मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार मुनाफा शोषण मात्र है। फिर भी दस्तकारो पूजीपतियो, मोटे व्यापारियो और फेरीवालो के विरुद्ध चीनी प्रशासन का विरोव नही है।

इसी प्रकार एक नया दिलचस्प वर्ग वह है, जिसे चीनी साम्यवादी रोशनीयापता भद्र वर्ग कहते है। इस वर्ग मे वे देशभक्त जमीन्दार आ जाते है, जिन्होने निश्चयात्मक रूप से जनवादी लोकतत्र को लाभ पहुचाया है। इन्हें आर्थिक और राजनीतिक मर्यादा दी गयी है, यद्यपि नियमानसार उनकी जमीन और सम्पत्ति जब्त कर ली गई है। यदि कोई भूतपूर्व जमीन्दार पाच साल तक श्रम मे सलग्न रहे और नेकचलनी का परिचय दे, तो वह मजदूर वर्ग मे स्वीकृत हो सकता है। धनी किसानो के वर्ग परिवर्तन में तीन साल ही लगते है।

यह पूछा जा सकता है कि वर्गीकरण के सम्बन्ध मे इस वाल की [illegible] क्या जरूरत थी। इसका उत्तर देना सरल नहीं है, क्योंकि जिस समाज [illegible] ने अपने सामने वर्गहीन समाज स्थापित करने का लक्ष्य [illegible] है वह इस प्रकार से छाट कर वर्ग विभाजन क्यो कर रहा है। इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि परिवर्त्तन काल मे यह जरूरी है, क्योंकि [illegible] लोगो को समग्र वर्ग परिवर्तन की प्रक्रिया के द्वारा वर्गहीन समाज की ओर ले जाना है। सैकडो नियम और उनके सम्वन्ध में वरते जानेवाले अपवादो का उद्देश्य यह है कि जहा तक हो सके, उत्पादन की प्रक्रिया को हानि पहुचाये विना, यहा तक कि उसमें वृद्धि करते हुए वर्गहीन समाज की ओर कदम वढाया जाय। यद्यपि जैसा कि वताया गया, अनेक क्षेत्रो में शोषण को तरह दी जा रही है, फिर भी न तो इस वात को किसी भी समय भुलाया जा रहा है कि यह शोषण है, और न इस वात को ही भुलाया जा रहा है कि इसे दूर कर के ही दम लेना है। इस प्रकार जो वात आपात दृष्टि में शोषण को तरह देने के रूप में ज्ञात होती है, वह केवल एक सामयिक पैतरें के रूप में स्पष्ट हो जाती है, और नये वर्गीकरण से चीनी वस्तुवाद ज्ञात होता है।

थोडे में यह वताया जा सकता है कि चीन के भूमि सुधार का क्या अर्थ है। एक तो सामन्तवादी रग-ढग लुप्त कर दिया गया है और सामन्तवादी मिल्कियत समाप्त हो गई है, और उसके साथ-साथ प्राचीन चीन में प्रचलित वेकार, तरह-तरह की लूटें समाप्त हो गयी हैं। अर्द्ध गुलामी अव भूतकाल की बात हो चुकी है। अकेले यही एक बहुत वडी बात है। स्वभाविक रूप से किसानो पर बोझ वहुत कम हो गया है। जमीन्दारी प्राचीन चीन में कितनी वडी बुराई थी, यह इन आकडो से ज्ञात होगा —

वर्ग	कुल परिवारोका प्रतिशत	कुल जमीन का प्रतिशत
जमीन्दार	३	२६
धनी किसान	७	२७
मध्यम किसान	२२	२५
गरीव किसान	६८	२२

तो इस प्रकार ६८ प्रतिशत गरीव परिवारो के पास केवल २२ प्रतिशत जमीन थी। स्मरण रहे कि यह आकडा खास चीन का है उत्तरी मचूरिया मे तो हालत इससे भी गई-गुजरी है। वहा गरीव किसानो के ४३ फी सदी परिवारो के पास कुल ९ फी सदी जमीन थी। केवल इन आकडो से ही सारी परिस्थिति साफ नही होती, क्योकि वेगार और तरह-तरह की ज्यादतियो की वात इन आकडो से ज्ञात नही होती। एक समय, साम्यवादी जमीन्दार और धनी किसान को एक ही वर्ग में गिनते थे, परा धीरे-धीरे उनकी राय वदल गयी और यह ठीक ही था क्योकि चीन में कथित धनी किसान, रूस के कुलको, यहा तक कि मध्य किसानो की तरह, धनी नही थे। इस सम्वन्ध मे यह वात नही भूलनी चाहिये कि चीन मे यह निश्चित नीति रखी गयी कि खेती की प्रगति तथा औद्योगीकरण के आधार के रूप मे धनी किसानवाली पद्धति की रक्षा करनी है।

दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो चीन में भूमि सुधार का साराश केवल इतना ही रहा कि सामन्तवादी वुरे रिवाजो को दूर कर किसान पर से आर्थिक वोझ हटा लिया जाय। वटाई करीव-करीव वन्द कर दी गयी, और इस प्रकार वहुत से लोग वैठकर ऐश उडाते थे, उसे वन्द कर दिया गया। खेतिहर मजदूरो को जब्तशुदा जमीन और औजार देकर

ऐसी परिस्थिति पैदा की गई है, जिससे खेतिहर वर्ग में सबसे परिश्रमी लोगो को देश की उन्नति मे हाथ बटाने का मौका मिले। लगान और सब तरह के टैक्स घटाये गये हैं। यह एक बहुत बडी उन्नति है, क्योकि प्राचीन चीन में इनका बोझ सम्पूर्ण रूप से घातक था।

यह एक खास बात है कि चीन मे लगान जिन्स में अदा किया जाता है। कई अन्य देहाती टैक्स भी ऐसे हैं, जो जिन्स में अदा किये जाते हैं। इस प्रकार से चीन में एक शब्द ही बन गया है—सार्वजनिक अनाज, जिसका अर्थ देहाती टैक्स हो गया है। उद्देश्य यह था कि नयी व्यवस्था मे उत्पादन जारी ही न रहे, बल्कि उसमें वृद्धि हो। इसलिए जो भी बात की गई, वह इसी दृष्टिकोण से की गई। एक और बहुत ही ध्यान योग्य बात यह है कि ज्यो-ज्यो शहरी इलाको की उत्पादन शक्ति बढती गई, और शहरी आय मे वृद्धि होती गई, त्यो-त्यो उनकी करदान सामर्थ्य मे वृद्धि के साथ-साथ उनपर टैक्स भी बढता गया, और उसी अनुपात से सार्वजनिक अनाज या देहाती टैक्सो में कमी की गई। इस प्रकार शहरी उन्नति से देहातो को राहत मिली।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि १९५० के पहले वहा देहातो से सरकारी कोष को सबसे अधिक कर मिलता था, वहा १९५० में इसे दो दर्जा प्राप्त हो गया। पर यह तो स्पष्ट ही है कि जिस देश में राष्ट्रीय आय की ९० फी सदी खेती से आती है, वहा सार्वजनिक अनाज सरकारी कोष का एक महत्त्वपूर्ण सोता रहने के लिये बाध्य है। १९५० मे भी राष्ट्रीय आय का ३७२ भाग सार्वजनिक अनाज के रूप मे प्राप्त हुआ। १९५१ और १९५२ में शहरी आमदनी मे वृद्धि के साथ यह फी सदीवाला अनुपात घट गया, फिर भी यह ३० फी सदी तो बना ही रहा।

सरकार का यह भी उद्देश्य रहा कि शहरी उपज और देहाती उपज के दामो में एक सुन्दर तारतम्य बना रहे। कही देहातो की आमदनी बढने से शहरी उपज का दाम बढ न जाय, इसलिये देहातो की क्रय-शक्ति सामूहिक रूप से घटाने के लिये विजय बैंक बॉंड बेचे गये। पर यह समस्या बराबर बनी है। फिर भी सब बातो को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अवस्था में अभूतपूर्व उन्नति हुई है।
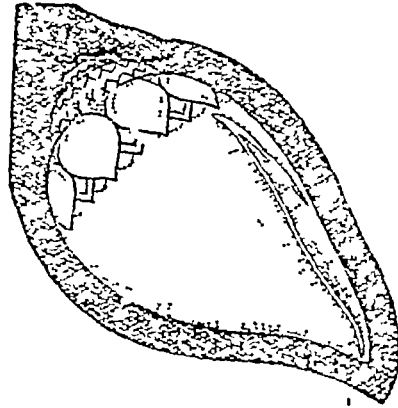
वन्य-संस्कृति की आधारशिला

श्री जगदम्बा शरण राय

मानव समाज जीवन पर्यन्त सम्पदा सचय में अहर्निश व्यस्त रहता है। सम्पदा सचय का मुख्य उद्देश्य है भोग विलास तथा आत्म बड-प्पन का प्रदर्शन और तज्जनित आत्मतोष, आनन्द और शान्ति । जगत में सम्पदाए अनेक प्रकार की है। उनमे वन सम्पदा का भी एक विशिष्ट स्थान है। कुछ दिन पूर्व अज्ञानतावश इस प्राकृतिक वैभव का समुचित आदर नही हो रहा था। पर इधर वैज्ञानिक युग मे इसके महत्त्व पर पुन जोर दिया जा रहा है जो समाज और राष्ट्र के कल्याण का शुभ लक्षण है। हमारे यहा तो ससार के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद में इसकी महिमा पूर्णरूपेण वर्णित है। हमारे महर्षियो को ज्ञात था कि जलदाता मेघ के लिए वन का अस्तित्व कितना आवश्यक था। यही कारण है कि वैदिक साहित्य मे वन शब्द का प्रयोग बादल के अर्थ मे अनेक जगहो मे हुआ है। सस्कृत साहित्य मे वन का एक अर्थ "जल" भी होता है। आधुनिक वैज्ञानिको का भी मत है कि वन की प्रचुरता से जलदो का शुभागमन आसानी से होता है। कारण वनराज मे ऐसी कुछ शक्ति है जिसकी ओर मेघो का स्वाभाविक आकर्षण होता है। जहा-जहा वनो का अभाव होता जा रहा है वहा-वहा वर्षा की कमी दिनोदिन होती जा रही है। वर्षा की कमी हुई कि वन-वृद्धि रुकी। इस प्रकार वन और वनद (जलद) मे अटूट सम्बन्ध जान पडता है। एक की क्षति से दूसरे मे क्षति तथा एक की वृद्धि से दूसरे मे वृद्धि होती है।

इस प्रकार से जलदाता होने के कारण वन का महत्त्व बहुत ही बढ जाता है और हमारे यहा इसी से वनवास की प्रतिष्ठा बहुत अधिक हुई। प्राचीन मनीषियो ने हमारे जीवन मे करने योग्य धर्मों का समावेश पद-पद पर कर दिया है। सम्पूर्ण जीवन को चार भागो मे बाटा, ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और सन्यास। प्रथम भाग रखा गया ज्ञानार्जन के लिये और ज्ञानार्जन का स्थान निश्चित हुआ नगर के वातावरण से दूर वन स्थली मे, [illegible] शान्तिपूर्वक विद्याध्ययन कर सके और साथ-साथ [illegible] अनुभव क्रियात्मक रूप से कर सके। तीसरे आश्रम [illegible] मे ही [illegible] की व्यवस्था की गई थी [illegible] वानप्रस्थ [illegible]। जिस वन को महर्षियो [illegible] महान [illegible] ने तपस्या [illegible] प्राप्त की है। हमारा प्राचीन साहित्य तो वनसम्पदा के महत्त्वो से भरा पडा है। जब किसी शूर वीर महान व्यक्ति की शक्ति में ह्रास हुआ कि वह शक्ति-सचय के लिये वन की ओर दौडता है, महाभारत, रामायण तथा पुराणो में इसके उदाहरण भरे पडे हैं।

जिस प्रकार समुद्र वेष्ठित द्वीप के वासियो की शिक्षा तबतक पूरी नही समझी जाती है जबतक कि उन्हें सामुद्रिक जीवन का अनुभव नही हो जाय, उसी प्रकार हमारे देश के लिए "वनवास" का अनुभव आवश्यक था। यही कारण है कि जब भगवान रामचन्द्र को वनवास के अनुभव बिना ही राजसिहासन देने की व्यवस्था राजा द्वारा हो गई थी तो कूटनीतिज्ञो ने बाधा डाली और रामको एक दो नही, पूरे चौदह वर्षों का वनवास दिलाकर योग्यतम भूपति बनाने का प्रबन्ध कर लिया। पाडवो की यही दशा थी। श्रीकृष्ण भगवान का क्रीडा क्षेत्र, ही नही कार्य क्षेत्र तो वन ही रहा। आप तो वनवासी नाम से भी पुकारे जाते है। गीत गोविन्द की यह पक्ति "धीर समीरे, यमुना तीरे वसति वने वनमाली" कितनी मधुर और सरस है सहृदय व्यक्ति अनुभव कर विचार विभोर हो जाते है।

वन में ही शिक्षा-दीक्षा की पूरी व्यवस्था होने के कारण वैदिक साहित्य के प्रधान भाग का नामकरण ही "आरण्यक" पड गया था जिसकी उत्पत्ति "अरण्य" (वन) शब्द से हुई है। उस समय यज्ञ का भी महत्त्व अत्यधिक था। प्रत्येक महान व्यक्ति कोई-न-कोई यज्ञ किया करते थे। यज्ञ करने का मुख्य उद्देश्य था जल प्राप्ति। विश्वास था कि यज्ञ से वर्षा होती है और वर्षा से घास-पात, अन्न-फल होते है और अन्न-फल द्वारा प्राणियो के प्राणो की रक्षा होती है। शिक्षा विशारदो के हृदय में गीता का निम्नलिखित श्लोक बारार गूजता रहता था और गुरुगण अपने चेलो द्वारा वन मे यज्ञ करवाने का आयोजन बिना अपना कार्य अधूरा समझते थे।

> अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसभ व ।
> यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ कर्मसमुद्भव ॥

अन्न से सम्पूर्ण प्राणी होते है और अन्न की उत्पत्ति यज्ञ से होती है और यज्ञ से वृष्टि होती है और यज्ञ कर्मो से उत्पन्न होता है।

कविकुल गुरु कालिदास ने अपने अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक मे वन सम्पदा की महत्ता को उच्चतम शिखर पर बिठाने का सफल प्रयास

किया है। वनलता के समक्ष कृत्रिम उद्यानलतिका निष्प्रभ हो जाती है। राजा दुष्यन्त की दृष्टि मे भी वल्कल भूपिता वन पालिता शकुन्तला स्वर्ण प्रासाद की अनुपम रमणियो से श्रेष्ठतर जचती है। पुन वीर प्रसवा शकुन्तला का पचवर्षीय वीर पुत्र भरत वन मे सिंह सावक के साथ खेलता पाया जाता है। उसी प्रात स्मरणीय पुरुष पु गव राष्ट्रपति भरत के नाम पर इस महान देश का नाम "भारत" पडा है। धन्य है हमारी वन सम्पदा। और धन्य है वन सम्पदा को चित्रित करनेवाली कालिदास की अनोखी लेखनी। हमारे साहित्य मे वन सम्पदा का वर्णन अनेक स्थलो पर सूक्ष्म रीति से वर्णित है। कोई समय था जब कवि की कविता तब तक पूर्ण नही समझी जाती थी जबतक वन-वैभव की चर्चा उनकी कविताओ में नही आती। जब नगर वास का प्रचार अत्यधिक बढा तब वन अपना रूप उपवन वृहत्तवाटिका धारण कर वैभवशाली व्यक्तियो का विहार-स्थल बन गया। हिन्दी के कवि सम्राट, कवि रवि तुलसीदास जी ने तो रामायण का एक काड ही "अारण्य" के नाम से रच दिया और वन की प्रशसा करते-करते कभी अघाते नही थे। आपकी अधोलिखित चौपाइया इस सम्बन्ध में पठनीय और मननीय हैं।

बेलि विटप सब सफल सफूला। बोलत खग-मृग अलि अनुकूला।
तेहि अवसर वन अधिक उछाहू। त्रिविध समीर सुखद सब काहू।

वन सम्पदा की उपादेयता अकथनीय है। अकथनीय इसलिए है कि जिस सम्पदा को हम एक समय सम्पदा नही समझते, वही कालक्रम से अमूल्य सम्पदा सिद्ध हो जाती है। आज विज्ञान युग में तो वन सम्पदा का महत्त्व पद-पद पर अनुभव होने लगा है। आज तक वन की जिन साधारण वस्तुओ की हम उपेक्षा कर रहे थे वही आज विज्ञान युग मे बहुमूल्य प्रमाणित हो रही है। जिस जगली घास-पात को हम नाचीज समझ नष्ट होने देते थे आज उसी घासपात से हम सुन्दर-से-सुन्दर कागज प्रस्तुत कर सकते हैं और कल-कारखाने खोलकर अपने राज्य को वैभवशाली बना सकते हैं।

हमारे विहार में जितने वन भाग की आवश्यकता है, कम है। कहा जाता है जलवायु के विचार से तथा आर्थिक दृष्टिकोण से किसी देश की भूमिका पाचवा भाग जगल होना चाहिये। विहार मे लगभग सातवा भाग जगल है। १९४६ ई० के पहले तक लगभग ९ हजार वर्गमील वन जमीन्दारो के नियन्त्रण में था। उसके प्रबन्ध मे हस्तक्षेप करने का अधिकार सरकार को नही था। राष्ट्रीय दृष्टि मे वनो का महत्त्व नही जानने के कारण जमीन्दार वन का विनाश कर रहे थे और अपनी आय के ख्याल से जगल काट-काट कर जलावन तथा अन्य कार्य के लिये लकडिया बेच रहे थे पर उनके मन में कभी भी वृक्ष रोपने का विचार तक नही उठा। काग्रेस मन्त्रिमडल १९४६ ई० में ज्योही बना कि मन्त्रिमडल का ध्यान इधर गया। वनोन्नति सुधार कार्य में माननीय कृष्णवल्लभ सहाय जी का प्रबल हाथ रहा। आपने देखा कि भारतीय वन विधि (कानून) सरकार के लिये उतना सहायक नही हो रही है। अत झटपट एक विहार अराजकीय वन कानून बनाया गया जिसमें ९ हजार वर्गमील अराजकीय वन राजकीय अधिकार मे आ गए। साथ-ही सरायकेला-खरसावा के विहार मे मिल जाने से वहा की ३ वर्गमील वन भूमि विहार राज्य के प्रबन्ध में आ गई। इस प्रकार विहार मे १३ हजार वर्गमील से अधिक वन राजकीय अधिकार मे आ गए हैं।

विहार के वन प्रधानत छोटानागपुर के सभी जिलो तथा सताल परगने मे हैं। मुगेर, सहर्षा, पटना, गया और शाहाबाद जिलो मे भी कुछ जगल है। चम्पारण और पूर्णिया के उत्तरी हिस्सो मे भी कुछ जगल पाया जाता है पर वह नगन्य है।

सरकारी नियन्त्रण मे आने से वनो की रक्षा के लिये अनेक कर्मचारी नियुक्त हुए हैं और नई-नई योजनाए बनी हैं। वन सम्बन्धी वैज्ञानिक शिक्षा देने के लिए वन विद्यालय भी खुले हैं, जहा अनेक विद्यार्थी वन प्रशिक्षण मे प्रशिक्षित होचुके हैं। वन विद्यालय के नजदीक ही पौधा घर भी रखा गया है। जहा वन के उपर्युक्त पौधे तैयार किये जाते हैं तथा समय-समय पर नये-नये वन लगाने का प्रबन्ध हो रहा हैं। ऊची शिक्षा के लिये देहरादून वन महाविद्यालय कुछ छात्र प्रतिवर्ष भेजे जाते हैं।

विहार के वनो मे सावे घास और बास अधिक परिमाण मे मिलते हैं। उनकी उपज भी बहुत अधिक बढाई जा सकती है। विहार मे आसानी से कागज के कारखाने चल सकते हैं। कारखाने के अभाव मे आजकल कागज बनने के लिए सावे घास और बास कलकत्ता भेजे जाते हैं। डालमियानगर के रोहतास पेपर मिल को पलामू विभाग के वनो का ठेका बारह वर्षो के लिए दे दिया गया है। इसी प्रकार एक ठेका इडिया पेपर पल्प कम्पनी को भी दिया गया है। विहार मे कोमल काष्ठो की बहुलता है। सेमल की लकडी मे दियासलाई की शलाकाए, बक्से तथा पार्सल के बक्से बनते हैं। विहार मे दियासलाई की शिल्पशाला नही रहने के कारण ये लकडिया बाहर भेजी जाती हैं। इसके अतिरिक्त विहार के जगलो मे अनेक प्रकार की कोमल लकडिया पाई जाती हैं जिनमे नाना प्रकार के मनमोहक खिलौने और उपयोगी सामान बन सकते हैं। साल या सखुआ तो प्रसिद्ध लकडी है जो स्थायित्व के लिए लोहे से भी लोहा लेता है। भवन निर्माण में इसकी उपयोगिता अकथनीय है। पियाल, गभार, करम आदि भी ऐसी ही उपयोगी लकडी हैं। खैर नामक वृक्ष मे खैरकथ तैयार किया जाता है। आसन, बैर, पलास, कुसुम, खैर आदि वृक्षो पर तसर और लाह के कीडे पाले जाते हैं और बाद मे तसर और लाह प्रस्तुत की जाती है। कहा तक गिनाया जाय वन का एक-एक वृक्ष, एक-एक पौधा, एक-एक डाली नही एक-एक पत्ता प्राणियो के सुख साधन में आ सकता हैं। चाहिये केवल इच्छा, सरक्षण और प्रबन्ध।

वनस्पतियो, औषधियो तथा जडी बूटियो के लिये भारत का वन प्रसिद्ध है। इतिहास प्रसिद्ध है कि लका मे लक्ष्मण जी को मेघनाद के शक्ति वाण द्वारा आहत होने पर वैद्य सुखेन जी को जडी-बूटी धौलागिरि के वन मे ही मगानी पडी थी। आज भी जडी-बूटी के द्वारा प्रतिदिन लाखो व्यक्तियों के दुख दूर हो रहे हैं और उन्हे आत्म-संतोष मिल रहा है। एतदर्थ वनस्पतियों का सरक्षण तथा वैज्ञानिक अनुसधान आवश्यक है। सुना जाता है कि गया के निकट पहाडियो को वनस्पतियो से ढक देने की व्यवस्था सरकार के द्वारा हो रही है।

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। कृषि के लिए पशुधन भी अत्यन्त आवश्यक है। पशुओ के लिए पर्याप्त चारागाह चाहिये और चारागाह के

लिये वन अत्यन्त ही उपयोगी होता है। सरक्षण के आधार पर भेंड-बकरियो द्वारा तथा गाय-बैलो के लिये वन भाग चारागाह का काम देता है। उचित व्यवस्था करने पर चारागाह के क्षेत्र कई गुणा बढ सकते हैं। वैज्ञानिको ने जाच द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि गौओ का गोबर-मूत सर्वोत्तम खाद है । इसके प्रयोग के बाद खेत की उर्वरा शक्ति में कभी किसी प्रकार की शिथिलता नही आती है। परन्तु हमलोग अधिकतर गोबर को जलावन के रूप में उपयोग करते हैं। यदि वन की लकडियो को हम जलावन के काम मे लगाने का प्रबन्ध कर दे तो गोबर का उपयोग खाद मे हो जा सकता है।

हमारे यहा प्राचीन काल मे वन सम्पदा का महत्त्व अत्यन्त अधिक था। विद्याध्ययन करना हो तो वन जाओ, शक्ति सचय करना हो तो वन जाओ, वैराग्य धारण करना हो तो वन जाओ, समाज के कल्याण की कामना हो तो पहले वन जाकर कल्याण कार्य मे प्रशिक्षित हो आओ, वैद्य होकर देश कल्याण करना हो तो वन सम्पत्तियो के अध्ययन के लिये वन जाओ।

देश सेवा व्रत के लिये भी घर द्वार छोडकर वनवास का अनुभव करना जरूरी था। राजा तथा वैभवशाली व्यक्ति गण जलवायु परिवर्त्तन तथा मृगया के लिये नियमपूर्वक वनो की शरण मे जाया करते थे। विद्वानो और महर्षियो की आवास भूमि आज की तरह नगर नही वन प्रदेश ही था। बडे-बडे राजा तथा राजनीतिज्ञ शिक्षा और उपदेश के लिए वन विहार ही किया करते थे। पराजित और निष्कासित पराक्रमी पुरुषो का भी आश्रय स्थान वन ही था। हाल तक अरणा और बाघ के शिकार के लिये भागलपुर जिले का बनैली राज घराना विख्यात था। भूतपूर्व बनैली के भूपतियो को शिकार का अनुपम प्रेम था। प्रतिवर्ष वे हाथी पर चढ कर शिकार करने जाया करते थे।

वन जीवन के वहिष्कार से तथा नागरिक जीवन में लिप्त रहने के कारण जन सख्या दिन दुनी रात चौगुनी बढ रही है। जिससे विश्व कल्याण के समर्थको तथा शासन सूत्र धारियो का माथा ठनक रहा है और जन्म निरोध के अनेक उपाय सोचे जा रहे है तथा जन्म निरोध यन्त्र प्रस्तुत कराकर विज्ञापन करवा रहे हैं। ब्रह्मचर्याश्रम और वानप्रस्थाश्रम जनन नियन्त्रण का अमोघ शस्त्र था। क्या सरकार और विश्वशान्ति समिति इस दिशा में विचार करने का कष्ट करेगी ?

हर्ष का विषय है कि स्वतत्रता प्राप्ति के बाद हमारी जन सरकार वन-सम्पदा के सरक्षण तथा उन्नयन के लिए पूर्ण रूप से सचेष्ट है। नये-नये जगल लगाने का आयोजन हो रहा है । इसके लिए बजर भूमि की पैमाइश का कार्य आरम्भ हो गया है। राज्य भर में सुसगठित ढग से वन व्यवस्था करने के लिए एक बीस वर्षीय योजना तैयार हो रही है। आशा है बीस वर्षों में हमें कृषि भूमि के साथ-साथ वन भूमि का सुसगठित दृश्य देखने में आयेगा और हम बिहारवासी वन-सम्पदा से उचित मात्रा में लाभ उठा सकेंगे। मेरा तो निश्चय मत है कि इन वन प्रदेशो में यत्र-तत्र कुछ विद्यालय ऐसे खोले जाय जहा छात्र निश्चित अवधि तक शिक्षा प्राप्त कर ही घर लौटें और इन छात्रो को पाठ्यक्रम विशेष विषयो के विशेष उद्देश्यो पर ही निर्धारित रहे। गाधी जी के स्वप्न स्वरूप राम राज्य को साकार करने में वन सम्पदा भी प्रबल सहायिका होगी।

बिहार राज्य में पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत १९० योजनाए कार्यान्वित हो रही है जिनका कुल व्यय ५७ करोड ३२० लाख १० हजार रुपये हैं। इनमें १ करोड २५ लाख रुपये वन वैभव विकास के लिए सुरक्षित है। यदि इन रुपयो का सदुपयोग ठोस ढग पर किया गया तो विकसित वन वैभव का मूल्य पचास करोड से भी अधिक हो जा सकता है तथा वन वैभव बिहारवासियो के सुख-साधन का एक अग हो जायेगा। क्या ही अच्छा हो यदि सरकार प्रत्येक वृहत्वन में वन बिहार और वन यात्रा का प्रबन्ध कर दे। मैसूर राज्य के सुरक्षित वन में इस प्रकार का सुप्रबन्ध है कि यात्री मोटर पर चढकर वन की परिक्रमा कर लेते हैं तथा मार्ग में वन की प्राकृतिक शोभा के साथ-साथ वनैले जन्तुओ का भी दर्शन कर लिया करते है। सुरक्षित वन में वनैले पशु भी सुरक्षित रहते हैं। बिहार में जहा तहा बानरो का उत्पात इतना अधिक हो गया है कि उन्हें यमपुरी पहुचाने के लिये अधिकारियो द्वारा पुरस्कार दिया जाने लगा है। वनो के विकसित तथा फलवान वृक्षो से सम्पन्न होने पर वानर स्वय वनवासी बन जायेंगे और हमारी समस्या भी हल हो जायगी। वन प्रदेश में यदि निवास की सुविधा दी जाय तो वानप्रस्थी लोग शान्ति के विचार से नगर के बदले वन की ओर ज्यादा झुकेंगे और वन प्रदेश फिर जगमगा उठेगा तथा वनचर वनवासी शिक्षित वृद्ध जनो के सम्पर्क द्वारा शीघ्र ही आगे बढ जायगे।

आज के चीन की भूमि और किसानों की समस्याएं

श्री तारकेश्वर प्रसाद वर्मा

मिट्टी का मोह जहा मानव की मानवता का प्रतीक है वहा मिट्टी पर चील—झपट्टा की दानवी प्रवृत्तिया एव लोलुपता तानाशाही के ताडव नर्त्तन का सूचक है। निज राष्ट्र की सार्वभौम सत्ता की स्वार्थमयी युक्तियो और षडयन्त्रो द्वारा विश्व के रग-मच पर कुशल राजनीतिज्ञ अभी तक अभिनय करते आ रहे है। और इस शतरज की चाल मे कितने मात होकर मिट गये। फलत असख्य राष्ट्रो के वक्षस्थल चीरा जाकर उनकी शव परीक्षा हुई। फिर उनके गर्म खून से मिट्टी की लहलहाती दूबो को खाद मिला अवश्य पर खेतो की कल्याणी रानी के सुहाग सिन्दूर लुट गए।

उधर जुलाई सन् १९४० में इटली ने सम्राट हेली सेलासी को कैद कर अबीसीनिया की भूमि पर आधिपत्य स्थापित किया। गेस्टापो और गोबेल्स जैसे कूटनीतिज्ञो का सह पाकर भी नाजीज्म का अग्रदूत हिटलर रूस का शिकार हुआ। जनता का कोपभाजन होकर इटली का भाग्य-विधाता मुसोलिनी अपमानपूर्वक मार डाला गया। सम्राट हिरोहितो का जापान एक अणुबम के विस्फोट से रसातल पहुच गया। सक्षेप मे, भूमि पर आधिपत्य की भयकर भावना ने सारे ससार का नक्शा बदल दिया।

पर हमारे भारत की मिट्टी पर विदेशी सत्ता की सनसनाती तोपें टकरा कर ठप्प हो गई। बडे-बडे बम के गोले गल गए। उनकी कूटनीति असफल हुई। सत्य-अहिंसा ने स्वतत्रता सग्राम मे विजय पायी। फिर हमारा जन्मसिद्ध अधिकार हमें प्राप्त हुआ। अब हिमालय के शिखर पर राष्ट्रीय ध्वजा उडती है। सागर की उत्ताल तरगो में राष्ट्रीय गीतो के मीठे कलरव सुनाई पडते है। शस्य श्यामला वसुन्धरा मुक्त वातावरण में स्वतत्रता की सास ले रही है। धरती तो अपनी है ही चाद-सितारे और सरिता-शिला भी अपने लगते है।

इस प्रकार भारत के साथ ही दूर क्षितिज के अन्य राष्ट्रो में भी स्वतत्रता की किरणें फूट पडी।

चीन पर आक्रमण

इधर चीन भी जापानी आक्रमणो से आक्रान्त और जर्जर हो गया था। मार्शल च्याग काई शेक की आठवी रूट आर्मी ने जापानियो के छक्के छुडा दिए। गोरिल्ला कौशल दिखानेवाले माओत्से तुग, सेनापति चू-तेह, पेग तेह खाई, हो लग, लिन आव, चाउ एन-लाई आदि वीरो की धीरता, चतुरता और दृढता ने जापानियो के दात खट्टे कर दिये।

इस प्रकार कई वर्षों तक प्रजातत्र चीन ने च्याग काई-शेक के सरक्षण मे शत्रुओ से लोहा लेकर चीन की मिट्टी को मटियामेट होने से बचाया। फासिस्टो को नाको चने चवाने पडे।

आज का स्वतंत्र चीन

अन्ततोगत्वा सन् १९४९ ई० के दिसम्बर मे चीन की मिट्टी को भी प्राची की किरणो ने चूम लिया। वहा की मिट्टी-मिट्टी स्वतत्रता की लौ से जल उठी, बल उठी। चीन की भूमि मे यह स्वर्णिम विहान और सुन्दर प्रभात लाने का श्रेय है कम्यूनिस्ट पार्टी और सेंट्रल पिपुल्स गवर्नमेंट, कम्यूनिस्ट दल और केन्द्रीय लोक शासन को। माओत्से तुग आज वहा का चेयरमैन है। वह स्वय किसान का बेटा है जिसके सर पर कुछ वर्ष हुए, च्याग काई शेक ने दो लाख चादी के डालर घोषित किया था। विश्व के इतिहास मे किसी भी एक व्यक्ति के सर पर इतना बडा इनाम नही बोला गया। उन्ही दिनो मे वह गरीब, भूखे, शोषित, और अनपढ किसानो का नेता बनता आ रहा है।

जनतत्रात्मक चीन की स्थापना के साथ ही ग्राम्य सुधार की लहर दौड गई। उसके कण-कण में विद्युत छू गया। कृषि का विकास अपनी चरम सीमा तक पहुच गया। कृपको के भूमि कर का अन्त-सा हो गया। कृषि सम्बन्धी औजारो की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। जमीन्दारी प्रथा का सर्वनाश हो गया। निर्धनता और दिवालियापन दूर हुआ। सहकारी समिति और पारस्परिक सहायता दलो का निर्माण हुआ। कृपको के मान-

मिक विकास के लिए अध्ययन-निकेतन की स्थापना हुई। अनावृष्टि के विरुद्ध नहर और बाध द्वारा सघर्ष चला। वैज्ञानिक रीति द्वारा कृषि कार्य के विशेष ज्ञान के जरिए राजकीय फार्म आयोजित कर प्रदर्शन और प्रवचन हुए। ग्रामीण शिशुओं के स्वास्थ्य के लिए गाव-गाव में आरोग्य कुटीर जाल से बिछ गए।

इस प्रकार चीन की सर्वागीण प्रगति हुई। जनता में एकसूत्रता की भावना बलवती हो गई। इस विकास और सुधार के लिए पहली अक्तूबर सन् १९४८ ई० से ही चीनी और अमेरिकन ज्वाएट कमीशन कार्य कर रहा है। इस सस्था ने चीन में नवचेतना और जागरण लाने के ध्येय से सन १९४९ मे अपने पूर्व कार्यक्रम मे परिवर्तन लाने का निश्चय किया।

इस प्रकार आधुनिक चीन के विकास में तत्कालीन राष्ट्रीय सरकार को हाथ बटानेवाली इस सस्था का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। तो आइए, पहले हम आपको चीनी और अमेरिकन सचालित जे० सी० आर० आर०· ज्वाएट कमीशन आन रूरल रिकन्सट्रक्शन इन चाइना के कार्यक्षेत्र में ले चले।

ज्वांयट कमीशन का अनुभव

(१) उत्तर चीन पर विजयी होकर कम्यूनिस्टो ने नानकिंग, शघाई और हाको पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। राष्ट्रीय सरकार कैंटन चली गई है जहा ज्वाएट कमीशन ने अपना प्रधान केन्द्र रक्खा है। चीन के विस्तृत विकास के लिए तीन से पाच वर्ष की अवधि अनिवार्य है। अस्तु विशेष कार्यक्रम द्वारा ही यह कार्यान्वित हो सकता है।

(२) केवल दो बातो पर ही राष्ट्रीय चीन कम्यूनिस्टो के पजे से मुक्ति पा सकता है वह यह कि देश मे सैनिक सगठन हो। राष्ट्रीय चीन का कुछ भाग अधिकार मे रहे, अच्छे शासन की व्यवस्था हो, जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति की जाय और उस क्षेत्र का आन्तरिक सरक्षण सबल हो।

(३) स्थानीय जनता ने लुगिएन योजना का हार्दिक स्वागत किया है जो भूमि सुधार का कार्यक्रम राष्ट्रीय सरकार की देखरेख में वर्षो से चल रहा था।

(४) क्वाग तुग प्रान्त की रैयती जमीन की दशा दयनीय है। वहा कमीशन के उच्चाधिकारियों ने देखा है कि स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई योजनाओ से कृषको की अपेक्षा जमींदार ही लाभान्वित हो रहे है। ऐसी परिस्थिति में जमींदार और रैयत के सम्बन्ध मे सुधार लाना आवश्यक है। रैयतो के कतिपय अधिकारो का आश्वासन अपेक्षित है।

अत कमीशन जेच्वान और क्वागसी मे शासन वर्ग के अधिकारियो ने मिलकर एक व्यापक कार्यक्रम पर विचार-विमर्श करे। यदि ऐसा सम्भव न हो तो कमीशन का अस्तित्व मिटा दिया जाय।

घोषणा पत्र

[illegible] विचार-विमर्श के लिए कमीशन ने कम्यूनिस्टो [illegible] घोषणापत्र (मेनिफेस्टो) तैयार किया जिनमे

(१) कम्यूनिस्ट सरकार जहा समस्त चीनी जनता के कल्याण के लिए प्रभावशाली कार्यक्रम तैयार कर रही है वहा यह कमीशन भी हाथ बटाने को तैयार है।

(२) कमीशन को विश्वास है कि उत्साहपूर्ण एव निश्चित प्रयास द्वारा थोडे ही समय मे कतिपय क्षेत्र प्रमुख पर सीमित साधनो का निदान कर आशातीत प्रगति लाई जा सकेगी।

(३) अधिकाश योजनाओ को दृष्टि में रखते हुए बडे पैमाने पर निम्न कार्य अपेक्षित है

(क) राष्ट्रीय सरकार के वर्त्तमान कानून के अनुसार भूमि कर की न्यूनता और रैयतो का काश्तकार का अधिकार कई वर्षों तक, फसल कटने तक, सुरक्षित रहे जिसका सचालन प्रान्तीय सरकार सुचारु रूप से करती रहे।

(ख) निम्न कृषक सस्थाओ एव सगठनो का सरकारी सहयोग अपेक्षित है

भूमि सुधार स्वय रैयतो द्वारा कार्यान्वित हो और किसान स्वामित्व प्राप्त करें। सम्मिलित रूप में किसान कृषि ऋण ले सकें, ग्रामीण उद्योग-धधे चलावें, घर और खेती सम्बन्धी चीजें खरीद सकें, खेत की उपज बेच सकें, और वे स्थानीय सस्थाओ द्वारा कृषि, स्वास्थ्य और वयस्क शिक्षा में उन्नति कर सकें।

(ग) सिंचाई।

(च) पशुओ की बीमारी का समुचित उपचार। सूअर के रोगो की परीक्षा पर विशेष ध्यान।

(छ) ग्रामीण स्वास्थ्य में सुधार। मलेरिया रोक पर विशेष ध्यान और स्वास्थ्य सस्थाओ की उन्नति।

(ज) पुष्ट बीज, विशेष कर चावल, गेहू, चुकन्दर और कपास की वृद्धि और वितरण।

(झ) नागरिकता, शिक्षा और व्यावहारिक वैज्ञानिक ज्ञान का प्रचार-श्रवण-दर्शन (आडियो विजुअल) माध्यम से ही हो।

(४) सहायता के निश्चित रूप जिसे कमीशन ने अपने कार्यक्रम में रखा है वे निम्नलिखित रीति से सचालित हो

(१) शिल्प कला सबधी चीनी और अमेरिकन विशेषज्ञो का प्रदान जो नियुक्तियो को यथासाध्य कार्यान्वित कर सकें।

(२) आर्थिक विकास सम्बन्धी युक्तियो के कार्यान्वित करने के निमित्त कुछ विशेष कोष की व्यवस्था जो प्रान्तीय अथवा स्थानीय साधनो से उपलब्ध हो सके।

स्वीकृत नव योजना की कार्यवाही

तत्कालीन सरकार ने कमीशन की नई युक्ति की स्वीकृति दे दी। अत क्वागसी, जेच्वान और फारमोसा में २७ जून को यह कार्यक्रम आरम्भ हुआ। पर, 'मेनिफेस्टो' मे कुछ परिवर्तन हुए और स्थानीय सरकार के

सहयोग से सर्वसाधारण ग्राम्य जनता को पूर्ण रूप से सहायता देने के लिए उचित कानून के प्रयोग पर महत्त्व दिया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्न योजनाए थी जिनमे भूमि सुवार का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है।

आधुनिक चीन मे भूमि सुधार की समस्याए डा० सनयात सेन के समय से ही सुलझाई जा रही है। उनका उद्देश्य था, "जो जोते उसकी जमीन"। इसमें साम्यवाद का पुट अवश्य था पर हरजोता किसानो और खेत-मजदूरो को प्रधानता देकर एक प्रकार से "देहाती सर्वहारा" का एकाधिपत्य स्थापित करने का सफल प्रयास था। इसके द्वारा कमीशन को सुधार क्षेत्र में काम वढाने का सुअवसर मिला। अत उक्त स्थानो में ७२ प्रतिशत चीनी जनता पर प्रयोग करने का अधिकार मिला। चार-पाच महीने में ही चार-पाच लाख खेत खलिहानवाली जनता को लाभ हुआ। पर दिसम्बर १९४९ से प्रधान चीन के कम्युनिस्टो के आधीन आते ही कमीशन की प्रगति शिथिल पड गई।

तत्पश्चात् १९४९ ई० के वसत में राष्ट्रीय सरकार की स्वीकृति तथा सहयोग से कमीशन ने फारमोसा में सुधार आरम्भ किया। स्थानीय सरकार ने किसानो की उपज का ३७ ५ प्रतिशत ही कर निश्चित किया तथा भूमि पर का उनका अधिकार विशेष सुरक्षित वना दिया। किसानो और जमीन्दारो के वीच नया पट्टा हुआ जो ३ से ६ वर्ष तक,स्थानीय कृपि अवस्था के अनुसार, चलने को था। यह निश्चय हुआ कि उक्त अवधि की समाप्ति के वाद सरकार की स्वीकृति पर ही पुराना पट्टा का अन्त होगा। अनुचित रूप से रुपये पेशगी देनेवालो को सजा की घोषणा हुई।

कमीशन के इस कार्य में स्थानीय खेतिहरो, निरीक्षको, रजिस्ट्रारो, किरानियो और अमीनो को शिक्षा दी गई जिन्हे भत्ता मिलता था। उनका काम था भूमि सवधी विज्ञापनो का प्रकाशन कर उनका उचित वितरण कराना, भूमि पर उचित अधिकार का निरीक्षण करना और कानून का प्रयोग सामूहिक रूप में कराना था।

इस रीति से करीव ३५०,००० खेतिहर किसानो को लाभ पहुचा। किसानो की मुख्य उपज और तत्सम्वन्धी कर की जानकारी के लिए सरकार ने जोती हुई भूमि को २६ वर्गों में विभाजित कर दिया।

कमीशन के प्रशंसनीय कार्य

इस प्रकार भूमि सुवार के वाद कमीशन ने कृपको की आवश्यक समस्याओ को दूर किया। कृपको का सगठन हुआ, आदर्श खेती का आयोजन हुआ, चीनी रेशम उद्योग का विकास हुआ, गाव-गाव 'जनता आरोग्य सचालन' (पब्लिक हेल्थ ऐडमिनिस्ट्रेशन) द्वारा स्कूली वच्चो को यक्ष्मा रोक की सूई दी गई तथा धाइयो और परिचारिकाओ द्वारा कमीशन निर्मित स्कूलो के छात्रो की सेवा-शुश्रूषा और उनकी मा-वहनो को उचित परामर्श और औपधि दी गई। इनके अतिरिक्त चारो ओर चार्टो तथा मानचित्रो द्वारा मलेरिया के कीडो का इतिहास वताया गया और कीडे-मकोडो की चिकित्सा कर वाई की गई तथा दीवार पत्रो द्वारा ग्राम्य सुधार की प्रगति का इतिहास दिखलाया गया। विशेष उल्लेखनीय जो सुधार हुआ वह था नहर और सिचाई का।[1]

कमीशन-सुधार कम्यूनिस्ट सरकार की पृष्ठ भूमि

इस प्रकार कमीशन सन् १९५० ई० के सितम्वर तक भूमि सुधार और कृपक समस्याओ के हल में जुटा रहा। इसका सफल सचालन कर रहे थे चीनी प्रारम्भिक समस्याओ को सुलझानेवाले अनुभवी तथा पीकिंग युनिवर्सिटी के २६ वर्षो तक के चान्सलर एव शिक्षा सचिव डा० चियाग मीन लिन, चीनी राष्ट्रीय कृपि अन्वेषण मडल के भूतपूर्व डाइरेक्टर डा० शेम-शुग-हन, वीस-तीस वर्षो तक चलनेवाले सामूहिक शिक्षा आन्दोलन के जन्मदाता डा० वाई० सी० जेम्स येन, पन्द्रह वर्षो के कृपि कार्यक्रम सचालित करनेवाले डा० रेमाड टी० मोयर, और तीस वर्षो से अधिक समय तक अन्तर्राष्ट्रीय अकाल रिलीफ और अमेरिकन रेड क्रास के कर्मठ कार्यकर्ता डा० जान अर्ल वेकर।

कमीशन द्वारा भूमि सुधार आज के चीन की सारी समस्याओ के स्पष्टीकरण में वडा सहायक है। वर्त्तमान कम्युनिस्ट सरकार ने उन्ही समस्याओ की ओर ध्यान केन्द्रीभूत कर इन तीन वर्षो में ही अप्रत्याशित अभ्युदय प्राप्त किया है। प्रगति अपनी चरम सीमा तक पहुच गई है। इस अल्पकाल में ही चीन ने जो प्रगति की है उसे देखकर, श्रीमती विजयालक्ष्मी पडित के सरक्षण मे भारत से गए, भारतीय सास्कृतिक डेलीगेशन अवाक रह गया। अपने धन-धान्य पर गौरव का अनुभव करते हुए माओत्से-तुग ने कहा था "भारत की जनसख्या वढ रही है और भारतीयो के सामने अभी तक पूर्ण रूप से अन्न-वस्त्र की समस्याए सुलझ नही पाई हैं। ऐसी परिस्थिति मे, चीन और भारत के प्राचीन सास्कृतिक सवध को दृष्टि मे रखते हुए, मैं सरकार और जनता की ओर से भारत से आनेवाले किसी भी सस्था के लोक दल को चीन मे स्थान दे सकता हू।"

वर्त्तमान कम्यूनिस्ट सरकार और ग्राम सुधार

तो आइये, अव माओ सरकार की भूमि मे ले चले आपको।

कम्युनिस्ट सरकार के आते ही उसके सम्मुख अनेक समस्यायें आ खडी हुई। कमीशन द्वारा सचालित दो-तीन स्थानो को छोडकर जापानी आक्रमण के फलस्वरूप सर्वत्र वही सर्वनाश दीख रहे थे, जनता क्षुधा मे तडप रही थी, सूली पर झूल जानेवाले शहीदो की याद मे विधवाओ का प्रलाप गूज रहा था, धरती माता विरहिन वन गई थी और पूजीपतियो का नृशस अत्याचार असह्य हो चला था।

ऐसी परिस्थितियो मे कम्युनिस्ट पार्टी ने सबसे पहले जो कार्य किया वह था जमीन्दारी उन्मूलन। जमीन्दारो के अत्याचार से रैयतो की दशा युग-युग से सोचनीय होती आ रही थी। चीन की अधिकाश भूमि जमीन्दारो के अधिकार मे थी। समस्त जमीन्दार वर्ग के खून मे किसानो के प्रति अपहरण और अत्याचार की भावना दौड रही थी। साल भर

---

[1] सुगमिंग झील की धान भूमि नहर वाध द्वारा उर्वर वनाई गई। इस क्षेत्र को "चावल का कटोरा" कहते है। इन वाधो से ५,००,००० एकड भूमि धान के पौधो से लहलहा उठी है।

खेतो मे पसीनो के मोती बोने पर भी वे अन्न के एक-एक दाना के लिए ललच रहे थे। उन्हे जो भी अन्न प्राप्त होता वह भूमि कर मे शेष हो जाता।

पुराने स्वतत्र क्षेत्र मे सन् १९४६ ई० से ही जो भूमि सुधार हुआ था उमसे यह स्पष्ट हो गया था कि जमीन्दारो के भूमि आधिपत्य तथा अर्द्ध भूमि आधिपत्य का उन्मूलन ही सभी समस्याओ का एकमात्र निदान है। सन् १९५० ई० के जून को ग्राम्य सुधार कानून पास हुआ। इसके अनुसार जमीन्दारो से जमीन छीन ली गई और सब किसानो को दे दी गई। इसके द्वारा नवीन चीन में औद्योगीकरण का सूत्रपात हुआ।

बाद सन् १९५० ई० के शरद काल मे राष्ट्रव्यापी ऐतिहासिक भूमि सुधार आन्दोलन आरम्भ हुआ। सन् १९५२ ई० के अगस्त तक चीन के ग्राम्य जनावास के ९० प्रतिशत क्षेत्र मे यह सुधार लाया गया। जमीन्दारो की ४७ लाख हेक्टेयर भूमि ३०० लाख ऐसे चीनी किसानो में बाट दी गई जिन्हें बहुत थोडी जमीन थी या उसका सर्वथा अभाव था। अब इन किसानो को जमीन्दारो को कर नही देने पडते जिसकी रकम पहले नाज का ३० लाख टन था। बेचारे किसान जो पहले खेतो को केवल जोतते-बोते थे अब पूर्णत स्वामी बन गए है। अब वे जमीन्दारो की सेवा-टहल से मुक्त हो गए हैं और पहले की अपेक्षा वृहत्तर और सुन्दरतर अन्न उगाने लगे है।

पारस्परिक सहायता और सहयोग समितियां

छोटे पैमाने पर की खेती से निर्धनता और दिवालियापन दूर होने को नही था। इसलिए कृषि उत्पादन के स्तर को ऊचा करने के ध्येय से लोक-शासन ने पारस्परिक सहायक और सहयोग पद्धति (म्युचुअल एड ऐन्ड कोआपरेशन) चलाई। इस पद्धति के कार्यक्रम ये थे।

मजदूरी की पारस्परिक सहायता तथा उत्पादन के विभिन्न सहयोग स्वेच्छा एव पारस्परिक लाभ पर आधारित रहेगा जिसमें लोक-शासन उसके उचित प्रसार और प्रचार मे हाथ बटायेगा।

सन् १९५२ ई० मे देश के किसान परिवारो मे ४० प्रतिशत से अधिक विभिन्न रीति के पारस्परिक सहायक दलो मे सम्मिलित हो गए। करीब ४,००० कृषि उत्पादक सहयोग समितिया और दश सामूहिक खलिहान का देश के विभिन्न भागो मे निर्माण हो गया। इन सहायक और सहयोग समितियो द्वारा पुनर्वास एव उत्पादन मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। प्राकृतिक सकट इनके द्वारा दब गए। फलत खेती की नवीन प्रणाली और पशुपालन मे विकास हुआ।

कृषि के उत्पादन की विशेष और सफल वृद्धि के लिए सरकार की ओर से किसानो को कृषि ऋण मिलने लगे। इस ऋण द्वारा किसानो ने [illegible] के विभिन्न सभी प्रकार के औजार खरीद लिया। जिनका कुल [illegible] ३५ [illegible] था। सरकार ने स्वय आधुनिक खेती के औजारो के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया। [illegible] संख्या २८०,००० की किसानो को [illegible] [illegible] दी गयी। उनके हाथ ७००,००० टन [illegible]। फिर [illegible] खेतो में सोना उगाने लगे।

सरकार ने किसानो मे स्वतत्रता की भावना पैदा करने के लिए एक अजीब काम किया। उसने हनाम प्रान्त के सिचुयाग गाव में जमीन्दारो के कबालो (टाइटिल डीड्स) का होलिका दहन कर दिया। सभी कबालो की जब्ती करा कर चीनी किसानो के सामने उन्हें एक स्थान पर इकट्ठा कर उनमें दियासलाई लगा दी गई। कबाले चट्-चट् कर जल गए। खडे किसानों के आनन्द का उस दिन क्या पूछना था। इसके साथ चेकियाग प्रान्त के हैंगसे ग्राम से ही भूमि वितरण आरम्भ कर दिया गया था। भूमि मापी गई थी और आवश्यकतानुसार सभी किसानो को भूदान मिलने लगे थे।

थोडे दिनो में ही किसानो में नव जीवन का सचार हो गया। सोना उगलनेवाली धरती ने अगडाई ली। गल्ले का भाव सरकार द्वारा निश्चित कर दिया गया। सरकारी आयोजनाओ के फलस्वरूप किसानो को कपास, पटुआ, खैनी तथा उस श्रेणी की अन्य फसलो के उत्पादन पर जोर दिया गया। मूल्य नियन्त्रण के कारण किसानो को मुनाफे का अनुभव होने लगा। देखदे-देखते उनकी क्रय-शक्ति बढने लगी। अब वे सपरिवार सहयोग समितियो की दूकानो पर जाकर पहनने-ओढने की चीजें स्वेच्छापूर्वक खरीदते थे।

कृषि उत्पादक पारिवारिक सहायक एव सहयोग समितिया व्यक्तिगत किसान के गार्हस्थ्य परिचालन के आधार पर अवलम्बित हैं। दूसरे शब्दो में वे सब किसानो की भूमि पर के उनके प्राइवेट अधिकार पर आधारित है। किसान अपनी परिस्थिति और पराक्रम का मूल्याकन कर ही इन योजनाओ से लाभान्वित होते हैं। आरम्भ में वे छोटे पैमाने पर इन्हे अपनाते है। फिर उस दिशा में अनुभव पाकर विशेष उत्पादन और राजनीतिक चेतना की ओर पैर बढाते हैं।

ये नवीन पद्धतिया तीन श्रेणी में सरकार द्वारा बाट दी गई है।

१ इसका कार्यक्षेत्र सीमित है। साधारणत इसके द्वारा तीन से पाच किसान परिवार एक साथ मिल जाते है, अथवा कभी-कभी सात या आठ परिवार सम्मिलित हो जाते हैं। युग-युग से आनेवाली सहकारिता की भावनावाले इस पारस्परिक सहायक सगठन की यह प्रारम्भिक अवस्था है। इसके अनुसार किसानो को नया बल मिला है जिसके द्वारा उन्होने अनावृष्टि का सामना किया है और पशु पालन तथा कृषि उत्पादन की सुविधा पाई है।

२ यह विशेष परिस्थिति मे यह समय-समय पर सगठित होता है जब कार्यभार असह्य हो जाता है। पहली योजना की अपेक्षा इसका कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें बीस परिवार तक एक साथ मिल सकते है। श्रम-शक्ति की वृद्धि, पशुओ के निरीक्षण और कृषि सबधी उपादानो का सरक्षण तथा अनावृष्टि जनित समस्याओ के निदान में ही इसका कार्य सीमित है। इसके अनुसार कही-कही ऐसे परिवारो से एक-एक गाव बस गया है। इनके सदस्य एक दूसरे के कार्य कलाप पर टीका-टिप्पणी करते है जिसका उद्देश्य उनके कार्यो की विशेष सफलता ही रहता है। प्रत्येक किसान की मजदूरी के दिन लिखे जाते है। यह भी देखा जाता है कि किस किसान ने काम में कैसा चमत्कार दिखाया। वह पुरस्कार स्वरूप मुखिया बन जाता है या अधिक गल्ले का अधिकारी होता है।

३ यह पहली और दूसरी योजनाओ से उच्चतर और सर्वप्रिय है। इसमे किसानो को अपनी भूमि के सिंचन कार्य का दायित्व लेना पडता है। इसे जल सरक्षण योजना (वाटर कनजरवेंसी प्रोजेक्ट) कहते है। इसके अनुसार जो किसान जितना भूमि पटा सकेगा उतनी ही उसकी मजदूरी होगी जिसकी रकम उसके 'शेयर' मे परिणत कर दी जाएगी। इसमे विशेषत बीस से चालीस और ८० से १००–२०० तक किसान परिवार सम्मिलित होते हैं। इसमे उनके कृषि कार्य वट जाते है। वजर भूमि भी उपजाऊ वनाई जाती हैं।

इन योजनाओ ने कृषि की सारी समस्याओ को सुलझा दिया है। कही समितियो के सदस्य अपने मुखिया के साथ गेहू चुनते, तो कही गेहू ओसाए जाते, कही मध्याह्न में सभी सदस्य एक स्थान वैठ कर खेती की आधुनिक कला का अध्ययन करते, कही एक दल वाढ के जल को रोकने के लिये वाध वनाते। फिर फसल कट जाने पर समितियो के चेयरमैन खेतिहरो के सामने वर्ष भर की कार्यवाही की रिपोर्ट देते। इतना ही नही प्रतिदिन खेत मे काम करने के वाद वे यह नोट करते कि किस मजदूर ने उस दिन खेत मे कितना काम किया है। इस प्रकार वे सभी मिलजुल कर फसल काटते, सुखाते और उनका अम्बार लगाते। हा, नई फसल की खुशी मे सभी मजदूर स्त्री-पुरुष दोनो, खलिहान मे थिरक-थिरक कर नाचते और गाते हैं। सध्या को अपने-अपने गाव के अध्ययनशाला मे जाकर देश-विदेश का समाचार जानते। सभी पुस्तकालय और रात्रि पाठशाला मे जाते है।

इन सभी योजनाओ के कारण किसानो मे राजनीतिक, सास्कृतिक और नैतिक वातावरण उत्पन्न हो गया है।

अनावृष्टि और नहर–समस्याएं

सन् १९५१ ई० में २३ प्रान्तो मे अनावृष्टि के चिन्ह स्पष्ट थे। सन् १९५३ के वसन्त मे दक्षिण-पश्चिम चीन के १०० गाव से अधिक मे वर्षा नही हुई। उत्तरी चीन मे वर्षा के अभाव के कारण उस वर्ष वीज नही वोए जा सके। सरकार की प्रेरणा से जनता ने दिन-रात कुए खोदे, नहर वनाये और उन नन्हें अकुरो को पटा-पटा कर लहलही वनाया। सक्षेप मे, मजदूर सम्पूर्ण जान-शक्ति का प्रयोग कर सघर्ष मे जुटे रहे। नदी की धारा को वरफ की चट्टानो से रोककर उसका जल खेतो की ओर वहाया गया है। स्थान-स्थान पर वसत के लिए वरफ सुरक्षित रक्खी गई। इनके आधार पर हुआइनान और होपेई जैसे प्रान्तो के किसानो ने २,५००००० क्यूबिक मीटर वरफ इकट्ठी की। फलत वसन्त की वोआई वडी सुविधा से हुई। दक्षिण चीन के अधिकाश स्थानो में वर्षा नही होती और उनकी भूमि सूख जाती है। अत स्वतत्रता के तीन वर्षो मे ही सरकार द्वारा सब मिलाकर कुल ३५८ आधुनिक जल सरक्षण योजनाए पूरी की गई है। पीली नदी का जल वी नदी मे लाया गया है। फिर यह जल घुमा कर एक जल पथ की ओर मोड दिया गया है जिसका नाम है लोक विजय नहर जो ४८०,००० माउ[1] भूमि तथा सिंहासियाग गाव एव होनन के आस-पास वाली भूमि को पटाती है। इसके द्वारा वजर भूमि जगमगा उठी है। पीली नदी के पास रहनेवाले इसे, "विषधर सर्प और जगली पशु" कहते थे। उनके सपने मे भी यह वात कभी न आई थी कि इस नदी से चीन की धरती सुहागिन वन वैठेगी।

शिकियाग प्रान्त मे अथक परिश्रम कर लोगो ने एक विशालकाय नहर वनाई है जिससे लाखो माउ भूमि पटाई जा सकती है। हुआई नदी की विशाल योजना, जिससे विभिन्न कार्य होगे, पूरी हो गई है। इसके द्वारा हुआई नदी घाटी से २२०,०० वर्गमील भूमि की सिंचाई हो सकेगी। सरकार द्वारा जवतक ये योजनाए कार्यान्वित हो रही थी तवतक चीनी जनता ने स्वय ३,३६०,०० सिंचाई के छोटे गड्ढे, वाढ के फाटक, वाध और खाई आदि वना रखी है। ६००,००० से अधिक कुए खोदे गए है या उनका जीर्णोद्धार हुआ है। करीव ३००,००० पनचक्की लगाई गई है। इस प्रकार पृथ्वी के भीतर से जल-उपयोग की सारी सुविधाए ठीक कर दी गई है। विशेष सिंचाई खभे गाडने के यत्न लगाए गए हैं। काओलियागपेन वाध (उत्तरी कियागस) और हुआगवी नहर देख कर वुद्धि चक्कर में पड जाती है।

इन सुविधाओ के फलस्वरूप पूर्व छाहर प्रान्त की घासवाली भूमि, सुविस्तृत और भीतरी मगोलिया के पूरव, वहुत सुन्दर वन गई है। इसके पूर्व पीली नदी के पूरव वाले निगासिया प्रान्त के उस भाग में वालु, कासयी झील थी जहा पहाडी चचल धाराए वहकर सर्वत्र क्षार नमक इकट्ठा करती रही। पर अव वह क्षेत्र सिंचाई द्वारा सुन्दर उपवन मे परिणत हो गया है।

कृषि नष्ट करनेवाले कीड़ो पर शासन

चीन में टिड्डी आक्रमण की समस्याए ईसा के जन्म से ७०७ पूर्व से ही सुलझायी जा रही थी। तवसे आज तक इन २,६६० वर्षो के अन्तर्गत, करीव ८०० भयकर आक्रमण हुए। याग्सी नदी के वाकेअन के १०,००० अरव कट्टी* खेत को इन टुकडियो ने नष्ट कर दिया ३,०००अरव कट्टी कपास भूमि को लाल मकडो ने सर्वनाश कर दिया।

सन् १९५१ ई० मे सोलह प्रान्तो के २६० से अधिक गावो की कुल १४ लाख माउ भूमि नष्ट हो गई। इन टिड्डियो के नाश के विचार से १२,०००,००० किसानो का एक दल वना जिसमें अधिक-से-अधिक सख्या मे पतगनाशक "६६६" का वितरण किया। कीडे पीटे गए, उन पर धूले पडी और विषमय चारा चटा कर उनका नाश किया गया। लोक वायु शक्ति का प्रयोग हुआ। इन वायुयानो ने पतगनाशक "६६६" की वर्षा कर टिड्डियो के प्राण लिए गए। वर्षो से होनान प्रान्त के पीली नदी की वाढ-वाला जलमग्न क्षेत्र इन टिड्डियो के अडा देने का अड्डा था। वह वजर भूमि सुधार और यत्र चालित खेत खलिहान की योजनाओ के आरभ होते ही ये सभी अड्डे तोड दिए गए। सन् १९५२ में इन टिड्डियो ने ३७,७००,००० माउ भूमि को नष्ट कर दिया जो सन् १९५१ के नष्ट प्रदेशो से २ ७ गुणा अधिक क्षेत्र था। उन्हे समूल नष्ट कर देने के विचार से पतगनाशकचूर्ण "६६६" चार गुणा वाटा गया। सन् १९५१ में ५,९५,००० से अधिक पतग दीपको का नौ प्रान्तो मे प्रयोग हुआ जिससे ६,३२०,०००,

[1] एक माउ करीव एक हेक्टेयर का पन्द्रहवा भाग होता है।

*एक कट्टी वरावर है १ ३ पौंड के।

००० पतग ५०७ लाख अडो के ढेर नष्ट कर दिये गए। फिर ४५ माउ धान के खेतो मे वसत और शरदकालीन जुताई हो गई। वाद धान रोपने-वाले मुख्य भागो मे ८० प्रतिशत से अधिक धान के खेत रोपे गए। इधर जनता मे अधिक जागरण छा गया है। अनह् वाई प्रान्त के एक किसान द्वारा निर्मित एक साधारण "पतगनाश" घर-घर बन गया है जिसके द्वारा गेहू के १,३४०,००० माउ भूमि के सभी लाल मकोडे मार डाले गए। कही किसान इन्हे जाल से पकड रहे हैं तो कही चटाई फेंक-फेंक कर। इस जाल चटाई युक्ति ने बडा काम किया है। सरकार द्वारा पतगनाशक और पतग शासित यन्त्र के निर्माण के लिये असख्य कारखाने खुल गए हैं। इस प्रकार "६६६" और "डी० डी० टी०" पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

विशेष खेती कला विकास आन्दोलन

एक समय था जब खेती के विशेषज्ञ पुराने औजार और रीति पर आलोचनामात्र किया करते थे। उनकी अवैज्ञानिक प्रणाली पर खिल्ली उडाते और पूजीपतियो के सिद्धातो का खडन करते थे। चीनियो ने मिचुरिन और विलियम द्वारा प्रसारित साम्यवादी प्राणी शास्त्र का अध्ययन और उत्पादन सबधी सोवियत सरकार के अनुभव का अनुशीलन किया।

इधर कम्यूनिस्ट सरकार ने नए-नए औजारो का प्रचार कर दिया है। खेती की पुरानी रीति में परिवर्त्तन लाए गए हैं। सन् १९५१ ई० में नौ प्रान्तो मे ग्यारह विभिन्न गल्ले का व्यावहारिक प्रयोग हुआ। इससे यह स्पष्ट हो गया कि सात इच वाले हल से उत्पादन में प्राचीन पद्धति की अपेक्षा, १६८ प्रतिशत वृद्धि हुई। जहा नवीन औजार का व्यापक प्रचार नही हुआ है वहा किसानो ने जोताई में तीन से पाच या ६ इच तक हल की लकीर वनाते गए हैं। इनके द्वारा आशातीत अन्न उगाए गए हैं। राजकीय खेती द्वारा परिवर्तित नाज उत्पादन और दूब आरोपन की व्यावहारिक जाच की गई है। सोवियत की विकसित एव सर्वव्यापी खेती कला पार्श्व आरोपन पद्धति (क्लोज प्लाटिंग स्कीम) ने चीन में अनुपम फल दिखाया है। इस उद्देश्य के लिए ३०० से अधिक प्रकार के पुष्ट गेहू के वीच तथा दस प्रकार के कपास के वीज की व्यवस्था की गई है।

प्रत्येक वृहत्तर सचालित क्षेत्र मे सरकार ने कृषि विज्ञान अन्वेषण महाविद्यालय की स्थापना की है। यहा अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था है जहा नाना प्रकार की प्रदर्शनियो और प्रतियोगिताओ का प्रवन्ध रहता है। सन् १९५२ ई० मे १६,०० स्टेट फार्म के सहयोग से कृषि पाठशाला के छात्रो ने होपेई प्रान्त के करीव ७,२००,००० किसानो के वीच खेती सम्बन्धी भाषण दिए। दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा पुष्ट वीज पहचानने की रीति वताई। प्रयोगशाला मे आदर्श खेती का आयोजन कर किसानो को [illegible] दिए। किसानो के पास के खेतो मे ले जाकर फसलो का तुलनात्मक [illegible] कराया गया। राज्य आयोजित अल्पकालीन शिक्षण शिविर मे किसानो को [illegible] आधुनिक कृषि मशीनो का ज्ञान कराया। फलत खेतो मे [illegible] मशीन चलती रहती है। प्राय खेती के सभी [illegible] मशीनो द्वारा ही होते हैं।

इस विकसित आयोजना के फलस्वरूप सन् १९५२ ई० में पारस्परिक सहायक दल के मुखिया ली चिंग वा, सिकियाग स्थित लोक स्वतत्र सेना दल के एक सदस्य ने प्रति माउ २,०५८ कट्टी धान प्राप्त किया। हैनकेंग गाव के एक किसान शिह अन फू ने सन् १९५१ ई० में प्रति माउ में ८१० कट्टी गेहू उगाया। एक पारस्परिक सहायक दल के मुखिया तथा सिकियाग स्थित लोक स्वतत्र सेना दल के सदस्य माल्हे जू ने प्रति माउ १,३७७ कट्टी गेहू की फसल काटी। इस प्रकार मक्के, कपास और अन्य गल्ले का रिकार्ड रक्खा गया।

आज प्रत्येक स्थान मे पहले की अपेक्षा उत्पादन दशगुणा वढ गया है।

कृषि कर प्रणाली

नवीन चीन के किसानो को कृषि कर के फलस्वरूप फसल के रूप में फसल के सर्वोत्कृष्ट नाज सरकार को देने पडते हैं। वे इसे 'देशभक्तिमय लोक अन्न प्रदान" कहते हैं। इस प्रदान का एक त्योहार मनाया जाता है। सभी किसान झाल और ढोल वजाते हुए नाचते जाते हैं। राज्यान्न को वे गाडियो और ठेलो पर लाद कर राज्यान्न कोपगृह ले जाते हैं। दोनो ओर घुडसवार झडा-पताके लिये चलते हैं। अभी हाल में ही किसानो ने बडी लगन और उत्साह से सन् १९५४ का कर भुगतान समाप्त किया है। इस वर्ष किसान अपने विगत प्रयत्नो के अनुपम फल का अनुभव कर रहे हैं। यह उनके तथा समस्त चीनी जनता के उद्योग और मितव्ययिता का सबसे वडा फल है जिसके आधार पर चीनी राष्ट्रीय निर्माण की पचवर्षीय योजना चलाई जा रही है।

इस कर के भुगतान में सभी किसान बडे प्रसन्न रहते हैं। कारण यह कि यह कर उन किसानो को ही उनके प्रतिनिधियो द्वारा, लोक कार्य और सेवा के निमित्त सौ गुणा अधिक बढा कर लौटा दिए जाते हैं। कुमिनताग सरकार के शासन काल में यह तलवार के बल पर भी सभव न हो सका था। तब सरकारी निश्चित कृषि कर का ७० प्रतिशत भी वसूल न हो सका था।

स्वतत्रता के बाद कृषि उत्पादन में आशातीत वृद्धि होने के कारण सन् १९५२ का कर देकर भी १९५१ की उपेक्षा प्रत्येक किसान को ६५० किलोग्राम से भी अधिक बचत हुई थी। अपनी उपज के आधार पर ही चीनी किसान अपनी सारी दैनिक आवश्यकताओ की पूर्त्ति कर रहे है। इतना ही नही विशेष लगान के व्येय से अन्न रख छोडते है और सरकार को कर के रूप में पर्याप्त पूजी देकर एशियाई देशो के अन्न निर्यात के लिए कुछ सुरक्षित रखते हैं।

चीन मे नवीन कृषि कर चीनी लोक राजनीतिक परामर्शदातृ सम्मेलन द्वारा निश्चित किया गया है जो १९४९ के सितम्बर की ४०वी धारा के दूसरे परिच्छेद के अनुसार, सार्वजनिक कार्यक्रम की दृष्टि से, स्वीकृत हुआ था। इसके अनुसार राष्ट्र निर्माण, कृषि उत्पादन, और पुनर्वास आदि सभी समस्याओ के निदान पर विशेष ध्यान रखने का सकल्प हुआ।

नये कर विधानो के अनुसार जो परती भूमि को जोत-कोड कर हरा-भरा वना देता है वह उस भूमि के कर से तीन से पाच साल तक मुक्त कर

दिया जाता है। और यदि किसी ने एक साल का छोडा हुआ जोत खेत को आवाद कर दिया तव उसे एक से तीन वर्ष तक का कर नही देना पड़ता है। इस रीति के आधार पर जोत जमीन का रकवा उत्तरोत्तर बढ रहा है।

यदि वजर भूमि को किसी किसान ने पटा-पटा कर आवाद किया तो उसे तीन से पाच साल तक का कर नही लगता है। इसके द्वारा सिचाई पद्धति को प्रोत्साहन मिलता है।

कर विधानो ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि कृषि आमदनी का अर्थ है भूमि का वार्षिक औसत उत्पादन। तात्पर्य यह कि कृषि कर निश्चित औसतन दर पर ही निर्वारित रहेगा, उत्पादन के आधिक्य पर नही। विशेष श्रम के कारण यदि उपज अधिक हुई तो वह किसान की हुई। पर उसे निश्चित दर के अनुसार कर चुकाना पडता है। यदि किसान की सुस्ती से औसत से कम उपज हुई तव दर कम नही की जाती। ईश्वरीय प्रकोप के फलस्वरूप किसानो को ऋण, अन्न आदि की सरकारी सहायता दी जाती है। यदि आवश्यक जान पडा तव कर मे भी छूट दी जाती है। विशेष परिस्थितियो मे असहाय किसानो का कर कम कर दिया जाता है या वे पूर्णत मुक्त कर दिये जाते है। जैसे नि सन्तान विधवाए या वाढ आदि प्रकोप से पीडित किसान। कतिपय अल्पसख्यक जातिया सदा के लिए इस कर से मुक्त कर दी गई है।

इन सुविधाओ के कारण स्वतत्रता के तीन वर्षो मे ही उत्पादन मे महान वृद्धि हुई है जिसका आकडा ये है।

आधार वर्ष १९५९-१००

उत्पादन	१९५०	१९५१	१९५२
अन्न	११७	१२९	१५७
कपास	१६०	२३४	२८७

आजकल सर्वसाधारण कृषको को पाच से १० प्रतिशत तक कर देने पडते है। मध्य श्रेणी के किसानो को १५ प्रतिशत लगते है। कुछ धनी किसानो को, सवसे ऊची दर, ३० प्रतिशत चुकाना पडता है।

कर विभाग के सिद्धान्त पूर्णत सरल और सुवोध वना दिए गए है। सन् १९५० ई० में यह निर्णय हुआ कि स्थानीय अतिरिक्त कर (सर टैक्स) निश्चित कर से २० प्रतिशत अधिक न हो। सन् १९५२ ई० में सभी अतिरिक्त कर हटा दिए गए। तव से केवल एक ही कर, कृषि कर, रक्खा गया है। पर सास्कृतिक और विनोदात्मक कार्यो के निमित्त या पुल और सडक की मरम्मत के लिए उच्चाधिकारी की उचित स्वीकृति के आधार पर स्थानीय अधिकारी वर्ग अपने-अपने क्षेत्र में चन्दा ले सकते है। किन्तु यह चन्दा ऐच्छिक होगा और कृषि कर के ७ प्रतिशत से कम रहेगा।

यह कृषि कर अधिकतर अन्न द्वारा ही दिया जाता है। ८० प्रतिशत से अधिक अन्न खाद्यान्न का कर है और १० प्रतिशत मे कपास दलहन और अन्य औद्योगिक उत्पादन सम्मिलित है। वडे नगरो तथा यातायात केन्द्रो के पास रहनेवाले किसान अन्न के वदले द्रव्य से ही कर दे सकते है। इस प्रकार की अदायगी सम्पूर्ण कृषि कर के कुल मूल्य का १० प्रतिशत से भी कम है। अन्न के रूप में कर देने की रीति से किसानो को वेचने के झमेलो से छुटकारा मिल जाता है। इसके अतिरिक्त सरकार के अन्न कोषागार मे निश्चित गल्ले पहुच जाते है। अन्न के मूल्य पर नियन्त्रण कर भाव का चढाव-उतार पूर्णत वन्द हो गया है।

इन सारे सुख-सुविधाओ ने चीनी जनता को आश्चर्यजनक जीवन दिया है। सतोष और शान्ति के चिन्ह सारे चीज मे स्पष्ट दीख पडते है। सभी अपने-अपने परिवार के साथ स्वस्थ वातावरण में पल रहे है। अव उन्हे अत्याचारी जमीन्दारो को कर नही देने पडते। अधिक उपज होने पर भी उन्हे निश्चित कर ही लगते है। शादी-व्याह, खेती-गृहस्थी और सुख-श्रद्धा में कम दर पर सरकार से ऋण मिलते है। उनकी आमदनी मे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। जनता के महान कार्य, सडक, रेलपथ और जल सरक्षण आदि कार्यान्वित हो रहे है। आज जनता का अहर्निश कल्याण हो रहा है

वडे गौरव की वात है कि हमारा विहार प्रान्त, माल मत्री माननीय श्री कृष्णवल्लभ सहाय के जमीन्दारी उन्मूलन कार्यक्रम की कुशलता और व्यावहारिकता के कारण, सारे राष्ट्र का पथ प्रदर्शन कर रहा है। विहार के साथ ही अन्य प्रान्तो मे भी इनका विधिवत् अनुसरण कर अधिकारी वर्ग किसानो की समस्याओ के निदान मे व्यस्त है। उधर भूदान यज्ञ के सफल सत और स्रष्टा विनोवा जी सरकारी कर्मचारियो के सहयोग से भूमि वितरण योजना मे सलग्न है।

आशा है, निकट भविष्य में भारत के किसानो की भूमि समस्याए भी सदा के लिए सुलझ जायेगी। और तव स्वतत्र भारत के सुन्दर इतिहास मे "कृष्णवल्लभ-विनोवा" जैसे सेवक सत के नाम सुनहले अक्षरो में चमकते दीख पडेंगे।

धरती किसकी ?

डा० पाण्डेय रामावतार शर्मा

"धरती किसकी" । यह एक अजीब सा प्रश्न है। सुनने मे यह एक साधारण सवाल होता हुआ भी सर्वथा इतना रहस्यपूर्ण है कि इसमे उत्पन्न गुत्थियो को सुलझाने में मानव समाज को अपनी प्रगति के भिन्न-भिन्न युगो मे तरह-तरह के अमानुषिक अत्याचार, चिन्तनीय सघर्ष और भयकर युद्धो तक मे सलग्न होना पडा है। तो भी भूमि-समस्या सभ्य ससार के समक्ष आज भी एक उलझन ही है, बल्कि कानून और शक्ति द्वारा भौतिक दृष्टि से इसे जितना ही निर्विवाद बनाने का यत्न किया जा रहा है समाज की परेशानिया उतनी ही ज्यादा बढती जा रही है और शान्ति का आघात होने पर कल्याणेच्छु समाज और भी अव्यवस्थित और उद्विग्न हो उठता है। विश्व के इतिहास में पृथ्वी पर घटित सामाजिक द्वन्द्व के जो विवरण हमारे सामने है उनसे ज्ञात होता है कि काल-प्रवाह में वृद्धि पाते हुए मानव समाज से इस प्रश्न के तीन निराकरण अध्यारोपित किये जाते रहे है और मानव समाज के विकास पर भी उनके व्यापक प्रभाव पडते रहे है। वे तीन उत्तर है—

१—धरती ईश्वर की है।

२—धरती सबकी है।

३—धरती मेरी है।

यो तो मानव जाति सृष्टि के बाद से आज तक जहा-जहा गई वह इन्ही विचारो का उद्घोष करती हुई धरती पर विजय और पराजय की कथाए रचती रही है और जहा कही भी उनके उल्लेख सुरक्षित किये जा सके है, यत्र-तत्र के ग्रन्थो मे उन विचारो के विमर्श भी अवश्य ही विद्यमान है किन्तु भारतीय इतिहास मे अति प्राचीन काल से आज तक के मानवोत्कर्ष के सुन्दर और विशद विवरण स्पष्टत लेखबद्ध दृष्टिगत होते है, अत इस प्रश्न की समीक्षा हमे भारतीय दृष्टिकोण से ही करनी चाहिये।

आरम्भ मे मनुष्य कपि-मानव था या हिम मानव और कितनी [illegible] के बाद वह सभ्य रूप मे पृथ्वी पर स्थिर हो सका, यह बतलाना [illegible] कठिन है, लेकिन जिस युग मे भारतीय आर्य वैदिक ऋचाओ [illegible] प्राकृतिक शक्तियो से अपूर्व भौतिक ऐश्वर्य और परलोक मे [illegible] की कामनाओ मे तल्लीन थे। वह युग एक सभ्य समाज का [illegible] पवित्र मानव जाति के सदेश का वाहक था। [illegible] विश्वास था कि इस सृष्टि का निर्माता ईश्वर [illegible] से सारे [illegible] का कल्याण कर रहा है, वह एक अद्वितीय सर्वशक्तिमान अपने दोनो हाथो से मानो आकाशलोको और भूमि को भी उत्पादन करता हुआ सारे ब्रह्माण्ड को एक साथ सम्यक रीति से चलाता है, जैसे "स बाहुभ्या धमति स पत्तत्रयावाभूमी जनयनदेव एक। ऋ१०-८१-३"। वह अपनी अतुल सम्पत्ति के प्रत्येक कण से मानो मनुष्यो पर प्रकाश करता रहता था —"अहभुर्व वसुन पूर्व्यस्पतिरह धनानि स जयानि शाश्वत। ऋ० १०-४८-१"। वह युग समझता था कि मनुष्य को चाहिये कि वह "शसदुकथेन्द्राय ब्रह्म वर्धन यथासत् ऋ६ ६–२३–५"। उस परमेश्वर की जिससे उसे बृहत् ज्ञान, अन्न-धन आदि की प्राप्ति हुई है, अवश्य ही स्तुति किया करे, क्योकि मनुष्य अपने पराक्रम से जिन उर्वरा भूमियो में उस समय रहते (ऋ० १०–५०–३) चले जा रहे थे वे उसी परमात्मा के दान थे जो अन्तराल से उन्हें आदेश कर रहा था "भूम्या त्वच मधुना कि विभेद। ऋ१०–६८ ४।" वह युग ईश्वर से डरने और धर्म की रक्षा में तत्पर रहने का युग था और उसका धर्म सारे लौकिक पदार्थों को ईश्वर की ही सत्ता से पुष्पित मानने का था। उस समय मनुष्य समाज प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता था कि धरती ईश्वर की है और उसकी भोग योग्य ऐश्वर्य की प्राप्ति करना ईश्वर का ही आदेश है बल्कि ईश्वर ने धरती की गोद में मनुष्य का अवतरण इसलिए ही किया। यह मानव जाति की वह स्वाभाविक स्थिति थी जिसकी पृष्ठभूमि में सहयोग, उपकार और कृतज्ञता की भावनाए आप-ही-आप लहराया करती थी और समाज मे धरती को स्वर्ग से कम आदरणीय नही समझा जाता था।

उस वैदिक काल की यह भावना कल्पनागत ही नही थी वह स्पष्टत व्यवहार के भीतर निर्विवाद रूप मे सर्वग्राही थी। धरती ईश्वर की है के माननेवाले उपकृत हो कहते हैं–"माता पृथ्वी महीयम" यह बडी विस्तृत आदरणीय और सभी मोहा-पदार्थों को देनेवाली पृथ्वी माता के सदृश है, ऋ० १६४–३३। वे उससे कामना करते थे—"काम कामदुध धुक्ष्य, समस्त कामनाओ का पूरा करनेवाली कृषि-मूल झूमे तू। हमारे सभी मनोरथ पूर्ण करो, यजु० १३७२।" वे अपनी जोत की भूमियो से प्रार्थना करते थे—"ऊर्जस्वती पयमा पिन्वमातास्मान्मीते पयसाम्याववृत्स्व। यजु० १२–७०। हे मीते! तू मुजल से खूब सीची जाकर अन्न मे समृद्ध होकर पुष्टिकारक पदार्थों मे हम सब को भलीभाति समृद्ध करो।" सामूहिक रूप मे उपदेश किया जाता था–"योगीवत्त मेधावि। पुरुपो! हलो को जोतो, जुगो को विविध दिशाओ मे ले जाओ क्षेत्र के तैयार होने पर उसमे

बीज बोओ और कृषि-विद्या के अनुसार खूब हृष्ट-पुष्ट अन्न उपजाओ, शीघ्र ही पके अनाज प्रजा को प्राप्त कराओ।" इस तरह ईश्वर की धरती से प्राप्त भाग्य-ऐश्वर्य प्रजामात्र की बहुमूल्य सम्पत्ति थी और ईश्वर के सभी पुत्रो को उस पर अपने कल्याण के लिए धार्मिक अधिकार था।

"धरती ईश्वर की है" के विश्वास के धार्मिक युग मे सर्वसाधारण की आवाज "जो खेडे सो खाय" की नही थी, दिशाओ मे गूजता था—"सब खेडे सब खाय" और चरितार्थ होता था—"रामजी के चिरई, रामजी का खेत, चर जा चिरई भर-भर पेट।" एतदर्थ धरती माता की सन्तान सर्वदा कल्याणकारी यज्ञो मे ही तत्पर रहा करती थी और इसकी प्रेरणा उन्हे अपने पूज्य ईश्वर के विशाल विश्व यज्ञ मे ही हुआ करती थी। समाज इससे सन्तुष्ट था, कमानेवाले स्वय खाने को चिन्तित न होकर खानेवाले को खिलाने में ही प्रसन्नता प्राप्त करते थे। लोग ऐसे ही चलते थे। समाज इसी प्रकार सुखी था, युग-पर-युग इसी तरह बीतता गया।

लेकिन उस समय ईश्वर और धर्म से आबद्ध मानव समाज और उसकी धरती की समस्याए और ही थी। मनुष्य प्रकृति पूजक थे, वे प्रकृति के पुत्र थे और प्रकृति से प्राप्त सत्ता उनकी सामूहिक विभूतियो के निमित्त उनकी वैसी पवित्र सम्पत्तिया थीं जिन पर सबो का यथोचित अधिकार था। धरती मे अन्न उपजाने मे लगे हुए तत्कालीन किसानों के विचार और कृत्यो मे भी ऐसी ही उदारता थी, उनकी पवित्र प्रतीति थी कि सूर्यदेव से प्रकाश, वायुदेव से शीतल पवन और गरजते मेघ-मडलों से वर्षा के दान की ही भाति धरती माता से उन्हें अन्न-राशि का भी दान प्राप्त हुआ करता था और उस दान को समाज-यज्ञ मे वितरित कर के ही सुखी होना उनका कर्तव्य है। इस तरह प्राप्त अन्न से समाज का भरण-पोषण करना उनका एकमात्र कार्य था और समाज पर उनकी रक्षा का शेष बोझ था, उनकी अधिकृत भूमि उनकी पूजनीया माता थी, जो न आपस में विरोध की वस्तु थी और न हाट मे चढा कर बिक्री की कोई साधारण सामग्री, फलत जमीन के बाटने या हडपने के प्रयत्न की तब न आवश्यकता थी और न समय था। मनुष्य सुसगठित होकर भी ऐसी ही व्यवस्था का निर्वाह करते गए जब तक भिन्न परिस्थिति सामने उत्पन्न नही हुई।

वृद्धि और विकास की ओर बढता हुआ मानव समुदाय कालान्तर मे उस दशा को भी अवश्य ही पहुचा जब उर्वरा भूमियो की तलाश मे विचरनेवाली टोलियो को दिक्कते भी महसूस होने लगी, या तो उर्वरा भूमि ही आवश्यकतानुसार विस्तृत नही थी या जनसख्या का ही आधिक्य था और उत्पादन की सामग्रियो की भी न्यूनता थी तथापि आराम का होना जरूरी था और आराम सबो को ही मिलना चाहिये था। माग की पूर्त्तियो मे झगडे और समझौते की भी जरूरत रह-रह कर पैदा होने लगी और शताब्दियो तक अवश्य ही यही क्रम जारी रहा। पर ऐसा भी समय आया जब सामाजिक झगडों को सुलझाने के लिए सामन्त, शासक, सरदार और राजाओ की जरूरत समझी गई। धीरे-धीरे वे अपनी जगहो पर प्रमुख होते रहे और झगडे के निपटारो में अपने निर्णय का बोझ भी समाज के लोगो पर लादते गए। वैसे-वैसे समाज विचारो की सादगी मे भी दूर हटता गया और लाचार उसे अब यह निर्णय भी मानना पडा कि धरती ईश्वर की होती हुई भी सबकी है और न्याय द्वारा "धरती सबकी है" के सर्वाधिकार की रक्षा होनी ही चाहिये। अधिकार की रक्षा के लिए उन नियमो का पालन भी अनिवार्य ही प्रतीत हुआ जिनका निर्माण शूर-वीरो या पुरोहितो द्वारा बीच-बीच में किये जा रहे थे, ऐसी परिस्थितियो मे लोकयज्ञ मे रत किसान यह भी चाहने लगे कि जन कल्याणार्थ अभि-मानियो का अभिमान और आततायियो के अत्याचार रोके जाए और उन्हें वैसे शूरवीर प्राप्त हो जो उनकी रक्षा कर सके। अपने ऐसे सहायको मे उनने कामना भी की "हे पुरुहूत! हम तेरे प्रिय कार्यो मे सभी शत्रुओ के ऊपर उठे और विघ्नकारी पुरुषो का विनाश और वरण योग्य तनो की प्राप्ति करते हुए बडे भारी ऐश्वर्य से तेरे द्वारा रक्षा पाकर सुखमय जीवन व्यतीत करे।" तब शासक-सत्ता बढने लगी और मान-मडल भी दृढ होता गया और उससे व्यापक एव गम्भीर राजसत्ता की स्थापना होने लगी। उस पर नियत्रण के निमित्त राजशक्ति से समुदाय अनुरोध करता रहा कि तू राजपद पर अभिषिक्त होने पर भी उसमे नि शुल्क होकर रह, अन्न और ऐश्वर्य का भोक्ता बन कर उत्तम भूमियो का दान करनेवाला बन निश्चय से ऐश्वर्य और अन्न को बढाता रह और प्रजा में ऐश्वर्य, धन, और भूमि पर यथोचित विभाग करने मे सफल हो। साराश कि शनै-शनै नियत्रित राजसत्ता मनुष्य और धरती पर स्थापित हुई और उसने नियम और कानून द्वारा भूमि का विभाग कर धरती पर सब के स्वत्व की स्थापना की और व्यक्ति द्वारा स्थापित स्वत्व की रक्षा का भी एक प्रश्न खडा करने की ओर पूरा ध्यान दिया। लोग निर्विवाद कहने और मानने लगे "धरती सबकी है"। परन्तु इस पर भी ईश्वर और धर्म, राजा और प्रजा, दोनो अभी तक दृढ रहा और उसके भीतर भूमि पर सर्वाधिकार की व्यवस्थाए चालू की गई।

व्यक्ति की ही भाति समाज भी प्रगतिशील है और उसका एक अवस्था में स्थिर रहना अस्वाभाविक और असभव है। इसलिए निश्चित राजसत्ता समाज के कल्याणकारी विचारो की चिन्ता में ही स्थिर नही रही एक साधारण व्यक्ति की भाति सत्ताधारी शूरवीर भी अपने कुछ-न-कुछ निश्चित व्यक्तित्व और उसके लाभ की चिन्ता करने लगे, उससे समाज मे सघर्ष का जन्म भी अवश्य हुआ किन्तु चेष्टाये रुकी नही, भिन्न-भिन्न परिवर्तनो का सामना करना मानव समाज के लिये अनिवार्य सा हो गया है। समाज भी मानव-सृष्टि के दिन से आज तक जितना लम्बा जीवन व्यतीत कर चुका था और उसके अनुभव भी इस समय तक कितने जटिल और बहुमुखी हो चुके थे। उसकी सादगी शासित शक्ति के द्वारा नष्ट की जा चुकी थी और अब उसे अपना जीवन निर्मित कानून के अनुकूल व्यतीत करना था। केवल "यूयपाल स्वस्तिभि. सदा न: ऋ० ७-६०-१२" की याचना से अब सतोष नही था। दशा काफी बदल चुकी थी। सदियो के बाद नियत्रित राजसत्ता वशगत राजसत्ता बन बैठी और शासितो को त्रस्त और भयभीत भी करने लगी। युगानुकूल शासित वर्ग भी उसी ढाचे में ढलता हुआ लोभ, स्वार्थ और अन्याय के पाठ पढने और दुहराने लगा। अब भूमि को एक व्यक्ति ने ईश्वर का कहना और न सबकी मानना, वह "धरती मेरी है" कहने मे अस्पष्ट दिखाई देने लगे और एतदर्थ उसे धर्म और ईश्वर से भी विवाद करना पडा। समय पर

ईश्वर का विरोध करना या उसके विरुद्ध होना भी जब ज्यादा श्रेयस्कर जान पडने लगा। इस प्रकार एक दिन शासक और शासित, राजा और प्रजा, समाज और व्यक्ति, सभी धरती की छाती पर धरती सम्बन्धी तीसरी समस्या को लेकर मेरी और तेरी के न्याय और अन्याय मे निमग्न हो पडे "जमीन मेरी है" के स्वर से दिशाए गूजने लगी, धरती अवाक अपने पुत्रो को देखती रही। वेदवाणी लुप्त हो गई। मनुष्य का कानून भूमि का शासन करने लगा।

हमारे देश के इतिहास मे महाभारत का युद्ध यह प्रमाणित करता है कि हमारी वैदिक धर्मप्रियता, ईश्वरपरायणता, न्यायशीलता, और कृतज्ञता महाभारत के युद्ध काल तक एकदम बदल चुकी थी। महाभारत के युद्ध की भूमिका मे धर्म और अधर्म, न्याय और अन्याय, उपकार और स्वार्थ, लोक निहित और वैयक्तिक लाभ के सघर्ष का ही सजीव चित्र है। कौरव-पिता धृतराष्ट्र के "मामका पाण्डवाश्चैव" मे इस धारणा की विद्यमानता स्पष्ट "तत्त्वमसि" के दार्शनिक सिद्धान्त से कितना नीचे गिरा हुआ यह सकीर्ण विचार था, यह विचारने ही योग्य है। इस युग की नीचवृत्ति की प्रगाढता दुर्योधन के "विना युद्ध के सूच्यग्र भर भी भूमि नही देने के" कथन से साफ-साफ प्रकट होती है। तब से भूमि की समस्या इसी तरह हठ और अन्याय पर ही आश्रित होती गई और भूमि की समस्या सकीर्ण, अनुदार और स्वार्थपूर्ण हो रही है। स्वार्थ के आगे मनुष्य-निर्मित कानून भी बन रहे है, मनुष्य का मोह व्यग्र कानून के बाद मे घटता हुआ नजर नही आया।

वास्तव में ऐसे विस्मयकारी विचार-विपर्यय का कारण मनुष्य-समाज ही है, धरती तो जहा थी बराबर वही रही है और जिसकी है सदैव उसी की है और मनुष्य ही उसका अधिष्ठाता और भोक्ता भी बना रहा है। आरम्भ से आज तक मानव मण्डल का समादर एक प्रकार नही रहना ही सामाजिक विषमता और पारस्परिक विरोध का मुख्य कारण है। आज धरती एव मनुष्य के प्रति मानव मण्डल का विचार घोर मोह से ग्रस्त और घृणित स्वार्थ मे उन्मत्त है और उक्त पुरातन उदारता और उपकार वृत्ति का सर्वथा अभाव है। व्यक्तिगत लाभ और व्यक्ति विशेष की आय की चिन्ता आज मनुष्य के प्रति मनुष्य को न्याय का आचरण रखने मे भी इतना वचित कर देता है कि वह दानवी दुराचरण को भी ठीक और न्यायसम्मत मान लेता है। इसीसे सभी कहने लगे है—"भूमि मेरी है, मैने यह भूमि अर्जित की है और मेरा भूमि पर स्वत्व है, मेरे पराक्रम का फल है।" समाज मे "मेरी" "मेरी" ही की आवाज प्रबल है। लेकिन हमे जानना पडेगा कि ऐसी ही अनुदार व घृणित नीति के कारण भारत की सारी गरिमा और विश्व-वन्द्य महिमा का सहार नीति कृष्ण द्वारा भी रोका नही जा सका। कमजोर भारत उसके बाद सदियो तक गुलाम ही रहा और स्वतत्र भारत मे भी "मेरी" और "मेरी" का ही घोर स्वार्थ बना रहा। यह देश के दुर्भाग्य और समाज के दुर्गुणो का ही सूचक है। इसलिए भूमि-समस्या का ठीक-ठीक और धार्मिक सुझाव होना ही उचित है। भूमि समस्या मे वास्तविक सुधार लाना क्रान्ति नही न्याय का व्यवहार करना है और ग्रामीण जीवन के लिए एक ऐसे यज्ञ का सपादन करना है जिसके द्वारा लोक-कल्याण और जन तुष्टि की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। अत इसका युक्तियुक्त अनुष्ठान कर "व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्य' ऋ० ५–६६–६" के वैदिक सकल्प को सत्य करना शासक वर्ग का कर्त्तव्य है।

नये समाज के निर्माण में भूमि-समस्या का समाधान

श्री शारदारञ्जन पांडेय

भारतवर्ष में, यहा की अपनी सरकार हो जाने पर, अगर भूमि-समस्या का समाधान नही कर सकी तब इस देश में प्रजातन्त्र की सफलता की चर्चा करना एकदम फिजूल बात मानी जायगी—एकबारगी सत्य से दूर, बहुत दूर। भूमि-समस्या के समाधान करने और उसका हल निकालने के लिए एक अन्तिम निश्चय की आवश्यकता है। निश्चय वैसा होना चाहिये जैसा अचल हिमालय, उसमें ऊचाई हो, दृढता हो, आवश्यक कठोरता हो, जो व्यवस्थापक और शासक की शोभा होती है। यहा समाधान ढूढने के लिए विषय को अधिक और अनावश्यक तूल दिया जाता है, परिणामो की बेकार चिन्ता की जाती है और स्वार्थ सर्वाधिक प्रचड हो झाकते रहते हैं, अपना स्वर बुलन्द करते रहते हैं।

सघर्षों का तांता

इतिहास इस बात का साक्षी है कि सृष्टि के आरम्भ से भूमि की एषणा मानवो में चली आई है। इसी के लिए सघर्ष हुए हैं, खून की नदिया बही हैं, साम्राज्य बदले जा चुके है, तब कही एक ऐसी अपराजित चेतना हिलोरे ले सकी है। टाल-मटोल करने की नीति जनता बरदाश्त नही कर सकती है। हम कई शताब्दियो तक गुलामी की जजीरो में जकडे रहने के कारण अत्यधिक सहिष्णु हो गये है। सच तो यह है कि ससार भर का किसान जरूरत से ज्यादा सहिष्णु होता है। ससार भर के किसानो के लिए धरती की अपार सहिष्णुता की उपमा दी जा सकती है। राजनीतिक पार्टिया या सरकारें किसानो को केवल आश्वासन देकर ही जीवित नही रहने दे सकती। यह सत्य है कि हमारे इस बडे पुराने देश मे अभी अन्य देशों की तरह भयकर रक्तपात नही हुआ है। लेकिन ऐसा अनुमान लगा लेना भी गलत होगा कि इस देश में बडे पैमाने पर जनक्रान्ति भूमि के लिए नही होगी। यह एक ऐसी चेतावनी है जिसकी उपेक्षा एकदम नही की जा सकती। ससार के किसानो के विद्रोहों के क्रमिक अध्ययन से पता चलता है कि विद्रोहो की पृष्ठभूमि प्राय उन लोगो द्वारा तैयार की गई थी जो जनता के भाग्य विधाता थे, उनके द्वारा नही जिन्होंने किसानो के कल्याण के लिए एकता का सदेश दिया था या उन्हे उनके अधिकार प्राप्त करने को उकसाया था। जिन देशो मे जन-कल्याण के आदर्श को सामने रखकर भूमि-समस्या का अन्तिम रूप से समाधान किया गया उनका अध्ययन हमारे लिए लाभकर हो सकता है, पर उन्ही तरीको से हम अपने देश में हल नही निकाल सकते।

इतिहास का साक्ष्य

भूमि-समस्या को समाधान देने के लिए हमें न तो इतिहास के गहन अध्ययन करने की जरूरत है और सामाजिक परिस्थितियो या पारस्परिक विशेषताओ के समक्ष झुकने की आवश्यकता है। किसी देश मे या हमारे इसी देश मे किस युग मे भूमि-समस्या का किस प्रकार समाधान किया गया था, यह जानना भी अनिवार्य नही है। यह कहना भी अनावश्यक होगा कि अमुक शासन प्रणाली के कारण या अमुक शासन के कारण भूमि-व्यवस्था ऐसी सदिग्ध हो गई है जिसके परिणामो को शीघ्र नही मिटाया जा सकता। मेरा दृढ विश्वास है कि जो शासक वर्ग या राजनीतिक दल इतिहास का साक्ष्य उपस्थित करते है वे असली प्रश्न को टालने की नीयत रखते हैं। सबसे बडा काम तो यह है कि अधिकाधिक जन-कल्याण को मद्दे-नजर रखकर विधेयक बनने चाहिये और यह देखा जाना चाहिये कि उस पर कडाई से अमल किया जाता है कि नही। अगणित समस्याओ के इस ससार मे साधारण किसान को न तो इतिहास पढाया जा सकता है और न मनो-विज्ञान की ट्रेनिंग ही दी जा सकती है। उसकी मानवीय शक्तियों-उत्पादन का काम लेना चाहिये, चाहे वह व्यक्ति जिस तरह का हो। इसी प्रकार मानव की चतुर्दिक उन्नति सम्भव है और उन्नीत होकर ही इन्सान सुख-चैन की सास ले सकता है। प्रारम्भ से लेकर आज तक जितने इतिहास के ग्रन्थ लिखे गये हैं उनका रेकर्डिंग एकपक्षीय है—राजा, राजकीयता और राज-व्यवस्था। यह किसी ने भी नही लिखा कि राज-व्यवस्था या राज्याचरण मे आम जनता किस युग में किस प्रकार सहयोग देती थी। यहा तक कि हमारे इस देश में भगवान भी राजा का बेटा ही हो सकता था और दूसरा कोई नही। और भगवान के भक्त केवल दासानुदास के अतिरिक्त कुछ नही थे। प्रजातन्त्र के स्वर्णिम युग में जब हम मानवता का [illegible] चाहेंगे तब इतिहास की बडी पोथियो को थोडी देर के लिए पुस्त-कालयों में या अध्ययन के कमरे में बन्द कर देना होगा। कदम-कदम पर

इतिहास का साक्ष्य स्वीकार करना निश्चयात्मकता से दूर भागना है । इतिहास केवल इसी बात की प्रेरणा दे सकता है कि आजतक शासन की ओर से भूमि-समस्या को हल करने के लिए क्या प्रयास किये जा चुके है । पर जैसा कि मै ऊपर कह चुका हू उससे तो एक प्रकार की स्थिति सम्मुखीन हो जायगी चूकि सही फैसला करने म ऊहापोहा आ जा सकता है । तब एक ही रास्ता रह जाता है अपने आदर्शों एव लोक भावनाओ के अनुसार हम समस्या का समाधान दे दें। एकवार की गई व्यवस्था तो वरावर रहती नही । उसमें बराबर रद्दोबदल हुआ करती है।

हमारी असली अवस्था

भूमिका को अधिक नही वढाकर अब मै सत्य तथ्य पर उतरू जिसकी पूर्ण जानकारी के अनन्तर ही किसी प्रकार का कार्यकारी कदम उठाया जा सकता है। किसानो की असली स्थिति क्या है? जवाव सीधा है । (१) जो लोग असली उत्पादन करनेवाले है उनके पास जमीन नही है (२) साधन नही है (३) सिंचाई, खाद, वीज, कृषि-सम्बन्धी आधुनिक ज्ञान नही है (४) किसानो की परम्पराए जडीभूत है, वे उससे दूर हटकर प्रयोग नही करना चाहते हैं (५) सहायक उद्योग, गावो मे जो किसी युग मे अधिक विकसति था, अव एकदम लुप्त हो गया है (६) उत्तराधिकार कानून आदि ऐसा है जिससे होल्डिगो के अनावश्यक टुकडे हो गये है (७) गावो का सामाजिक गठन इतना जर्जरित है जिसमे बिना परिवर्त्तन के उत्पादन, श्रम का विभाजन या सामूहिक दायित्व का निर्वाह सभव नही हो सकता है (८) गाव इतने छोटे-वडे है और उनका रकवा इतना छोटा-वडा है जिसका कारण सम भाव नही आ सकता है (८) राजनीतिक पार्टिया और सरकारें इतनी असमर्थ है कि वे अपने प्रभाव से कोई परिवर्त्तन नही ला सकती हैं। लेकिन सवसे अधिक काम तो सरकार का होता है। आजादी आ जाने के वाद गत आठ वर्षों में ऐसे प्रयास नही किये गये है जिनसे किसानो मे सार्वजनिक चेतना आवे और वे सहकारी कृषि की दिशा में अग्रसर हो सकें। दुर्भाग्यवश सरकार में जो लोग हैं वे भी अपने को, अपने स्वार्थों को छोडकर वहुजनहिताय कार्य करने में असमर्थ पाते है, चूकि ये भी वही परम्परा की मान्यता का व्यामोह छोड नही सकते। इसका मूल कारण है कि प्रारम्भ काल में हमारी सवसे वडी राजनीतिक पार्टी काग्रेस के सदस्यो के समक्ष विदेशी सरकार की नीति के समानान्तर कोई योजना नही थी। अगर निश्चित योजना होती तब आज यह कठिनाई नही उपस्थित होती जो विकराल रूप धारण कर चुकी है। चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी के पास एक निश्चित स्कीम थी कि शासन में आ जाने के वाद वे क्या करेंगे? अत उन्हे भूमि-समस्या के समाधान करने में आशातीत सफलता मिल चुकी है जिसे देखकर सारा ससार चकित है ।

जमीन्दारी उन्मूलन

कोई भी समझदार आदमी यह सवाल पूछ सकता है कि मुआवजा देकर जमीन्दारी उन्मूलन का क्या अर्थ होता है। मुआवजा देने का सम्भवत यही अर्थ है कि उचित मल्य पा लेने पर ये जमीन्दार आखिर अपनी व्यवस्था कर ले। तो वे सारे जमीन्दार क्या जमीन्दारी के लिये जाने पर खेती का काम नही करेंगे? यदि नही करेंगे तब उन्हे मुआवजा देना जायज समझा जाता। अगर वे जमीन्दारी उन्मूलन के पश्चात भी कृषि पर निर्भर रहेंगे, तब तो उन्हे उनके परिवार-पालन भर जमीन ही मिलनी चाहिये जिससे वे उत्पादन कर सके और सामान्य किसान की तरह श्रमशीलता के आधार पर, नयी व्यवस्था मे जो पूर्णतया मानवीय आधारो पर निर्मित होनेवाली सम्भावनाए है, अपना जीवन व्यतीत कर सके। जमीन्दारी उन्मूलन मे ही या मुआवजा दे देने से ही पूर्णरूपेण आखिरी तौर पर भूमि-समस्या का समाधान नही हो सकता है। शासन एव जनता के वीच की दीवार के रूप मे जो जमीन्दार थे, वे मान लीजिए हट गये? लेकिन उनका भविष्य और उनके स्वार्थ दोनो का दायित्व भी समाज पर ही है। स्वार्थ का दायित्व, यह तो कुछ असगत जैसा लगेगा। पर दरअसल स्वार्थ का अर्थ विस्तृत भाव और कार्यक्षेत्र मे समझा जाना चाहिये। यानी उन जमीन्दारो को जीने की सुविधाए देना जैसे दूसरे किसानो को मिलेगी, इतने से अधिक कुछ नही। कोई भी कानून बनाने में, हमारे शासको को वहुधा एक प्रकार का भय बना रहता है, शका सामने रहती है, इसलिए कि युग-युग मे चले आनेवाले समाज के प्रवल लोगो की प्रतिक्रिया जाने कैसी होगी और उसका परिणाम न जाने क्या होगा? यह भी एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक भय है। यदि इसे भगाने के लिए कटिवद्ध हो जाया जाय तव निर्णय किया जा सकता है और उससे अधिक कल्याण होगा ।

भूदान की प्रतिक्रियाएँ

जमीन्दारी उन्मूलन कर देने से किसानो मे एक प्रकार की आशा का सचार हो चुका है। अब वे स्वप्न देखने लगे है कि उनके अच्छे दिन आये। वे हाकिम-हुक्काम के आगे थोडा निडर होने का उपक्रम करने लगे चूकि जमीन्दारो का भय रहा नही। लेकिन आचार्य विनोवा भावे के भूदान-आन्दोलन के कारण सारे देश मे एक प्रकार की विपरीत प्रतिक्रिया हो गई। भूदान करनेवाले वडे-वडे जमीन्दार, राजा-रजवाडे पुन दान के वल पर अफसरो और किसानो के वीच दीवार वन कर आ गये। सरकार को उनका कृतज्ञ इसलिए होना चाहिये चूकि उन्होने जमीन दी है। इस प्रकारपुरानी परम्परा के अनुसार दान देनेवाले ही सम्मान के पात्र हो गये। भूदान मे कैसी जमीन मिली है यह इस छोटे से लेख का विषय नही है। असल प्रश्न यह है कि हम किसानो को दान देगे या उनके अधिकार देगें। भूमि पाना प्रत्येक किसान का अधिकार है। अधिकार को दान का स्वरूप देना विडम्बना नही तो और क्या है? मान लीजिए, अमुक राजा साहव से कई सौ एकड भूमि भूदान मे मिली। उस पर उसी राजा साहव के हलवाहे झीगुर में इतनी जुरअत कहा से आवेगी कि वह फौरन उसे अपना समझने लगेगा। इसके लिए उसे उचित शिक्षा कौन देगा। जो लोग भूदान आन्दोलन के समर्थक है उन्हें यह सोचना चाहिये, फिर विधान में जव व्यक्तिगत सम्पत्ति को मान्यता दी गई है तब केवल दान देकर तो किसान को भूमि का मालिक नही बनाया जा सकता।

तब क्या कारण है कि इतना अवैज्ञानिक होते हुए भी भूदान का आन्दोलन लोगो की कल्पना को जकड कर पकड चुका है। इसका कारण

है हमारी वही परम्परा जिसमें अधिकारो की नही, दान-धर्म-दया-दाक्षिण्य आदि को मान्यता दी गई है। कुछ लोगो ने प्राचीन आदर्शों के प्रति मोह के कारण इसमे सहयोग देना आरम्भ किया है और कुछ लोगो ने यह समझ कर कि इसी आन्दोलन से शान्तिपूर्ण तरीको से भूमि समस्या का समाधान उचित तथा इप्सित तौर पर हो जायगा। पर दोनो ही गलती पर हैं। हा, इस आन्दोलन से इतना लाभ अवश्य होगा कि लोगों मे अपने अधिकारो का ज्ञान फैल जायगा और जिनके पास प्रयाप्त भूमि है वे भी समझने लगेगें कि धार्मिक आधारो के अनुसार भी उन्हे अधिक भूमि रखने का कोई अधिकार नही है। केवल इतनी सी चेतना फैलाने के लिये इतने बडे आन्दोलन की क्या आवश्यकता थी? इस आन्दोलन से तो देश के लोगो की बहुतायत क्षमता एव कार्यशक्ति का दुरुपयोग हो रहा है और एक ऐसी भावना घर कर रही है जिससे लोग अधिकारो की बात को दान के नीचे दबा बैठेंगे। अब वह समय आ गया है जब सब लोगो को बिलकुल स्पष्ट निर्णय करना चाहिये।

निश्चित उपाय

भूमि-समस्या के समाधान के लिए निश्चित कार्यक्रम कुछ ऐसा होना चाहियें (१) देश भर की कृषि योग्य भूमि की पैमाइश, जिसमे वैसी भूमि भी सम्मिलित हो जो कृषि के लायक बनाई जा सकती है (२) इसका निर्णय कि क्या केवल भूमि उन्ही को दी जायगी जो खेती करते है या उन्हें भी जो कृषि के अलावा अन्य व्यवसाय करते हैं जैसे नौकरी, दूकानदारी आदि (३) जिस क्षेत्र में प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार जो उत्पादन होता हो या हो सकता हो उसके सम्बन्ध में आकडे एकत्र कर उसकी सुविधा प्रस्तुत करना (४) सिंचाई, बीज, खाद आदि की व्यवस्था करना (५) भूमि की सीमा निर्धारण करके पूरे गाव के खेतो को सहकारी चकबन्द बना देना, इससे ग्रामीण समाज मे जो चकबन्दी व्यक्तिगत मिल्कियत पर है और जिस कारण अनेको बुराइया फैल गई हैं उसका समूल नाश हो जाय। सहकारिता के आधार पर कृषि प्रारम्भ कर देने से सबके हित भी सम्मिलित हो जायेगें और उत्पादन मे अधिक वृद्धि होगी। यही व्यष्टि को समष्टि के रूप में परिणत करने का बहुत बडा अस्त्र सिद्ध हो सकेगा।

इन सब योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए सबसे पहले पूरे देश मे भावभूमि तैयार करने की जरूरत पडेगी। वातावरण तैयार करने में सरकार राजनीतिक कायकर्त्ताओं, समाज सेवियो तथा पढे-लिखे ग्रामीणो की सहायता और सहयोग ले सकती है। अभी जो सीमा निर्धारण पर तरह-तरह के मत व्यक्ति किये जा रहे है वे सर्वथा अकार्यकारी जान पडते हैं। लाभकर उत्पादन के लिए किसी भी भूपति के तीन सौ एकड की छूट देना निश्चय ही, इस युग मे जब भूमि की क्षुधा पूरे देश में है, युक्तिसगत किसी भी दृष्टिकोण से नही कहा जा सकता है।

इसी बीच गावो मे यत्र-तत्र छोटे-छोटे उद्योग-धधो को आरम्भ कर देने की आवश्यकता है। जब खेती का काम नही होता तब ग्रामीण बेकार अपना समय व्यतीत करते हैं। यदि पूरे देश में इस प्रकार की योजनाएं कार्यान्वित नही की जा सकें तो किसी एक भाग के एक गाव मे ही प्रयोग आरम्भ किया जा सकता है।

भूमिहीनों का स्वत्व

रेवरेंड फ़ादर ई० डी० म्युल्डर

अभी ससार के प्रसिद्ध कैथलिक धर्माचार्यो ने एक ऐसा नारा दिया है जिससे ससार के कुछ भाग के लोगो को वडा भय लगने लगा है। यह नारा है, जिन देशो मे आवादी अधिक है और जमीन कम वहा के लोगो को उस मुल्क में स्थान मिलना चाहिये जहा जमीन अधिक है और जनसख्या कम। इस नारे से कनाडा, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका को भय उत्पन्न हो गया है। डर इसलिए चूकि इन देशो के निवासियो ने मानवतावाद का स्वर नही पहचाना है।

दक्षिण अफ्रीका की जातीय नीति ऐसी है जिसमे सारे ससार के लिए वह समस्या वनती जा रही है। भारत और चीन मे जो जन्म-नियत्रण का आन्दोलन चलाया जा रहा है वह कतिपय निहित स्वार्थो का षडयत्र है।

भारतवर्ष में भी वडे उद्योग या कृषि के जो अधिपति हैं उनकी वितरण-नीति भी ऐसी है जिससे राष्ट्र प्रगति की ओर नही वढ रहा है। किसी भी सभ्य समाज में जव तक सबको रोटी नही मिल जाय तव तक कुछ लोगो को केक नही दिया जा सकता। यदि दिया जाय तब यह सम्पूर्णतया अन्याय होगा। प्रगतिशील विश्व के सभी लोकनायक सम्पत्ति और जन कल्याण के वीच वितरण का औचित्य चाहते हैं। सबसे पेचीदा प्रश्न है इस नीति को कार्य रूप किस प्रकार दिया जाय। कई देशो में सुनियोजित नीति नही रहने के कारण वडे पैमाने पर अशान्ति की सृष्टि हो गई है।

ससार के अधिकाश देशो में वुभुक्षा है। वर्तमान युग के सबसे वडे इतिहासकार आरनल्ड टायनवी के अनुसार ससार के पाच बडे देश है। इन पाच बडो में भारत, चीन, सुदूरपूर्व और पश्चिमी यूरोप आते हैं। इन देशो में उत्पादन एव वितरण का अनुपात उचित रीति से होना चाहिये। आचार्य विनोबा भावे ने भारत में भूदान का आन्दोलन आरम्भ किया है। लेकिन केवल कुछ जमीन दे देने से ही असली समस्या का समाधान नही हो पायगा। यहा भूमि की वुभुक्षा और खाद्य की बुभुक्षा दोनो ही विराट स्वरूप लेकर उपस्थित है।

भारत में एक और समस्या है, वह है साम्यवाद का। इस वाद के चलते ससार के कई हिस्सो में अशान्तिपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई है। इस वाहरी वाद का उतना खतरा नही है जितना यहा की अतिशय गरीबी से है जिस कारण कई प्रकार की भयकर वीमारिया यहा फैल गई हैं।

औद्योगिक एव कृषि उत्पादनो के न्यायोचित वितरण से ही इस देश की समस्या का सही एव उचित रूप से समाधान सभव है। इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए भारत को एक वीच का रास्ता अख्तियार करना पडेगा जो न साम्यवाद का होगा और न पूजीवाद का। कम्यूनिस्ट कहते हैं—उत्पादन के सभी साधनो का राष्ट्रीकरण हो जाय। इसीसे इस देश मे सामाजिक न्याय सभव हो सकेगा। जो लोग पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे विश्वास रखते हैं उनका कहना है—स्वतत्र वाणिज्य मे राज्य की ओर से किसी प्रकार का हस्तक्षेप उचित नही। ये समस्त यूनियनो और सघटनो को समाज के लिये खतरा मानते हैं।

१९३४ से आज तक अमरीका मे राज्य की नीति से जो भी परिणाम निकला वह भारत मे नही हो सका है। भारत मे भूमि की वुभुक्षा एक नग्न सत्य है यहा भूमि का राष्ट्रीकरण ही किसी तरह समस्याओ का समाधान नही दे सकता।

पूरे देश मे जमीन्दारी के खात्मे के लिए नारा लगाया गया। और यहा जमीन्दारी उन्मूलन किया जा चुका है। जमीन्दारी प्रथा के रहते अन्न उपजानेवाले भूखो मरते है और रूई उपजानेवाले नगे रहते हैं। भारत में वडे पैमाने पर अगर कृषि की जाय तव भी असली समस्या का समाधान नही होता। सामूहिक कृषि रूस मे की गई है। इस देश मे ऐसी कोई भी कृषि प्रणाली सहल नही हो सकती है। अगर भारत में किसान मिलकर स्वय सामूहिक खेती करें, लेकिन शासन की ओर से किसी किस्म का दबाव नही पडे तब सफलता बहुत हद तक मिल सकती है और वास्तव मे ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का यही मूलाधार हो सकता है। जब तक किसान जमीनो के मालिक नही हो जाते तब तक असली समस्या का समाधान नही होने को है यदि। जमीन बडे-बडे भूपतियो के पास हो तब वे ट्रैक्टर आदि आधुनिक उपादानो से बडे पैमाने पर कृषि करेंगे। यदि भूमि किसानो की हो गई तब वे भी अपने साधनो से अधिक उत्पादन कर सकते हैं और ये किसान ऐसा करने को कटिवद्ध है। जनोपयोग की जमीनो को छोडकर शेष भूमि किसानो को वन्दोवस्त कर दी जानी चाहिए।

यही समय है जव भारत के शासक फैसला कर सकते हैं कि यहा किस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था कायम होगी। इसमें भी ग्रामो की अर्थव्यवस्था

की ग्राकृति सवसे ग्रधिक महत्वपूर्ण है। सघर्ष दो पक्षो मे है, साम्यवाद में ग्रौर पूजीवाद में। मध्य व्यवस्था मे, सहयोगिता के ग्राधार पर, कृपि कार्य की उन्नति हो सकती है। भारत में पहले कई राज्यो में सहयोग समितिया ग्रसफल रही है। सहयोग समितिया जव ग्रसफल हो जाती है तव व्यवस्थापक या तो पूजीवादी व्यवस्था की ग्रोर वढते है या फिर सामूहिक उत्पादन की ग्रोर चलते हैं। इन दोनो पद्धतियो से किसान की मौलिकता नष्ट हो जाती है। वह केवल एक वडी मशीन का पुर्जा भर रह जाता है। ग्रत सरकार को चाहिये कि वह सहकारिता का शनै शनै विकास करे।

ग्रमेरिका में, कनाडा में, हालैड में, स्वेडेन मे, जर्मनी में, फ्रास में ग्रौर वेलजियम मे जिनलोगो ने सहकारिता के ग्रावार पर कृपि-उत्पादन, क्रय-विक्रय ग्रादि की प्रक्रियाए देखी है वे इसकी सफलता का रहस्य जानते हैं। मै समझता हू कि ऐमी सहकारिता भारतीय किसान के लिए लाभजनक हो सकती है। यहा की ग्रावादी ऊपर लिखे गये देशो की ग्रावादी जैसी घनी है। ग्रत जो लोग यहा मे भुखमरी, दरिद्रता, वीमारी ग्रादि दूर करना चाहते है उन्हें इसी प्रकार की व्यवस्था ग्रारम्भ करके राष्ट्र का कल्याण करना चाहिये। यहा के खनिज समाप्त हो सकते हैं। लेकिन धरती की पैदावार नही समाप्त हो सकती है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने ठीक कहा था—गाव स्त्रियो की तरह ग्रवस्थित है। इनके गर्भ से ही राष्ट्रो का विकास होता है। पर सचमुच ग्रसली भारत का जीवन तो गावो मे ही उल्लमित है। उसी उल्लास को सुन्दर गति देना प्रगति का द्योतक होगा।

सोवियत रूस में सम्मिलित कृषि

सोवियत रूस की कृषि-प्रणाली के सबध मे बहुधा अनेक प्रकार के प्रश्न पूछे जाते है, जैसे, सामूहिक कृपक की सम्पत्ति कितनी होती है? वे क्या बेच और खरीद सकते है? क्या सामूहिक कृपको के अपने खेत होते है? यदि हा, तो वे उसे किस प्रकार जोतते है? या उसका इन्तजाम कैसे करते हैं।

सोवियत रूस के किसान की सम्पत्ति सामूहिक होती है। कृषि सघो की समस्त सम्पत्ति होती है और सोवियत किसान उसके सदस्य होते है। सामूहिक कृपि-सम्पत्ति मे घर, कृपि सबधी औजार, जानवर और बीज होते है। यह समस्त सम्पत्ति और इसकी आय समाजगत कोप के रूप मे सचित रहता है जिसके मालिक किसान वर्ग होते हैं। भूमि उन्ही वर्गो को दी जाती है।

उदाहरण के लिये ताशकेत के कागानोविच सामूहिक फार्म का आदर्श लिया जाय। इस समूह को ५६०० हेक्टेयर जमीन मिली है जिसमे ३९९० हेक्टेयर मे पर्याप्त उत्पादन होता है। इसके अतिरिक्त इस फार्म में ८००० भेडें, १००० अन्य जानवर और १००० घोडे, गधे और ऊट कुल मिलाकर है।

प्रत्येक वर्ष फार्म की स्थिति उत्तरोत्तर अच्छी होती जा रही है। वहा उत्पादन की आशातीत उन्नति हुई है। १९४५ मे यहा ३७०० टन कच्ची रूई का उत्पादन हुआ था जिसकी कीमत १५० लाख रूबल हुए। १९५४ में ५८०० टन रूई का उत्पादन हुआ और आमदनी २०० लाख रूबल अधिक हो गई। सामूहिक कृपि प्रक्षेत्र की कुल कीमत २५८८५००० रूबल है। १९४५ में इसकी कीमत १४७९८००० रूबल थी। इसकी मालकियत भी सामूहिक है। यही सोवियत कृषको की आय का सबसे प्रमुख साधन है। १९४५ में प्रत्येक परिवार की आय १४००० रूबल था, नकद के अलावा प्रति परिवार को दो टन गेहू तथा अन्य प्रकार के अनाज दिये जाते थे।

घर के आस-पास की छोटी जमीन के मालिक भी रूस के किसान है। इस जमीन मे जो वह खेती करता है वह सामूहिक कृपि के अतिरिक्त है। सामूहिक कृपि के नियमो के अनुसार थोडी-थोडी जमीन प्रत्येक कृपक को दी जाती है। ऐसी जमीन प्रति परिवार ० २५ से एक हेक्टेयर तक होती है। इसका वह हमेशा इस्तेमाल कर सकता है।

सामूहिक प्रक्षेत्र अधिनियमो के अनुसार किसान अपने मकान का और उसके आसपास की प्रदत्त भूमि का मालिक होता है। उसके पास खेती के औजार आदि भी होते है। वह स्वत जानवर रख सकता है। मुर्गी पाल सकता है।

किसान अपनी और अपने परिवार की आवश्यकता की चीजे खरीदता है। उसकी अपनी जमीन मे जो कुछ भी उत्पन्न होता है उसे बेच सकता है। चल और अचल सम्पत्ति मे घर, कुछ जानवर, मुर्गी, आदि की सख्याए होती है। कृपको को इन्हे बेचने का, किसी को दे देने का या अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी करने का अधिकार होता है। लेकिन जमीन नही बेची जा सकती है चूकि सोवियत रूस मे भूमि पर सबका अधिकार होता है।

अगर सामूहिक कृपि प्रक्षेत्र के सदस्य के परिवार मे वृद्धि हो गई तो उसके वर्द्धित सदस्य को अलग घर बनाने का अधिकार प्राप्त है और अन्य सामूहिक कृपको की तरह उसे भी उत्पादन मे हिस्सा मिलता है। उसे वैयक्तिक भूमि भी उसी परिमाण मे मिलती है जिस परिमाण मे औरो को मिलती है।

रूसी विधान द्वारा वहा के नागरिको की निजी सम्पत्ति का सरक्षण मिला है। निजी या वैयक्तिक सम्पत्ति मे उसके श्रम या अन्य कामो से बचत, घरेलू सामान, वैयक्तिक सामान आदि आते है जिनका वह वारिश है। इसकी सुरक्षा कानून द्वारा की गई है।

(रूसी समाचार समिति तास द्वारा प्रदत्त)